भारत में बाइबिल

[प्रथम भाग]

संपादक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

(सुधा-संपादक)

गा-पुस्तकमाला का पचहत्तरवाँ पुष्प

भारत में बाइबिल

[प्रथम भाग]

लेखक

संतराम बी० ए०

हिंदू-धर्म ही इबरानी और
ईसाई धर्मों का मूल स्रोत है

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२९-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

सजिल्द २)] सं० १९८९ वि० [सादी १॥)

गया। परंतु इस अनुवाद में मूल की बहुत-सी बातें छोड़ दी गईं। उस अनुवाद का एक संस्करण, कुछ वर्ष हुए, प्रयाग के पाणिनि आफ़िस ने भी छापा था। किंतु उसमें और भी अधिक काट-छाँट कर दी गई है। इसलिये श्रीयुत जकालियट की फ़्रेंच पुस्तक के जो भी अँगरेज़ी अनुवाद इस समय मिलते हैं, वे सब अधूरे हैं। उन-में, विशेष कारणों से, अनेक उपयोगी बातें छोड़ दी गई हैं। परंतु बड़े हर्ष की बात है कि मेरा यह हिंदी-अनुवाद सर्वांगपूर्ण है। यह मूल फ़्रेंच पुस्तक से मिलाकर किया गया है। जो बातें अँगरेज़ी अनुवाद में छोड़ दी गई हैं, वे सब इसमें दे दी गई हैं।

मूल फ़्रेंच पुस्तक की एक पुरानी प्रति दैवयोग से मित्रवर पं० भगवद्दत्तजी, बी० ए० को मिल गई थी। मुलतान-गवर्नमेंट कॉलेज के संस्कृत-प्रोफ़ेसर पं० गणपत रायजी एम्० ए० ने मेरे लिये उन छोड़े हुए अंशों का अनुवाद कर दिया। इसके लिये मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

पुरानी बसी, होशियारपुर
३० कार्त्तिक, १९७६ विक्रमी

संतराम

उपोद्घात

श्रीयुत संतरामजी द्वारा अनुवादित यह पुस्तक हिंदू-जाति के लिये एक विशेष महत्त्व रखती है। मूल-पुस्तक का लेखक, श्रीयुत जकालियट, उस फ्रेंच जाति का एक रत्न था, जो योरप में सचाई और समता आदि उच्च भावों के साथ प्रेम रखने के लिये प्रसिद्ध है। योरप महाद्वीप में केवल एक फ्रेंच ही ऐसे लोग हैं, जो संसार की दूसरी जातियों और उनकी पुराण-कथाओं को भी उसी आदर और सत्कार की दृष्टि से देखते हैं, जिससे कि अपनी जाति तथा अपनी पुराण-कथाओं को। फ्रेंच होने के कारण श्रीयुत जकालियट का हृदय पूर्ण रूप से विशाल और उदार था। वह अपनी जाति के उच्च कोटि के विद्वानों में से थे। इसी कारण वह चंद्रनगर के फ्रेंच उपनिवेश में न्यायाधीश के पद पर सुशोभित थे। उन्होंने हिंदू-जाति के प्राचीन काल को उन्हीं आँखों से देखने का यत्न किया था, जिनसे कि हिंदू लोगों को उसे देखने का स्वभाव है।

आजकल अँगरेज़ी शिक्षा के प्रभाव के कारण हमारे नेत्रों में ऐसी चकाचौंध हो रही है कि हम अपनी जाति के प्राचीन गौरव और महत्ता का अनुभव और सम्मान नहीं कर सकते। हमारे अनेक भाई वर्तमान पश्चिमी शिक्षा के मद से इतने उन्मत्त हो चुके हैं कि अपनी प्राचीन महत्ता की बातें उन्हें कपोल-कल्पित जान पड़ती हैं। इसलिये हमें यह देख आश्चर्य-सा होता है कि किस प्रकार एक विदेशी विद्वान् उन्हीं सब बातों को, जो हमारे लिये स्वप्न-राज्य के समान हैं, सत्य मानता और ज़ोर देकर लिखने पर उद्यत हो जाता है।

हो सकता है कि श्रीयुत जकालियट की कल्पनाओं के साथ हम पूर्ण रूप से सहमत न हों, अथवा हम यह समझें कि वह इन कल्पनाओं पर ऐसे मुग्ध हो गए थे कि इनकी व्याख्या में उन्होंने अत्युक्ति से काम लिया है। परंतु इसमें कुछ भी संदेह नहीं हो सकता कि श्रीयुत जकालियट के विचार तथा कल्पनाएँ अपने विषय पर सर्वथा अपूर्व और मौलिक हैं। इनको असत्य कहने का केवल वही व्यक्ति साहस कर सकता है, जो यह समझता हो कि हिंदू-जाति का अतीत काल असभ्य जंगली जातियों का-सा था। यदि एक बार हम यह मान लें कि इस जाति के पूर्वज उस समय सभ्यता अर्थात् तत्त्वज्ञान और विद्याओं के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुके थे, जब योरप की वर्तमान जातियों ने मकान बनाना और वस्त्र पहनना भी न सीखा था, तो श्रीयुत जकालियट की कल्पनाओं के संबंध में हमारा सारा विस्मय दूर हो जायगा। जिस प्रकार वर्तमान जातियों का अंधकार से निकलकर उन्नति के शिखर पर आरूढ़ हो जाना संभव है, उसी प्रकार यह भी संभव है कि यह आर्य-जाति उन्नति के शिखर से गिरकर आज ऐसी दुरवस्था को प्राप्त हो गई हो कि उसे अपना अतीत गौरव झूठ देख पड़े।

श्रीयुत जकालियट के विपक्षी पादरियों की यह धारणा है कि दक्षिण के ब्राह्मणों ने उन पर जादू डालकर उन्हें एक प्रकार के भ्रम-जाल में डाल दिया था। इस बात के स्वीकार करने में तो कोई हानि नहीं कि श्रीयुत जकालियट का ब्राह्मण विद्वानों से बहुत मेल-जोल था। उन्हों-ने आर्य-जाति की प्राचीन उन्नति के संबंध में सारा ज्ञान इनसे ही प्राप्त किया था। यदि इस देश में आकर उनका इन ब्राह्मण विद्वानों से संसर्ग न होता, तो वह बाइबिल और मानव-धर्मशास्त्र की सचाइयों की तुलना न कर सकते, और न इस तुलना से अपने विशेष

परिणाम ही निकाल सकते। हम सब संसार में अपना अनुभव दूसरों की सहायता से सीखते हैं। और, यदि श्रीयुत जकालियट ने ब्राह्मणों के संसर्ग से ज्ञानार्जन किया, तो कोई पाप नहीं किया। श्रीयुत जकालियट की विशेषता इस बात में है कि जहाँ सैकड़ों-सहस्रों योरपियन इस देश में वाणिज्य के लिये आए, और व्यापार या लूट-खसोट से धन इकट्ठा करके अपने घर को लौट गए, वहाँ अकेले श्री० जकालियट में ही ऐसी उच्च आत्मा निवास करती थी, जिसे सांसारिक धन की अपेक्षा संसार के ज्ञान को बढ़ाने की इच्छा अधिक प्रबल थी।

एक बात बड़ी विचित्र है। जिस काल में श्री० जकालियट आर्य-धर्म की प्राचीन पुस्तकों को पढ़कर और ब्राह्मण विद्वानों से आर्य-सभ्यता की सचाइयों को सीखकर नवीन कल्पनाएँ स्थापित कर रहे थे, उसी समय के लगभग उत्तर भारत में आर्य-समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानंदजी महाराज भी प्राचीन आर्य-धर्म तथा आर्य-सभ्यता का मनन करके उसी प्रकार के परिणामों पर पहुँच रहे थे। ऋषि दयानंद की शिक्षा का सारांश भी इसी कल्पना के अंतर्गत है कि संसार में जितने भी धार्मिक तथा शास्त्रीय सत्य फैले हैं, उन सब-का आदि-मूल यही आर्य-जाति है। इसी जाति ने संसार को धर्म, ज्ञान और विज्ञान की शिक्षा दी है। स्वामी दयानंद के सिद्धांतों को माननेवाले इस समय सहस्रों-लक्षों हिंदू विद्वान् मौजूद हैं। यदि स्वामी दयानंद अथवा उनके इतने अनुयायी न होते, तो कदाचित् हम श्रीयुत जकालियट की बातों को बच्चों की बातें समझकर ही टाल देते। परंतु जब इन बातों को माननेवाला एक इतना भारी दल है, तो हमारे लिये उनके विचारों का गंभीरता-पूर्वक मनन करना अत्यावश्यक हो जाता है। साथ ही हमें इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि इन विचारों को उपस्थित करनेवाला एक सत्या-नुरागी विदेशी विद्वान् है।

श्री० जकालियट का बड़ा सिद्धांत, जैसा कि इस पुस्तक के नाम से ही प्रकट है, यह प्रतीत होता है कि जिसको आज सारा योरप अपनी धर्म-पुस्तक मान रहा है, उसकी सारी शिक्षा मिसर-निवासियों की धार्मिक शिक्षा से और उसके अनुष्ठान मिसरियों के अनुष्ठानों से लिए गए हैं। यह तो सब पर विदित ही है कि प्राचीन काल में यहूदी लोग मिसर में बहुत आया-जाया करते थे, बल्कि एक बार सारी यहूदी जाति को मिसर में जाकर रहना पड़ा था। फिर उनका बड़ा पैग़ंबर मूसा उनको मिसर से निकालकर अपने पुराने देश की ओर ले आया। सारांश यह कि सारी-की-सारी यहूदी सभ्यता मिसर से ली गई थी।

अब श्रीयुत जकालियट का दूसरा पग यह प्रमाणित करना है कि प्राचीन यहूदी धर्म के सारे सिद्धांत आर्यों के प्रसिद्ध धर्मशास्त्र, मनुस्मृति, से लिए गए हैं। श्रीयुत जकालियट ने मनु के प्रमाणों से सिद्ध किया है कि मानव धर्मशास्त्र ही मिसर की सभ्यता का मूल उद्भव है। इसीलिये वह स्वभावतः इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि बाइबिल का उद्गम-स्थान प्राचीन आर्यावर्त है, और उसकी शिक्षा आर्य-धर्म से निकली है। हाल में बंगाल के विद्वान् श्रीयुत दास ने 'ऋग्वेदिक इंडिया'-नामक एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में बड़ी विद्वत्तापूर्ण युक्तियों और वेदों की भीतरी साक्षियों से यह सिद्ध किया गया है कि बाबल और मिसर की प्राचीन सभ्यता को फैलानेवाली आर्य-जाति की वे शाखाएँ थीं, जो दक्षिण से चलकर उन देशों में पहुँची थीं। 'ऋग्वेदिक इंडिया' को पढ़कर इस बात में संदेह के लिये तनिक भी गुंजाइश नहीं रह जाती कि श्रीयुत जकालियट का सिद्धांत सर्वथा सत्य है। हमें आश्चर्य होता है कि किस प्रकार इस विद्वान् ने, आज से पचास से भी अधिक वर्ष पूर्व, उन सचाइयों को देख लिया, जिनको

आज हम बड़े अनुसंधान के पश्चात् मालूम करने में समर्थ हुए हैं।

श्रीयुत जकालियट केवल बाइबिल पर ही अपना अनुसंधान समाप्त नहीं कर देते। उन्होंने यह भी सिद्ध करने का यत्न किया है कि जिस व्यक्ति की आज सारा योरप पूजा करता है, वह क्राइस्ट वास्तव में कृष्ण के सिवा और दूसरा कोई न था। क्राइस्ट के जन्म के संबंध में तथा अन्य ईसाई ऐतिह्य ऐसे हैं कि वे स्पष्ट रूप से कृष्ण के जन्म तथा अन्य भारतीय ऐतिह्यों से लिए हुए जान पड़ते हैं।

यद्यपि इँगलैंड तथा फ्रांस के अन्य कई विद्वानों ने भी संस्कृत-भाषा तथा संस्कृत-साहित्य का अध्ययन किया है, और उनका प्रथम भाव संस्कृत के गौरव तथा आर्य-सभ्यता के पक्ष में ही देख पड़ता है, परंतु उन पर उनके स्वदेशी ईसाई पादरियों का प्रभाव इतना प्रबल सिद्ध हुआ कि वे अपनी अनुभव की हुई सचाई को स्वीकार करते हुए भी डरते हैं, और जिस धर्म के वायु-मंडल में उनका जन्म-दिन से पालन-पोषण हुआ है, जिसे उनके समाज ने ग्रहण किया है, उसे उच्च प्रकट करने के निमित्त वे इस सचाई के सामने प्रकट रूप से सिर नहीं झुका सकते। अध्यापक मैक्समूलर-जैसा संस्कृत का विद्वान् सब कुछ देखता और जानता हुआ भी पादरियों से इतना डरता है कि वह बाइबिल को ही सबसे उत्तम और पवित्र पुस्तक कहता है। हमें श्रीयुत जकालियट ही एक ऐसे व्यक्ति देख पड़ते हैं, जिनके मन में न अपने देश के धर्म का पक्षपात है और न अपने समाज का ही कोई भय, और जो मुक्त कंठ से एक सचाई को स्वीकार कर अपने देश-बंधुओं पर उसका प्रकाश करने का साहस करते हैं। इसलिये मैं अपने हिंदू भाइयों से यह अपील करना आवश्यक समझता हूँ कि वे इस अद्भुत पुस्तक

को न केवल आप पढ़ें, बरन् अपने मित्रों में भी इसका प्रचार करें।

मैं समझता हूँ, श्रीयुत संतरामजी ने इस पुस्तक का हिंदी में अनुवाद करके हिंदू जनता का बड़ा उपकार किया है।

भाई परमानंद

ग्रंथकार की भूमिका

जातियों के ह्रास को धार्मिक स्वेच्छाचारिता, साडंबर कल्पना-मूलक प्रपंच और मनुष्यों की किसी विशेष श्रेणी के शासन का फल सिद्ध किया जा सकता है।

स्पेन देश अभी मोमबत्तियों और पवित्र जल के विरुद्ध क्रांति कर रहा है। हमें अपने निर्णय को स्थगित कर देना चाहिए।

इटली ने अभी अपनी एकता के संघटन को पूर्ण नहीं किया।

रोम एक बड़ी सभा में आधुनिक बुद्धि की विजय, विचार की स्वतंत्रता, मन की स्वाधीनता और नागरिक स्वातंत्र्य इत्यादि सबको धमकाने की तैयारी कर रहा है।

समाज-बहिष्कार अपनी निःसत्व गर्जनाओं को पुनर्जीवित करने और सम्राटों, राजों और प्रजाओं को झुकाकर अपने वश में करने का प्रयत्न कर रहा है।

अँगरेज़ लाट पादरी लूथर के नाम पर सिद्धांत की एकता के लिये चेष्टा कर रहे हैं, ताकि वे शक्तिशाली बन जायँ, और वे कोलेंज़ो* के बहिष्कार की घोषणा करते हैं।

इँगलैंड आयरलैंड के आर्तनाद को दबा रहा है।

उमर के अनुयायी अल्ला के नाम पर उन सुधारों का विरोध और बहिष्कार कर रहे हैं, जिनसे रूम देश की रक्षा हो सकती है।

पोलैंड का अस्तित्व मिट चुका है, मस्कोवाइट (Muscovite) तलवार ने मरणासन्न कोसकियस्को के भविष्यकथन का अनुभव कर लिया है।

---

* Eveque de Natal, qui a nis la divinite du Christ.

रूस का ज़ार पोप है।

फिर भी मंदिर, मसजिद, या गिरजा में चले जाइए, सब कहीं परमेश्वर के छत्र के नीचे घोर असहिष्णु उपद्रव और कष्ट रक्खा हुआ है।

यह मध्यकालीन धर्मोन्माद नहीं है, क्योंकि अंध-श्रद्धा का प्राणांत हो चुका है। यह दंभ है, जो शस्त्र-प्राप्ति के लिये भूतकाल के शस्त्रागारों की तलाश कर रहा है, ताकि उनसे प्रजा भयभीत होकर एक बार फिर अंधकार और भोलेपन की धूल में घुटनों के बल रेंगने लगे।

हाँ, परंतु स्वतंत्रता वह तरुण और सुदृढ़ पेड़ है, जिसकी जितनी अधिक काँट-छाँट होगी, उतनी ही अधिक वृद्धि।

एक-मात्र फ़्रांस में ही समता का नियम है। इसका प्राणभूत रस बलशाली है। इसलिये इसे बिना किसी राज्य-क्रांति और बिना किसी अमर्यादा के स्वतंत्र संस्थाओं की शांतिपूर्ण विजय तक पहुँचने दो।

बल का अटल परिणाम विभाग (Division) और त्रास (Dread) है। यहाँ तक कि स्वयं स्वतंत्रता से भी डर उत्पन्न करके उन्नति को रोकना होता है।

परंतु, उन सब लोकप्रवादों के बीच, जो उन्नति को पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक घेरे हुए हैं, वह किसी कारण कभी-कभी संकोच करती प्रतीत होती है? उसकी गति को कौन रोकता है? उसे किसका डर है?

क्या तरुण संतान, (क्या नवीन फ़्रांस) उस भूतकाल की निस्सत्त्वता का शपथ-पूर्वक परित्याग करने को प्रस्तुत नहीं है, जिसे वह पुनः प्राप्त नहीं कर सकती, और क्या वह उस आगे बढ़नेवाली पताका का वीरता से अनुसरण करने को उद्यत नहीं है, जिसके द्वारा भीतर स्वतंत्रता और बाहर सम्मान की प्राप्ति होगी?

तब आगे बढ़े चलो !

पुरोहितों और धर्म-आंदोलकों का समय बीत चुका । हम याजक-
त्ताकराज्यों की शक्ति का मूल्य जानते हैं, और हमें यह भी ज्ञात है
के आज की सफलता के नियमों का, उन्हें विरोधी समझकर, किस
कार सुगमता से परित्याग कर दिया जाता है ।

अब हम उन्हें न्यायाध्यक्ष के आसन पर नहीं बैठावेंगे ।

अब हम मार्ग-क्रम में हैं । इसलिये आओ, भक्ति और धीरता से
गति को सहायता दें ।

पुनर्जीवित होनेवाले क्रोधों और उन सब धार्मिक कलहों के
ीच, जो योरप को खंड-खंड कर रहे हैं, मैं आपके सामने एक ऐसी
नुष्य-जाति का जीवन रखने आया हूँ, जिसकी नीति, साहित्य
ौर आचरण अभी तक हमारी सभ्यता में व्याप्त हैं, और जिसके
ंव पर उसके पुरोहितों ने कुल्हाड़ा चलाया था । मैं तुम्हें यह
खलाने आया हूँ कि मनुष्य-समाज के चिंताशील तत्त्वज्ञान और
तंत्र बुद्धि के उच्चतम प्रदेशों तक पहुँच जाने के उपरांत किस
ार उस धर्म-वेदी ने उसका गला घोंट दिया, और उसके पाँव में
ीर डाल दी, जिसने मानसिक जीवन को निकालकर उसका स्थान
पनाकारी दुर्बलता के अर्द्ध-पाशविक भाव को दिया ।

सभा की बैठक होनेवाली है, स्वतंत्रता के सभी शत्रु महान्
ाद के लिये तैयारी कर रहे हैं, और मैं यह दिखलाने के लिये
ता हूँ कि उनकी उत्पत्ति कहाँ से हुई है, और उनका पवित्र
रीय ज्ञान कहाँ से लिया गया है । और, मैं फ़्रांस की सरकार
कहता हूँ—

हिंदुओं के पौराणिक धर्म के पुरोहितों से सावधान ! वे भी प्रारंभ
दरिद्र और आत्मत्यागी थे; परंतु अंत में धनाढ्य और
ाचारी बन गए ।

प्राचीन ब्राह्मणों के विषय में कैथोलिक पादरी डुबाइस की सम्मति सुनिए। हम उस पर पक्षपात का संदेह नहीं कर सकते—

"न्याय, मनुष्यता, उत्तम श्रद्धा, अनुकंपा, निरपेक्षता इत्यादि सारे सद्गुणों से वे सुपरिचित थे। वे अपने आचरण और कथन द्वारा उनकी शिक्षा दूसरों को देते थे। इसीलिये हिंदू, कम-से-कम चिंता की रीति से नीति के प्रायः उन्हीं सिद्धांतों को अंगीकार करते हैं, जिनको स्वयं हम करते हैं।"*

इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिये कृष्ण के दिव्य नियमों (व्यवस्थाओं) को अपना सहायक बनाकर लोगों को वश में कर लिया और जब राजों ने—जिन्होंने उनकी सफलता में उन्हें सहायता दी थी—उनके अधिकार को दूर करने की चेष्टा की, तो पुरोहितवर्ग ने उन्हें और भी गिराकर दास बना दिया। भूतकाल की यह कैसी भयानक शिक्षा है। इससे भविष्यत् को लाभ उठाना चाहिए!

भारतवर्ष संसार का जन्म-स्थान है; यहीं से हम सबकी साझे की माता ने अपनी संतान को दूरतम पश्चिम तक भेजकर, हमारे उत्पत्ति-स्थान के अक्षय प्रमाण के रूप में, अपनी भाषा, अपनी नीति, अपने सदाचार, अपने साहित्य और अपने धर्म का उत्तराधिकार हमको दिया है।

उसकी संतान फ़ारस, अरब और मिस्र से गुज़रकर अपनी सूर्य-तप्त जन्म-भूमि से बहुत दूर, शीतल और बादलों से घिरे हुए उत्तर में भी पहुँची। चाहे उसके चमड़े की रंगत भले ही पश्चिम के हिम के मार्ग में खो जाय, उसके द्वारा प्रतिष्ठित सभ्यताओं के समूह भले नष्ट हो जावें, और मरे हुए लोगों के कुछ थोड़े-से खँडहरों के अतिरिक्त उनका कोई भी चिह्न शेष न रह जाय,

पहली जातियों की भस्म से चाहे नवीन जातियाँ उत्पन्न हो जायँ, पुराने नगरों के स्थान पर चाहे नए नगर बसने लगें, परंतु काल और विनाश, दोनों मिलकर भी जन्म-स्थान के सदा सुपाठ्य मुद्रा-लेखों को मिटाने में असमर्थ हैं।

विज्ञान अब इस बात को एक प्रमाणित सत्य के रूप में स्वीकार करता है कि प्राचीन समय की सारी भाषा-पद्धतियाँ सुदूर पूर्व से ली गई थीं, और भारतीय भाषाओं के तत्त्वज्ञानियों को धन्यवाद है कि उनके परिश्रम से हमारी आधुनिक भाषाओं को अपनी व्युत्पत्ति और धातु वहाँ मिल गए हैं।

यह अभी कल की बात है कि स्वर्गीय बर्नौफ़ ने अपनी श्रेणी का ध्यान इस बात की ओर दिलाया था कि "संस्कृत का अध्ययन आरंभ कर देने के कारण अब हम ग्रीक और लैटिन भाषाओं को पहले की अपेक्षा अधिक उत्तम रीति से समझने लगे हैं।"

क्या अब हम जर्मन और स्लेवोनिक भाषाओं का भी वही उत्पत्ति-स्थान नहीं मानते?

मिसरी, इबरानी, यूनानी और रोमन व्यवस्था को मनु ने प्रोत्साहित किया था, और उसका प्रभाव अभी तक हमारी योरप की नीति की सारी युक्ति में व्याप्त है।

कयिन ने किसी स्थान पर कहा है—"भारतीय दर्शन-शास्त्र का इतिहास संसार के दर्शन-शास्त्र का संक्षिप्त इतिहास है।"

परंतु केवल इतना ही नहीं।

स्वदेश-त्यागी जातियाँ अपनी नीति, अपने आचार, अपने प्रचार और अपनी भाषा के साथ-साथ अपना धर्म—अपने उस घर के देवतों की पवित्र स्मृति, जिसको उन्हें फिर कभी नहीं देखना था—उन गृह-देवतों का धर्म भी लाईं, जिनको उन्होंने सदा के लिये स्वदेश-त्याग के पहले जला दिया था।

इसलिये, मूल स्थान को लौटकर, हम प्राचीन श्रौर श्रर्वाचीन जातियों के सारे कविता श्रौर धर्म-संबंधी इतिहास को भारत में पाते हैं। ज़रदुश्त की पूजा, मिसर के चिह्न, इल्युसिस के रहस्य श्रौर वस्ता की देवियाँ, बाइबिल का उत्पत्ति-कांड श्रौर भविष्यद्वाणियाँ, सामियन-युग का सदाचार, बैतलहम के तत्त्वदर्शी की श्रेष्ठ शिक्षा, सब यहाँ मिलते हैं।

इस पुस्तक का उद्देश उन सब सचाइयों को सुपरिचित कराना है, जो श्रब तक विचार के उच्चतर प्रदेशों को श्रांदोलित करती रही हैं, जिनका निस्संदेह श्रनेक लोगों ने श्रनुभव किया है; परंतु उनको संसार के सामने विघोषित करने का, प्रकट करने का, साहस नहीं किया।

यह उस धर्म-संबंधी ईश्वरीय ज्ञान का इतिहास है, जो श्रनिणा के श्राख्यानों श्रौर सब समयों के पुरोहित-धर्मों से यथासंभव मुक्त है। श्रौर सब जातियों तक पहुँचा है।

मैं भली भाँति जानता हूँ कि मेरी इन बातों से कुछ लोग रुष्ट हो जायँगे, परंतु मैं उनका सामना करने से नहीं डरता। माइकेल सर्वे-टस, सवनरोला, श्रौर स्पेन के दूसरे फिलिप के समयों की तरह श्रब हमें खूँटे के साथ बाँधकर जीते जी नहीं जलाया जाता; श्रब स्वतंत्रता के वायुमंडल में स्वतंत्र विचार खुले तौर पर विघोषित किया जा सकता है। इसलिये मैं श्रपनी पुस्तक को पाठकों को भेंट करता हूँ।

भारत में बाइबिल

भारत के शब्द

प्राचीन भरत-भूमि, मनुष्य-जाति के जन्म-स्थान, तेरी जय हो ! पूजनीय और समर्थ धात्री, जिसको नृशंस आक्रमणों की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो !

श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृ-भूमि, तेरी जय हो ! क्या कभी ऐसा दिन भी आवेगा, जब हम अपने पाश्चात्य देशों में तेरे अतीत काल की-सी उन्नति देखेंगे !

तेरी उच्च प्रकृति की भाषा समझने के उद्देश से मैंने तेरे गूढ़ वनों में वास किया है, और बर्गद तथा इमली के पत्तों में सरसरानेवाली साँझ की पवन ने मेरे कानों में ये तीन मायामय शब्द कहे हैं— ज़ीउस, जहोवा और ब्रह्म ।

प्राचीन देवालयों और मंदिरों की ड्योढ़ियों के नीचे मैंने ब्राह्मणों और पुरोहितों से पूछताछ की है । उन्होंने उत्तर दिया है—

"जीना विचार करने के लिये है, विचारना परमेश्वर का अध्ययन करना है, जो कि सब कुछ है, और सबमें है ।"

मैंने पंडितों और ज्ञानियों के उपदेशों को ध्यान-पूर्वक सुना है; उन्होंने कहा है—

"जीवन ज्ञान-प्राप्ति के लिये है, और ज्ञान-प्राप्ति दिव्य शक्ति की असंख्य अभिव्यक्तियों की, उनके इंद्रिय-ग्राह्य सारे रूपों में, जाँच और पहचान करना है ।"

मैं दार्शनिकों के पास गया हूँ । उनसे जाकर मैंने कहा है—

भारत में बाइबिल

भारत के शब्द

प्राचीन भरत-भूमि, मनुष्य-जाति के जन्म-स्थान, तेरी जय हो! पूजनीय और समर्थ धात्री, जिसको नृशंस आक्रमणों की शताब्दियों ने अभी तक विस्मृति की धूल के नीचे नहीं दबाया, तेरी जय हो!

श्रद्धा, प्रेम, कविता और विज्ञान की पितृ-भूमि, तेरी जय हो! क्या कभी ऐसा दिन भी आवेगा, जब हम अपने पाश्चात्य देशों में तेरे अतीत काल की-सी उन्नति देखेंगे!

तेरी उच्च प्रकृति की भाषा समझने के उद्देश से मैंने तेरे गूढ़ वनों में वास किया है, और बरगद तथा इमली के पत्तों में सरसरानेवाली साँझ की पवन ने मेरे कानों में ये तीन मायामय शब्द कहे हैं— ज़ीउस, जहोवा और ब्रह्म।

प्राचीन देवालयों और मंदिरों की ड्योढ़ियों के नीचे मैंने ब्राह्मणों और पुरोहितों से पूछताछ की है। उन्होंने उत्तर दिया है—

"जीना विचार करने के लिये है, विचारना परमेश्वर का अध्ययन करना है, जो कि सब कुछ है, और सबमें है।"

मैंने पंडितों और ज्ञानियों के उपदेशों को ध्यान-पूर्वक सुना है; उन्होंने कहा है—

"जीवन ज्ञान-प्राप्ति के लिये है, और ज्ञान-प्राप्ति दिव्य शक्ति की असंख्य अभिव्यक्तियों की, उनके इंद्रिय-ग्राह्य सारे रूपों में, जाँच और पहचान करना है।"

मैं दार्शनिकों के पास गया हूँ। उनसे जाकर मैंने कहा है—

"छः सहस्त्र से अधिक वर्षों से यहाँ बैठे हुए आप लोग क्या कर रहे हैं ? यह कौन-सी पुस्तक है, जिसे आप सदा घुटनों पर रक्खे मूर्खता करते रहते हैं ?"

उन्होंने मुसकिराते हुए कहा है—

"जीवन उपयोगी और न्यायपरायण बनने के लिये है, और इस वेद-ग्रंथ के अध्ययन से, जो सनातन ज्ञान का भांडार है—हमारे पूर्वजों पर ईश्वर द्वारा प्रकाशित महासूत्र है, हम उपयोगी और न्यायपरायण बनना सीखते हैं।"

मैंने कवियों के गान सुने हैं, और प्रेम, सौंदर्य, सुगंध तथा पुष्पों ने भी मुझे अपना दिव्य उपदेश दिया है।

मैंने साधुओं को काँटों और धधकते हुए कोयलों की शय्या पर लेटे हुए, दुःख में भी मुसकिराते, देखा है । कष्ट उन्हें परमात्मा का स्मरण कराता था।

मैं गंगा के स्रोतों तक गया हूँ, जहाँ सहस्रों हिंदू, सूर्योदय होने पर, पवित्र नदी के तट पर, पूजा करते हैं और मंद-मंद चलनेवाली पवन ने मुझे ये शब्द सुनाए हैं—

"खेत धान के साथ हरे हैं, और नारियल का पेड़ अपने फल के बोझ से झुक रहा है । आओ, हम इनको देनेवाले दाता को धन्यवाद दें।"

और, फिर इस अगाध श्रद्धा, इन जीवित विश्वासों के होते तथा ब्राह्मणों, ज्ञानियों, तत्त्वदर्शियों और कवियों के इन श्रेष्ठ उपदेशों के रहते, निर्धन वृद्धा हिंदू माता, मैंने तेरे पुत्रों को पाशविक विकारों से क्षीण, दुर्बल और धर्म-भ्रष्ट हुआ भी देखा है। मैंने उन्हें तेरे रुधिर, तेरी संपत्ति, तेरी कुमारी पुत्रियों, और तेरी स्वतंत्रता को बिना किसी शिकायत के मुट्ठी-भर अत्याचारी व्यापारियों के हाथ सौंपते भी देखा है।

कितनी बार मैंने सायंकाल की वायु से निकलते हुए दुःख के गंभीर आर्तनाद को सुना है, जो मरुस्थली, दलदलों, अँधेरे मार्गों, नदी के किनारों अथवा जंगल की छाया इत्यादि से उठता प्रतीत होता था! क्या यह अतीत काल का नाद था, जो विलुप्त सभ्यता और विनष्ट ऐश्वर्य पर अश्रुपात करने आया था? क्या यह उन मरते हुए सिपाहियों की करुण रोदन-ध्वनि थी, जिनको विद्रोह के पश्चात् बच्चों और स्त्रियों सहित कुछ लालकुरती के अँगरेज़ सैनिकों ने अपने सताए जाने का बदला लेने के लिये गोली से मार डाला था? क्या यह उन शिशुओं का चीत्कार था, जो भूख से मरी हुई माताओं की ठंडी छातियों में वृथा दूध ढूँढ रहे थे?

हाय! मेरे भाग्य में कैसी भीषण वेदनाओं का देखना लिखा था! एक जाति उस कठोर हाथ के नीचे उदासीनता से हँस रही है, जो उसका नाश कर रहा है, और अपने हाथ से अपनी प्राचीन कीर्ति, अपनी स्मृति और अपनी स्वतंत्रता की चिता सहर्ष तैयार कर रही है।

मैं मन-ही-मन सोचता हूँ कि कौन-सा अमंगल प्रभाव इस छिन्न-भिन्न होने का कारण हुआ है? क्या यह केवल समय का ही कार्य है, और क्या, मनुष्य की तरह, जातियों के भाग्य में भी जरा-जीर्ण होकर मर जाना बदा है?

क्या कारण है कि पवित्र आदिम सिद्धांतों को, वेदों के उच्च उपदेशों को, अंत में ऐसी विफलता हुई? फिर भी, अब तक मैंने ब्राह्मणों, ज्ञानियों, दार्शनिकों और कवियों को आत्मा की अमरता पर, बड़े-बड़े सामाजिक सद्गुणों पर, और देवत्व पर गंभीर संभाषण करते सुना है!

अभी तक मैंने प्रजा को उसके सामने सिर नवाते देखा है, जिसने उसे बादलों से मुक्त सूर्य और उपजाऊ भूमि दी।

परंतु अंत को मैंने बड़े खेद के साथ अनुभव किया कि यह केवल एक ख़ाली दिखावा था। मैंने बड़े शोक के साथ देखा कि इस जाति ने अपने श्रेष्ठ विश्वासों के बदले में शाब्दिक धर्मोन्माद, स्वाधीन मनुष्यों की स्वतंत्र इच्छा और विचार-स्वातंत्र्य के बदले में क्रीत दास की अंध और निर्बोध पराधीनता ख़रीद ली है।

तब मैंने भूतकाल को छिपानेवाले परदे को उस पर से उठा देने और इस मरती हुई जाति के उत्पत्ति-स्थान का पिछला पता लगाने की चेष्टा की। इस जाति में न घृणा की शक्ति है और न प्रेम की ही, न पुण्य के लिये उत्साह है और न पाप के लिये ही। यह एक ऐसे नट का रूप धारण किए हुए है, जिसके भाग्य में मूर्तियों के सामने अपना खेल दिखाना बदा है।

अहा ! वह कैसा सुंदर काल था, जो उस समय मेरी चिंता और ज्ञान के सम्मुख उपस्थित हुआ ! मैंने मंदिर के कोने से इतिहास को बुलवाया; खँडहरों और स्तूपों से पूछताछ की, उन वेदों से प्रश्न किया, जिनके पृष्ठ सहस्रों वर्षों के हैं, और जिनसे जिज्ञासु युवक उस समय से भी बहुत काल पहले जीवन की विद्या प्राप्त करते थे, जब सहस्र द्वारोंवाले थेवस या महान् बेबीलोन की नींव रक्खी गई थी।

मैंने उन प्राचीन कविताओं की आवृत्तियों को सुना, जो ब्रह्मा के चरणों में उस समय गाई गई थीं, जब उत्तरीय मिसर और यहूदिया के गड़रियों का जन्म भी न हुआ था। मैंने मनु की उस स्मृति को समझने की चेष्टा की, जो सिनाई-पर्वत के शिखर से बिजली और कड़क के बीच, इबरानी नीति की पट्टिकाओं के उतरने से अनेक युग पहले, देव-मंदिरों की ड्योढ़ियों के नीचे आरंभ की गई थी।

तब भारत मेरे सामने अपनी अपूर्वता की सारी सजीव शक्ति में प्रकट हुआ। संसार में मुझे उसकी उन्नति का पता उसके संस्कार के विस्तार में लगा। मैंने उसे अपनी नीति, अपनी रीति, अपना

सदाचार और अपना धर्म मिसर, फ़ारस, यूनान और रोम को देते देखा। मैंने जैमिनि और वेदव्यास को सुक़रात और अफ़लातूँ का पूर्ववर्ती पाया, और कुमारी देवांगनी (देवकी) के पुत्र कृष्ण को बैतलहम की कुमारी के पुत्र का अग्रगामी देखा।

तर्क के राजत्व में महत्ता का यह विशेष काल था।

तब मैंने ह्रास के चरण-चिह्नों का अनुसरण किया। मुझे जान पड़ा कि उस जाति का अब बुढ़ापा आ पहुँचा है, जिसने संसार को शिक्षा दी थी, उस पर अपने सदाचार और सिद्धांत की ऐसी अमिट छाप लगाई थी, जिसको कि काल अभी तक नहीं मिटा सका, जिसने बैबीलोन और ननवाह को, एथेंस और रोम को सर्वथा विलुप्त कर दिया है।

मैंने उन ब्राह्मणों और पुरोहितों को देखा, जो वाणी और पवित्र धार्मिक क्रियाओं द्वारा राजा लोगों की मूढ़ स्वेच्छाचारिता को याजकीय सहायता दे रहे थे, और अपने मूल तत्त्व को भूलकर, उस भ्रष्ट ईश्वर-कर्तृक शासन (पुरोहितशाही) के नीचे भारत का गला घोट रहे थे, जिसने कि पिछली महिमा की स्मृति के रूप में—जो इसका दूषण थी—शीघ्र ही उस स्वतंत्रता को नष्ट कर दिया, जो इस पुरोहितशाही को पराजित कर डालती।

तब मैंने स्पष्ट देखा कि ये लोग धार्मिक पराधीनता के दो सहस्र वर्षों के उपरांत, अपने विनाशकों को मार हटाने और बदला लेने में क्यों असमर्थ हैं, अँगरेज़ व्यापारियों के घृणित प्रभुत्व के सामने निश्चेष्ट होकर क्यों झुक रहे हैं, और दिन-रात मस्तक को झुकाए उस परमेश्वर की आराधना करते हैं, जिसके नाम से पुरोहितों ने उनका नाश किया था।

चंद्रनगर,
२९ फ़रवरी, सन् १८६८ ई० } ग्रंथकार

पहला अध्याय

अपनी भाषा, अपनी रीति, अपनी नीति और अपने ऐतिहासिक ऐतिह्यों के द्वारा संसार को सभ्य बनानेवाला भारत

स्वदेशी सभ्यता और इतिहास के अभिमान और अतिशय पूर्व-संस्कारों से ठसाठस भरा हुआ कोई योरपियन जब पहलेपहल भारत-भूमि पर पैर रखता है, तो उसके मन में यह पूर्ण प्रतीति होती है कि मैं अपने देश से एक ऐसी नीति लाया हूँ, जो अत्यंत श्रेष्ठ है, एक ऐसा तत्त्वज्ञान लाया हूँ, जो अत्यंत युक्तिसंगत है, और एक ऐसा धर्म लाया हूँ, जो अत्यंत पवित्र है। तब वह ईसाई पादरियों के व्यर्थ प्रयत्नों को देखकर, जो कुछ नीच जाति के ईसाई बनाए हुए लोगों को बड़ी कठिनता से एकत्र करते हैं, अपनी अर्द्ध-पाशविक धर्मोन्माद-जनित अवज्ञा को प्रकट करता है। इसके बाद कुछ ऐसे अनुष्ठानों को, जिनको वह समझ नहीं सकता, कुछ ऐसी विकट मूर्तियों को, जिनके दर्शन से उसे कंधे सिकोड़ने पड़ते हैं, और सिमन स्टाईलाइट्स-जैसे कुछ ऐसे फ़क़ीरों को, जिनका आत्मपीड़न और यष्टि-प्रहार उसके हृदय में घृणा उत्पन्न कर देता है, देखने के उपरांत वह स्वदेश को लौट जाता है।

यदि कोई अभागा भक्त विष्णु या शिव के मंदिर की पैड़ियों पर से बड़ी कठिनता से उठकर भिक्षा की याचना करता है, तो वह योरपियन भिक्षावृत्ति के विरुद्ध हमारे दंड-विधान की धाराओं को मुँह में ही बड़-बड़ाता हुआ शायद उस पर करुणा की दृष्टि डालता है; परंतु रोमनगर में चाहे उसी ने अधिक भाग्यवान् पश्चिम के फ़क़ीर—जोसफ़ लबरे—के काँपते हुए हाथों पर कुछ 'अबोली' (रोम का एक सिक्का) धर दिए हों।

ऐसे यात्रियों में से बहुत थोड़े ही लोगों ने भारत को समझने की चेष्टा की है, बहुत थोड़ों ने ही उसके अतीत ऐश्वर्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिये आवश्यक परिश्रम स्वीकार किया है। बल्कि कुछ ऊपरी बातों को देखकर उन्होंने उसकी प्राचीन समृद्धि को स्वीकार करने से ही इनकार कर दिया है, और अपनी दोषदर्शिता में अयुक्तिसंगत विश्वास रहने के कारण वे स्वयं अज्ञान के सहज शिकार बन गए हैं।

जैक्यूमांट (Jacquemont) पूछता है—"संस्कृत से क्या लाभ है?" वह अपनी वाचालता पर गर्व करता हुआ एक आचार-सिद्ध पूर्व (conventional East) बनाने लगता है, जिसकी इसके उत्तराधिकारियों ने नक़ल की है, जिसको सब पुस्तकालयों ने ग्रहण किया है, और जो आज भी उन सब भूलों का स्रोत है, जो उस देश के विषय में योरप की ज्ञानराशि का तीन-चौथाई भाग बनाती है।

फिर भी कितनी ही छिपी हुई संपत्ति अभी बाहर निकालने को पड़ी है—साहित्य और इतिहास के, सदाचार और तत्त्वज्ञान के कैसे-कैसे ख़ज़ाने संसार के सामने प्रकट करने को पड़े हैं!

स्ट्रेंज, कोलब्रुक, विलियम जोन्स, वेबर, लासन और बर्नौफ़ के परिश्रम ने इन सब वस्तुओं पर अवश्य कुछ प्रकाश डाला है। हमें आशा रखनी चाहिए कि इनके पीछे पूर्वीय विद्याओं के और कई पंडित उत्पन्न होंगे; वे एक ऐसे युग के पुनर्निर्माण में सफलता प्राप्त करेंगे, जिसकी टक्कर की कोई भी चीज़ हमारी सभ्यता और ऐश्वर्य में नहीं है, और जिसने संसार को विधिरचना, सदाचार, तत्त्वज्ञान और धर्म के सभी बड़े-बड़े नियमों की शिक्षा दी थी।

यह दुःख का विषय है कि इस रहस्यमय देश में बिना रहे, इसकी रीति-नीति और संस्कृत का (जो इसके युवाकाल की भाषा है) तथा तामिल का (जो इसकी सजीव विद्वत्तापूर्ण भाषा और भूतकाल

के साथ हमारे संलाप का एक-मात्र मार्ग है) गहरा ज्ञान प्राप्त किए बिना इसके बाल्यकाल का पता चलाना असंभव है।

अनुवादकों और पूर्वीय विद्याओं के पंडितों के गंभीर ज्ञान की जहाँ एक ओर मैं प्रशंसा करता हूँ, वहाँ साथ ही मेरा उनसे यह उलाहना है कि भारत में न रहने के कारण वे कवियों के गीतों, प्रार्थनाओं और अनुष्ठानों के सांकेतिक आशय को समझने और उसे यथार्थ रीति से प्रकट करने में असमर्थ हैं, जिससे वे बहुधा क्या अनुवाद में और क्या सारासार को पहचानने में भारी भूलें कर देते हैं। प्रसिद्ध अँगरेज़ विलियम जोन्स और कोलब्रुक के लेखों को छोड़कर मैंने और किसी के लेख ऐसे नहीं देखे, जिनको ब्राह्मण लोग अपने ग्रंथों का यथार्थ अर्थ स्वीकार करते हों, और इसका कारण वे इन विद्वानों का उनमें रहना, उनसे सहायता पाना और उनकी शिक्षा से लाभ उठाना समझते हैं। वास्तव में हिंदुओं के समान अस्पष्ट और गूढ़ार्थ-लेखक शायद ही कोई दूसरा होगा। उनके विचारों को कविता की शोभा, आलंकारिक रूपक और धार्मिक प्रार्थनाओं के वायुमंडल से अलग करने की आवश्यकता है; क्योंकि ये निश्चय ही वर्णित विषय को स्पष्ट करने में सहायता नहीं देते। फिर प्रत्येक प्रकार की कल्पना अथवा विचार के लिये संस्कृत में भिन्न-भिन्न प्रकार के असंख्य शब्द हैं, जिनका हमारी आधुनिक भाषाओं में कोई भी पर्याय नहीं मिलता, और जिनका अनुवाद केवल बड़े घूम-घुमाव के साथ ही हो सकता है, जिसके लिये उस आभ्यंतर ज्ञान की आवश्यकता है, जिसकी प्राप्ति उन लोगों के देश, आचार, रीति, नीति और धार्मिक ऐतिह्यों से हो सकती है, जिनकी उत्पत्ति का हम अध्ययन और जिनके ग्रंथों का हम अनुवाद करते हैं।

प्राचीन भारत की थाह लेने में योरप में प्राप्त किया हुआ सारा ज्ञान कुछ भी काम नहीं देता। जिस प्रकार बच्चा पढ़ना सीखता है,

उसी प्रकार फिर से अध्ययन करना आवश्यक है। उदासीन उद्यम से कुछ भी फल नहीं प्राप्त हो सकता।

अंत में देखोगे कि उस श्रम का कैसा मनोहर दृश्य हमारे नेत्रों के सामने आ उपस्थित होता है, और हमारे लंबे समय के उद्योग का कितना यथेष्ट फल हमें मिलता है!

भारत में दिलचस्पी लेनेवाले लेखको और विद्वानो, भारत में आकर हिंदुओं के साथ उनके घनी छायावाले गृहों में रहो; आओ, और उनकी प्राचीन भाषा को सीखो; उनके अनुष्ठानों में, उनके गीतों में, उनकी प्रार्थनाओं में उनके साथ सम्मिलित होओ; धर्म-पंडितो, ब्रह्मा और उसकी पूजा का अध्ययन करो; पंडित और ब्राह्मण तुम्हें वेद और मनु के धर्म-शास्त्र की शिक्षा देंगे; अतिप्राचीन साहित्य के खँडहरों में आनंद लूटो, अतिपुरातन युगों के दान इन वर्तमान भवनों की परीक्षा करो, जो अपनी लाक्षणिक वास्तुविद्या में, उस ह्रास के बीच, जिसको कोई रोक नहीं सकता (क्योंकि यह अदृष्ट का, दयाहीन दैव का नियम है), एक विनष्ट समृद्धि के स्मारक खड़े हैं। इस प्रकार उनकी दीक्षा प्राप्त कर लेने पर भारत-भूमि तुम्हें मनुष्य-जाति की जननी, हमारे सभी ऐतिह्यों का जन्म-स्थान, दिखाई देगी।

प्राचीन भारत इतिहास, सदाचार, कविता, दर्शन-शास्त्र, धर्म, विविध विद्याओं और चिकित्सा पर इतने ग्रंथ छोड़ गया है कि उनके पाठ-मात्र के लिये ही अनेक पीढ़ियों का जीवन कठिनता से पर्याप्त होगा; क्रमशः प्रत्येक अपना-अपना साहाय्य देगा; क्योंकि विज्ञान में भी पर्वतों को हिला देने की श्रद्धा है, और जिनमें यह रूह फूँकता है, उन्हें बड़े-से-बड़े त्याग करने में समर्थ बना देता है।

बंग-देश में एक सभा ने वेदों को एकत्र और प्रकाशित करने का कार्य हाथ में लिया है। उनके अध्ययन और मनन से हमें पता लग जायगा कि मूसा और पैग़ंबरों ने अपने पवित्र धर्म-शास्त्र कहाँ

से लिए थे, और जिस 'राजों की पुस्तक' (बाइबिल के एक अंश) को वे खो गई बतलाते हैं (परंतु जो मेरी राय में उनके पास कभी थी ही नहीं, और जिसे वे ऐतिह्य-मात्र से अपनी बाइबिल के लिये नक़ल नहीं कर सके), उसी पुस्तक को शायद हम ढूँढ लेंगे।

लोग कहेंगे कि तुमने यह पहली ही पुस्तक लिखी है, और इसी में विचित्र प्रतिज्ञाएँ भरी पड़ी हैं। धैर्य रखिए, और देखिए। इसमें आपके सामने वे प्रमाण उपस्थित किए जायँगे, जो एक दूसरे को पुष्ट और प्रबल करनेवाले होंगे। और, इसीलिये हम यह भी उचित समझते हैं कि यहीं पर इस ग्रंथ के प्रधान विचार की घोषणा कर दी जाय। वह यह है—

"जिस प्रकार हमारा अर्वाचीन समाज प्रत्येक पग पर प्राचीन काल को ढकेलता है, जिस प्रकार हमारे कवियों ने होमर और वर्जिल की, सोफ़ोक्लीज़ और युरीपिडीज़ की, प्लॉटुस और टरंस की नक़ल की है, जिस प्रकार हमारे दार्शनिकों ने सुक़रात, पीथागोरस, अफ़लातूँ और अरस्तू से प्रत्यादेश प्राप्त किया है, जिस प्रकार हमारे ऐतिहासिक टाईटस लिवियस, सल्लस्ट या टैसीटस को आदर्श मानते हैं, जिस प्रकार हमारे वाग्मी वक्ता डिमास्थनीज़ या सिसरो को अपने लिये नमूना समझते हैं, जिस प्रकार हमारे वैद्य हिपोक्रटीज़ के ग्रंथों का अध्ययन और हमारे धर्म-शास्त्र जस्टिनियन की नक़ल करते हैं, उसी प्रकार स्वयं उस समय प्राचीन काल के सामने भी एक अपेक्षाकृत प्राचीन काल था, जिसका वह अध्ययन और अनुकरण करता था। इससे अधिक सरल और अधिक न्यायसंगत और क्या हो सकता है ? क्या जातियाँ एक दूसरे के पहले और पीछे नहीं होतीं ? क्या एक जाति का बड़े परिश्रम से प्राप्त किया हुआ ज्ञान उसके अपने ही प्रदेश में सीमाबद्ध होकर बंद रहता है, और जिस पीढ़ी ने उसे उत्पन्न किया था, उसी के साथ नष्ट हो जाता है

क्या इस प्रस्ताव में कोई असंगति हो सकती है कि छः सहस्र वर्ष के पिछले भारत ने (जोकि उज्ज्वल, सभ्य और जनता से भरा-पुरा था) मिसर, फ़ारस, यहूदिया, यूनान और रोम पर वैसी और उतनी ही अमिट छाप लगाई थी, उतना ही गहरा संस्कार डाला था, जितना कि इन देशों ने हम पर डाला है ?

यही समय है कि हम अपने उन पूर्व-संस्कारों को ठीक करें, जो यह प्रकट करते हैं कि प्राचीन लोगों के उच्चतम दार्शनिक, धार्मिक और नैतिक विचार श्रमसाधित नहीं, प्रत्युत प्रायः स्वयंसिद्ध थे। हाँ, उन पूर्व-संस्कारों को शुद्ध करने का समय है, जो अपनी अकपट प्रशंसा में विज्ञान, कला-कौशल और साहित्य की प्रत्येक बात को कतिपय महापुरुषों के सहज बोध का और धर्म को ईश्वरीय ज्ञान का फल बताते हैं।

हम चिरकाल से कथन-मात्र प्राचीन काल से भारत को जोड़ने-वाली बीच की शृंखलाओं को खो बैठे हैं। पर क्या यह इस बात के लिये पर्याप्त युक्ति है कि हम अभी तक भ्रम को पूजते जायँ, और उसके यथासंभव समाधान की तलाश न करें ?

क्या हमने, भूतकाल से सहमत न होकर, परीक्षण द्वारा, तराज़ू और गुठाली से, मध्यकालीन तंत्र-विद्याओं का खंडन नहीं किया ?

आओ, हम विचार-क्षेत्र में भी परीक्षण के उसी नियम पर कार्य करें। दार्शनिको, आओ, हम सहज-ज्ञान को अस्वीकार कर दें ! युक्तिवादियो, आओ, हम ईश्वर-प्रत्यादेश से इनकार कर दें !

जिन लोगों ने प्राचीनता का विशेष रूप से अध्ययन किया है, उन सबसे मैं पूछता हूँ, क्या बीसों बार उनके मन में यह विचार नहीं उत्पन्न हुआ कि इन प्राचीन लोगों ने अपना ज्ञान अवश्य किसी ऐसे स्रोत से प्राप्त किया है, जिसका हमें पता नहीं ? अस्पष्टता के

कारण किसी ऐतिहासिक या दार्शनिक विषय के समझने में न आने पर क्या उन्होंने मन-ही-मन अनेकों बार यह नहीं कहा—"हा ! यदि अलेकज़ेंड्रिया का पुस्तकालय न जलाया जाता, तो शायद हम वहाँ अतीत काल के खोए हुए रहस्य को पा लेते !"

एक बात मुझे सदा आश्चर्य में डालती है। हम जानते हैं कि हमारे विचारकों, हमारे नीतिकारों और हमारे व्यवस्थापकों ने किन ग्रंथों के अध्ययन से अपने को बनाया है। परंतु मिसर के मेनीस, मूसा, मिनोस, सुक़रात, अफ़लातूँ और अरस्तू के अग्रगामी कौन थे ?

कम-से-कम ईसा का अग्रगामी या पथ-प्रदर्शक कौन था ?

क्या यह कह सकते हैं कि इनका अग्रगामी कोई न था ?

मेरा उत्तर यह है कि मेरा तर्क इन लोगों के ज्ञान की स्वयं-सिद्धता—सहज-बोध—को, जिसे कुछ लोग ईश्वरीय प्रत्यादेश बताते हैं, स्वीकार नहीं करता !

मैं इस मार्ग पर अपनी अग्रगति में केवल स्वतंत्र तर्क द्वारा की गई दोषालोचना को ही स्वीकार करता हूँ, जो कम-से-कम मेरी समझ में अंधकाराच्छन्न भूतकाल से दूर ले जाकर अंत में सत्यरूपी लक्ष्य तक पहुँचा देती है।

जातियाँ यदि अपने अग्रगामी लोगों के ज्ञानालोक से सहायता न पावें, तो वे केवल दीर्घ और दुःखदायक शैशव के उपरांत ही कीर्ति-लाभ करती हैं। देखिए, जब तक कुस्तुंतुनिया के पतन से प्राचीन काल का प्रकाश प्राप्त नहीं हुआ था, अर्वाचीन समाज अंधकार में कैसी ठोकरें खा रहा था। स्वदेश-त्यागी हिंदुओं ने भी मिसर, फ़ारस, यहूदिया, यूनान और रोम की यही सेवा की थी, यह मैं सिद्ध करूँगा। निस्संदेह मैं इसकी वैसी पूर्ण व्याख्या करने का वचन नहीं देता, जैसी कि मैं चाहता हूँ ; क्योंकि यह काम एक मनुष्य की शक्ति

से बाहर है ? मैं एक ऐसा विचार उपस्थित करता हूँ, जिसे सत्य समझता हूँ। इसकी पुष्टि के लिये कुछ प्रमाण तो मैंने पूर्वीय विद्याओं के पंडितों के ग्रंथों से लिए हैं, और कुछ अपने निर्बल उपायों से प्राप्त किए हैं। दूसरे लोग शायद इस खान को अधिक उत्तम रीति से और अधिक गहरा खोदें। तब तक कुदाल की पहली चोट को देखिए।

मैं यहाँ, सदा के लिये, एक ही बार यह कह देना आवश्यक समझता हूँ कि मेरा उद्देश्य न तो किसी से विवाद करना है, और न किसी को खिझाना। उनके सब विश्वासों का पूर्ण सम्मान करते हुए भी मैं अपने विचार की पूर्ण स्वाधीनता में उनका सर्वथा त्याग कर देने के लिये स्वतंत्र हूँ।

जिन लोगों ने मिसर को अपनी खोज का विषय बनाया है, और जिन्होंने उस देश को मंदिर से लेकर क़ब्र तक खोदकर छान डाला है, वे हमें विश्वास दिलाते हैं कि मिसर ही हमारी सभ्यता का उत्पत्ति-स्थान है। कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो बहाने से यह कहते हैं कि भारत ने अपने वर्ण, अपनी भाषा और अपनी नीति मिस्र से ली है, जब कि इसके विपरीत मिसर में केवल एक शुद्ध भारतीय प्रवृत्ति ही मिलती है। इन लोगों को सब प्रकार का लाभ है। उनको सरकार का प्रोत्साहन और विद्वत्समाजों का आश्रय है। परंतु तनिक धैर्य रखिए; सत्य का प्रकाश स्वयं प्रकट होगा। यदि उदासीन उत्साह रखनेवालों के लिये भारत बहुत दूर है, यदि इसकी गरमी मनुष्य को मार डालती है, यदि इसकी संस्कृत बहुत कठिन है, यदि इसके पास विकृत लिपियुक्त प्रस्तर-खंडों को उठा ले जाने-भर को धन नहीं, तो दूसरी ओर कुछ ऐसे विश्वासी भी हैं, जिनके लिये भारत धर्म है, जो न झाड़ियाँ खोदते हैं, और न रेत को उलटते हैं; किंतु पुस्तकों को निकालने, उनका अध्ययन तथा जीर्णो-

द्धार करने में निरंतर लगे हुए हैं। ये लोग शीघ्र ही एक स्वतःसिद्ध सत्य के रूप में इस प्रतिज्ञा की प्रतिष्ठा करेंगे कि भारत का अध्ययन करना मनुष्य-समाज के स्रोतों का पता लगाना है।

यूनानी प्रकाश की प्रशंसा से चौंधियाए हुए अन्य लेखक इसे सब कहीं पाते हैं, परंतु असंगत कल्पनाओं के शिकार हो जाते हैं।

फ़िलरेटी चेजलस (Md. Philarete Chasles) ने पूर्व पर लिखी हुई अपनी पुस्तक में इस बात को कि यूनानी प्रभाव प्रायः सारे देश में फैल गया था, और उसने प्राचीन हिंदू-सभ्यता, कला और साहित्य को सजीव किया था, उत्तर-भारत पर सिकंदर के प्रायः पौराणिक आक्रमण का परिणाम मान लिया है। यह बात उतनी ही युक्ति-संगत है, जितना यह मानना कि चार्ल्स मार्टेल के समय के सेरेसन-आक्रमण का रोमन-विजय के पूर्व गॉल-जाति पर कुछ प्रभाव था।

ऐसी सम्मति एक सरल कालगणना-संबंधी असंगति है। भारत का समृद्धि-काल सिकंदर के समय से पहले ही बीत चुका था। सिकं-दर के युग में उसका ह्रास हो रहा था; उसके तत्त्व-ज्ञान, आचार, साहित्य और व्यवस्था के उत्तम-उत्तम ग्रंथों को बने दो सहस्र से अधिक वर्ष हो चुके थे। मैं फिर ललकारकर कहता हूँ, चाहे कोई हो, वह मुझे, भारत में यूनानियों की उपस्थिति प्रकट करने के लिये, उन लोगों की भिन्न-भिन्न भाषा-पद्धतियों, उनकी रीतियों, उनके साहित्य, उनके अनुष्ठानों या उनके धर्म में कोई थोड़ा-सा भी चिह्न या कोई छोटा-से-छोटा एक पद भी दिखलावे।

भारत में सिकंदर की उपस्थिति केवल एक पाशविक—असंलग्न, परिमित और यूनानी ऐतिह्य द्वारा बढ़ाई हुई—घटना है, जिसको हिंदुओं ने अपने इतिहास में स्थान देना भी स्वीकार नहीं किया। मैं उस लेखक पर अनिच्छा से भी चोट नहीं करूँगा, जिसकी योग्यता

की मैं सच्चे हृदय से प्रशंसा करता हूँ। परंतु मैं उसको यह वताने से रुक नहीं सकता कि यह लेखनी के संदेह से उत्पन्न हुआ एक स्वप्न है, एक ऐसा विरोधाभास है, जो वाद-प्रतिवाद के आभास को भी सहन करने में असमर्थ है, और मुझे आश्चर्य है कि डू मेरिल महाशय (M. du Meril)-जैसे प्रसिद्ध प्राच्य भाषाओं के पंडित ने गंभीरता से इसका उत्तर देने का कष्ट उठाया।

प्रमाणाभाव में (जब कि हम हिंदुस्तान के इतिहास में विजित योरप का भी यूनानी में वदला हुआ नाम नहीं पाते) आज यह वात वनाना कि एथेंस ने हिंदू-प्रतिभा को उसी प्रकार प्रोत्साहित किया था, जिस प्रकार उसने योरप की कलाओं में प्राण-प्रतिष्ठा की थी, भारत के इतिहास की उपेक्षा करना है, पिता को पुत्र का शिष्य वताना और वास्तव में संस्कृत को भूल जाना है।

योरपियन जातियों की भारतीय उत्पत्ति और भारत के मातृत्व का अतीव अखंडनीय और अतीव सरल प्रमाण स्वयं संस्कृत ही है।

यहाँ पर मैं जो कुछ लिख रहा हूँ, उसमें शायद कुछ लोगों को कुछ भी नवीनता न मालूम हो; परंतु उन्हें यह वात न भूल जानी चाहिए कि एक नवीन विचार का प्रतिपादन करने में मैं उन सव आविष्कारों से काम ले रहा हूँ, जो इसकी पुष्टि करते हैं। इसमें मेरा उद्देश्य यह है कि जिन साधारण लोगों के पास ऐसे अध्ययन के लिये न तो साधन ही है और न समय, उनको उस असाधारण, आदिम सभ्यता का परिचय और ज्ञान करा दिया जाय, जिसके आगे हम अभी तक वढ़ नहीं पाए हैं।

यदि यूनानी भाषा को वस्तुतः अन्य सव प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं के सदृश (जिसके लिये मैं आगे चलकर अनेक प्रमाण उपस्थित करूँगा) संस्कृत ने वनाया है, तो यह भाषा इन भिन्न-भिन्न देशों में केवल स्वदेश-त्यागी लोगों के एक दूसरे के वाद जाते

रहने से ही पहुँची होगी। इसके विरुद्ध मानना असंगत होगा।
और, इतिहास (यद्यपि वह इस विषय पर अभी अंधकार में ही ठोकरें खा रहा है) इस प्रतिज्ञा का विरोध नहीं, बल्कि सहायता ही करता है।

यह मानकर फिर इस परिणाम पर पहुँचना आवश्यक हो जाता है कि जो लोग ऐसी संस्कृत और परिमार्जित भाषा बोलते थे, उनकी सभ्यता बहुत ऊँची थी, और उन्होंने अपनी मातृभाषा के साथ अपने साहित्य, अपनी स्मृति और अपने ऐतिहासिक तथा धार्मिक ऐतिह्यों की भी अवश्य रक्षा की होगी।

यदि भाषा (अपने अनेक विकारों के होने पर भी, और अनेक अन्य भाषाओं को जन्म देने के उपरांत भी) अभी तक—चाहे इसकी प्राथमिक अवस्था न रह गई हो—अर्वाचीन भाषा-पद्धतियों में, और अपने स्रोत के निकटतर होने के कारण, प्राक्कालीन वाक्संप्रदायों में अधिक स्पष्टता से अपने को दिखलाती है, तो हमें न्याय-संगत रीति से यह स्वीकार करना पड़ता है कि ऐतिहासिक, धार्मिक, साहित्यिक और व्यवस्था-संबंधी ऐतिह्य (जो प्राचीन काल में प्रायः वही हैं) अवश्य ही रूपांतरित और दुर्बल होकर हमारे अर्वाचीन समयों तक पहुँचे होंगे।

मनुष्य के लिये अन्वेषण करने को यह कितना विस्तृत और नवीन क्षेत्र है! प्राचीन भारतीय सभ्यता की सहायता से आदि-मूल की ओर चढ़ते हुए हम जातियों का, उनके शैशव से उनके युवाकाल तक क़दम-ब-क़दम अनुसरण कर सकते हैं, प्रत्येक जाति के जन्म-स्थान का निरूपण कर सकते हैं, इतिहास के कुहरों को छिन्न-भिन्न कर सकते हैं, और जिस प्रकार आधुनिक भाषातत्त्ववेत्ता लोग प्रत्येक भाषा को संस्कृत से ली हुई सिद्ध करते हैं, उसी प्रकार प्रत्येक रीति और प्रत्येक ऐतिह्य में हम वह अंश स्थिर कर सकते हैं, जो उसने भारत की रीतियों और ऐतिह्यों से लिया है।

इसलिये हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि वे काल्पनिक, पौराणिक और वीर-युग, जिनको स्वीकार करने से इतिहास गंभीरतापूर्वक विमुख है, कभी थे ही नहीं।

वे केवल हिंदू-ऐतिह्य हैं, जो उपनिवेश बसानेवाले लोगों के साथ एशिया-माइनर से यूनान में आए थे, और जिनको उनके लेखकों ने जन्म-स्थान की स्मृति के रूप में ग्रहण कर लिया है।

हमें इतिहास को कविता और कल्पना से अलग कर देना चाहिए।

अपने पूर्वजों के देशांतरगमन से अनभिज्ञ होते हुए भी क्या बहुत-सी प्राचीन काल की जातियों में उनकी पूर्वीय उत्पत्ति का विचार न फैला हुआ था? और, क्या स्वयं रोम ने किसी आश्रय के अनुसंधान में समुद्र को पार करनेवाले पराजित ट्रोजन लोगों द्वारा इटली का उपनिवेशन और अपनी प्रतिष्ठा नहीं मानी?

मैं अपनी बात को फिर दुहराता हूँ। विचारशील आत्मा का—जो एक अनुपम सभ्यता की प्रायः किसी विकार के विना स्वतः सिद्ध उत्पत्ति में विश्वास नहीं कर सकती—रहस्य के समाधान के लिये पूर्व-विद्यमान समाज को प्रमाण मानना आवश्यक है।

आप लोग (जो काव्यमय दृष्टिभ्रमों* और ईश्वरीय प्रत्यादेशों से संतुष्ट हैं) चाहे हरक्युलीज़, थीस्युस, जेसन, ओसिरिस, एपिस बैल, जलती हुई झाड़ी, मूसा और इबरानियों की पवित्र उत्पत्ति में विश्वास रक्खें; पर मेरी पूछो, तो मुझे एक अन्य आदर्श का प्रयोजन है, और इसलिये मैं मूर्खता-भरी इन कूट-रचनाओं को अनादर-पूर्वक दूर फेंकता हूँ।

एक ऐसी पुस्तक में, जो इतने विषयों को स्पर्श करती है, और वस्तुतः जिसमें एक ही विचार का अधिक वर्णन है, मैं भाषातत्त्व-

---

* Juventus Mundi, to wit.

ओर्यस्टस (Orestes)—अपनी विक्षिप्तता के कारण प्रसिद्ध। संस्कृत में अरक्षित—विपद्भाजन।

पॅलेड्यस (Pylades)—ओर्यस्टस का मित्र। संस्कृत में पुलद, अपनी मित्रता से सांत्वना देनेवाला।

इफ़ीजीनिया (Iphigenia)—बलि दी हुई कुमारी। संस्कृत में अफलिनी (अभागिन)—जो बिना संतान के मर गई हो।

केंटूर (Centaur)—देवतों में आधा मनुष्य-जैसा और आधा घोड़ा-जैसा। संस्कृत में 'केंतुर' मनुष्य-घोड़ा। ओलिंपियन देवतों का भी यही मूल है।

जूपिटर (Jupiter)—संस्कृत में द्युपितृ, अर्थात् आकाश का पिता, अथवा द्युःपितृ (Zeus-Pitri)। इसी का यूनानियों ने 'Zeus' शब्द और बरानियों ने यहोवा (Jehovah) बनाया है।

पालस (Pallas)—बुद्धि की देवी। संस्कृत में पालसा (Palasa)—बुद्धि-रक्षिका।

अथेनय (Athenaia)—सतीत्व की यूनानी देवी। संस्कृत में अतनय—संतानहीन।

मिनर्वा (Minerva)—रोमन लोगों की सतीत्व की देवी। इसमें यूनानियों की देवी से साहस का गुण अधिक है। संस्कृत में मा-नर-वह (Ma-nara-va)—जो बलवानों को सहायता देती है।

बैलोना (Bellona)—युद्ध की देवी। संस्कृत में बलिनी (Bala-na)—संग्राम-शक्ति।

नेपच्यून (Neptune)—संस्कृत में नपचून Na-pata-na —जो प्रचंड तरंगों पर शासन करता है।

पोसीडन (Poseidon)—नेपच्यून का दूसरा यूनानी नाम। संस्कृत में पस-उद (Pasa-uda)—जलों को शांत करनेवाला।

मार्स (Mars)—युद्ध का देवता। संस्कृत में मृ-मार—जो मारता है।

प्लूटो (Pluto)—नरक का देवता। संस्कृत में प्लुष्ट (Plushta)—जो आग से मारता है।

अब जातियों में से कुछ उदाहरण लीजिए। स्वदेश-त्याग को प्रमाणित करने के लिये नामों की व्युत्पत्ति से बढ़कर और कोई अच्छी रीति नहीं है।

पेलस्गी (The Pelasgi)—संस्कृत में पलसा-ग (Palasa-ga)—जो निर्दय होकर लड़ते हैं।

ल्यलीगस (The Leleges)—संस्कृत में ललग (lala-ga)—जो विभीषिका फैलाते हुए चलते हैं।

इन शब्दों का आशय युवा युद्ध-प्रिय जातियों की रुचि के, और उनके अपने स्वभावों के तुल्य नाम देने के लिये कितना उपयुक्त है।

हेलन्ज़ (The Hellenes)—संस्कृत में हेलन (हेला), योद्धा-गण—चंद्रोपासक। क्या यूनान देश अपने को हेलस (Hellas)—नहीं कहता ?

स्पार्टन्ज़ (The Spartans)—संस्कृत में स्पर्द्धिन् (Spardhata)—प्रतिस्पर्द्धी।

और ये निम्न-लिखित संस्कृत शब्द यूनान में जाकर प्रसिद्ध पुरुषों के नाम बन गए—

पीथागोरस (Pythagoras)—पीठगुरु—अध्यापक।

अनक्सेगोरस (Anaxagoras)—संस्कृत में अनंगगुरु—कामनाओं का गुरु (Spirit-master)।

प्रोटागोरस—(Protagoras)—प्रतगुरु—निखिल-शास्त्र-निष्णात, गुरु।

यदि हम यूनान से इटली, गॉल, जर्मनी और स्कंडेनेविया में जायँ, तो वहाँ भी हमें यही संस्कृत-मूल मिलते हैं—

इटालियंस (The Italians)—इटालस (Italus) से, जो कि एक ट्रोजन (Trojan) वीर का पुत्र था। संस्कृत में इतल (Itala) (इतर)—नीचजातीय जन।

ब्रेटी (The Bretii)—भरत—शिल्पी लोग।

टाइरेनियंस (The Tyrrhenians)—त्वरिन् (Tyra-na)—शीघ्रगामी।

सॅबिनयस (The Sabines)—सभ्य (Sabba-na) (सभा) युद्ध करनेवाली जाति।

सॅम्नाइट्स (The Samnites)—सम्नत (Samnat-ta)—निर्वासित लोग।

कॅल्ट्स (The Celtes)—कल्लत (Kall-ta)—आक्रमणकारी नायक।

गॉल्स (The Gauls)—गलत (Ga-lata)—वे लोग, जो चलते-चलते विजय करते हैं।

बल्ज (Belge)—बलज—बलवानों की संतान।

सिक्नेस (Siquanes)—शक (Saka-na)—उत्तम योद्धा।

सिकंब्रस (The Secambres)—सुकंब्री (Su-kam-bri)—अच्छे भूम्यधिकारी।

स्कंडेनेवियन (The Scandinavians)—स्कंदनव—लड़ाइयों के देवता स्कंद के उपासक।

वोडिन् (Odin)—योधिन्—योद्धाओं का मुखिया।

स्वीड—(Swede)—सुयोध—अच्छे सिपाही।

नार्वे (Norway)—नरवाज—नाविकों अथवा सामुद्रिक लोगों का देश।

यथार्थ रीति से वर्णन करने के लिये कई ग्रंथों का प्रयोजन होगा। इसके अतिरिक्त विज्ञान के क्षेत्र में अब पूरा-पूरा अन्वेषण हो चुका है। इसलिये सारी प्राचीन और अर्वाचीन भाषाओं को संस्कृत से निकली सिद्ध कर देना अब कोई नई बात नहीं रही। इनका संबंध इतना स्पष्ट और इतना निश्चित है कि इसमें संदेह की छाया भी नहीं ठहर सकती।

यदि मैंने काल्पनिक और वीर-युगों तथा मुख्य-मुख्य प्राचीन एवं अर्वाचीन जातियों से कुछ नाम चुने हैं, तो केवल इसलिये कि मेरी युक्ति को स्पष्ट करने के लिये वे उदाहरण का काम दें।

वीरों, देवतों, योद्धाओं, दार्शनिकों, देशों या जातियों के इन नामों का, उन भाषाओं में, जिनके कि ये माने जाते हैं, रचना-संबंधी कुछ भी अर्थ नहीं है। पर इन्हें निरर्थक, केवल यदृच्छा का फल मानना भी असंगत है। इसलिये इसका सबसे सरल और युक्तिसंगत समाधान यही है कि इनका संबंध संस्कृत से दिखलाया जाय। संस्कृत न केवल इनकी व्याकरण-संबंधी उत्पत्ति को ही बताती है, प्रत्युत इनके लाक्षणिक या वास्तविक, ऐतिहासिक या अलंकारात्मक आशय की भी व्याख्या कर देती है।

इस प्रकार हिंदुओं से उत्पन्न हुई आईओनियन, डोरियन इत्यादि जातियाँ यूनान में बस्ती बसाने के लिये एशिया-माइनर से होकर गुज़रीं। वे अपने जन्म-स्थान की अनुचिंताओं (अर्थात् कविता में सुरक्षित सारे ऐतिह्यों) को अपने साथ लाईं। निस्संदेह इन ऐतिह्यों का रूपांतर हो गया था। परंतु, फिर भी, अब तक उनकी ऐसी विशेष छाप बनी रही है कि यद्यपि इन बातों को हुए अब अनेक युग बीत चुके, जिससे ये बहुत कुछ अस्पष्टता और विस्मृति के परदे में छिप गई हैं, फिर भी आज इनको पुनः प्राप्त कर लेना और इनकी व्याख्या करना असंभव नहीं।

नवीन भूमि में बस्ती बसानेवाले इन लोगों के अभिज्ञान में सबसे प्रधान इनके हिंदू-पूर्वजों के युद्ध-देवता—शिव—के असंख्य विक्रम हैं। वे इस देवता का नाम भूल गए हैं। उत्तरीय एशिया के देवतों में इस देवता के युयुत्सु गुण भी नहीं रहे, केवल उसकी 'हरकाल' उपाधि ही उनके पास रह गई है। यह उपाधि उसे हिंदू-कवि उस समय देते हैं, जब वह युद्ध का अधिष्ठाता होता है।

हरकाल (अर्थात् युद्ध करने में वीर) हरक्युलीज़ बन गया है। नवीन समाज ने उसे उस नाम से ग्रहण किया है, और यूनान—हिंदू कथा के अनुसार—उसे सिंहों, सर्पों, जल-व्यालों, यहाँ तक कि समग्र सेनाओं का विनाशक बनाता चला आया है। केवल ऐतिह्य (परंपरा) ही अपने को जारी रख रहा है।

ज़ीउस, परमेश्वर, अर्थात् हिंदू त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु, शिव—का नाम अपरिवर्तित रूप में ज्यों-का-त्यों सुरक्षित है।

शिव का सहचर तः सह (Th -Saha) थीस्युस बन गया है। अहिक, राधमत, मा-नर वह, अथनय, नपतन, बलिनी, पालसा, अंध्रमेध, अरिणया, ईकस, हडेमंथुस, मिनर्वा, एथनइया, नेपच्यून, बेलाना, पैंक्स, अड्रामेडा, और एरियेन, बन गए हैं।

ब्रह्मा (जो द्युस्-पितृ [Zeus-Pitri] अर्थात् पितृदेव भी कहलाता है) जूपीटर बन गया है। यदि यूनानी भाषा में इस शब्द को संयुक्त कर दिया जाय, और इसके अर्थ को लुप्त न होने दिया जाय, तो इस भाषा में संस्कृत के दो शब्द, जिनसे यह बना है, अपने विशुद्ध रूप में मिल जायँगे—अर्थात् द्युम् और पितृ, यूनान में, ज़ीउस और पेटर हैं।

प्रत-गुरु और अनंग गुरु प्रोटागोरस और अनक्सगोरस बन गए हैं। ये नाम विशेष विशेष्य नहीं, परंतु उन मनुष्यों के वर्णनात्मक गुण हैं, जिन्होंने विज्ञान और दर्शन में नाम पाया था। पाइथागोरस—जो पीठगुरु से निकला है—यूनान में पुनर्जन्म के हिंदू सिद्धांत का

प्रचार करके अपने हिंदू-मूलक होने की और भी अच्छी घोषणा करता है।

यही दशा शेष सबकी है। प्राचीन कथा के सभी नामों में अर्थ और उत्पत्ति का वही हिंदू-संपर्क है। इस पुस्तक का प्रधान उद्देश यह नहीं है; अन्यथा सारे नामों का विश्लेषण करना और उनके शब्दों तथा अर्थों की व्युत्पत्ति का निरूपण करना कोई कठिन कार्य नहीं है।

मैं ऊपर कह चुका हूँ कि दूसरे लोग इस खान को मुझसे अधिक गहरा खोदेंगे। विद्वानों के लिये यहाँ खोज का एक विशाल क्षेत्र है। मैं इस विषय में हाथ न लगाता, यदि मैंने युक्तिपूर्वक यह विचार न कर लिया होता कि बाइविल के प्रत्यादेशों को भारत की उपज सिद्ध करने से यह सिद्ध करना आवश्यक हो जाता है कि भारत से ये प्रत्यादेश अकेले हो नहीं लिए गए थे, प्रत्युत सभी प्राचीन और अर्वाचीन जातियों ने अपनी भाषा, अपने ऐतिहासिक ऐतिह्य (अपना तत्त्व-ज्ञान) और अपनी राज्य-व्यवस्था इसी देश से ली है।

मैंने जो कुछ प्राचीन यूनान के वीरों और उपदेवतों के विषय में कहा है, वह अधिक अर्वाचीन जातियों के नामों पर भी समान रूप से लागू है। इन नामों की मैंने कुछ व्युत्पत्तियाँ भी दी हैं, जैसा कि ब्रेटी, टाइर्हेनियन, सम्नाईट, केल्ट, गॉल, सीक्रेन, सिकंदर, स्कंडीनेवियन, वेलिजयन, नॉर्वेजियन, जर्मन, वेलक, मॉल्डेवियन इत्यादि। इन सब जातियों के वंश और जन्म की एकता तब निर्विवाद हो जाती है, और यह सर्वथा स्पष्ट है कि हिमालय के मूल के साथ-साथ फैले हुए विस्तृत मैदान ही संसार में बसनेवाली दो बड़ी जातियों में से सबसे अधिक बुद्धिमान्—अर्थात् गोरी-जाति का जन्म-स्थान हैं।

इस परिणाम को ग्रहण कर लेने से पुरातनत्व के उत्पत्ति-स्थान को घेरनेवाले काल्पनिक घेरे का (जिसके कारण इतिहास भित्ति-

हीन अनुमानों का संग्रह बन गया है) समाधान हो जाता है, और अतीत काल की अस्पष्टता को दूर करना संभव हो जाता है।

मेरी की हुई इन तुलनाओं से यह परिणाम निकलता है कि प्राचीन यूनान के सारे वीर, और उनको प्रसिद्ध करनेवाले सभी कर्म कविता और ऐतिह्य द्वारा सुरक्षित और संचरित भारत का अभिज्ञान-मात्र हैं। पीछे से इनका हिंदू-मूल विस्मृत हो गया, इनकी आदिम भाषा का रूपांतर हो गया। यूनान के आदि कवियों ने अपने विशेष इतिहास के मूल से इनका संबंध समझकर इनका नए सिरे से गान और कीर्तन किया है।

यूनानियों का ऑलिंपस हिंदुओं के ऑलिंपस की पुनरुत्पत्ति-मात्र है। जेसन और सुनहली ऊन की आख्यायिका अभी तक भारत-भूमि में सब लोग जानते हैं, और होमर का इलियड (काव्य) रामायण-नामक हिंदू-काव्य के प्रतिशब्द और दुर्बल अभिज्ञान के सिवा और कुछ नहीं है, जिसमें कि राम अपने मित्रों की सेना को साथ लेकर लंका के राजा से अपनी स्त्री—सीता—को छुड़ाने जाता है।

सरदार लोग उसी तरह एक दूसरे का अपमान करते और रथों पर सवार होकर भालों और बर्छियों से युद्ध करते हैं। यह लड़ाई भी उसी तरह देवों और राक्षसों को जुदा-जुदा कर देती है। राक्षस लंका के राजा के साथ और देवता राम के साथ जा मिलते हैं। इस प्रकार, इस विस्तृत काव्य में ब्रिसीस (Briseis) के छिन जाने पर अचिलस का केवल कोप ही एक ऐसी बात नहीं, जो रामायण की कथा से मिलता हो। इनका सादृश्य सुव्यक्त, अखंडनीय और विस्तृत है। बूपिस (गो-लोचनी) की उपाधि, जिसका होमर बार-बार जूनों के लिये उपयोग करता है, हिंदुओं में एक बड़ी श्रेष्ठ उपमा समझी जाती है; क्योंकि देवता रूप में पूजित होने के बिना

भी गऊ एक ऐसा पशु है, जिसकी हिंदू-धर्म में विशेष रूप से पूजा होती है। पर यूनानी भाषा में इस उपाधि की कुछ भी व्याख्या नहीं हो सकती।

यह कहने का प्रयोजन नहीं कि होमर के विषय में मेरा मत उन जर्मन विद्वानों से मिलता है, जो इस कवि के ग्रंथों को ऐतिह्य द्वारा सुरक्षित, पेरीक्लीस की अध्यक्षता में संगृहीत और व्यवस्थापित गीतों या असंबद्ध काव्यों की माला समझते हैं। यही एक ऐसा परिणाम है, जो नवीन लोगों—विशेष कर पूर्वीय वर्ग में जन्म लेनेवाले लोगों की प्रकृति के साथ मिलता है।

प्राचीन उपाख्यानों में यह अनुकरण और भी स्पष्ट है। हम बिना किसी अत्युक्ति के कह सकते हैं कि ईसप और बवरियास ने फ़ारस, सीरिया और मिसर से होकर उन तक पहुँची हुई हिंदू आख्यायिका की ही नक़ल की है। शेषोक्त लेखक ने, स्वयं यूनानी होने पर भी, अपनी दूसरी कविता के आरंभ में कह दिया है कि इन चातुर्यपूर्ण नीति-कथाओं को, जो रोचक रूप में वारंवार बड़ी ही गंभीर शिक्षा देती हैं, गढ़ने का श्रेय प्राच्यों ही को है—

Μῦθος μέν, ὦ παῖ Βασιλέως Ἀλεξάνδρου,
Σύρων παλαιόν ἐστιν εὕρημ᾽ ἀνθρώπων,
Οἳ πρὶν ποτ᾽ ἦσαν ἐπὶ Νίνου τε καὶ Βήλου.

अर्थात् "हे राजा सिकंदर के पुत्र! नीति-कथाएँ उन प्राचीन सीरियन लोगों की बनाई हुई हैं, जो पिछले समयों में निनुस और बेलूस के अधीन रहते थे।"

हिंदू पीलपाय (Pilpay), राम स्वामी ऐयर, ईसप, बवरियास और ला फ़ोंटेन (La Fontaine) की कथाओं को खोलकर देखने से यह स्पष्ट हो जायगा कि वे सब एक दूसरे से निकली हैं।

यूनानी और अर्वाचीन उपाख्यान बनानेवालों ने तो इन छोटे-छोटे नाटकों के अभिनय को बदलने का भी कष्ट नहीं किया।

इस प्रकार जितना अधिक हम प्राचीनों का अध्ययन करते हैं, उतना ही, प्रत्येक पग पर, मेरी उपर्युक्त प्रतिज्ञा—अर्थात् प्राचीन काल के सामने भी एक और प्राचीन काल था, जिसने उसकी उच्च कोटि की दार्शनिक, साहित्यिक और कौशलपूर्ण सभ्यता के शीघ्र विकाश में प्रोत्साहन और सहायता दी थी, और अब इसने अपनी बारी पर आधुनिक कल्पना-शक्ति को उर्वरा किया है—अधिकाधिक परिस्फुट होती जाती है।

लँगलोई महाशय (M. Langlois), जिन्होंने हरिवंश का अनुवाद किया है, लिखते हैं—"हमें दूसरों से कितनी अद्भुत बातें सीखनी हैं।"

इस पर भी देशों की सरकारें खुदाई कराने तथा मिसर, फ़ारस और आफ्रिका को वैज्ञानिक दूत भेजने में अपनी शक्तियाँ नष्ट कर रही हैं, और विद्वान् लोग खंडित स्तंभों और शिला-लेखों पर चतुर-प्रणालियाँ बना रहे हैं! इसमें संदेह नहीं कि इनसे भी कुछ लाभ अवश्य है, और हमने अतीत काल के ज्ञान में बड़ी उन्नति की है; परंतु ज़ंजीर की कड़ियाँ इतनी टूट चुकी हैं कि उसका पुनर्निर्माण नहीं हो सकता। पुस्तकों का अनुवाद और मूल की खोज करने के लिये वे सरकारें उन लोगों को भारत में क्यों नहीं भेजतीं? केवल वहीं सत्य का पता लगेगा।

एथेंस के इस खोजी संप्रदाय को किसलिये उत्पन्न कर रहे हो? इसकी सत्ता का हेतु नहीं, और न यह कोई काम ही दे सकता है। इसकी जगह दक्षिण-भारत के अंतर्गत पांडिचरी या कारीकल में एक संस्कृत-विद्यालय खोलो। यह शीघ्र ही इस विज्ञान को महत्त्व-पूर्ण काम देगा।

संसार ने सभ्यता भारत से ली है, इस कल्पना की पुष्टि में मैं अब हिंदू-धर्म-शास्त्र की मुख्य बातें प्रकट करूँगा। यह धर्म-शास्त्र हमें रोम में ज्यों-का-त्यों मिलता है। रोम ने इसे यूनान और मिसर से लिया था, और इन दोनों देशों ने प्राचीन काल के स्रोतों से उसे प्राप्त किया था।

यह बात स्पष्ट है कि मैं यहाँ केवल संक्षिप्त सूचनाएँ ही दे सकता हूँ ; इस विषय के विस्तार-सहित वर्णन के लिये तो यह सारी पुस्तक भी यथेष्ट न होगी।

सारी सामाजिक पद्धतियों में व्यवस्था की सबसे आवश्यक बातें हैं विवाह, पिता-पुत्र-संबंध, पितृ अधिकार, अभिभावकता, दत्तक-विधान, संपत्ति और पणबंध, निक्षेप, ऋण, विक्रय, हिस्सेदारी, दान और मृत्युपत्र (वसीयतनामे) के नियम।

परीक्षा करने पर हम देखेंगे कि ये विभाग हिंदू-धर्म-शास्त्र से रोमन और फ्रेंच धर्म-शास्त्रों में, प्रायः अविकृत रूप में, आ गए हैं, और उनके विशेष विधानों का एक बड़ा अंश अब तक भी प्रचलित है।

इस पर कोई टीका-टिप्पणी या वाद-प्रतिवाद संभव नहीं हो सकता। जहाँ मूल वचन मौजूद हो, वहाँ मत-भेद के लिये कोई स्थान नहीं रह सकता। मनु ने ईसाई सन् से तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले हिंदू-धर्म-शास्त्र को बनाया था। सारे प्राचीन युग ने उसी की नक़ल की है। इन नक़ल करनेवालों में रोम प्रसिद्ध है। केवल इसी की लिखित स्मृति—जस्टिनियन की स्मृति—अब मिलती है, और वह सभी अर्वाचीन आइनों का आधार मानी गई है। अच्छा आओ, हम देखें और मिलान करें।

वाग्दान और विवाह

हिंदू-धर्म-शास्त्र के अनुसार, जल और अग्नि-संबंधी अनुष्ठानों के साथ पिता के लड़की को देने और पति के उसे स्वीकार करने से विवाह-संस्कार होता है।

यही रीति रोम में है—Leg. 66, § i. Digest of Justinian. Virgini in hortas deductœ..........Die Nuptiarum priusquam ad eum transiret, et priusquam aqua et igne acciperetur, id est nuptiœ celebrarentur..............obtulit decem aureas dono.

अर्थात् वाटिका में सुरक्षित रीति से ले जाई गई कुमारी को...विवाह के दिन, उस (कुमारी) के उस (पुरुष) के पास चली जाने के पहले—और उस (पुरुष) के उसे (कुमारी को) आग और पानी की प्रक्रिया द्वारा ग्रहण कर लेने, अर्थात् विवाह-संस्कार हो चुकने, के पहले—वह दस सोने की मुहरें भेंट करता था।*

रोमन रीति में हाथों का मिलाना और वधू का मीठी रोटी को खाना (Confarreatio) मनु की व्यवस्थाओं का अनुकरण-मात्र है।

हिंदू-विवाह में दो भिन्न-भिन्न बातें होती हैं—वाग्दान और विवाह-संस्कार। वाग्दान सदा विवाह-संस्कार के कुछ समय पहले होता है।

यही रीति, यही भिन्न-भिन्न काल, रोम में भी प्रचलित हैं। वाग्दान (Sponsalia) शब्द (Leg. 2, tit. i. L. XXiii, of the Digest) वचन देना (a spondendo) शब्द से निकला है; क्योंकि प्राचीन लोगों की यह रीति थी कि वे भावी पत्नी के लिये वाग्दान कर छोड़ते थे।

इसी शीर्षक के नीचे १७वीं धारा कहती है—"यथेष्ट कारण होने पर प्रायः वाग्दान का समय केवल एक या दो ही वर्षों का

---

* इस प्रकरण में जितने लैटिन वाक्य हैं, उनके अनुवाद के लिये मैं लाहौर के लॉर्ड बिशप महोदय का कृतज्ञ हूँ।—संतराम

नहीं, बल्कि तीन, चार या इससे अधिक वर्षों का भी लंबा हो सकता है।"

हिंदू-धर्म पत्रबंध (वचन) से जिस अनुमति को आवश्यक बताता है, वही रोम में आवश्यक समझी गई थी—Law 2, clause ii, sponsalia sicut nuptiœ consensu contrahentium fiunt, अर्थात् सगाइयाँ, विवाहों के सदृश, वर और वधू की सम्मति से की जाती हैं।

हिंदुओं में कुमारी कन्या युवती होने तक अपने परिवार के साथ रहती है; तब उसका पिता पति को संदेश भेजकर सूचना देता है कि तुम्हारे स्वत्त्वाधिकार का समय उपस्थित हो रहा है; अब तुम अपनी स्त्री को अपने अधिकार में कर सकते हो।

यही बात रोम में है—In potestate manente filia, pater sponso nuntium remittere potest. (Leg. 10, de Sponsalibus). जब तक लड़की पिता के अधिकार में है, वह वर के पास (सगाई को तोड़ने का ?) संदेश भेज सकता है।

स्त्री को पति के घर ले जाना, रोम की तरह, भारत में विवाह का अंतिम संस्कार था, और यह बड़ी धूम-धाम और बाजे-गाजे के साथ मनाया जाता था।

मानव-धर्म-शास्त्र के अनुसार अपने गोत्र में (पिता के कुल की सात और माता के कुल की पाँच पीढ़ियों में) विवाह करने का निषेध है। कम-से-कम भारत में जो पिता एक मनुष्य से अपनी पुत्री की सगाई करने के उपरांत दूसरे के साथ उसका विवाह कर देता है, वह निंदित समझा जाता है।

अब रोमन नीति (Leg. 13, § I., lib. iii.) सुनिए—Item si alteri sponsalteri nupta sit, ex senten-

tia edicti punitur इसलिये यदि लड़की की सगाई एक पुरुष से और उसका विवाह दूसरे से कर दिया जाता है, तो वह राज-निर्णय के अनुसार दंडित होती है।

केवल इतना ही नहीं। हिंदू-भाव स्त्री और पुरुष के उन निषिद्ध संयोग-संबंधों में भी रोमन नीति पर शासन करता पाया जाता है, जिनको ब्राज़िल के सिवा और सब अर्वाचीन देशों की नीति ने स्वीकार करने से इनकार कर दिया है। रोम में उपपत्नी-गमन की जिस मर्यादा का प्रचार है, और जिसे वहाँ बुरा नहीं समझा जाता, वह भी एक भारतीय रीति ही है, जिसे रोमन लोगों ने ऐतिह्य के सामने सिर झुकाते हुए ग्रहण कर लिया है। प्राचीन युगों का कठिन और विशुद्ध आचार उच्छृंखल प्रेम का कभी अनुमोदन नहीं करता था।

इन सब मनोरंजक बातों को हम यहाँ केवल स्पर्श ही कर रहे हैं। मानव-जाति के प्राचीन जन्म-स्थान के उन प्रशंसनीय धर्मों के गंभीरतर अन्वेषण से हमें कैसी-कैसी महत्त्वपूर्ण और सूक्ष्म बातें मालूम होंगी!

एक शब्द और कहकर हम विवाह के विषय को समाप्त करते हैं। विवाह-विच्छेद (तलाक़), जिसकी व्यवस्था भारत में धर्म-शास्त्र की रीति से हुई थी, रोम में भी वैसी ही थी। आओ देखें हिंदू-स्मृतिकार किन-किन कारणों से स्त्री को पति से अलग हो जाने की आज्ञा देते हैं—"यदि पति बहिष्कृत, नपुंसक, पतित या कोढ़ी हो जाय, या चिरकाल तक विदेश से न लौटे, तो स्त्री उसका परि-त्याग कर सकती है।"

रोमन नीति भी अपकर्ष, नागरिक मृत्यु, नपुंसकता, छूत के रोग, और अनुपस्थिति के अतिरिक्त विवाह-विच्छेद का और कोई कारण नहीं बताती।

भारत में, रोम के सदृश ही, व्यभिचारिणी स्त्री को उसका स्त्री-धन नहीं मिलता। पति उसे देने के लिये बाध्य नहीं। इस प्रकार नीति के इस महत्त्वपूर्ण भाग में, जो कि समाजों और जातियों की आधार-भित्ति है, हम भारत को शिक्षा देते देखते हैं, जिससे सब जातियों ने लाभ उठाया है। आओ, हम इन तुलनाओं पर विचार करें, जो संक्षिप्त होते हुए भी अभी कुछ कम निश्चित और प्रमाण-सिद्ध नहीं हैं।

पिता-पुत्र का संबंध, पितृ-अधिकार, अभि-भावकता और दत्तक-विधान

यह नियम कि Pater is est quem justœ nuptiœ demonstrant (पिता वह है जो धर्मसम्मत विवाह द्वारा दिख-लाया जाता है) जिसे रोमन स्मृति में एक सिद्धांत माना गया है, और जिसे हमारे धर्म-शास्त्र ने ग्रहण करके ३१२ धारा में इस प्रकार प्रकट किया है—"विवाह के समय जो बालक गर्भ में हो, उसका पिता पति होता है", मनु द्वारा इस प्रकार व्यक्त किया गया है—"घर में उत्पन्न होनेवाला बालक स्त्री के पति का है।" हिंदू-धर्म-शास्त्र में चार प्रकार के पुत्र माने गए हैं—औरस, क्षेत्रज, गूढ़ो-त्पन्न और कानीन। क्षेत्रज संतान का अपने माता-पिता के दाय में अधिकार तो है; परंतु किंचित् व्यभिचार या अगम्यागमन से उत्पन्न होनेवाली संतान का भोजनाच्छादन के सिवा और किसी वस्तु पर अधिकार नहीं होता।

ऐसी स्थिति में यह विवाह-संबंधी-त्याग-विधि की इन शब्दों में व्यवस्था करता है—"यदि अवस्थाओं से यह बात निश्चित रूप से सिद्ध हो जाय कि वास्तविक पिता पति के सिवा और कोई है, तो संतान जारज है, और कुल में उसका कोई भी अधिकार नहीं।" अंततः एक बड़ा अद्भुत विधान यह है कि वह नियम पीछे से माता-पिता के विवाह कर लेने पर उस जारज संतान को भी धर्म-संगत स्वीकार कर लेता है।

हम विना किसी भूल के भय के कह सकते हैं कि उपर्युक्त सभी नियम—जिनको रोमन नीति ने ग्रहण किया है—अभी तक

फ्रेंच और बहुत-सी योरपियन जातियों की नीतियों के मूल-तत्त्व हैं। इस निपुण, सरल और व्यावहारिक नीति को हमने पाँच सहस्र वर्षों के उपरांत ग्रहण किया है; क्योंकि इससे उत्तम और कोई नीति नहीं मिली। कौन विचारक, कौन दार्शनिक और कौन स्मृतिशास्त्रज्ञ इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा न करेगा!

जो अवस्था पिता-पुत्र-संबंध की है, वही पैतृक अधिकार की भी; जो नियम भारत में थे, वही रोम में भी।

गिबलिन (Gibelin) कहता है कि कुल का अधिपति अपनी स्त्री, संतान और क्रीत दासों को स्वामित्व के अधिकार से अपने हाथ में रखता था; और उसी अधिकार से आज भी पुत्र की कोई भी वस्तु ऐसी नहीं हो सकती, जिस पर पिता का अधिकार न हो।

हिंदू-टीकाकार कात्यायन कहता है कि पुत्र की आयु चाहे कितनी ही बड़ी क्यों न हो, जब तक उसका पिता जीता है, वह कभी स्वाधीन नहीं हो सकता।

अभिभावकता के विषय में सदा वे ही सिद्धांत रहे हैं, जिनको रोमन नीति ने अब स्वीकार किया है। वास्तव में ऐसा प्रतीत होगा कि भारत का अध्ययन करने के स्थान में हम वस्तुतः अर्वाचीन भूमि पर हैं।

हिंदू-धर्म-शास्त्र संप्रदान, संरक्षण और किशोर के शरीर तथा संपत्ति की रक्षा के लिये पहले तो पूर्वजों की, उसके उपरांत पितृ-मातृ-कुल के बंधुओं की, और अंत को कुटुंब-परिषद् और सार्वजनिक अधिकार की मध्यवर्तिता को ही धर्मानुकूल अभिभावकता मानते हैं।

यह भी एक विशेष सादृश्य है कि हिंदू-स्मृतिकार पुरुष के जीते रहते स्त्री को अभिभावक बनाने की अपेक्षा पुरुष को ही अभिभावक बनाना उत्तम मानता है। इससे भी अधिक अद्भुत बात यह है कि यदि माता, विधवा हो जाने पर, बिना अपने कुटुंब की अनुमति

के, पुनर्विवाह कर ले, तो फिर वह अपनी संतान की अभिभावक (सरपरस्त) नहीं रह सकती।

हम इस विषय में भारतीय नीति पर किए गए अपने संक्षिप्त वर्णन को, दत्तक-विधान पर एक शब्द कहकर, समाप्त करते हैं। हिंदू-नीति या तो संतानहीन कुल को बालक देने के लिये है या स्वयं दत्तक के प्रति शुभ इच्छा के अभिप्राय से दत्तक लेने की आज्ञा देती है। रोमन नीति के सदृश यहाँ भी दत्तक का संस्कार कुटुंबियों, ब्राह्मणों, कुलपतियों और स्वजाति के मुखियों की उपस्थिति में होना आवश्यक है।

इस रीति को ग्रहण करते हुए फ़्रेंच नीति ने इस विधि को असाधारण रूप से प्रामाणिक और गंभीर माना है; क्योंकि उक्त नीति ने दत्तक के लिये उच्चतर अधिकरण और श्रेष्ठ न्याय-सभा की अनुमति लेना आवश्यक ठहरा दिया है।

एक बार दत्तक बना लेने पर, बालक उस कुल का हिस्सेदार हो जाता है। उसके वही अधिकार हो जाते हैं, जो पीछे से उत्पन्न होनेवाली संतान के होंगे। रोमन और फ़्रेंच नीति में भी यही विधान है।

वृद्ध गौतम के विधान पर नंद पंडित ने टीका में लिखा है—

"यदि एक तो उत्तम प्रकृति का दत्तक पुत्र हो, और दूसरा पीछे से उत्पन्न हुआ औरस पुत्र हो, तो वे अपने पिता की संपत्ति को बराबर-बराबर बाँट लें।" एथेंस में दत्तक-विधान का सूत्र यह था—

"मैं इसलिये दत्तक लेता हूँ कि मेरी क़ब्र पर पवित्र संस्कार करने, मेरे वंश को स्थिर रखने और संतति की अटूट शृंखला में मेरे नाम को रखकर उसे किसी हद तक अमर बनानेवाला मेरा एक पुत्र हो जाय।"

क्या दत्तक-विधान का यह यूनानी सूत्र हिंदू-स्मृतिकार मनु के निम्नलिखित वचन की पुनरावृत्ति ही नहीं है ? यथा—

"मैं, जो कि पुत्रहीन हूँ, श्राद्ध और क्रिया-कर्म करने तथा अपने नाम को स्थिर रखने के लिये बड़ी उत्कंठा के साथ एक पुत्र को गोद लेता हूँ।"

अंत में हम यह कहे विना नहीं रह सकते कि सबसे पहले हिंदू-धर्म-शास्त्र ने ही विवाह को एक न टूटनेवाला संबंध ठहराया है। यहाँ तक कि मृत्यु भी इसे नहीं तोड़ सकती; क्योंकि जिन वर्णों में विधवाओं के पुनर्विवाह की आज्ञा है, उनमें भी यह आज्ञा केवल उन्हीं अवस्थाओं में है, जब कि मृतक के संतानहीन मर जाने से उसकी मुक्ति के लिये आवश्यक क्रियाएँ करनेवाले पुत्र का होना ज़रूरी हो जाता है। कारण, हिंदू-धर्म में पुत्र के पावन संस्कार करने से ही पिता स्वर्ग में जा सकता है। इसलिये दूसरा पति एक साधन-मात्र ही होता है। उससे उत्पन्न हुआ पुत्र उसका नहीं, किंतु मृतक का होता है, और मृत पुरुष की संपत्ति भी उसी पुत्र को मिलती है।

इसके सिवा प्राचीन काल ने जिस बात की कुछ भी परवा नहीं की, परंतु जिसकी हम जितनी प्रशंसा करें, थोड़ी है, भारत का स्त्री-जाति के प्रति सम्मान का भाव, जो कि प्रायः पूजा की सीमा तक पहुँच गया है। मनु का यह अवतरण (अध्याय ३, श्लोक ५५, इत्यादि) आश्चर्य उत्पन्न किए विना नहीं रहेगा—

"पिता, भाई, पति और देवर को यदि बहुत कल्याण की इच्छा हो, तो उन्हें चाहिए कि स्त्री को सत्कारपूर्वक भूषण आदि से प्रसन्न रक्खें।"

"जिस घर या कुल में स्त्रियाँ शोकातुर होकर दुःख पाती हैं, वह शीघ्र ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। जिस घर या कुल में स्त्रियाँ आनंद, उत्साह और प्रसन्नता से भरी रहती हैं, वह सर्वदा बढ़ता रहता है।"

"जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता संतुष्ट रहते हैं। परंतु जब हम उनका सत्कार नहीं करते, तो धर्म की सभी क्रियाएँ निष्फल हो जाती हैं।"

"उचित सम्मान न पाने पर जिस घर को स्त्रियाँ शाप देती हैं, उसको विध्वंस इस प्रकार दबाकर नष्ट कर डालता है, मानो किसी गुप्त शक्ति ने उसे जर्जरित कर दिया हो।"

"जिस कुल में भार्या से भर्ता और पति से पत्नी भली भाँति प्रसन्न रहती है, उसमें ऐश्वर्य और सौभाग्य सदैव निवास करते हैं।"

स्त्री-जाति के प्रति सम्मान के भाव ने भारत में दुःसाहसिक शौर्य का एक ऐसा युग उत्पन्न कर दिया था, जिसमें हम हिंदू काव्यों के वीरों को ऐसे-ऐसे उच्च कर्म करते पाते हैं, जिनके सामने अमाडिस, राउंड टेबल के नाइटों, और मध्यकाल के पलाडिनों के सारे कर्म केवल बालकों के खेल-जैसे प्रतीत होते हैं।

अहा, वह कैसा उज्ज्वल और शांतिमय युग था, जिसको भारत आज बहुत कुछ भूल गया है! यदि यह दोष उन नृशंस और मूढ़ आक्रमणकारियों का नहीं, जो उसकी ललित और उर्वर भूमि के लिये चिरकाल से झगड़ रहे हैं, तो और किसका है?

संपत्ति, पणबंध (ठेका), निक्षेप, ऋण, विक्रय, हिस्सेदारी, दान और इच्छाधीन-रिक्थ प्रदान।

हिंदुओं के संपत्ति-संबंधी नियम उनके व्यक्ति-संबंधी नियमों से कुछ कम प्रशंसनीय नहीं हैं। उनका आधार दृष्टि की विशालता और विवेक की यथार्थता पर है, और क्रम-बद्ध अर्वाचीन विधियाँ उनसे बढ़ नहीं सकी हैं। रोम के इकट्ठे किए हुए वही नियम अभी तक भी, थोड़े-से परिवर्तन के साथ, हमारे ही हैं।

हमारे समयों के स्मृतिशास्त्रज्ञ संपत्ति के मूल के विषय में दो संप्रदायों में बँटे हुए हैं। पहला संप्रदाय संपत्ति का स्वत्व केवल नैसर्गिक नियम पर अवलंबित मानता है, और इसलिये उसे भोग (अधिकार) बना देता है; दूसरा संप्रदाय इसे एक सामाजिक आवश्यकता समझता है, और इसकी व्युत्पत्ति व्यावहारिक व्यवस्था से करता है।

हिंदू-स्मृतिकार यही प्रश्न उठाकर इसका समाधान इस प्रकार करते हैं—

"जहाँ भोग (क़ब्ज़ा) सिद्ध हो जाय, पर किसी प्रकार क़ब्ज़े का स्वत्व प्रकट न हो, वहाँ विक्रय की स्वीकृति नहीं हो सकती। स्वामित्व के लिये क़ब्ज़े का स्वत्व आवश्यक है न कि क़ब्ज़ा।"—

(मनु०, अध्याय ८, श्लोक २००)

यह सिद्धांत होने के कारण भारत में स्वामित्व नीति से निकाला जाता था। यही कल्पना हमारी स्मृतियों के समग्र विन्यास में व्याप्त है।

तब उन वस्तुओं को प्राप्त करने की रीति के विषय में, जिन पर अभी तक किसी का अधिकार नहीं, या जिनका उनके स्वभाव से केवल कोई आकस्मिक स्वामी है, मनु कहता है—"दुरुस्त किया हुआ खेत उस मनुष्य की संपत्ति है, जिसने उसमें से लकड़ी को काटकर साफ़ किया, और मृग उस पहले व्याध का है, जिसने उसे प्राण-घातक घाव लगाया।"

प्रसंग-क्रम में स्वयं संपत्ति के स्वरूप की परीक्षा करते हुए हिंदू-नीति इसको स्थावर और जंगम, दो प्रकारों में बाँटती है। इस भेद को रोमन नीति ने अस्वीकार कर दिया था; परंतु आधुनिक व्यवस्थापकों ने इसे बिना किसी परिवर्तन के ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लिया है।

स्थावर संपत्ति फिर दो प्रकार से विभक्त है, अर्थात् एक तो अपने स्वरूप से स्थावर और दूसरी अपने प्रयोजन से स्थावर; तब इन संपत्तियों को रखनेवालों के भोग भी दो तरह के हैं, एक तो वह जो किसी व्यक्ति का नहीं, और दूसरा वह, जो सबका है—अर्थात् सार्वजनिक संपत्ति और स्वकीय संपत्ति। हिंदू-नीति केवल शेषोक्त संपत्ति को ही व्यक्तियों के बीच वाणिज्य-संबंधी व्यवहारों का विषय बतलाती है।

गिवलिन कहता है—"संपत्तियों के स्वरूप, उनके मूल, उनके भोगाधिकार और अंततः स्वामित्व के स्वत्व के अनुसार जितने वर्ग हैं, वे सब योरप में पूर्वीय व्यवस्था के ऐतिह्य हैं"—जिनको हमारी वर्तमान नीति ने, रोमन नीति के सदृश, ग्रहण कर लिया है; यथा परिवार के लिये खाद्य द्रव्य, विक्रय भागों का संस्थापन, पणबंध, न केवल अपने तत्त्व में, किंतु अपने प्रयोग में भी। वस्तुतः वे सब नियम, जिनको हमारी नागरिक नीति (Civil Law) या दीवानी क़ानून ने रोमन नीति के

मनु और भी कहता है—"जो चीज़ हठ से—ज़ोर से—ली गई हो वह भी व्यर्थ विघोषित की जाती है।"

क्या यह इसके चार-पाँच सहस्र वर्ष पीछे की नेपोलियन-संहिता की व्याख्या न समझी जायगी ?

अगले समयों की अशिष्ट रीतियों से, जब कि प्रत्येक प्रश्न बल, और हत्या के द्वारा ही हल किया जाता था, ये सब बातें कितनी दूर हैं और उन लोगों के लिये हमारे अंदर प्रशंसा का कितना भाव उत्पन्न होता है, जो उस काल में—जिसको बाइबिल की कथा जगत् का उत्पत्ति-काल बताती है—असाधारण उच्च सभ्यता प्राप्त कर चुके थे, जैसा कि उनके अतीव सरल और व्यावहारिक नियमों से प्रकट हो रहा है।

हमें भुलावे में न आना चाहिए। जातियों की अवस्था का सर्वोत्तम प्रमाण उनकी लिखित नीति ऐसी है।

अब हम पणबंधों के सूक्ष्मांशों के विचार में नहीं पड़ेंगे; क्योंकि इनके विस्तार और कार्यों को पूर्णरूप से केवल वे ही लोग समझ सकते हैं, जिनका क़ानून के साथ संबंध है। ऐसे पाठकों को मूल-पुस्तकों का पाठ करना चाहिए। हमारे लिये तो इतना ही बता देना यथेष्ट है कि प्रत्यय (गारंटी), वेतन, पण, कर, पट्टा, ऋण के परित्राण का आधार, बंधक-फल-भोगाधिकार-सहित आधि (मोर्टगेज) जो सब-के-सब हिंदूमूल हैं, रोमन और फ़्रांसीसी नीति में क्रमशः समग्र आ गए हैं। इनमें सिवा ऐसे रूपांतरों के, जिनका, धर्म-नीति पर नागरिक नीति (दीवानी क़ानून) के प्राधान्य के कारण, जातियों में उत्पन्न हो जाना आवश्यक है, दूसरा कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ।

इससे भी अधिक, यदि हम विस्तार में उतरें, तो देखेंगे कि जिन उत्तरवादों (pleas) को रोमन और फ़्रांसीसी नीतियों ने बद्धताओं (obligations) के उच्छेद के लिये स्वीकार किया है, वे सब हिंदू-स्मृति ने पहले से ही देखे और प्रयुक्त किए थे।

अतएव परिवर्तन, ऋण की विमुक्ति, संपत्ति-दान, निस्तार, निर्दिष्ट अवस्थाओं में देय वस्तु का नाश, स्वामी या अभियोक्ता द्वारा लोप या उच्छेद के लिये कर्म, भारत में स्वीकार किए जाते हैं, और वहाँ वही परिणाम रखते हैं जो कि हमारे यहाँ। इनमें से प्राचीनता का दर्जा किसे दिया जाय ? मैं समझता हूँ, इस प्रश्न की कोई आवश्यकता ही नहीं।

उपकल्पन (substitution) की आज्ञा देनेवाले स्मृति-चंद्रिका के मूल-वचन को सुनिए—"उत्तमर्ण, (महाजन) अपने उत्तमर्ण के पास या उसका निस्तार करनेवाले किसी तीसरे व्यक्ति के पास अपने ऋणी का ऋण ;की निश्चित्तता (sunety) में दिया हुआ पण, उसको प्रतिष्ठित करनेवाले प्रमाणपत्र-सहित, स्थानांतरित कर सकता है; परंतु उसमें इस बात का उल्लेख होना आवश्यक है कि ऋणी स्थानांतरकरण की इन सब अवस्थाओं को स्वीकार करता है।"

उसी पुस्तक से प्रार्थना (टेण्डर) और अर्पण (consignation) के विषय पर यह दूसरा वैधिक वचन है—"ऋणी द्वारा शोधन में दिए हुए उधार को जब उत्तमर्ण लेने से इनकार करे, तो ऋणी को चाहिए कि उसके ऋण, फल, धन, माल या पशुओं को इसके लिये एक तीसरे व्यक्ति के पास न्यस्त कर दे, और इस न्यास के साथ ही व्याज का लगना बंद हो जायगा।"

"इस व्यवहार से निस्तार हो जाता है।"

तुलना के मनोरंजक कार्य का दिग्दर्शन कराने के लिये जिसमें स्मृति-शास्त्रज्ञ अपने जीवन को लगा सकता है, और इससे भी बढ़कर इस बात को अधिक स्पष्ट रीति से सिद्ध करने के लिये कि रोम के और हमारे क़ानून प्राचीन भारतीय धर्म-शास्त्र की प्रतिलिपि-मात्र हैं, अब हम, गिबलिन के अनुसार, न्यास और सूद पर या बिना सूद के ऋण के विषय में तीनों विधि रचनाओं के वचनों को मिलाते हैं।

हिंदू-वचन, कात्यायन—"जो शुभ-इच्छा से उधार दिया गया हो, उसका कोई ब्याज नहीं होता।"

सिविल कोड, उपपद, १८७६—"सहूलियत से दिया हुआ ऋण अवश्य ही मुफ़्त होता है।"

रोमन नीति—"Commodata restunc proprie intelligitur, si nulla mercede accepta vel constituta, restibi utenda data est." कोई वस्तु ठीक तौर पर उधार दी गई तब समझी जाती है, जब वह तुम्हें विना किराया लिए या ठहराए उपयोग के लिये दे दी जाती है।

हिंदू-वचन, कात्यायन—"यदि कोई वस्तु अपने ही दुर्गुण के कारण नष्ट हो जाय, तो ऋणकारी उसके लिये उत्तरदाता नहीं, जब तक कि उसका कोई दोष न हो।"

सिविल कोड, आर्टिकिल, १८८४—"यदि कोई वस्तु केवल उसी व्यवहार के परिणाम से बिगड़ जाय, जिसके लिये वह उधार माँगी गई है, और उसमें उधार माँगनेवाले का कोई दोष न हो, तो उस बिगाड़ के लिये वह उत्तरदाता नहीं।"

रोमन नीति—Quod vero senectute contigit, vel morbo, vel vi latronum—ereptum est, aut quid simile accidit, dicendum est nihil eorum esse imputandum ei qui commodatum accipit, nisi aliqua culpa interveniat.„"ऐसी वस्तु के विषय में जिसे यथार्थतः काल ने ख़राब कर दिया हो, या जो रोग या लुटेरों के अतिक्रम या ऐसी ही किसी दूसरी घटना से नष्ट हो गई हो, कहा जा सकता है कि इन दैवी घटनाओं में से किसी के लिये भी, जब तक कोई और दूषणीय बात न हो, उधार लेनेवाले मनुष्य को उत्तरदाता न ठहराना चाहिए।

हिंदू-वचन, कात्यायन—"जब किसी नियत समय तक व्यवहार के लिये उधार दी हुई वस्तु को उस अवधि या उस व्यवहार की समाप्ति के पहले ही लौटा देने के लिये कहा जाय, तो उधार लेनेवाले को इसे लौटाने के लिये बाध्य नहीं किया जा सकता।"

सिविल कोड, आर्टिकल, १८८८—"उधार देनेवाला उधार दी हुई वस्तु को संवाध अवधि के पहले, या पूर्वसंधि को पूरा न करने की अवस्था में, जब तक वह प्रयोजन न पूरा हो जाय जिसके लिये वह ली गई थी, वापस नहीं ले सकता।"

रोमन नीति—"Adjuvari quippe nos, non decipi beneficio oportet."

"उपकृति से हमें सहायता मिलनी चाहिए न कि हम ठगे जायँ।"

हिंदू-वचन, कात्यायन—"परंतु जहाँ स्वामी के स्वार्थ उधार दी हुई वस्तु के आवश्यक प्रयोजन से पूरे होते हों तो उधार लेनेवाले को संवाध समय से पूर्व भी इसे लौटा देने के लिये वाधित किया जा सकता है।"

सिविल कोड, उपपद १८८९—"इस पर भी यदि उधार लेनेवाले की आवश्यकता के पूरा होने के पहले या उसी अवधि के अंदर अंदर उधार देनेवाले पर उस वस्तु की कोई प्रयोजनीय और अचिंतित आवश्यकता आ पड़े, तो न्यायाधीश, अवस्थाओं के अनुसार, उधार लेनेवाले को उस वस्तु के वापस करने के लिये बाध्य कर सकता है।"

हिंदू-वचन, नारद—"जब कोई मनुष्य, विश्वास से, वापसी की शर्त पर, अपने द्रव्य को दूसरे के सिपुर्द करता है, तो यह निक्षेप-कर्म कहलाता है।"

सिविल कोड, धारा १९१५—"साधारणतः निक्षेप वह कर्म है जिसमें हम दूसरे की संपत्ति को सँभाल कर रखते, और जैसी ली थी उसे वैसा ही लौटा देते हैं।"

रोमन नीति—"Depositum est quod custodiendum alicui datum est 'निक्षेप वह वस्तु है जो किसी को सुरक्षित रखने के लिये दी जाती है।'

हिंदू-वचन, बृहस्पति—"जो न्यासधारी न्यस्त वस्तु को अपनी असावधानता से नष्ट होने देता है, और अपनी संपत्ति की विशेष ध्यान से रक्षा करता है वह उस वस्तु का मूल्य ब्याज-सहित देने के लिये बाधित किया जायगा।"

सिविल कोड धारा १६२७—"न्यासधारी को न्यस्त वस्तुओं की रक्षा उसी सावधानी से करनी होगी जिस प्रकार कि वह अपनी निजी वस्तुओं की करता है।"

रोमन नीति—Nec enim salva fide minorem iis quam suis rebus diligentiam Præstabit."

"यदि उसमें निर्दोष विश्वासपात्रता है तो वह उन वस्तुओं की देख भाल में जो "इस प्रकार उसे सौंपी गई हैं अपनी निजी वस्तुओं की अपेक्षा कम सावधानी न दिखलाएगा।"

हिंदू-वचन, याज्ञवल्क्य—"जो वस्तु राजा, विधि, या चोरों द्वारा नष्ट हो गई हो उसे न्यासधारी वापस नहीं देगा। परंतु यदि यह क्षति उस समय के उपरांत हुई हो जब कि माँगने पर भी उसने उस वस्तु को वापस देने से इनकार किया हो तो उसे न्यास का मूल्य और उतना ही जुर्माना देना होगा।"

सिविल कोड, धारा १६२६—"न्यासधारी ने जब तक न्यास को वापस करने में विलंब न किया हो तो वह किसी अवस्था में भी उच्चतर शक्ति की दुर्घटनाओं के लिये उत्तरदाता नहीं हो सकता।"

रोमन नीति—Si depositum quoque, eo die depositi actum sit periculo ejus, apud quem depositum fuerit, est si judicii accipiendi tempore

potuit,. di reddere reus, nec reddi dit." "यदि न्यास के दिन ही निक्षेप किया जाय तो यह उस मनुष्य के उत्तरदायित्व में है जिसके पास यह रक्खा गया है, यदि कार्य को हाथ में लेते समय प्रतिवादी इसे वापस कर सकता था और उसने इसे वापस नहीं किया।"

हिंदू-वचन, याज्ञवल्क्य—"यदि न्यासधारी स्वामी की अनुमति के विना न्यास का उपभोग करे तो वह दंडनीय होगा और उसे न्यस्त वस्तुओं का मूल्य व्याज-सहित देना पड़ेगा।"

सिविल कोड, धारा १९३०—"न्यासकर्ता की स्फुट या सम्मत आज्ञा के विना वह न्यस्त पदार्थ का उपयोग नहीं कर सकता।"

रोमन नीति—"Qin rem depositam, invito domino, sciens prudensque, in usus convertit, etiam furti delicto succedit." जो मनुष्य, स्वामी की सम्मति के विना, पूर्ण ज्ञान और परिणाम-दृष्टि रखते हुए, निक्षेप का उपयोग करता है वह चोरी के अपराध का भी दोषी है।

हिंदू-वचन, याज्ञवल्क्य—जो वस्तु संदूक़ में बंद करके न्यासधारी के हाथ में न्यस्त की गई हो और यह न बताया गया हो कि इसमें क्या वस्तु रक्खी है, उसे उसको विना जाने हुए ही वैसे का वैसा लौटा देना चाहिए।

सिविल कोड, धारा १९३१—"उसे न्यस्त वस्तुओं को जानने की चेष्टा नहीं करनी चाहिए यदि वे बंद डब्बे या मुहर लगे हुए लिफ़ाफ़े में न्यस्त की गई हैं।"

इसी विषय पर मनु और कहता है:—

"मुहर लगाकर बंद किए हुए न्यास की अवस्था में, यदि न्यास-धारी निंदा से बचना चाहता है तो उसे चाहिए कि मुहर को बदले विना ही उसे ज्यों का त्यों न्यासकर्ता को वापस कर दे।"

हिंदू-वचन, मनु—"न्यास को, क्या गुण और क्या परिमाण की दृष्टि से, जैसा लिया था वैसा ही वापस करना पड़ेगा।"

सिविल कोड, धारा १९३२—"न्यासधारी को न्यस्त वस्तु अभिन्न रूप में वापस करनी चाहिए।"

हिंदू-वचन, मनु—"यदि न्यास को चोर ले जायँ, कीड़े खा जायँ, पानी बहा ले जाय, या आग जला दे तो न्यासधारी उसे वापस करने के लिये उत्तरदायी नहीं, जब तक कि यह हानि या ह्रास उसके अपने कर्म का परिणाम न हो।"

सिविल कोड, धारा १९३३—"न्यासधारी न्यस्त वस्तु को केवल उसी रूप में वापस देने के लिये बाध्य है जिसमें कि यह वापसी के समय मिले। इसमें जो ख़राबियाँ उसके दोष से उत्पन्न नहीं हुईं वे सब न्यासकर्ता के ज़िम्मे हैं।"

रोमन-संहिता—"Quod vero senectute contigit, vel morbo, vel vi latronum ereptum est, nihil eorum esse imputandum nisi aliqua culpa interveniat."

"ऐसी वस्तु के विषय में, जिसे यथार्थतः काल ने ख़राब कर दिया हो या जो रोग या लुटेरों के अतिक्रम से या किसी ऐसी ही दूसरी घटना से नष्ट हो गई हो, कहा जा सकता है कि इन दैवी घटनाओं में से किसी के लिये भी, जब तक कोई और दूषणीय बात न हो, उधार लेनेवाले मनुष्य को उत्तरदायी न ठहराना चाहिए।"

हिंदू-वचन, बृहस्पति—"न्यास से न्यासधारी जो भी लाभ उठाए वह उसे उसके साथ वापस दे देना चाहिए।"

सिविल कोड, धारा १९३६—"यदि न्यस्त वस्तु के दिए हुए लाभों को न्यासधारी ने प्राप्त किया हो तो वह उन्हें वापस देने के लिये बाध्य है।"

रोमन नीति—"Hanc actionem bonœ fidei esse dubitari non oportet. Et ides, et fructus in hanc actionem venire, et omnem causam, et partam dicendum est ne nuda res veniat."

"शुभ श्रद्धा के इस काम में संदेह करना ठीक नहीं। और इसी प्रकार हमें कहना चाहिए कि इस अभियोग में, और सारे मुक़द्दमे या इसके एक अंश में, व्याज आता है, ताकि बात छिपी न रहे।"

And in this way, we must say that the interest comes into this suit, and the whole and the part of the case, lest the matter come stripped.

हिंदू-वचन, बृहस्पति—न्यस्त वस्तु उसी को वापस देनी चाहिए जिसने इसे न्यस्त किया था।

सिविल कोड, धारा १८३७—न्यासधारी को चाहिए कि न्यस्त वस्तु उस व्यक्ति के सिवा और किसी को न दे जिसने यह उसके पास न्यस्त की थी।

हिंदू-वचन, मनु—यदि न्यासधारी मृत न्यासकर्ता के उत्तराधिकारी को न्यास वापस दे तो उस पर कोई अभियोग नहीं चल सकता।

सिविल कोड, धारा १६२६—"न्यासकर्ता की नैसर्गिक या नागरिक मृत्यु पर न्यस्त वस्तु केवल उसके उत्तराधिकारी को ही मिल सकती है।"

हिंदू-वचन, मनु—"जिस स्थान में न्यास लिया गया था उसी स्थान पर यह वापस होना चाहिए।"

सिविल कोड, धारा १६४३—यदि ठेके में वापसी के स्थान का कोई उल्लेख न हो तो यह न्यास के स्थान पर वापस होनी चाहिए।

हिंदू-वचन, बृहस्पति—न्यासधारी को न्यास की सावधानी से रक्षा करनी चाहिए, और न्यासकर्ता के पहली बार माँगने पर ही इसे वापस दे देना चाहिए।

सिविल कोड, धारा १६४३—न्यासकर्ता जिस समय माँगे उसी समय उसका न्यास दे देना चाहिए।

रोमन-संहिता—"Est autem apud Julianum... scriptum, eum qui rem deposuit, statim posse depositi actionem agere. Hoc enim ipso dolo facere eum qui suscepit quod reposcenti rem non dot." "परंतु जूलियन लिखता है कि जिस मनुष्य ने कोई वस्तु निक्षेप की है वह निक्षेप के लिये तत्काल कार्यवाही कर सकता है। जिसके पास वह वस्तु रक्खी गई थी यदि वह माँगनेवाले को वापस नहीं लौटाता तो यह ठगी के बराबर है।"

हिंदू-वचन, मनु—"जो मनुष्य न्यास लेकर उसे वापस नहीं करता उसे नीति गर्ह्य बताती है।"

सिविल कोड, धारा १६४५—कपटी और अविश्वासी न्यासधारी को निस्तार-लाभ की आज्ञा नहीं।

क्या इन मिलानों और अध्ययनों को और अधिक काल तक जारी रखने की आवश्यकता है, और क्या प्रमाण को अधिक स्पष्ट करना संभव है, विशेषतः जब कि हम जानते हैं कि इस काल के और हमारे बीच कितने युगों का अंतर है और इन सब बातों में कितने-कितने आवश्यक रूपांतर हो चुके हैं?

ये उपगम सारे धर्म-शास्त्र में किए जा सकते हैं; हम हिंदू धर्म-शास्त्र को निरंतर युक्तिसंगत, दार्शनिक, पूर्ण, और संसार की लिखित नीति को जन्म देने के लिये सब बातों में योग्य पाएँगे।

विक्रय, दान और मृत्यु-पत्र, जिनके स्थूल नियम हम देख चुके हैं,

हमारे सम्मुख विस्तार में वही तर्कसंगत पिता-पुत्र-संबंध, संसर्ग की वही बातें, और अतिसूक्ष्मतर सुबुद्धि द्वारा संस्कृत वही आधार-भित्ति उपस्थित करते हैं।

प्रयोजनीय विषयों पर आधुनिक क़ानूनों का स्रोत हिंदू-नीति ही है। इन क़ानूनों में आचार, जल-वायु और सभ्यता के भेद से यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन हो गए हैं, परंतु ये संबंध को सिद्ध करने का अधिक उत्तम काम देते हैं; प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्थापन भारतीय विधियों ने केवल वहीं भिन्न हैं जहाँ कि नवीन विषयों ने अलंघनीय रीति से दूसरे आईन नियत किए हैं।

स्मृतिकार मनु, जिसका प्रामाण्य निर्विवाद है, ईसवी संवत् से तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले हुआ है; ब्राह्मण लोग तो इसे इससे भी प्राचीनतर मानते हैं।

पूर्वीय कालगणना के पक्ष में प्रायः कैसा प्रधान प्रमाण है और हमारे लिये कैसी शिक्षा है! यह कालगणना हमारी कालगणना (जो कि बाइबिल के ऐतिह्यों पर आश्रित है) से कम हास्यास्पद है और जगत्-निर्माण का एक ऐसा समय स्वीकार करती है जो कि विज्ञान के अधिक अनुरूप है।

अब वह समय नहीं रहा जब कि बाइबिल या अरस्तू के वचन का खंडन करने के कारण सूली पर चढ़ाए जाने अथवा ज़िंदा जला दिया जाने का डर रहता था। परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि माध्यमिक समयों की कार्यनिर्वाह-पद्धति ने हमें मतों और बनी-बनाई धारणाओं का असंख्य समूह दिया है जिससे निकलना हमारे लिये बड़ा ही कठिन है।

विज्ञान ने, पहलेपहल कातरता से, फिर वीरता से, अपने आपको इन सारे पक्षपातों का विध्वंसक बनाने की निष्फल चेष्टा की है, इसकी अग्रगति बड़ी मंद है; जिस प्रकार युवा

हिंदू-वचन, बृहस्पति—न्यासधारी को न्यास की सावधानी से रक्षा करनी चाहिए, और न्यासकर्ता के पहली बार माँगने पर ही इसे वापस दे देना चाहिए।

सिविल कोड, धारा १९४३—न्यासकर्ता जिस समय माँगे उसी समय उसका न्यास दे देना चाहिए।

रोमन-संहिता—"Est autem apud Julianum... scriptum, eum qui rem deposuit, statim posse depositi actionem agere. Hoc enim ipso dolo facere eum qui suscepit quod reposcenti rem non dot." "परंतु जूलियन लिखता है कि जिस मनुष्य ने कोई वस्तु निक्षेप की है वह निक्षेप के लिये तत्काल कार्यवाही कर सकता है। जिसके पास वह वस्तु रक्खी गई थी यदि वह माँगनेवाले को वापस नहीं लौटाता तो यह ठगी के बराबर है।"

हिंदू-वचन, मनु—"जो मनुष्य न्यास लेकर उसे वापस नहीं करता उसे नीति गर्ह्य बताती है।"

सिविल कोड, धारा १९४५—कपटी और अविश्वासी न्यासधारी को निस्तार-लाभ की आज्ञा नहीं।

क्या इन मिलानों और अध्ययनों को और अधिक काल तक जारी रखने की आवश्यकता है, और क्या प्रमाण को अधिक स्पष्ट करना संभव है, विशेषतः जब कि हम जानते हैं कि इस काल के और हमारे बीच कितने युगों का अंतर है और इन सब बातों में कितने-कितने आवश्यक रूपांतर हो चुके हैं?

ये उपगम सारे धर्म-शास्त्र में किए जा सकते हैं; हम हिंदू धर्म-शास्त्र को निरंतर युक्तिसंगत, दार्शनिक, पूर्ण, और संसार की लिखित नीति को जन्म देने के लिये सब बातों में योग्य पाएँगे।

विक्रय, दान और मृत्यु-पत्र, जिनके स्थूल नियम हम देख चुके हैं,

हमारे सम्मुख विस्तार में वही तर्कसंगत पिता-पुत्र-संबंध, संसर्ग की वही बातें, और अतिसूक्ष्मतर सुबुद्धि द्वारा संस्कृत वही आधार-भित्ति उपस्थित करते हैं।

प्रयोजनीय विषयों पर आधुनिक क़ानूनों का स्रोत हिंदू-नीति ही है। इन क़ानूनों में आचार, जल-वायु और सभ्यता के भेद से यत्र-तत्र कुछ परिवर्तन हो गए हैं, परंतु ये संबंध को सिद्ध करने का अधिक उत्तम काम देते हैं; प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्थापन भारतीय विधियों से केवल वहीं भिन्न हैं जहाँ कि नवीन विषयों ने अलंघनीय रीति से दूसरे आईन नियत किए हैं।

स्मृतिकार मनु, जिसका प्रामाण्य निर्विवाद है, ईसवी संवत् से तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले हुआ है; ब्राह्मण लोग तो इसे इससे भी प्राचीनतर मानते हैं।

पूर्वीय कालगणना के पक्ष में प्रायः कैसा प्रधान प्रमाण है और हमारे लिये कैसी शिक्षा है! यह कालगणना हमारी कालगणना (जो कि बाइबिल के ऐतिह्यों पर आश्रित है) से कम हास्यास्पद है और जगत्-निर्माण का एक ऐसा समय स्वीकार करती है जो कि विज्ञान के अधिक अनुरूप है।

अब वह समय नहीं रहा जब कि बाइबिल या अरस्तू के वचन का खंडन करने के कारण सूली पर चढ़ाए जाने अथवा ज़िंदा जला दिया जाने का डर रहता था। परंतु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि माध्यमिक समयों की कार्यनिर्वाह-पद्धति ने हमें मतों और बनी-बनाई धारणाओं का असंख्य समूह दिया है जिससे निकलना हमारे लिये बड़ा ही कठिन है।

विज्ञान ने, पहलेपहल कातरता से, फिर वीरता से, अपने आपको इन सारे पक्षपातों का विध्वंसक बनाने की निष्फल चेष्टा की है, इसकी अग्रगति बड़ी मंद है; जिस प्रकार युवा

मनुष्य माता की गोद में सुनी हुई कथाओं को भुला देने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार पश्चिमी जातियाँ अतीत काल की विशेष कहानियों को छोड़ देने में अशक्त हैं; और साथ ही यह भी मानना पड़ता है कि वे उन्हें स्वीकार करने में भी वैसी ही असमर्थ हैं।

कई ऐसे मत हैं जिन पर समाज में खुला विचार होता है, परंतु जिनमें विवेकपूर्ण परीक्षा के उपरांत विश्वास रखते लज्जा लगती है; क्योंकि जब मनुष्य मन-ही-मन विचार करता है तो वह अपने दृढ़ प्रत्यय के लिये गंभीर युक्तियाँ माँगता है।

यदि सर्व साधारण में आंदोलन या विचार किया जाय तो सैकड़ों शब्द उठने लगते हैं। "इस विषय को मत छेड़िए" यह चारों ओर से सुनाई देने लगता है। पर क्यों? किस कारण? इसका सम्मान करो, उसका आदर करो! किसलिये करो? हमारे अंदर पुरानी बातों के लिये प्रेम है, और पुराने स्वभावों को बदलते दुःख होता है। उदाहरणार्थ, यदि कोई मनुष्य यह कह बैठे कि जो कालगणना जगत् की रचना को केवल छः सहस्त्र वर्ष की ही बताती है वह असंगत और निरर्थक है, तो कई व्यक्ति उसके विरुद्ध कितना तूफ़ान उठाएँगे, और उसके गले पर छुरी रखकर उससे गणित-संबंधी युक्तियाँ माँगेंगे, किंतु वे केवल कहानियों और पवित्र पुस्तकों का विरोध करना यथार्थ समझते हैं!

हमें पहले इन भीरु विश्रंभों के भार से मुक्त हो जाना चाहिए तब हम इस बात को समझ सकेंगे कि कल के उत्पन्न हुए अभिज्ञान के प्रकाश से सभिमान जगत् की उत्पत्ति को स्थिर करना सबसे पीछे आनेवाले हम पश्चिमी लोगों का काम नहीं, और न ही हमें, इस प्रकार, लेखनी की एक चोट से उन पूर्वीय लोगों की सभ्यता और इतिहास को मिटा देना चाहिए जो इस भूतल पर हमसे कई

सहस्र वर्ष पूर्व के हैं। इससे अधिक न्यायसंगत होने से इन लोगों ने, जो अपने पुरातत्त्व के साथ संतुष्ट रहे होंगे, अपने आपको दूसरे लोगों की संतान स्वीकार किया जो उनके पूर्ववर्ती थे, और जो ऐसे जलप्लावनों के बार-बार होने से विलुप्त हो गए जिनका सभी वर्तमान जातियों में अभिज्ञान बना हुआ है।

जो हो, समाज, परिवार और संपत्ति की व्यवस्था करनेवाले इन प्रशंसनीय आईनों पर विचार करने से, जो, एक शब्द में, अतीव उत्कृष्ट सभ्यता को दिखलाते हैं, हमें यह बात माननी पड़ती है कि हमारी तरह ही हिंदू इस सभ्यता का एक ही दिन में संपादन नहीं कर सके; इसको सिद्ध करने के लिये कई युगों की आवश्यकता हुई होगी।

कुछ शताब्दियों में ही प्राचीन और अर्वाचीन जातियाँ इस अवस्था में आ पहुँची हैं। पूर्वीय प्रकाश को धन्यवाद है जिसने उनका पथप्रदर्शन किया और उनके लिये गर्भ में रहने की अवधि को संक्षिप्त कर दिया। परंतु पूर्वी लोगों के विचारों को स्वीकार कर लेने पर भी कि उनके मार्ग को प्रकाशित करने के लिये उनके भी पहले और लोग थे, उन्हें ऐसी सभ्य अवस्था तक पहुँचने के लिये कितना अधिक दीर्घ समय लगा होगा?

इन सापेक्ष अध्ययनों में जितना अधिक मैं अग्रसर होता हूँ उतना ही मुझे यह अधिक स्पष्ट होता जाता है कि समस्त जातियाँ और सभ्यताएँ अपने पूर्ववर्ती लोगों से उसी प्रकार नियत रूप से उत्पन्न हुई हैं जिस प्रकार कि पुत्र पिता से उत्पन्न होते हैं, जैसे शृंखला की निचली कड़ियाँ अपने से ऊपर की कड़ियों से लटकी होती हैं; यह पिता-पुत्र-संबंध कितना ही अस्पष्ट क्यों न हो, पक्षपात को छोड़कर धैर्य से खोज करने पर उन जोड़नेवाली कड़ियों को पुनः एक दूसरे के साथ संबद्ध करना कोई कठिन नहीं।

निस्संदेह यहाँ कोई भी ऐसा नवीन विचार नहीं जिसके गुणों

का आदर किया जाय। आधुनिक इतिहास अपने जन्म-स्थान का अनुमान पहले ही कर चुका है और उन मध्यकालीन उत्तरदानों के विरुद्ध यत्न कर रहा है जिन्होंने कि, विचार-शक्ति को वश में कर लेने से, अतीत काल के अधिक स्वतंत्र और अधिक न्याय-संगत ज्ञान की ओर बुद्धि के उत्कर्ष को इतनी देर तक रोके रक्खा है।

अब हिंदू दर्शन और हिंदू धर्म के विषय में, जो कि वेद अर्थात् पवित्र धर्म-ग्रंथों पर आश्रित हैं, कुछ शब्द लिखे जाते हैं।

प्रामाण्य की दृष्टि से, यह बात निर्विवाद है कि वेद प्राचीनतम ग्रंथों से भी पहले के हैं। इन पवित्र पुस्तकों का, जिनमें ब्राह्मणों के मतानुसार ईश्वरीय ज्ञान भरा पड़ा है, फ़ारस, एशिया माइनर, मिस्र, और योरप को आबाद करने या वहाँ उपनिवेश बसाने के भी बहुत समय पहले भारत में सम्मान होता था।

पूर्वीय भाषाओं का प्रसिद्ध पंडित, सर विलियम जोंस कहता है कि "हम वेदों को अतीव प्राचीन मानने से इनकार नहीं कर सकते।" परंतु उनकी रचना किस युग में हुई थी? उनका रचयिता कौन था? हम चाहे अतीव पुरातन समयों की ओर लौटें, मानव-जाति के अतीव प्राचीन लेखों से पूछताछ करें फिर भी इन प्रश्नों को हल करना असंभव है; इस विषय पर सब चुप हैं। कुछ लेखक उनकी रचना जल-प्रलय के उपरांत के प्रथम युगों की मानते हैं; परंतु, ब्राह्मणों के मतानुसार, वे सृष्टि के भी पहले के हैं; सामवेद कहता है कि वे उसकी आत्मा के बने हुए हैं जो स्वयंभू है।

वेद संख्या में चार हैं—ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। इन पुस्तकों के केवल थोड़े से खंड ही अनुवादित होकर विद्वानों को अवगत हुए हैं। शीघ्र ही, कलकत्ता की रायल एशियाटिक सोसायटी के परिश्रम से, एक अँगरेज़ी भाषांतर प्रकाशित होनेवाला है, जिससे इनका समुच्चय रूप में अध्ययन हो सकेगा। हिंदू दर्शन

आस्तिक और नास्तिक दो पद्धतियों में विभक्त है। आस्तिक दर्शन, या ब्राह्म धर्म-विज्ञान, के सबसे विश्रुत रचयिताओं में से जैमिनि और ऋषि द्वैपायन व्यास प्रथम श्रेणी में प्रतीत होते हैं—शेषोक्त को प्रायः वेदव्यास नाम से पुकारा जाता है, क्योंकि कहते हैं कि उसने चारों वेदों के बिखरे हुए पृष्ठों को इकट्ठा किया था।

जैमिनि संन्यासी था। वह पीले वस्त्र पहनता और हाथ में दंड और कमंडलु रखता था। ऐसा प्रतीत होता है कि व्यास ने इस जगत् के पदार्थों के लिये अधिक त्याग किया था, और भारत में उसकी प्रसिद्धि जितनी तत्त्ववेत्ता रूप में थी कवि रूप में भी उससे कुछ कम न थी। सर विलियम जोंस उसका बड़े भक्तिभाव से उल्लेख करता है।

इन दो लेखकों ने भारत के पांडित्य-विषयक दर्शन का पालन और रक्षण किया है। इनकी पुस्तकें प्राप्य हैं। जैमिनि की पुस्तक का नाम पूर्व मीमांसा, और व्यास की पुस्तक का नाम उत्तर मीमांसा या वेदांत है।

उनका उद्देश्य केवल वेदों की व्याख्या और उनके अर्थों का निश्चय करना ही नहीं, किन्तु जैमिनि धर्माधर्म-विवेक का भी वर्णन करता है; व्यास के ग्रंथ में अरस्तू के सदृश तर्क हैं। इसके साथ ही मनोविज्ञान है जिसमें लेखक ने संदेहवाद और भावप्रधानवाद को इतना बढ़ाया है कि वह भौतिक जगत् के अस्तित्व से इनकार की सीमा तक पहुँच गया है।

यह सर्वथा पिर्हो (Pyrrho) की पद्धति है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह दार्शनिक, जिसने भारत में भ्रमण किया था, ब्राह्मणों के साथ मेल मिलाप से स्वदेश को यह सिद्धांत ले गया था कि परमेश्वर के अतिरिक्त और सब माया है।

इसके अतिरिक्त पूर्व मीमांसा समोस (Samos) के तत्त्ववेत्ता

में बदल देने का यत्न किया है। गुंजायश बहुत है, प्रत्येक काल के बीच कई सहस्र वर्ष आ गए होंगे; यह विचार पूर्व के विचार के साथ आलिंगन करता है। किंतु कानों को भली भाँति खोलकर सुनो तो तुम्हें अतीत काल के पक्षपाती नर-रत्नों की इस अग्रवर्ती सेना पर सब ओर से निंदा की बौछार करते और अपने झाड़ू के साथ इसे कीचड़ से भरते सुनाई देंगे।

यदि हमें हिंदुओं के सदृश धर्मभ्रष्ट और निर्बोध बनकर अपना अंत कर लेना पसंद नहीं तो हमें पुरोहित शाही (Utramontanism) से बचते रहना चाहिए।

केवल शास्त्र ही इतनी पुरानी पुस्तकें नहीं, हिंदू दार्शनिकों के मतानुसार, मनु का धर्म-शास्त्र भी कृत-युग अर्थात् प्रथम युग में बना था। सूर्यसिद्धांत कई लाख वर्ष पीछे की गिनती करता है। इस विषय में, शास्त्रों के अनुवादक हालहेड (Halhed) महाशय कहते हैं कि निर्विवाद प्रामाण्य के पुरावृत्त हमें जैसे प्राचीन ब्राह्मणों से मिले हैं वैसे किसी दूसरी जाति के पास नहीं हैं। अपनी प्रतिज्ञा की पुष्टि में वह एक ऐसी पुस्तक का उल्लेख करता है जो ४००० से भी अधिक वर्षों की लिखी हुई है और कई करोड़ वर्षों के मनुष्यों का भूतापेक्षक इतिहास देती है।

हिंदुओं के लिये इस कालगणना में कुछ भी अत्युक्ति नहीं; इसके विपरीत, न्यायसंगत रीति से यह उनके विश्वास के साथ एकतान है, क्योंकि वे प्रकृति को परमेश्वर के साथ अनादि मानते हैं।

किस जाति ने इनसे बढ़कर आदर्शों की कल्पना की है, प्रश्नों का आंदोलन किया है, या समस्याओं पर विचार किया है? विचार के विकास और विज्ञान की उन्नतिशील अग्रगति ने हमसे इतना समय पहले के इन लोगों की दार्शनिक कल्पनाओं के मूल्य को कुछ भी कम नहीं किया।

व्यवस्थापन, सदाचार, वेदांत, मनोविज्ञान इन सबके वे पंडित थे—इन सबकी उन्होंने थाह ले ली थी।

जब हम उनके साहित्य के स्मृति चिह्नों को खोजते हैं, जब हम उन विस्तृत दार्शनिक भांडारों को खोलते हैं जहाँ से, चारों ओर, वे प्राक्कालिक ज्योतियाँ फैलती हैं, जो एक उच्च सभ्यता की साक्षी देती हैं, तब हम परमेश्वर की उस उत्तुंग मूर्त्ति को देखकर आश्चर्य-चकित हो जाते हैं जिसको कि कवि, ऐतिहासिक, व्यवस्थापक, और दार्शनिक लोग, उसकी आसन्न विधि में अपने विश्वास का प्रतिपादन करते हुए, मनुष्यों के नेत्रों के सम्मुख रखने से बाज़ नहीं आते।

वे लोग जब तक पहले अपनी आत्मा को ईश्वर-परायण न कर लें और भगवान् को कृतज्ञ हृदयों की स्निग्ध भक्ति का नैवेद्य न चढ़ा लें तब तक कभी कोई कार्य आरंभ नहीं करते। इन ऋषियों के सिद्धांतों, कल्पनाओं, और उच्च भावनाओं को देखकर उनके विश्वास और श्रद्धा के लिये हमारे अंदर अत्यंत गंभीर प्रशंसा का भाव उत्पन्न होता है।

सामवेद कहता है कि "यह गंगा जो बह रही है, यह परमात्मा है; यह समुद्र जो गरज रहा है, यह परमात्मा है; पवन जो चल रहा है, यह परमात्मा है; बादल जो गरजता है, बिजली जो चमकती है, यह वही परमेश्वर है; जिस प्रकार अनंतकाल से जगत् ब्रह्म की आत्मा में था, उसी प्रकार आज भी जो कुछ वर्तमान है उसी की प्रतिच्छाया है।"

मनु, अपने शिष्य महर्षियों पर अपने अनश्वर नियमों का प्रकाश करने के लिये भृगु को बुला भेजने के पहले उन्हें ईश्वर के गुणों और सृष्टि के रहस्यों की व्याख्या समझाता है। उसी प्रकार, महाभारत का रचयिता, ओजस्विनी भाषा में, कुमारी देवनगनी के दिव्य

पुत्र के मुख से, विस्मित अर्जुन को हिंदू-ईश्वरवाद के सभी उच्च विचारों का उद्घाटन कराता है। और पूर्वोल्लिखित शास्त्र पाठकों को एकदम श्रेष्ठतर बुद्धि अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराते हैं जिसने कि अपनी अनंत शक्ति से सब की सृष्टि और व्यवस्था की है।

परंतु व्यग्र श्रद्धा, और संदेह-रहित विश्वास के इन युगों के उपरांत शीघ्र ही शुद्ध तर्क की उपासना आरंभ हो गई! इस तर्क ने प्राचीन ईश्वरीय ज्ञान को रद्द तो नहीं किया किंतु यह उसे विचार-स्वातंत्र्य की कुठाली में शुद्ध करके ग्रहण करने लगा।

इस स्वातंत्र्य से भिन्न-भिन्न प्रणालियों का उत्पन्न होना आवश्यक ही था; अध्यात्मवादियों के साथ-साथ संशयात्मक लोग भी प्रकट हो गए, जिनकी कल्पनाओं को प्राचीन पिर्होनिन लोगों (Pyrrhoniens) ने पुनर्जीवित किया था, और जिनको हमारे समय में मोंटेन (Montongne) और कांट (Kant) के शिष्यों ने ताज़ा किया है—परंतु इन पिछले लोगों ने एक भी नवीन युक्ति की वृद्धि नहीं की।

सांख्य-दर्शन, जिसका कर्ता कपिल हुआ है, यथारीति जगत् को परमेश्वर का बनाया हुआ नहीं मानता; वह कहता है जगत् को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं; इसके अतिरिक्त यह न इंद्रियों द्वारा न तर्क ही द्वारा, अर्थात्, न उपलब्धि से और न व्याप्ति से जो कि सत्य के तीन लक्षणों में से दो हैं, और जिनके द्वारा, इस दर्शन के मतानुसार, हमें पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है, सिद्ध होता है। क्योंकि कारण और कार्य की धातु एक ही होती है इसलिये यह परिणाम निकलता है कि जिस वस्तु का अभाव है, उसका भाव, कारण की किसी भी संभव क्रिया से, नहीं हो सकता।

यह युक्ति ल्यूसिप्पस (Leucippus), लुक्रीशियस (Lucretius), इत्यादि, की दी हुई युक्ति के समान है कि उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि परमेश्वर जगत् को किसी वस्तु से बनाए, क्योंकि नास्ति से किसी वस्तु का निकालना संभव नहीं।

फिर भी कपिल ने प्रकृति में एक सहज आकारद शक्ति, उसी से निकलनेवाली एक सत्ता मानी है, जो कि प्रकृति का विशेष गुण है, और सारे व्यक्तिगत ज्ञान का स्रोत है।

निर्मायक गुण और विनाशक गुण की विरोधकारिणी क्रियाओं से कार्यकारिणी शक्ति, या गति, उत्पन्न होती है। फिर इसके अपने तीन गुण हैं; पहला आकारद; दूसरा अपसारक; तीसरा तंद्रिल।

ऐसी ही सूक्ष्मताओं में पूर्वीय कल्पना-शक्ति, उन प्राचीन समयों में, क्रीड़ा किया करती थी।

इन तीन गुणों या प्रकृति के अवियोज्य धर्मों की, जो सर्वभूतों में तत्त्वतः व्याप्त हैं, हिंदू तत्त्ववेत्ताओं ने भारी श्रम के साथ परीक्षा की है। गौतम अपने सांख्यदर्शन में कहता है कि ये प्रकृति के केवल आहार्य धर्म ही नहीं, किंतु ये उसका सार हैं और उसकी रचना में घुसे हुए हैं।

पहला अशेष पुण्य की उपस्थिति और पाप का सर्वथा अभाव है।

अंतिम पुण्य का सर्वथा अभाव, और अशेष पाप की उपस्थिति है। मध्यवर्ती गुण में दोनों के अंश हैं।

हम यह बता देना चाहते हैं कि शास्त्रों का यह सिद्धांत बड़ी अद्भुत रीति से प्राक्काल के अनेक दार्शनिकों की पद्धति से मिलता है। एंपीडोक्लीस चार तत्त्वों को सारे पदार्थों का आदि कारण मानता था; परंतु साथ ही वह संवाद और विसंवाद के नियम को भी स्वीकार करता था।

पुत्र के मुख से, विस्मित अर्जुन को हिंदू-ईश्वरवाद के सभी उच्च विचारों का उद्घाटन कराता है। और पूर्वोल्लिखित शास्त्र पाठकों को एकदम श्रेष्ठतर बुद्धि अर्थात् परमेश्वर का ज्ञान कराते हैं जिसने कि अपनी अनंत शक्ति से सब की सृष्टि और व्यवस्था की है।

परंतु व्यग्र श्रद्धा, और संदेह-रहित विश्वास के इन युगों के उपरांत शीघ्र ही शुद्ध तर्क की उपासना आरंभ हो गई! इस तर्क ने प्राचीन ईश्वरीय ज्ञान को रद्द तो नहीं किया किंतु वह उसे विचार-स्वातंत्र्य की कुठाली में शुद्ध करके ग्रहण करने लगा।

इस स्वातंत्र्य से भिन्न-भिन्न प्रणालियों का उत्पन्न होना आवश्यक ही था; अध्यात्मवादियों के साथ-साथ संशयात्मक लोग भी प्रकट हो गए, जिनकी कल्पनाओं को प्राचीन पिर्रहोनिन लोगों (Pyrrho niens) ने पुनर्जीवित किया था, और जिनको हमारे समय में मोंटेन (Montongne) और कांट (Kant) के शिष्यों ने ताज़ा किया है—परंतु इन पिछले लोगों ने एक भी नवीन युक्ति की वृद्धि नहीं की।

सांख्य-दर्शन, जिसका कर्ता कपिल हुआ है, यथारीति जगत् को परमेश्वर का बनाया हुआ नहीं मानता; वह कहता है जगत् को उत्पन्न करनेवाले परमात्मा के अस्तित्व का कोई प्रमाण नहीं; इसके अतिरिक्त यह न इंद्रियों द्वारा न तर्क ही द्वारा, अर्थात्, न उपलब्धि से और न व्याप्ति से जो कि सत्य के तीन लक्षणों में से दो हैं, और जिनके द्वारा, इस दर्शन के मतानुसार, हमें पदार्थों का ज्ञान प्राप्त होता है, सिद्ध होता है। क्योंकि कारण और कार्य की धातु एक ही होती है इसलिये यह परिणाम निकलता है कि जिस वस्तु का अभाव है, उसका भाव, कारण की किसी भी संभव क्रिया से, नहीं हो सकता।

यह युक्ति ल्यूसिप्पस (Leucippus), लुक्रीशियस (Lucretius), इत्यादि, की दी हुई युक्ति के समान है कि उत्पन्न करने के लिये यह आवश्यक है कि परमेश्वर जगत् को किसी वस्तु से बनाए, क्योंकि नास्ति से किसी वस्तु का निकालना संभव नहीं।

फिर भी कपिल ने प्रकृति में एक सहज आकारद शक्ति, उसी से निकलनेवाली एक सत्ता मानी है, जो कि प्रकृति का विशेष गुण है, और सारे व्यक्तिगत ज्ञान का स्रोत है।

निर्मायक गुण और विनाशक गुण की विरोधकारिणी क्रियाओं से कार्यकारिणी शक्ति, या गति, उत्पन्न होती है। फिर इसके अपने तीन गुण हैं; पहला आकारद; दूसरा अपसारक; तीसरा तंद्रिल।

ऐसी ही सूक्ष्मताओं में पूर्वीय कल्पना-शक्ति, उन प्राचीन समयों में, क्रीड़ा किया करती थी।

इन तीन गुणों या प्रकृति के अवियोज्य धर्मों की, जो सर्वभूतों में तत्त्वतः व्याप्त हैं, हिंदू तत्त्ववेत्ताओं ने भारी श्रम के साथ परीक्षा की है। गौतम अपने सांख्यदर्शन में कहता है कि ये प्रकृति के केवल आहार्य धर्म ही नहीं, किंतु ये उसका सार हैं और उसकी रचना में घुसे हुए हैं।

पहला अशेष पुण्य की उपस्थिति और पाप का सर्वथा अभाव है।

अंतिम पुण्य का सर्वथा अभाव, और अशेष पाप की उपस्थिति है। मध्यवर्ती गुण में दोनों के अंश हैं।

हम यह बता देना चाहते हैं कि शास्त्रों का यह सिद्धांत बड़ी अद्भुत रीति से प्राक्काल के अनेक दार्शनिकों की पद्धति से मिलता है। एंपीडोक्लीस चार तत्त्वों को सारे पदार्थों का आदि कारण मानता था; परंतु साथ ही वह संवाद और विसंवाद के नियम को भी स्वीकार करता था।

अफ़लातूँ की शिक्षा थी कि देवताओं में प्रेम सबसे अधिक बलवान् है, सच्चा विधाता * है, और भूत-प्रलय से उत्पन्न हुआ है।

स्टॉइक्स लोग (Stoics) चार तत्त्वों को उत्पन्न करनेवाली एक अनुपम वस्तु का समाश्रय लेते थे, और स्टगाईरा (Stagyra) का तत्त्ववेत्ता एक पाँचवाँ तत्त्व मानता था जिससे वह आत्मा की उत्पत्ति बताता था।

शास्त्रों के मतानुसार, शक्ति या गतिशीलता काल और पुण्य के संयोग से प्रकृति, अर्थात् महाभूत उत्पन्न करती है ; और प्रकृति में विरोधी धाराओं के क्षोभ ने वह सूक्ष्म, दिव्य और तेजोमय तत्त्व उत्पन्न किया है जिसे आकाश कहते हैं—जो अंतरिक्ष में फैला हुआ एक निर्मल, विद्युन्मय, जीवनप्रद रस है।

इस प्रकार प्रीति विश्व-माता है, जगत् का आदि कारण और प्रधान जननी है।

निश्चल, अगोचर और अंधकार में ढके हुए ब्रह्म की स्त्री के रूप में, जैसा कि महाभारत में बताया गया है, यह भवानी है।

निश्चलता को छोड़कर क्रिया में प्रवृत्त होनेवाले, प्रकृति में जीवन का संचार करनेवाले और सृष्टि द्वारा अपने आपको व्यक्त करनेवाले ब्रह्मा की स्त्री के रूप में यह ब्राह्मी है। रक्षक और उद्धारक विष्णु की स्त्री के रूप में यह लक्ष्मी है। विनाशक और पुनरुत्पादक शिव के रूप में यह पार्वती है।

वेद बताते हैं कि ब्रह्मा ने सृष्टि को रचने या उत्पन्न करने के उद्देश से सृष्टि के निमित्त अपना बलिदान कर दिया। परमेश्वर ने हमारे उद्धार और पुनरुदय के लिये न केवल अवतार धारण किया और कष्ट उठाया, प्रत्युत उसने हमें अस्तित्व प्रदान करने के लिये अपने आपको भी बलिदान कर दिया।

---

* "Ante Deos et omnes, primum generavit amorem."

डी हंबोल्ट (M. de Humboldt) कहता है कि "यह कितना श्रेष्ठ विचार है, जिसका वर्णन हम प्राक्काल की सभी पवित्र पुस्तकों में पाते हैं।"

पवित्र पुस्तकों में यह इस प्रकार प्रकट किया गया है—

"ब्रह्म आप ही याजक और आप ही बलि है, इसलिये जो पुरोहित प्रतिदिन सबेरे सर्वमेध, अर्थात् सार्वत्रिक यज्ञ, जो कि सृष्टि का चिह्न है, कराता है, वह परमेश्वर को नैवेद्य चढ़ाने के कारण अपने आपको दिव्य याजक ही, जो कि ब्रह्म है, समझने लगता है। अथवा ब्रह्म ही अपने पुत्र कृष्ण के रूप में बलि होने, हमारी मुक्ति के लिये इस पृथ्वी पर मरने आया था, और वही आप विधि-पूर्वक यज्ञ को संपूर्ण करता है।"

ये अंतिम पंक्तियाँ विचित्र और सूक्ष्म तुलना की बातें उपस्थित करती हैं; परंतु मैं इस विषय को, एक विशेष अध्याय में, प्रमाणपूर्ण हाथों के साथ स्पर्श करूँगा, और एक ऐसी स्वतंत्र आत्मा की समदर्शिता के साथ इसका वर्णन करूँगा जो निंदा की कुछ परवाह न करती हुई केवल वैज्ञानिक सत्यताओं का अन्वेषण करती है।

जब लोकों के शासक, परमेश्वर, ने पृथ्वी को उत्कृष्ट पुष्पों से सुसज्जित, गोप्रचारों और खेतों को तरु-लता आदि से आवृत, और यौवन तथा जीवनशक्ति से जाज्वल्यमान प्रकृति को भूमंडल पर अपने ख़ज़ाने बखेरती देखा तब उसने पवित्र आत्मा, शब्द, अर्थात् अपनी प्रथम संतान को भेजा, जिसने मनुष्य और पशुओं की सृष्टि आरंभ की।

शास्त्र कहते हैं कि परमेश्वर ने अपने आपको अनंत प्रकार के रूपों और बहुसंख्यक इंद्रियों से संपन्न किया—उस सर्वशक्तिमत् शक्ति को, उस सर्वश्रेष्ठ बुद्धि की आश्चर्यजनक मूर्ति को उपस्थित किया, जिसकी कल्पना कोई आत्मा नहीं कर सकती, और जिसके

विस्तार का माप और जिसकी गहराई की थाह कोई मनुष्य नहीं ले सकता है।

मनुष्य को परमेश्वर ने छूने, देखने, सूँघने, चखने और सुनने की पाँच इंद्रियाँ और छठा मनस्, जिसे सब हिंदू दार्शनिकों ने माना है और जो स्त्री और पुरुष के संयोग में कर्ता है, प्रदान किया।

बुद्ध एक संस्कारक हुआ है। वह ब्राह्मणों के ईश्वरकर्तृक शासन-संबंधी अधिकार का लूथर था। उसके सिद्धांत उत्तर एशिया, तुर्किस्तान, चीन, यहाँ तक कि जापान तक फैले थे। उसके अनुयायी छठी इंद्रिय को और पाँचवें तत्त्व को नहीं स्वीकार करते हैं—जिन अनेक बातों में उनका शास्त्रविश्वासी लोगों से मतभेद है उनमें से एक यह भी है।

सांख्यदर्शन इसका लक्षण इस प्रकार करता है, "संपर्क से एक इंद्रिय जिसमें दूसरों के भी विशेष गुण मिले हैं, और जो अनुभव और क्रिया दोनों का एक ही समय में काम देती है।"

हमें विदित है कि अरस्तू भी छठी इंद्रिय को स्वीकार करता था।

पशुओं की आत्माओं के विषय में प्राचीन लोगों का मतभेद था; अफ़लातूँ के अनुयायी उनमें विवेक और बुद्धि मानते थे, परंतु मनुष्य से कुछ दर्जे कम पेरीपेटिट के अनुयायी (Peripatetics) उनमें केवल अनुभव ही स्वीकार करते थे।

शास्त्र न केवल मनुष्य को ही स्वर्ग में अमरता का वचन देते हैं, प्रत्युत पशुओं को भी आत्मा की अमरता और भावी जीवन में अस्तित्व का उच्च स्वर से अधिकारी बताते हैं। अतएव, निस्संदेह, पुनर्जन्म का सिद्धांत, भारत से, जहाँ कि इसकी पहले पहल कल्पना हुई, एशिया के शेष देशों और यूनान में फैल गया।

ये पुस्तकें व्यक्तिगत आत्माओं को विश्व ब्रह्मांड की सर्वश्रेष्ठ

आत्मा के उद्भव, अथवा दिव्य तत्त्व का अंश समझती हैं ;—विश्लेष के समय वे पुनः ईश्वर के हृदय में लीन हो जाती हैं, जिस प्रकार रेत पर पड़नेवाले वृष्टि-कण अनंत सागर में लौट आते हैं, या, वेदों की सुंदर उपमा का प्रयोग करते हुए, "वे ऐसी चिंगारियाँ हैं जो उसी अमर केंद्र की ओर लौट आती हैं जहाँ से कि वे निकली थीं।"

केवल उन्हीं की आत्माएँ, नश्वर शरीर को छोड़ने के उपरांत, परमात्मा के साथ पुनः संयुक्त होती हैं जिनके हृदय और हाथ पाप और अपराध के कीच से मैले नहीं हुए। इस ईश्वर-मिलाप में व्यक्तित्व का भाव व्यापक परमानंद में लुप्त हो जाता है। पापी लोगों की आत्माएँ नरक में अपने अपराधों का दंड भोग चुकने के उपरांत, अनेक वार जन्म ग्रहण करती हैं, और अपने पापों से शुद्ध होने के पश्चात् ही ब्रह्म के आध्यात्मिक स्वरूप में पुनः प्रविष्ट होती हैं।

वेदांत कहता है कि जो आत्मा किसी नवीन देह में जीवन डालने के लिये वापस आती है उसका पहला आकार जाता रहता है, और उस वर्षा-कण के सदृश जो अपने नीचे के पेड़ को वल और जीवन प्रदान करने के लिये वायु में से गुज़रता है, यह उस भ्रूण-जंतु में प्रवेश करती है जिसको जीवित करने के लिये यह आती है। हम देखते हैं कि हिंदू दार्शनिक, जैसा कि हमें भी तर्क से मालूम होता है, दंड की नित्यता के सिद्धांत को नहीं मानते; अपराध, चाहे कैसा ही हो, क्रमिक जन्मों से पृथक्, दंड के द्वारा उसकी निष्कृति हो जानी आवश्यक है, यहाँ तक कि संशोधित आत्मा उस परमेश्वर के पुनः मिलाप से, जो सर्वत्र अखंड रूप से व्यापक है और अपनी अलक्ष्य शक्ति से कार्य कर रहा है, अर्थात् जो विश्वात्मा है, परमानंद की पात्र समझी जाय।

आत्मा के अदृष्ट और भावी जीवन के विषय में अफ़लातूँ के भी यही विचार थे। वह समझता था कि आत्मा सर्वश्रेष्ठ बुद्धि

(परमात्मा) से निकली हुई एक किरण है और वह उसी में वापस चली जायगी। ब्रह्म में लीन होने के लिये आत्मा का पवित्र होना आवश्यक है, अपवित्र आत्मा विश्वात्मा में विलीन नहीं हो सकती। अफ़लातूँ के ये विचार पूर्वी सिद्धांतों की ठीक प्रतिध्वनि हैं।

इस थोड़े से वर्णन से यह परिणाम निकाला जा सकता है कि यूनान के प्रसिद्ध पुरुषों द्वारा स्वीकृत सिद्धांतों में प्रत्येक पग पर हिंदू तत्त्व-ज्ञान के जो चिह्न प्रकट होते हैं वे इस बात को प्रचुरता से प्रमाणित करते हैं कि उनका विज्ञान पूर्व से आया था, और उनमें से अनेकों ने, निस्संदेह, ज्ञान के प्राथमिक निर्भर से पेट भरकर ज्ञानामृत पान किया था।

भारतवर्ष ने सारे संसार पर, और विशिष्ट प्रकार से प्राक्काल पर, अपनी भाषा, अपनी व्यवस्था और अपने तत्त्वज्ञान के द्वारा जो अखंडनीय प्रभाव डाला है क्या उसको इससे अधिक स्पष्ट रीति से बताना संभव है? ऐसे सादृश्यों, प्रत्युत मैं कहता हूँ, ऐसे प्रतिरूपों की उपस्थिति में इस बात की पुष्टि का साहस करने के लिये इनकार की विशेष रूप से बलवती और बुद्धिहीन शक्तियों का प्रयोजन है कि यूनान और रोम ने भारत से कुछ नहीं लिया, और उनकी जिस सभ्यता का ज्ञान हमें है, वह उन्होंने अपने उपक्रम, अपने उद्यम और अपने ही बुद्धि-प्रभाव से प्राप्त की थी।

हम यह शीघ्र ही मान लेते हैं कि रोम को यूनान ने, और यूनान को एशिया माइनर और मिसर ने ज्ञान-दान दिया था; फिर, विशेषतः हमारे दिए प्रबल प्रमाणों के उपरांत उसी न्याय-संगत युक्ति को क्यों नहीं जारी रखते, और भारत को प्राचीन जातियों का गुरु क्यों नहीं स्वीकार करते? इसमें न विरोधाभास है और न चतुर अव्यवहार्य कल्पना ही, किंतु इसमें सच्चाई-मात्र है जो उन्नति कर रही है, जिसको पूर्वीय भाषाओं के सभी बड़े-बड़े पंडितों

ने चिरकाल से स्वीकार कर लिया है, और जिसे, हम समझते हैं, केवल एक विशेष पक्ष के मनुष्य ही अस्वीकार करेंगे, क्योंकि यह सब जातियों के धर्म-संबंधी ईश्वरीय प्रत्यादेशों और ऐतिह्यों की उत्पत्ति के एक होने के विषय में एक अति प्रबल युक्ति है।

यदि भारत वस्तुतः गौर जाति का जन्म-स्थान है, अफ़्रीक़ा तथा योरप के एक भाग में, और एशिया में बसनेवाले भिन्न-भिन्न लोगों की माता है; यदि इस माता-पुत्र-संबंध के प्रमाण में हम, क्या प्राचीन कालों में और क्या आधुनिक कालों में, इस उत्पत्ति के अमिट चिह्न पाते हैं जो हमें उसकी भाषा, उसकी व्यवस्था, उसके साहित्य और उसके दर्शन तथा नीति-शास्त्रों में मिले हैं, तो क्या यह बात स्पष्ट नहीं हो जाती कि धर्म-ऐतिह्य भी, काल के हाथ और स्वतंत्र चिंता की क्रिया से रूपांतरित होकर, अवश्यमेव वहीं से आए हैं? कारण यह है कि ये ऐसी अनुचिंताएँ हैं जिनकी प्रवासी लोग बड़ी उत्सुकता के साथ रक्षा करते हैं, उनको नवीन और प्राचीन देश के बीच ऐसी पवित्र भूमि समझते हैं जहाँ कि उन पूर्वजों की अस्थियाँ गड़ी हैं जिनके दर्शन उनको फिर न होंगे।

दूसरा अध्याय

मनु—मेनस (Manes)—मिनोस (Minos)—मूसा ।

एक तत्त्वदर्शी ने भारत को राजनीतिक और धार्मिक संस्थाएँ दी हैं, और उसका नाम मनु है।

मिसर के व्यवस्थापक का नाम मेनस है।

एक क्रेटा निवासी संस्थाओं का अध्ययन करने मिसर में आया। वह इनका प्रचार स्वदेश में करना चाहता था। इतिहास में उसकी स्मृति मिनोस नाम से सुरक्षित है।

अंततः इवरानियों की नीचाशय जाति का उद्धारक एक नवीन समाज की स्थापना करता है, और मूसा नाम पाता है।

मनु, मेनस, मिनोस, मूसा—ये चार नाम संपूर्ण प्राचीन जगत् को ढाँपे हुए हैं, वे चार भिन्न-भिन्न जातियों के जन्म-स्थानों में वही निर्दिष्ट कार्य करने के लिये प्रकट होते हैं, एक ही गुह्य दीप्तिमाला से घिरे हुए हैं, चारों के चारों व्यवस्थापक और उच्च धर्माचार्य हैं, चारों के चारों याजकीय और ईश्वरकर्तृक शासन-संबंधी समाजों की प्रतिष्ठा करते हैं।

उनका आपस में पूर्वाधिकारी और उत्तराधिकारी का संबंध था, यह नाम के सादृश्य और उनकी बनाई हुई संस्थाओं की अनन्यता से प्रमाणित प्रतीत होता है।

संस्कृत में मनु मनुष्य, विशेषतः, व्यवस्थापत्र का बोधक है।

मेनस, मिनोस, मूसा, क्या ये निर्विवाद रूप से इस बात को प्रकट नहीं करते कि संस्कृत से इनकी एक ही व्युत्पत्ति है, इसमें भिन्न-भिन्न कालों, और भिन्न-भिन्न भाषाओं—मिस्री, यूनानी, इवरानी—के ही, जिनमें कि ये लिखे गए हैं, थोड़े से भेद हैं?

हमारे पास यह एक ऐसा सूत्र है जो सर्व प्राचीन सभ्यताओं, सर्व ईश्वरीय प्रत्यादेशों और धार्मिक ऐतिह्यों के बीच में से, उन प्रत्येक प्रकार की पुराण-कथाओं और आख्यानों में जो बहुत सी जातियों की शैशवावस्था को घेरे हुए हैं, और जिनको इतिहास ने, निंदित ठहराने और कविता तथा परिकथा का विषय बतलाने के स्थान में, बड़े भक्तिभाव से लिपिबद्ध और प्रमाणित किया है, हमारे भूलापेक्षक अनुसंधानों को उनके सच्चे भारतीय सोतों तक ले जायगा।

ऐसे साहाय्य के साथ उच्चाकांक्षाओं ने प्राचीन काल में जातियों को वशीभूत और शासित किया है; ऐसी अनुचिंताओं की सहायता से आज उनके पराजय की चेष्टा की जा रही है।

मनु, पुरोहितों और ब्राह्मणों के यथाकाम साधन के रूप में, भ्रष्ट और साहंकार ईश्वरकर्तृक शासन के नीचे दबे हुए स्वदेश के अपकर्ष और विनाश का प्रारंभिक स्थान बन गया।

उसके उत्तराधिकारी मेनस ने, मिसर को पुरोहितशाही के वश में करके, उसके लिये विस्मरण और बद्धता तैयार की।

मूसा, अपने अग्रगामियों के अनियंत्रित कार्य को उसी सफलता के साथ ग्रहण करके, अपनी जाति को, जिसे इतने गर्व के साथ 'परमेश्वर की जाति' विघोषित किया जाता है, क्रीत दासों का एक समूह-मात्र बना सका। यह समूह दासत्व के लिये भली भाँति सिधा हुआ था और इसको पड़ोस की जातियाँ लगातार दास बना लेती थीं।

एक नवीन युग का आरंभ हुआ—परंतु ईसाई तत्त्वज्ञान की संशोधित धार्मिक कल्पना ने शीघ्र ही याजकीय रूप धारण कर लिया, याजक समाधियों से निकलकर राजसिंहासनों पर चढ़ने लगे, और उसी समय से वे, बिना शैथिल्य के, प्रधान सूत्र को उलटने, और इन श्रेष्ठ शब्दों—

"मेरा राज्य इस जगत् का नहीं,"
के स्थान में ये दूसरे शब्द—
"संपूर्ण जगत् हमारा राज्य है,"
रखने में लगे हुए हैं।

हमें सावधान रहना चाहिए; भारत में, मिसर में और जूडिया में, क्रमशः ब्राह्मणशाही, याजकशाही और लेविटिज़्म (Levitism) के समयों में कोई भी चीज़ ऐसी नहीं देख पड़ती जिसकी तुलना पाखंडशासन सभा (Inquisition) की ज्वाला से, वौडोई (Vaudois) की हत्या से, या सेंट बार्थोलोमियो के हत्याकांड से, जिसके लिये कि रोम ने सेंट पीटर के भवन को उल्लास के ईश्वर-स्तोत्र के साथ प्रतिध्वनित किया था, की जा सके।

जर्मनी के भूपाल और राजेश्वर हेनरी के पाँव तीन दिन तक तुषार में रहे और उसका सिर धर्मोन्मत्त पुरोहित के अधम हाथ के नीचे झुका रहा। ब्रह्मा, आईसिस और यहोवह के उपासकों में भी हेनरी का कोई सानी न था। हमें सावधान रहना चाहिए!

८९ का सन् ईश्वरीय धर्म को स्वतंत्रता और उत्कर्ष के लिये अपना पथप्रदर्शक बनानेवालों और उसे स्वतंत्रता तथा उत्कर्ष को नष्ट करने के लिये एक साधन बनानेवालों के बीच युद्ध की सूचना देने आया।

देखना कोई निर्बलता न आने पाए! अतीत काल पर दृष्टिपात कीजिए, और सोचिए कि क्या आप भी प्राक्कालीन जातियों के सदृश विनष्ट होना चाहते हैं।

उस धर्म का प्रतिपालन करो जो ईश्वर का उसकी दी विवेक-बुद्धि के लिये धन्यवाद करता है। उस धर्म का तिरस्कार करो जो ईश्वर को विवेक-बुद्धि के दबाने का एक साधन बनाना चाहता है।

तीसरा अध्याय

इतिहास की शिक्षाओं का मूल्य * ।

इतिहास, जैसा कि हमारे पास है और जैसा कि उनको पढ़ाया जाता है जिनको मनुष्य बनना है, कोई विद्या नहीं। यह एक नीच माया है, एक साधन है जिसका प्रयोग यशस्काम विजेताओं, पराजितों, दलों और कालों के इच्छानुसार बातों को बढ़ाने या घटाने के लिये, सत्य घटनाओं को मानने, उनसे इनकार करने या उनमें फेर-फार कर देने के लिये, विशेष व्यक्तियों की प्रशंसा के पुल बाँधकर कभी उन्हें आकाश पर चढ़ाने और कभी उन्हें गालियों की बौछार के नीचे दबा देने के लिये, और गंभीर तथा वास्तविक प्रभावों को अस्वीकार करने तथा कृत्रिम प्रभाव उत्पन्न करने के लिये किया जाता है।

मैं इतिहास का महान् नाद, इतिहास की व्यवस्था, इतिहास की समदर्शिता, इत्यादि की बात को बिना घृणा के नहीं सुन सकता, क्योंकि मैं प्रायः इस महान् नाद, इस व्यवस्था, इस समदर्शिता, सारांश, इस सकल सुंदर शब्द-समुदाय को केवल जन-साधारण के विस्मय को तृप्त करने के लिये ही समझता हूँ। चालाक लोग निर्भय होकर निज स्वार्थ-सिद्धि के लिये इन शब्दों का प्रयोग करते हैं।

उदात्त रीति से समदर्शिता-पूर्वक विचार किया जाय तो कहना पड़ता है कि इतिहास अभी अपनी शैशवावस्था में ही है; क्योंकि इस समय यह सारे कारणों और सारे मतों का केवल एक सुशील और चाटुकार पोषक है।

कुछ लोग कहते हैं कि हरमोडियस (Harmodius) और

---

* अंगरेज़ी अनुवाद में यह सारा का सारा अध्याय छोड़ दिया गया है। सं० रा०

अरिस्टोगिटन (Arstogiton) ने हिपर क्यू (Hipparque) का वध स्वतंत्रता के नाम पर किया था; कई लोग कहते हैं कि उन की बहन का सतीत्व भंग करने के कारण ही उसका वध हुआ था; और इतिहास उनको कीर्ति-किरीट प्रदान करता है।

ब्रूटस कटार से अपने हितकर्ता की हत्या करता है, और इतिहास को उस धर्मशील नागरिक के लिये पर्याप्त प्रशंसा नहीं मिलती। पुस्तक के कुछ पृष्ठ उलटिए, और कुछ शताब्दियाँ पीछे चलिए। आपको जैक्सक्लिमेंट (Jacques Clement), रेवैलक (Ravaillac) और जावेल (Jauvel) के माथे पर इसी इतिहास की लगाई हुई कलंक और दुष्टता की मुहर दिखाई देगी।

इस निस्सार प्रहसन का क्या अर्थ है? कइयों के लिये प्रशंसा और सम्मान और दूसरों के लिये कलंक और अपमान क्यों? ऐ तुम लोगो, जिन्होंने जनता और राजाओं के पाठ पढ़े हैं! तुममें सब कालों के हत्यारों को कलंकित करने और उनके नर-संहार तथा रक्तपात के कार्यों को विश्वासघात का कार्य ठहराकर उस पर अप्रसन्नता प्रकट करने का साहस क्यों नहीं?

मैं व्यर्थ तुम्हारे सिद्धांतों की खोज करता हूँ, क्योंकि मुझे वे मिलते ही नहीं।

क्या वह प्रसिद्ध सिद्धांत जो साधन को परिणाम के अनुसार अच्छा या बुरा ठहराता है तुम्हारी ही उपज है? मेरा मन कहता है कि यह सिद्धांत आपका ही बनाया हुआ है क्योंकि मैं देखता हूँ कि आप लोग, बिना किसी विवेक और विमर्श के, एक ही अपराध के लिये भावी संतानों में कभी तो प्रशंसा का और कभी तिरस्कार का भाव उत्पन्न करते हैं। इस घोर नीचता और पाप के कार्य का फल तुम्हें कौन देगा? क्या तुम हमें यही शिक्षा दे सकते हो और क्या तुम्हें हमको यही शिक्षा देनी चाहिए?

एक पागल मनुष्य एशिया भूखंड पर आक्रमण करता है। पंद्रह वर्ष तक वह अपनी सेना द्वारा बीस पराजित और विनष्ट राष्ट्रों का लूटा हुआ माल घसीट ले जाता है। वह इस पृथ्वी पर खड्ग, अग्नि और सर्वनाश द्वारा अपना गहरा चिह्न अंकित करता है। और तुम लोग इतने बड़े विनाश, इतने बड़े क्लेश को देखते हुए भी उस कुत्सित नाम के लिये, जो कि तुम्हारी झूठी स्तुति के प्रताप से महान् सिकंदर हो जाता है, केवल विजय के गीत गाते हो।

हा! अभी तक भी तुम्हारा चरित्र-नायक पूर्ण नहीं हुआ; तुम्हें चित्र में एक दोष दीखता है। सिकंदर मदिरा से उन्मत्त होकर क्लाइटस (Clitus) की हत्या कर डालता है। और तुम लोग उन सहस्रों मनुष्यों को भूलकर जिनको वह पागल मृत्यु के घाट उतार चुका था उसके लिये नीति-व्याख्या करने लग जाते हो और अनेक प्रकार से सिद्ध करते हो कि यदि उसने मदिरा-पान न किया होता तो वह अपने मित्र का वध कदापि न करता।

इसके अतिरिक्त, सदा उसी तर्क का आश्रय लेते हुए, तुम्हारा समदर्शी इतिहास अटिला (Attila) तैमूर लंग, और चंगेज़ख़ाँ को, सिकंदर के कुछ समय पश्चात्, घातक चाबुक और रक्त-पिपासु राक्षस कहता है।

यह क्यों? केवल इसलिये कि पराजित होने से उनका नाश हो गया, और वे अपनी न सधी हुई सेना के साथ अपने राज-वंश की नींव रखने में कृतकार्य नहीं हुए।

कृतकार्य उद्दंड मनुष्यों की श्लाघा करना, विफलमनोरथ उद्दंडों की निंदा करना, राष्ट्रों के विनाशकों की मूर्तियाँ स्थापित करना और उनके घावों को भूल जाना; जो कृतकार्य हो जायँ उन्हें विजेता समझना और जो अनुत्तीर्ण रहें उन्हें साहसिक कहना यही तुम्हारा काम है। ऐ दैवयोग से कृतकार्य हो जानेवाले

लोगों के मिथ्या-प्रशंसक, परिणामों के अधम क्रीत दास, छिः ! अब हम तेरी समदर्शिता और तेरी महत्ता के गीत न गाएँगे ।

क्या तुम्हारी दृष्टि में विनाश करनेवाला सीज़र स्वदेश की रक्षा करनेवाले वर्सिंगटोरिक्स (Vercingetorix) से बड़ा नहीं ? क्या तुमने कभी अपनी व्यवस्थाओं को उस सनातन नैतिक नियम के अधीन करना सीखा है जो किसी कार्य का मूल्य उस कार्य से ही लगाता है, जो अपराध की उसके अपराध होने के कारण ही निंदा करता है, और जो कभी इतना ढीला नहीं होता कि अपराध को उसके निमित्त अथवा परिणाम के कारण क्षमा कर दे ?

और तुमने देवत्व की उस महान् कल्पना का भी क्या बना दिया है ? जब तुम अभी पूर्ण रीति से उत्पन्न भी नहीं हुए थे, तुमने इसको मनुष्य-जाति की भीरुता और निर्बलता के साथ इतना मिश्रित कर दिया कि ठीक-ठीक पता नहीं कि यदि तुम इसका सर्वथा उल्लेख ही न करते तो क्या उत्तम न होता ।

तुम जानते हो कि मनुष्य-समाज शताब्दियों से ऐसे भारी परिश्रम के साथ उस विश्व-बंधुता और कल्याण की प्राप्ति के लिये क्यों यत्न कर रहा है जिसका उद्देश भविष्य की एकमात्र उच्चाभिलाषा के सिवा और कुछ नहीं हो सकता ?

ऐ निर्बल आत्माओं को पुराने क़िस्से सुनानेवाले, इसका कारण यह है कि तुममें इतनी निर्भीकता नहीं कि हमारी उत्पत्ति को उन सारी कल्पित कथाओं और मूढ़ विश्वासों से जुदा कर सको जो इसे चारों ओर से घेरे हुए हैं, जिस प्रकार तुम्हारा बनाया हुआ मनुष्य, आगे पग रखने में समर्थ होने के पूर्व, उन सब अशुद्धियों का उन्मूलन करने के लिये, जो कि तुम्हारी शिक्षा की प्रदान की हुई हैं, अपनी परिपक्व अवस्था की सारी शक्तियों का प्रयोग करना भूल गया है । पृथ्वी को घुमाने के लिये जिस प्रकार विज्ञान को कई शताब्दियाँ

लगी हैं क्योंकि सूर्य को प्राप्त करने के लिये यह एक तेजोराशि पर गिर पड़ी थी, उसी प्रकार जलती हुई झाड़ियों, आईसिस (Isis) या इल्युसिस (Eleusis) के रहस्यों, पर्वतों पर की ज्योतियों और गर्जनाओं से घिरे हुए ईश्वरीय आदेशों, प्रेत-विद्या और चमत्कारों के साथ, जिनको तुमने उनका निराकरण करने का साहस किए बिना ही लिपिबद्ध कर रक्खा है, आधुनिक तर्कपूर्ण स्वतंत्रता से आगे नहीं बढ़ सकता, क्योंकि कभी-कभी इसको अतीत काल की माया रोक लेती है। इस माया के अनेक कट्टर पक्षपाती हैं, और यह एक दिन में दूर नहीं की जा सकती।

जो इतिहास इस नाम का सच्चा अधिकारी होगा उसका आधार सनातन न्याय, सनातन नीति और सनातन सत्य पर होगा; उसमें कोई भी मध्यवर्ती मार्ग और आत्मा की मिथ्या संधि नहीं होगी। यह निर्बलों और बलवानों के कार्यों, राजा और प्रजा के दोषों, साहसिकों और विजेताओं के अपराधों को एक ही तराज़ू में तोलेगा और एक-सी कठोरता से उन पर विचार करेगा।

अभी तक ऐतिहासिक आचरण इससे ऊपर नहीं उठा—

कारटोश (Cartouche) तीन सौ से अधिक मनुष्यों की सेना का संग्रह नहीं कर सका; इसलिये वह डाकू है......सिकंदर एक लाख लुटेरों की सेना इकट्ठी करने में कृतकार्य हो गया; इसलिये वह एक बड़ा प्रतिभाशाली मनुष्य है।

बोरबोन के उच्च कानिस्टेबल ने अपने राजा के विरुद्ध विद्रोह का झंडा खड़ा किया, परंतु उसे सफलता न हुई; इसलिये वह राजद्रोही है। सीज़र ने अपने देश के राजाओं के सिरों को अपने पाँव के नीचे कुचल डाला; इसमें उसे सफलता प्राप्त हुई; इसलिये वह एक महापुरुष है। जानकारी देने के लिये ऐसे ज्ञान का कैसा विपर्यय है!

हम जो भविष्य के लिये एकता, उद्यम, शांति और स्वतंत्रता के युग के स्वप्न देख रहे हैं, हमें चाहिए कि अपने पुत्रों को इतना उच्च कर दें कि उनके मन में इस भ्रष्ट भूतकाल के लिये घृणा का भाव उत्पन्न हो जाय। हमें उनके पास से इस इतिहास रूपी वारांगना को दूर भगा देना चाहिए जो केवल सदा से पाशविक शक्ति के सामने, भाग्यशाली विश्वासघातकों के सामने और जातियों के विध्वंसकों के सामने चापलूसी करते हुए लेट जाना ही जानती है। हमें उन्हें शिक्षा देनी चाहिए कि जो मनुष्य लोगों को वेतन-भोगी पहलवानों या मद में आए हुए बनैले पशुओं के सदृश लड़ाते हैं वे निंद्य प्राणी हैं और मनुष्य-समाज के लिये महामारी के समान हैं; ऐसे लोगों के माथे पर कलंक का टीका लगाना आवश्यक है। हम उन्हें यह सिखलाना जानते हैं कि जन्म-भूमि की वीरता से रक्षा करनेवालों को उन यशस्काम लोगों से कैसे पहचानना चाहिए जो अपना सिंहासन हत्या-क्षेत्र पर बनाते हैं। ......हमें उनको सिखाना चाहिए कि युद्ध का कोई देवता नहीं, और बीस या तीस सहस्र मनुष्यों की हत्या करने के दूसरे ही दिन बाद ईश्वरस्तोत्र (Te-Deum) और ईश्वर-प्रार्थना (Hosanna) के गीत गाना केवल बर्बरता और नास्तिकता को ही प्रकट करना है। परमात्मा, जिसकी दया उसकी शक्ति के समान है, इन स्तोत्रों पर कभी कर्णपात नहीं करेगा।

आइए, हम उन सब कल्पित कथाओं को, सारे रहस्यों को और सारे चमत्कारों को जड़ से उखाड़ डालें जो सृष्टि-नियम के विरुद्ध हैं, जो मनुष्य-जाति की बाल्यावस्था में गढ़े हुए प्रभुता-प्राप्ति के साधन हैं, और जिनको मनुष्य-जाति की इस परिपक्व अवस्था में भी पुनर्जीवित करने का पर्याप्त उद्योग हो रहा है। आइए, हम उस सारी धार्मिक असहिष्णुता को दूर भगा दें जो ईश्वर और

उसके प्रत्यादेश को शक्ति के यंत्र बना देती है, ताकि हम केवल विवेक और तर्क का ही अनुगमन करें।

इस प्रकार हम आशा-क्षेत्र को गहरा खोदेंगे और उसमें बीजारोपण करके फ़सल तैयार करेंगे।

वह समय बड़ा शुभ होता है, जब मनुष्य को इसका भली भाँति ज्ञान हो जाता है।......यदि हम आनेवाली संतानों के सम्मुख शीलभ्रंश और ईश्वरकर्तृक-शासन द्वारा विनष्ट सर्वोत्तम सभ्यता का उदाहरण उपस्थित करना नहीं चाहते, तो यह आवश्यक है कि हम निःसंकोच होकर सदा के लिये उस अतीत काल को छोड़ दें जो अब तक केवल विध्वंस के लिये ही शक्तिशाली बना रहा है।

चौथा अध्याय

प्राक्कालीन वैदिक धर्म को ब्राह्मणों का बिगाड़ना—जातियों की सृष्टि—पहले लोगों की एकता को नष्ट करो फिर उन पर शासन करो।

ब्राह्मण-समाज के सदृश वीर युगों के लिये विशेष रूप से निर्मित, और प्रत्येक प्रकार के आक्रमणों का सामना करने में समर्थ दूसरी सभ्यता कभी इस जगत् में नहीं हुई। यह सभ्यता अपनी प्राचीन राजनीतिक शक्ति और गौरव खो बैठने पर भी अब तक जीवित जाग्रत है।

तब वे ब्राह्मण कहाँ से आए जो एक अतीव सुंदर और अतीव पूर्ण भाषा बोलते थे—जिन्होंने जीवन के प्रश्न का प्रत्येक रूप में इतना अनुसंधान, इतना अनुशीलन और इतना विवेचन किया था कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन दोनों कालों के लिये साहित्यिक, नैतिक और दार्शनिक विद्याओं में नवप्रवर्तन की कोई गुंजाइश नहीं रही?—ये मनुष्य कहाँ से आए जो सब कुछ अध्ययन करने, सब कुछ गुप्त रखने, सब कुछ उलट-पलट कर देने, और सब कुछ पुनः बनाने के अनंतर समस्या के अंतिम समाधान पर पहुँचे थे, जिन्होंने अत्यंत प्रबल श्रद्धा के साथ सब कुछ ईश्वराधीन कर दिया था और उस पर ईश्वरकर्तृक शासन-संबंधी समाज का एक ऐसा अनुपम भवन खड़ा किया था जिसमें, पाँच सहस्र से अधिक वर्षों के अनंतर, आज भी किसी प्रकार के नवप्रवर्तन और उन्नति की कोई गुंजाइश नहीं—जो अपनी संस्थाओं, अपने विश्वासों और अपनी स्थिरता पर गर्व करता है?

हम दिखाएँगे कि यह समाज सारे प्राचीन समाजों के लिये नमूना

था। उन्होंने इसकी न्यूनाधिक हू-बहू नक़ल की थी, बल्कि उन ऐतिह्यों को सुरक्षित रक्खा था जो क्रमिक प्रवासों द्वारा पृथ्वी की दिशाओं में पहुँच गए थे।

दैवी अधिकार का गौरव अपने हाथ में रखने की ब्राह्मणों की नीति का अनवरत अनुकरण होता रहा है। संसार के इतिहास पर दृष्टि डालते हुए, हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि उस समय से परमेश्वर पुरोहितों के हाथ में एक विनेय साधन बना रहा है।

यह एक अटूट नियम था कि मनुष्य का जिस जाति में जन्म हुआ है वह उससे किसी भी निमित्त से, अपने किसी भी उज्ज्वल कर्म या सेवा से छुटकारा नहीं पा सकता था, अतएव उच्च पदाभिलाप की किसी भी स्फूर्ति से उत्तेजित न होने, उसकी शक्ति को प्रोत्साहित करने के लिये समुन्नति की कोई भी आशा सामने न होने के कारण हिंदू, जिसका प्रत्येक पग और प्रत्येक कर्म, जन्म से मरण पर्यंत, रीति-रिवाजों और नियमों द्वारा व्यवस्थित और नियमित था, स्वप्नों के, धार्मिक मूढ़ विश्वासों के, धर्मोन्माद के और देहात्मवाद के उस जीवन में डूब गया जिसमें वह अब तक पड़ा हुआ है, और जो उसको अब तक भी परिवर्तन और उन्नति का, उनको पाप और अपराध समझकर, विरोध करने के लिये विवश कर रहा है।

यह निर्विवाद है कि ब्राह्मणों ने इस प्रकार अपने लिये एक ऐसी जाति तैयार की जिस पर शासन करना बहुत सुगम था, जो दासत्व के जुए को उतार फेंकने में असमर्थ थी, प्रत्युत जिसमें शिकायत करने की भी शक्ति नहीं थी। अतः चिरकाल तक लोगों का उनके प्रति सम्मान और भक्ति का भाव बना रहा और वे ऐश्वर्य भोगते रहे। परंतु जिस दिन से उत्तरीय देशों के लोगों ने भारत के धन-धान्य और ऐश्वर्य को मत्सरता की दृष्टि से देखना आरंभ किया, जिस दिन से मुग़लों का टिड्डी-दल हिंदोस्तान पर आक्रमण करने लगा उस दिन

से अपनी रक्षा के लिये जो भी यत्न उन्होंने किए वे सब निष्फल होने लगे, क्योंकि जिन लोगों को उन्होंने गुलामों का एक समूह बना दिया था, अपनी प्रभुता को चिरस्थायी करने के लिये जिनको वे हतवीर्य और हतोत्साह कर चुके थे उनको युद्ध के लिये उत्तेजित करने में वे किसी प्रकार भी सफलीभूत न हो सके। अकेले क्षत्रिय ही लड़ाई के लिये निकले परंतु सामान्य विध्वंस की घातक घड़ी को रोकने का सामर्थ्य उनमें न था। ब्राह्मण मंदिरों में बैठे देवता की आराधना कर रहे थे, परंतु देवता उनकी रक्षा करने में अशक्त था। उन्होंने अपनी प्रतिष्ठा और राजनीतिक शक्ति के गौरव को नष्ट होते देखा। धन्य हैं इन ब्राह्मणों के गौरव-प्रतिष्ठा के लिये किए हुए पूर्वोपाय।

भारत तब से आक्रमणों का क्रीड़ास्थल बना रहा है। इसके अधिवासी दासत्व के प्रत्येक नए जुए को बिना किसी अंतर्विलाप के धारण करते चले आ रहे हैं। यहाँ तक कि जो उच्च वर्ण उन पर चिरकाल तक शासन करते रहे थे उनको परास्त करने में भी इन्होंने कदाचित् प्रसन्नता-पूर्वक सहायता दी है।

नारद-स्मृति का उपोद्घात नारद के एक निपुण शिष्य ने लिखा है। वह ब्राह्मणों की शक्ति का पक्षपाती था। उसमें वह लिखता है कि मनु ने ब्रह्मा के बताए धर्म-शास्त्र को एक लाख श्लोकों में लिखा। इसकी चौबीस पुस्तकें और एक सहस्र अध्याय बने। तब उसने यह ग्रंथ महर्षि नारद को दे दिया। नारद ने मनुष्यों के लाभार्थ इसका बारह सहस्र श्लोकों में संक्षेप कर दिया। यह उसने भृगु के पुत्र सौमति को दिया। सौमति ने मानव-जाति के अधिक सुविधा के उद्देश्य से उनको घटाकर चार सहस्र कर दिया।

मानव केवल सौमति का बनाया हुआ संक्षेप ही पढ़ते हैं। गंधर्व और गौण स्वर्ग के देवता मूल पुस्तक का पाठ करते हैं।

सर विलियम जोंस कहते हैं कि "इस समय मिलनेवाला मानव

धर्म-शास्त्र, जिसके सारे श्लोक २६८० हैं, सौमति की रचना नहीं हो सकता। सौमति-कृत मनुस्मृति संभवतः वृद्ध मानव अर्थात् मनु का पुराना धर्म-शास्त्र कहलाती है। यह आज तक पूरी-पूरी नहीं मिल सकी। हाँ, इसके अनेक वाक्य पुराणों में सुरक्षित पड़े हैं और टीकाकार प्रायः उन्हें उद्धृत करते हैं।"

ब्राह्मणों के लिये सबसे आवश्यक बात यह थी कि लोग कहीं जाति-पाँति के बंधनों को तोड़कर एक जाति न बन जायँ, क्योंकि फिर वे स्वतंत्र होकर उनके अधीन न रहेंगे। इसी उद्देश्य से उन्होंने केवल भिन्न-भिन्न वर्णों के पारस्परिक विवाहों का ही नहीं, प्रत्युत सब प्रकार के सामाजिक सम्मेलनों और मिलापों का भी निषेध कर दिया।

यहाँ तक कि अपने वर्ण के अतिरिक्त किसी दूसरे वर्ण के साथ मिलकर ईश्वर-प्रार्थना करने, खाने या खेलनेवाले व्यक्ति के लिये निर्वासन और पदभ्रंश का दंड नियत किया गया।

मानव धर्म-शास्त्र, अध्याय १०, श्लोक ६६-६७—"नीच जाति का जो मनुष्य उच्च जातियों का व्यवसाय करके आजीविका कमाता हो, राजा को चाहिए कि तत्काल उसका माल और धन ज़ब्त कर ले और उसे देश से निकाल दे।

"अपने वर्ण के कामों को अधूरी तरह से करना दूसरे वर्ण के कामों को पूरे तौर पर करने से अच्छा है, क्योंकि जो मनुष्य दूसरे वर्ण का व्यवसाय करके आजीविका कमाता है वह तत्काल पतित हो जाता है।"

इस निषेध का प्रभाव जैसा नीच जाति के लोगों पर पड़ा वैसा ही ब्राह्मणों और राजाओं पर भी पड़ा। हम समझ सकते हैं कि ऊपर से आनेवाले बुरे उदाहरण को रोकने की और भी अधिक आवश्यकता थी।

मानव धर्म-शास्त्र, अध्याय १०, श्लोक ६१ इत्यादि—"यदि

ब्राह्मण अन्न का भोजन और नैवेद्य बनाने के स्थान उसे बेचने का व्यापार करता है तो वह और उसके वंशज कृमि बनकर कुत्ते की विष्ठा में पड़ते हैं।"

"नमक, मांस या लाख बेचने से वह पतित हो जाता है। दूध बेचने से वह एकदम गिरकर शूद्र-वर्ण में चला जाता है।"

"दूसरा कर्म निंदनीय माल बेचने से सातवें दिन की समाप्ति पर वह वैश्य हो जाता है।"

"थोड़ा सा हस्त-व्यवसाय करने से अपने आपको गिराकर शिल्पी बनाने से तो ब्राह्मण के लिये भीख माँगना अच्छा है।"

फिर उसी ग्रंथ का श्लोक १०२ इत्यादि देखिए—"विपदा में पड़ा हुआ ब्राह्मण सबसे ग्रहण कर सकता है, क्योंकि धर्म-शास्त्र के अनुसार पूर्णतया पवित्र दूषित नहीं हो सकता।"

"इन निषिद्ध अवस्थाओं में धर्म-ग्रंथ पढ़ाने, यज्ञ कराने, और दान लेने से ब्राह्मणों को कोई दोष नहीं; यदि वे महादुःखी हैं तो भी वे जल और अग्नि के तुल्य पवित्र हैं।"

"जो ब्राह्मण भूख से मर रहा हो वह चाहे जिससे भोजन ले ले उसे पाप नहीं होता जैसे कि आकाश को कीचड़ लिप्त नहीं कर सकता।"

"भूख से अति पीड़ित होने के कारण अजीगर्त्त अपने पुत्र शुनःशेप को मारने ही को था; फिर भी उसका यह कर्म कोई पाप न था क्योंकि वह क्षुधा से अपनी प्राण-रक्षा करना चाहता था!"

टीकाकार कुल्लूक भट्ट कहता है कि अजीगर्त्त ने अपने पुत्र को देवता पर बलि चढ़ाने के लिये एक खंभे से बाँध दिया। देवता ने उसकी आज्ञाकारिता से संतुष्ट होकर उसका हाथ पकड़ लिया। हम इस गाथा पर आगे चलकर दुबारा विचार करेंगे। यह बाइबिल के आरंभिक भाग में भी पाई जाती है।

"वामदेव ने, जो धर्म और अधर्म को भली भाँति जानता था,

एक बार क्षुधार्त होकर प्राणों की रक्षा के लिये अपवित्र जंतुओं का मांस खाने की इच्छा की, पर इससे वह पाप में कुछ भी लिप्त नहीं हुआ।"

"महातपस्वी भरद्वाज जब निर्जन वन में अपने पुत्र के साथ भूख से अति पीड़ित हुआ, तो उसने वृधु-नामक एक नीच कारीगर से अनेक गौओं का दान ग्रहण किया।"

"अभ्यागत विश्वामित्र मुनि ने भूख से दुखी होकर श्मशान के एक डोम चौधरी (चांडाल) से कुत्ते की एक जाँघ लेकर खाने का निश्चय किया था।"

इन वाक्यों से हम देख सकते हैं कि ब्राह्मणों के लिये उन सब व्यवसायों का कैसा कड़ा निषेध था, जिनसे लोगों की दृष्टि में उनके गौरव के घटने की संभावना हो।

राजाओं (क्षत्रियों) और अन्य वर्णों के लिये भी यही व्यवस्था थी। कर्म को बदलने का यत्न करने के समान और दूसरा कोई अपराध न था। इसका दंड इस लोक में पदभ्रंश और कलंक था और दूसरे लोक में, इस दोष से दूषित होने के कारण, पुनर्जन्म द्वारा अधम योनियों में पड़ना।

उस समय से भारत की उज्ज्वल सभ्यता रुक गई है। अविद्या ने जनता पर अधिकार जमा लिया है। लोग अपने स्वर्णमय अतीत काल को भूलकर विषय-वासनाओं के स्वप्न देख रहे हैं और अत्यंत निर्लज्ज, शीलभ्रंश रूपी पंक में लिप्त हैं। अपने प्रभाव को बनाए रखने के उद्देश्य से ब्राह्मण इस पाप-पंक में गिरने के लिये उत्तेजित करते हैं।

ब्राह्मणों ने प्राचीन दार्शनिक, नैतिक और धार्मिक ऐतिह्यों को केवल अपने लिये ही छिपा रक्खा। इनका अध्ययन करना उनके वर्ण का ही विशेषाधिकार बन गया। लोग उनका धर्म के लिये तो

पहले ही सम्मान करते थे, अब वे विद्वत्ता के लिये भी करने लगे। वस, फिर क्या था, राजाओं को अधीन रखने के लिये इस विशेषाधिकार ने पुरोहितों को एक साधन का काम दिया।

परमात्मा के वेद रूपी आदि ज्ञान की शुद्ध और पवित्र पूजा के स्थान में उन्होंने जन साधारण के लिये क्रमशः वहुसंख्यक श्रेष्ठ जनों की आराधना नियत की। इन श्रेष्ठ जनों को देवता नाम दिया गया। इनमें से कुछ तो जगदीश्वर और उसकी प्रजा के वीच दूत मान लिए गए और कुछ ऐसे ब्राह्मण समझ लिए गए जिन्होंने मनुष्य-जन्म में पुण्यमय जीवन व्यतीत किया था और मरकर ब्रह्म में लीन हो गए थे।

अब पवित्र दिव्यतत्त्व, ब्रह्म, की पूजा के लिये कोई मंदिर न रहा। उस तक अपनी प्रार्थनाओं को पहुँचाने के लिये मनुष्यों को उन छोटी-छोटी सत्ताओं के माध्यम का प्रयोजन माना जाने लगा जिनकी मूर्तियों से मंदिर और देवालय भरे पड़े हैं। इन सबमें वुद्ध सबसे पीछे आया। उसने संस्कार द्वारा तहस-नहस कर डालने की चेष्टा की। यह संस्कार लूथर के संस्कार से वहुत कुछ मिलता है।

प्राचीन हिंदू समाज पर यह सबसे अधिक भीषण आघात था, यह ह्रास और जरा के उस कार्य को पूर्ण करनेवाली चोट थी जिसके अध्ययन का अवसर हमें शीघ्र ही मिलेगा।

पुरोहितों ने अपने आपको सिद्धांत और रहस्य में वंद कर लिया। वे अपने आपको धर्म और नीति के एक-मात्र रक्षक और सच्चे उपदेशक जतलाने लगे। अपनी सहायता के लिये उन्होंने दीवानी क़ानून को बुला लिया। यह उनका दासवत् आज्ञाकारी बन गया। इसने विचार और वुद्धि की स्वतंत्रता को निर्वासित कर दिया। सारी इच्छाशक्ति और स्वाधीनता को विश्वास के नीचे झुका दिया, और अंततः इस प्रसिद्ध वचन की कल्पना की—अंधविश्वास अर्थात् विना ज्ञान के ही सिर

झुका देने—के साथ, विवेक-शून्य बुद्धि के साथ मंदिर की ड्योढ़ी में प्रवेश करने से बढ़कर परमात्मा को और कोई बात पसंद नहीं। हम अभी दिखलाएँगे कि मिसर, जूडिया, यूनान, रोम प्रभृति सभी प्राचीन देशों ने, वास्तव में, जाति-पाँति, सिद्धांतों और धार्मिक मंतव्यों में हिंदू-समाज की नक़ल की है। उन्होंने इसके ब्राह्मणों, पुरोहितों और लेविटियों (Levites) को उसी तरह ग्रहण कर लिया है जिस प्रकार कि वे पहले प्राचीन वैदिक समाज की भाषा, शासन-पद्धति और तत्त्वज्ञान ले चुके थे। इसी वैदिक समाज से उनके पूर्वज सारे संसार में सनातन ईश्वरीय ज्ञान के उज्ज्वल भावों का प्रचार करने के लिये रवाना हुए थे।

पाँचवाँ अध्याय

दलित जातियों की उत्पत्ति

प्राचीन भारत समाज का यह अधिकार स्वीकार करता था कि उसके सदस्य यदि उसके विरुद्ध कोई अपराध करें तो वह उन्हें दंड दे सकता है। परंतु उस अधिकार के विषय में उसकी भावना और उसका उपयोग करने की रीति वैसी न थी जैसी कि आधुनिक लोगों की है।

ब्राह्मण-स्मृतिकारों की सम्मति में मनुष्य की मानसिक और शारीरिक प्रकृति की कुछ एक आवश्यक शक्तियाँ ऐसी थीं जिन पर, ईश्वरीय कार्य का अपमान किए विना, इस विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं हो सकता था। उन विचारों के प्रयोग में, जिनका अध्ययन विचारकों तथा दार्शनिकों के लिये दिलचस्पी से ख़ाली न होगा, उन्होंने सारे दमन को दंड द्वारा व्यवस्थित किया था।

इस प्रकार मनुष्य की नैतिक स्वतंत्रता, अर्थात् उसकी विचार-शक्ति को दमन करने में असमर्थ होकर उन्होंने उसकी शारीरिक स्वाधीनता के सीमाबंधन का भी, उसे ईश्वर का वैसा ही कार्य मान-कर, समान रूप से निषेध कर दिया।

इससे वह दंड-विधि उत्पन्न हुई जिसे—यद्यपि इसका भी प्राचीन जातियों पर प्रभाव था—उस युग की सभी जातियों ने उसी परिमाण में ग्रहण नहीं किया और जो वर्तमान स्मृतियों से सर्वथा लुप्त हो गई है। वेदों के उत्तर कालीन प्राचीन हिंदू-क़ानून निम्नलिखित दंडों का विधान करते हैं—

पहला मृत्यु ; दूसरा उच्च वर्ण से नीच वर्ण में गिरा देना ; तीसरा

सारी जाति से पूर्णतया अलग कर देना ; चौथा मुगदरों से पीटना और शिकंजे में कसना; पाँचवाँ शुद्धि और यज्ञ ; छठा अर्थ-दंड ।

ये प्राचीन व्यवस्थापक क़ैद करना बिलकुल जानते ही न थे । जहाँ परमेश्वर का कार्य आरंभ हो वहाँ मनुष्य का हाथ रुक जाना चाहिए; अपने इस सिद्धांत के अनुसार वे बहुत ही कम अवस्थाओं में मृत्यु-दंड को धर्म सम्मत समझते थे । वे केवल उन्हीं अपराधों के लिये प्राण-दंड देते थे जो उनकी राजनीतिक संस्थाओं के मर्म का घात करनेवाले हों ।

मुगदरों से मारने तथा शिकंजे में कसने का दंड उन भिन्न-भिन्न अपराधों और दोषों के लिये दिया जाता था जिनमें सारी जाति से आंशिक या पूर्ण बहिष्कार, विशेष रूप से बुरी अवस्थाओं के कारण पर्याप्त प्रायश्चित्त प्रतीत नहीं होता था ।

अर्थ-दंड भी इन्हीं बातों पर विचार करके दिया जाता था ।

शुद्धि और यज्ञ केवल हलके और मुख्यतः धर्म-संबंधी अपराधों के लिये होते थे ।

इन दंडों में सबसे भयानक दंड सब वर्णों से पूर्ण बहिष्कार—मृत्यु था । कठोर-से-कठोर यातनाएँ भी इससे अच्छी समझी जाती थीं ।

जाति-बहिष्कार के साथ ही उसका धन-माल, उसका कुटुंब, उसके मित्र, और उसके सब नागरिक तथा राजनीतिक अधिकार भी छिन जाते थे, न केवल उसके अपने ही प्रत्युत इस दूषण के अनंतर उत्पन्न होनेवाली उसकी सारी संतान के भी ।

सुनिए मनु उनका किन शब्दों में प्रतिषेध करता है—

"जिन लोगों पर कलंक का टीका लग गया हो उनके संबंधियों को, क्या मातृकुल के और क्या पितृकुल के, चाहिए कि उनका परित्याग कर दें और करुणा और आदर की कुछ भी परवा न करें ।"

"हमें उनके साथ रोटी और बेटी का संबंध नहीं रखना चाहिए। न उनके साथ मिलकर यज्ञ और पठन-पाठन ही करना चाहिए। सर्वसामाजिक बंधनों से अलग वे पृथ्वी पर दुःख झेलते फिरें।"

जाति से बाहर निकाल देने का यह दंड या तो राजनीतिक होता था या धार्मिक। इसकी आज्ञा राजा अथवा न्याय और दीवानी क़ानून की व्यवस्था करनेवाले उसके किसी राजप्रतिनिधि द्वारा होती थी, या पुरोहित, अर्थात् धार्मिक विचारपति, देवालय की ड्योढ़ी में एकत्रित जनता के सम्मुख अपनी व्यवस्था देता था।

जिस प्रकार अपराधी अपने अपराधों को स्वीकार करने के लिये नागरिक न्याय-सभा के सामने उपस्थित होता था उसी प्रकार उसे धार्मिक न्याय-सभा के सम्मुख उपस्थित होकर अपने दोष को उच्च स्वर से मानना पड़ता था जिससे पुरोहित उसके अपराध के अनुसार उसे दंड दे सके।

इस वाक्य को स्मरण रखना, आगे चलकर इससे काम पड़ेगा। इस दंड-नीति से, सारी जाति से सर्वथा बहिष्कृत कर देने से अभागे और सदा के लिये अपमानित अछूत नाम के मनुष्य की उत्पत्ति हुई है। वर्णाश्रम को माननेवाले हिंदुओं के लिये अछूत अभी तक भी दुस्तर, घृणा की वस्तु बना हुआ है। बड़ा-से-बड़ा प्रबुद्ध हिंदू भी इस घृणा को नहीं छोड़ सकता।

इस कलंक को अमिट बनाने के लिये और इस विचार से कि कलंकित व्यक्ति किसी दूर देश में अपने कलंक को छिपाकर इससे छूट न जाय अपराधी के माथे या कंधे पर, उसके दोष के अनुसार, गरम लोहे से दाग दिया जाता था।

चतुर्वर्ण के लोगों में से उसको जल, अग्नि और चावल देनेवाले के लिये पतित होने का दंड था।

इस प्रकार जाति के भीतर एक और ऐसी जाति की रचना हुई

जो अशुद्धि के लिये प्रसिद्ध थी और जिसे व्यवस्थापक ने अतीव अपवित्र जंतुओं से भी नीच ठहराया।

इस पूर्व संस्कार को जड़ से उखाड़ डालने के लिये कई शताब्दियाँ लगेंगी। पुराने क़ानून, क्या दीवानी और क्या धार्मिक, यद्यपि दब चुके हैं, परंतु हम पुनः कहते हैं कि जनता पर जो उनका प्रभाव पहले था उसमें कुछ भी कमी नहीं हुई।

भारत के बड़े-बड़े नगरों में, योरपियन की आँख के नीचे जो व्यक्तिगत रूप से अछूत की रक्षा करके और उसके प्रति क़ानून की उपेक्षा और दुर्बलता को दूर करके, क्योंकि क़ानून ने अभी तक उसकी स्थिति को कोमल बनाने का साहस नहीं किया, बड़ा प्रसन्न होता है, और अनेक उद्योग-धंधों में दैनिक मज़दूरी करते हुए अछूत वर्तमान समय में शायद अपने को कम दुःखी अनुभव करता हो। जहाँ वह अपने वासस्थान को छोड़ हिंदुओं के त्योहारों और उत्सवों में सम्मिलित होने नहीं जाता वहाँ उसका जीवन प्रायः शांत रहता है परंतु गाँव में उसकी दशा अभी तक भी दीन और दुःसह है।

जब वह ब्राह्मण को अपनी ओर आते देखता है, तब उसे चटपट रास्ता छोड़ देना पड़ता है, और दस पग के अंतर पर, अपनी दीनता को दिखलाने के लिये, धूलि में लेटकर प्रणाम करना पड़ता है, नहीं तो ब्राह्मण के नौकर उसे पीट-पीटकर मार डालेंगे।

यदि वह वर्णवाले किसी मनुष्य को मिले तो उसे घुटनों के बल बैठ जाना और जब तक वह गुज़र न जाय बिना उसकी ओर देखने के सिर को नीचे झुकाए रखना पड़ता है।

यदि उसके पास भोजन और अग्नि न हो, तो उसे ये वस्तुएँ कहीं से माँगनी या चुरानी होंगी। कोई भी हिंदू-घर उस के लिये खुला न होगा, कोई भी मनुष्य उसे चावल न देगा और किसी भी चूल्हे से उसे आग न मिलेगी।

मैंने इन दीन प्राणियों को दुःख और भूख से मंदबुद्धि, पीली ठठरी और अधमुआ बना देखा है। मैंने उन्हें साँझ की छाया में छिपकर किसी नदी या निर्जन मार्ग के साथ-साथ इस आशा मे चलते देखा है कि कोई मृत जंतु मिल जाय और हम उसे सियारों और मांसाहारी पक्षियों से चुरा लाएँ।

मालूम नहीं क्यों स्वयं अछूत के मन में यह बात बैठ गई है कि वह पतित और निकृष्ट प्राणी है। इसलिये वह उद्योग-धंधे और धनोपार्जन द्वारा अपनी इस हीन अवस्था से बाहर निकलने का कभी यत्न नहीं करता। यह संभव है कि इन उपायों द्वारा, कालांतर में, वह अपने इस कलंक के टीके को धोने में कृतकार्य हो सके, क्योंकि भारत में स्वर्ण एक प्रधान देवता है, और योरप की तरह वहाँ भी बड़ी तीव्रता से इसकी पूजा होती है। अपने बंधुओं के साथ वाणिज्य-व्यापार करने का यत्न करने से बढ़कर अछूत के लिये और कोई सुगम उपाय नहीं हो सकता।

कई अछूतों ने खुले मैदानों में छोटी-छोटी दूकानें खोल रक्खी हैं। यहाँ वे अपने अछूत भाइयों के ही पास लकड़ी, तेल, चावल, गरम मसाले और नारियल आदि जीवन की आवश्यक वस्तुएँ बेचते हैं। यह व्यापार चाहे कितना ही छोटा क्यों न हो बढ़ाया जा सकता है। सावधानता और मितव्यय से चावलों की टोकरी एक बोरा, तेल की ठिलिया एक बड़ा मटका और बाँस की झोपड़ी एक बड़ी दूकान बन सकता है।

इस रीति से इन अभागों के लाभार्थ, निश्चय ही, एक सामाजिक क्रांति आरंभ होगी, जिसके लिये दूसरे उपायों द्वारा यत्न करना चिरकाल तक असंभव होगा।

परंतु अछूत अपने आप ऐसे संग्राम में, जिसका फल उसे बहुत देर से प्राप्त होगा और जिससे उसके वंशज ही लाभान्वित हो सकते हैं, पड़ने का साहस कभी न करेगा।

इस दीन अशक्त का एक-मात्र विचार, उसका एक-मात्र अटल नियम यह है कि वह अपने माल के ख़ज़ाने को एकदम उड़ा देता है।

ज्यों ही उसे मालूम हो जाता है कि मेरे पास कुछ मास तक बे-काम बैठकर खाने के लिये पर्याप्त धन है, तो वह निश्चिंत होकर संतोष के साथ धूप में, सड़क के किनारे या नारियल की छाया में सो जाता है। फिर वह केवल पान या केले के पत्ते पर उबले हुए चावल खाने के लिये ही कभी-कभी उठता है।

जब उसकी पूँजी प्रायः समाप्त हो जाती है तो वह पहले गली के कोनों पर, या मंडी के पत्थर पर पूर्ववत् बेचने के लिये नया माल ख़रीदता है, यहाँ तक कि उसके लिये विश्राम का समय एक बार फिर आ पहुँचता है।

जिस प्रकार मध्यकाल में मिस्र-भूमि में इब्रानियों के साथ बर्ताव हुआ था, अछूतों के पास कोई ऐसा हज़रत मूसा नहीं जो उनको अधिक अनुकूल देशों में ले जाकर स्वतंत्र और पुनर्जीवित कर दे। वे वाणिज्य और कला-कौशल से कभी भी भारत के यहूदी न बन सकेंगे।

ऐसी ही आडंबरयुक्त दंड-नीति की बदौलत ब्राह्मण लोग प्रत्येक वर्ण को उसके लिये नियत विशेष सीमा के अंदर बंद रखने में समर्थ थे, और पतित कर देने का भय देकर अपने निरंकुश अधिकार का सम्मान सबसे कराते थे।

हम बताएँगे कि इस समाज-संगठन ने भिन्न-भिन्न प्राचीन जातियों को दाय में क्या दिया, और मिस्र, जूडिया, प्रत्युत यूनान और रोम पर इन वर्ण-विभागों का, अपराधी तथा उसके वंशजों के नैतिक तथा स्थायी अधःपतन द्वारा दमन का, उपरि एशिया की जातियों तथा संस्थाओं पर अहम्मन्य निरंकुश पुरोहितों के—रहस्यों, भविष्य-द्वाणियों, चमत्कारों और अनृतों द्वारा धर्म-बुद्धि को उत्पन्न करनेवाले

चालाक ब्राह्मणों के—अनवरत प्राधान्य का कैसा विपत्ति-जनक प्रभाव पड़ा है ।

"छल, कपट और झूठ से वे ऐसी ज़ंजीरें तैयार करते हैं जिन्हें कि जकड़ी हुई आत्मा तोड़ नहीं सकती ।"*

फूट डालो, दुर्वृत्त कर दो, और शासन करो !

यदि हम भविष्य की पुस्तक में से शीघ्र ही इसका निशान न मिटा देंगे, और स्वतंत्रता के नाम पर मनुष्य-जाति के शब्द-भांडार में से पुरोहित का नाम ही न काट डालेंगे, तो यह पुराना उपाय, जो ब्रह्मा के पुजारियों से मेंफिस (Memphis) और इल्यूसिस (Eleusis) के पुजारियों के पास और लेवाइटेंस (Levites) और अरुसपिसों (Aruspices) के पास पहुँचा था, आधुनिक जातियों को पराजित करके ह्रास और विनाश के गड्ढे में ढकेल देगा ।

छठा अध्याय

मेनस (Manes) और पुरोहित—उनका मिसर पर प्रभाव

मिसर, अपनी भौगोलिक स्थिति से, अवश्यमेव उन देशों में से एक था जहाँ भारतीयों ने सबसे पहले बस्तियाँ बनाई थीं। इसने उस प्राचीन सभ्यता का प्रभाव सबसे पहले ग्रहण किया था, जिसका प्रकाश हम तक भी पहुँचा है।

जब हम इस देश की संस्थाओं का अध्ययन करते हैं तब यह सचाई और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है। इन संस्थाओं में उत्तर एशिया की संस्थाओं का इतना अनुकरण पाया जाता है कि हम और किसी परिणाम पर पहुँच ही नहीं सकते। इस विषय में जो भारी प्रमाण दिए जा सकते हैं उनके सामने कट्टर-से-कट्टर विरोधी को भी सिर झुकाना पड़ता है।

मैं जिस बात को विशेषरूप से प्रमाणित करने की ज़िम्मेदारी लेता हूँ वह है प्राचीन काल की सभी जातियों की नागरिक तथा राज-नीतिक संस्थाओं का सादृश्य, सबमें मूलादर्श की एकता और भारत का उनका गुरु होना। मैं आगे चलकर यह भी सिद्ध करूँगा कि धर्म-संबंधी ईश्वरीय ज्ञान सबमें एक है, और वह भारत से सब स्थानों में गया है।

मिसर के अति प्राचीन काल पर ध्यान दीजिए। वहाँ का राज्य क्या था? व्यवस्थापक मनु या मेनस के प्रत्यादेश के नीचे भारत का जो राजप्रबंध था उसी की यह हूबहू प्रतिलिपि थी। मनु के नियमों को प्रवासी ऐतिह्य ने सुरक्षित रक्खा था और नवीन देश में मातृ-भूमि का-सा समाज बनाने के लिये उन्हें प्रचलित किया था।

मनु या मेनस का यह नाम, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, किसी विशेष व्यक्ति का नाम नहीं। इसका संस्कृत में आशय मनुष्य, विशेषतः व्यवस्थापक है। यह एक ऐसी उपाधि है जिसकी प्राप्ति की आकांक्षा प्राचीन काल में मनुष्यों के सभी नेता किया करते थे। यह उन्हें उनकी सेवाओं के बदले में दी जाती थी, या वे इसे अपने लिये सम्मान के तौर पर ग्रहण किया करते थे।

इस प्रकार, जैसा कि हम देख चुके हैं, भारत के पहले मनु का प्राचीन काल पर वैसा ही प्रभाव था जैसा कि जस्टिनियन के संकलित ग्रंथ (Digest of Justinian) का आधुनिक विधि-रचना पर है।

इस व्यवस्थापक की शिक्षा से मिसर देश में ईश्वरकर्तृक शासन और पुरोहित-शासन का होना स्वाभाविक था। भारतवर्ष के सदृश उस पर भी वैसी ही कड़ाई और आधिपत्य की वैसी ही कल्पना के साथ पूजा और धर्मसत्ता लगाई गई थी।

सबसे ऊपर और श्रेष्ठ पुरोहित (ब्राह्मण) था। वह सारी सामाजिक और धार्मिक सचाई का रक्षक तथा अभिभावक, राजा तथा प्रजा का शास्ता, परमेश्वर से उत्पन्न हुआ, ईश्वर द्वारा अभिषिक्त, वस्तुतः, सब मनुष्यों से उच्चतर और सब नियमों से ऊपर था। वह अपने किसी भी कर्म के लिये उत्तरदाता न था।

उसके नीचे राजा था। वह केवल उन्हीं शर्तों पर शासन कर सकता था कि वह पुरोहित (ब्राह्मण) के आदेशानुसार कार्य करे।

फिर इनके नीचे, भारतवर्ष की तरह ही, हम देखते हैं कि वणिक् ऊपर के दो वर्णों को धन देने, उनकी विलास-सामग्री, उनके मनो-लौल्य, और उनकी विषयासक्ति का व्यय सहन करने के लिये बाध्य हैं। सबसे नीचे शिल्पी या काम करनेवाले थे, यथा कारीगर, घर का काम करनेवाले नौकर और दास।

विद्याओं का सीखना पुरोहितों ने एकमात्र अपना ही अधिकार बना रक्खा था। भौतिक विकारों को केवल वही समझते थे, और इसी से वे राजाओं तथा सर्व साधारण की आत्माओं को प्रभावित कर सकते थे। उन्होंने अपने लिये परमेश्वर, त्रिमूर्ति, सृष्टि-कार्य और आत्मा के अमरत्व की उच्च धारणाओं को वैसा ही बनाए रक्खा, और सर्व साधारण को भूतों, प्रेतों, मूर्तियों और बैल की पूजा करने दी। भारतवर्ष के सदृश मिसर में भी बैल पवित्र पशु समझा जाता था।

थीबीस (Thebes) और मेंफ़िस (Memphis) के ये पुरोहित, जो विशाल और अंधकारमय मंदिरों में रहते थे, अपने उच्च अध्ययन को अथवा अपने आनंद को छोड़कर आडंबर के साथ विहार करने के लिये बाध्य होने पर करुणा या घृणा से कितने हँसे होंगे! अर्धसभ्य लोगों को उस समय कितना हर्ष हुआ होगा जब इन पुरोहितों को उस एपिस (Apis)-नामक बैल को छोड़ना पड़ा जिसको उन्होंने अपने बल के अभिमान में, और उनके द्वारा पददलित हीन जाति के प्रति घृणा के कारण परमेश्वर बनाया था!

इस बैल की मृत्यु से उनका कितना मनोरंजन हुआ होगा, जिससे अमरत्व के सिद्धांत को बनाए रखने के लिये उन्हें इसे पुनः स्थापन करना पड़ा।

उन्होंने अपने ज्ञान-निक्षेप को, जो उनकी सारी मान्यता का स्रोत था, कैसी अच्छी तरह युग-युगांतर तक सुरक्षित रक्खा! और जिन लोगों को उन्होंने दीक्षित करने की अनुमति दी होगी न-जाने उनको कैसी-कैसी भीषण शपथ देकर अपने अधीन किया होगा!

ब्राह्मणों की तरह मिसर के पुरोहित भी जिस श्रेणी में मनुष्य का जन्म हुआ, उनका उससे ऊपर उठना असंभव बताते थे; इस प्रकार

उन्होंने अपनी संस्थाओं पर भी उसी जड़ता और स्थिरता की छाप लगाई थी।

दंड-नीति भी वही थी। लोगों को वर्णच्युत कर देने, अर्थात् आंशिक या संपूर्ण जाति-बहिष्कार की धमकी देकर क़ाबू में रक्खा जाता था।

इससे भी अछूतों की एक वैसी ही निष्कासित जाति उत्पन्न हो गई, जिसका वर्णन हम एक विशेष अध्याय में करेंगे। सत्य घटनाओं पर विचार करने से हमारी सम्मति यह है कि इन अछूतों और अपांक्तों की जाति से ही इबरानी लोग उत्पन्न हुए जिनका उद्धार मूसा, मेनसस (Manses) या मॉइस (Moise)ने किया।

मिसर के पुरोहितों को राजाओं की जिस जाति का मुक़ाबला करना पड़ा, वह भारत के क्षत्रियों के समान, जिन्होंने ब्राह्मणों के अधिकार का प्रतिरोध करने का कभी यत्न ही नहीं किया, कोमल और सुगमता से झुक जानेवाली न थी।

शायद इसलिये कि अंत को ओसिरिस (Osiris) के पुजारी बहुत असहनीय हो गए, या फ़िरऔनों (Pharaohs) को एक ऐसी स्वाधीनता का स्वप्न होने लगा, जिसने उनकी आकांक्षा को भड़का दिया, या शायद काल का हाथ ही यह चाहता था कि ब्राह्मणों से आई हुई इन जराजीर्ण संस्थाओं को गिराकर इनके स्थान में नवीन संस्थाएँ तैयार की जायँ; कई युगों तक इस निद्रा में रहकर, जिससे भारत अभी तक भी नहीं जागा, मिसर पुरोहितों और राजाओं के संग्राम से उठ बैठा। इन पुरोहितों और राजाओं ने अपने-अपने पक्ष के लोग एकत्र करके, तलवार और भाले से, उस अधिकार के लिये झगड़ा किया, जो केवल सबसे बलवान् का ही भाग था। लोग चिरकाल तक अपने ऊपर, बारी-बारी से, कभी

पुरोहितों के वंश का और कभी राजाओं के वंश का, रण-क्षेत्र में होने-वाले निर्णय के अनुसार, शासन देखते रहे।

संसार के रंग-मंच से प्राचीन मिसरी सभ्यता के लोप हो जाने का कारण निस्संदेह यही हुआ है। भारत के सदृश, ईश्वरकर्तृक शासन केवल दास ही उत्पन्न कर सकता था। जाति-पाँति के सभी विभागों की जड़ इतनी गहरी गड़ चुकी थी कि राजाओं की अंतिम विजय पर उन्हें यह नहीं सूझता था कि अतीत काल के संकीर्ण ऐतिह्यों को कैसे तोड़ा जाय और अपने लोगों पर भरोसा करने के लिये उन-का कैसे पुनरुद्धार किया जाय? वे, सीसोसट्रिस (Sesostris) के सदृश, घूमते फिरनेवाले अस्थिर विजेता बन गए। उन्होंने अपने पड़ोसियों के प्रदेशों में आग और तलवार लेकर प्रवेश किया। परंतु वे किसी चीज़ को प्रतिष्ठित करने में अशक्त थे, क्योंकि जब राष्ट्र का प्रत्येक मनुष्य एक-व्यक्तित्व होने के स्थान केवल एक अकेली चीज़ बना दिया जाता है, तो व्यक्तिगत इच्छा की अनियंत्रित शक्ति उन्नति की गति के लिये सदा असमर्थ होती है।

आप चाहे पत्थर की विशाल मीनारें खड़ी कर लें, जिन्हें देखकर आनेवाले लोग दंग रहेंगे; झीलें खोद डालें, बड़ी-बड़ी नदियों के प्रवाहों को बदल डालें, गगन-भेदी प्रासाद बनवा लें, अपने विजयी रथ के पीछे लड़ाई में पकड़े हुए एक लाख दासों का समूह लगा लें; नीचाशय चाटुकार इतिहास आपके लिये यश के मुकुट तैयार कर देगा। जिन ब्राह्मणों, लेवीटियों और पुरोहितों को आप धन और सम्मान से नाकोंनाक भर चुके हैं वे आपकी स्तुति गाएँगे, भूमिगत जाति के सामने आपको परमेश्वर के उद्देश को पूर्ण करनेवाला एक ईश्वरीय दूत प्रकट करेंगे; परंतु विचारक और दार्शनिक के सामने, और, निरंकुश अधिपतियों के इतिहास के सामने नहीं, मानव-जाति

के इतिहास के सामने, आप एकतानता और स्वतंत्रता से होनेवाली उन्नति के कार्य में एक बाधक रोड़ा कहलाएँगे। यही उन्नति ईश्वर का बनाया हुआ लक्ष्य है और प्रत्येक जाति को इसकी प्राप्ति का यत्न करना चाहिए। आप केवल एक पाशविक घटना कहला-एँगे जो मनुष्य-प्रकृति की निर्बलता और राष्ट्रों के ह्रास-क्रम को अधिक स्पष्ट रीति से प्रकट करने के लिये इस संसार में आए।

इस प्रकार मिसर, ईश्वरकर्तृक शासन (पुरोहितशाही) के पतन के अनंतर, राजाओं और पुरोहितों के प्रभुत्व के अधीन, क्रमशः ह्रास और विस्मरण के गहरे गढ़े में गिर गया।

इस विनष्ट शासन का रिक्त स्थान भरने के लिये मिसर के पास कोई चीज़ न थी। इसलिये इसकी मृत्यु अनिवार्य थी।

इन दो प्राचीन देशों—भारत और मिसर—की तुलना से हम दोनों स्थानों में वही शासन, वही वर्ण-व्यवस्था, वही संस्थाएँ, उन-के वही परिणाम देखते हैं, और भविष्यत् के इतिहास में हम इन लोगों को कहीं भी स्थान नहीं देते।

ऐसे सादृश्य के होते, मैं समझता हूँ, कोई भी मनुष्य, जब तक वह यह न कहे कि मिसर में दैवयोग ने ही सुदूर पूर्व की सभ्यता के नमूने पर एक सभ्यता रच डाली थी, या वह यह न कहे, जो कि इससे भी अधिक असंगत होगा कि मिसर ने भारत में उपनिवेश बनाया था और मनु ने मेनस (Manes) की नक़ल की थी, तब तक इस बात पर विवाद नहीं कर सकता कि मिसर की उत्पत्ति बिलकुल हिंदुओं से हुई है।

मैं समझता हूँ, ऐसी राय केवल उन्हीं लोगों की हो सकती है जिन्हें निषेध में आनंद आता है, या जो भारत से अनभिज्ञ हैं। उन्हें मैं केवल यही उत्तर दूँगा—तुम्हारे पास केवल एक ही उक्ति और

वासी आपत्तियाँ हैं जिन्हें मैं पहले सुन चुका हूँ; "तुम्हें कौन कहता है कि भारत ने मिस्र की नक़ल नहीं की ?" आप चाहते हैं कि इस उक्ति का ऐसा प्रबल खंडन किया जाय कि उसमें संदेह का लेश भी न रह जाय।

तर्कसंगत मार्ग का अनुसरण करने के लिये, भारत से संस्कृत को, जिससे दूसरी सब भाषाएँ बनी हैं, छीन लीजिए; फिर भारत में मुझे कोई तूर्ज (Papyrus), पत्र, कोई स्तंभाकार शिला-लेख, कोई छोटे आकार का मंदिर (Bass-relief) ऐसा दिखलाइए जो मिस्र-देशीय होने का प्रमाण दे रहा हो।

भारत का सारा बचा-खुचा साहित्य, विधि-रचना और दर्शन, जो काल और दुष्टों के अपवित्र हाथों का मुक़ाबला करता हुआ, प्राचीन भाषा में सुरक्षित, अभी तक भी वहाँ विद्यमान है, भारत से छीन लीजिए—फिर मुझे वे स्रोत दिखलाइए जिनसे मिस्र देश में उनको नक़ल किया गया था।

यदि इच्छा हो तो हिमालय, ईरान, एशिया माइनर और अरब से बाहर जानेवाले प्रवासियों की उस बड़ी लहर पर कुछ ध्यान न दीजिए, जिनके चिह्नों का विज्ञान ने पता लगा लिया है। परंतु मुझे मिस्र को उपनिवेश बनाते—अपने पुत्रों को भूमंडल में भेजते दिखलाइए। कौन-सी ऐसी भाषा और कौन-सी ऐसी संस्थाएँ हैं, जो मिस्र ने संसार को दी हैं ?

क्या हम नहीं देखते कि आदि युगों में मेनस (Manes) के मिस्र—पाजकीय मिस्र—में वैसी ही संस्थाएँ थीं जैसी कि भारतवर्ष में थीं ? जो ऐतिह्य इन्हें मिला था उसे क्रमशः भूल जाने के कारण उसके राजाओं ने पुरोहितों के जुए को गले से उतार दिया। समेटिकस (Psammeticus) के समय से मिस्र ने विशुद्ध ईश्वरकर्तृक शासन के आदर्श को छोड़कर उसके स्थान में राजतंत्र-शासन का आदर्श

स्थापित कर दिया, जो उस समय से नवीन सभ्यताओं पर शासन कर रहा है। क्या हम नहीं जानते कि बतलीमूसों (Ptolemies) के शासन-काल में वर्ण-विभाग रद्द किया गया था ?

मिसर का सारा गुण इसी में है, परंतु इसके अतिरिक्त उसमें अन्य गुण बताना भारी भूल है। प्राचीन देशों में सबसे पहला यही था जिसने सदूर पूर्व की उपज पुरोहितशाही का नाश किया, परंतु यह अपने आपको उस पतन से न बचा सका, जो पुरोहितशाही के विनाशक और दुष्ट प्रभाव ने उसके लिये तैयार किया था।

इसके अतिरिक्त, यदि हम विस्तार में जा सकें, यदि हम इस बात पर ध्यान न दें कि सिद्धांतों के साहश्य, जो जातियों के अस्तित्व का आधार हैं, हमारे पक्ष का पर्याप्त रीति से समर्थन करते हैं, तो हम बड़ी सुगमता से प्रमाणित कर सकते हैं कि ईश्वर का एकत्व, जिसको मंफिस के पुरोहितों ने स्वीकार किया है, नफ़ (Knef), फ़्ता (Fta), और फ़्रे (Fre) जो कि सृष्टि को उत्पन्न करनेवाले विशेष रूप से तीन देवता, मिसरी धर्म-विद्या में, त्रिमूर्ति के तीन व्यक्ति हैं, उन बातों का उज्ज्वल नमूना हैं, जो भारत से मिसर में पहुँची थीं, और जंतुओं, उदाहरणार्थ, वृषभ और क्रौंच की पूजा करना ऐसे मूढ़ विश्वास हैं, जो ऐतिह्य द्वारा भारत से वहाँ पहुँचे हैं। इस ऐतिह्य के मार्ग का पता लगाना बड़ा ही सुगम है। यह भी सिद्ध किया जा सकता है कि प्राथमिक परमाणु के रूप में प्रकृति, जिसे दीक्षित लोग बूटो (Bouto) कहते हैं और जो अंडे के उर्वर रूप में दिखलाई जाती है, वेद और मनु का अभिज्ञान-मात्र है। मनु सब पदार्थों के बीज की तुलना "स्वर्ण-सदृश चमकते हुए अंडे" से करता है।

संसर्ग की इन बड़ी-बड़ी बातों का दिखला देना ही पर्याप्त होगा। ये बातें हमारे सामने प्राचीन मिसर का समाधान भारत और ब्राह्मणों के प्रभाव से करती हैं, और जहाँ तक संभव है, तर्क से उस परदे के एक सिरे को उठाती हैं जो कि समस्त जातियों के जन्म-स्थान को अंधकार में ढाँपे हुए है।

सातवाँ अध्याय

मिनोस और यूनान

यूनान पर भारत के प्रभाव का सबसे अकाट्य प्रमाण यह है कि उस देश की भाषा संस्कृत से बनी थी। इस विषय में हम पहले ही बहुत कुछ कह आए हैं।

वास्तव में, देवताओं तथा उपदेवताओं के काल्पनिक तथा वीर-युगों और लोगों के वे सारे नाम, जो यूनान ने हमें दिए हैं प्रायः विशुद्ध संस्कृत हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि इस भाषा तथा इसके वाक्य-विन्यास को बनानेवाले अधिकांश शब्दों की वही उत्पत्ति है। यदि इस विषय पर कोई विवाद चलाना चाहे, तो हमारे लिये यह दिखलाना बड़ा ही सुगम है कि यह वचन केवल एक गणित-संबंधी सत्य है और छाती ठोंककर सिद्ध किया जा सकता है। इसलिये हम यूनानी व्यवस्थापक का वर्णन केवल थोड़ी-सी ही पंक्तियों में करेंगे। वास्तव में इसका कोई भी लिखित ग्रंथ हम तक नहीं पहुँचा।

यह बात निर्विवाद है कि मिनोस का जन्म एशिया का था। यूनानी इतिहास बताता है कि वह पूर्व से क्रीट नगर में आया था। यहाँ लोग उसकी बुद्धिमत्ता को देखकर चकित रह गए। उन्होंने उससे विधि-रचना के लिये प्रार्थना की। तब उसने मिस्र की यात्रा की और वहाँ की संस्थाओं का अध्ययन किया; एशिया, ईरान और सिंधु के किनारों ने बारी-बारी से उसे अपने गुनियों और प्राचीन विधि-रचनाओं (क़ानूनों) के विषय में पूछताछ करते देखा; तब वह क्रीट-निवासियों को अपना धर्म-शास्त्र देने के

लिये लौट आया। इस धर्म-शास्त्र को, शीघ्र ही बाद को, सारे यूनान ने ग्रहण कर लिया है।

संभवतः इन भ्रमणों के पश्चात् और इनके बदले में ही उसे मिनोस नाम मिला। इस शब्द के संस्कृत-धातु का अर्थ, जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, व्यवस्थापक है। और हम समझते हैं कि मिसर और एशिया में उसके भ्रमणों और पूर्व में उसका जन्म होने का विचार करके हम उसको मनु के साथ, और मेनस (Manes) के साथ, मिलाने में, और सत्य घटनाओं द्वारा प्रमाणित सम्मति को प्रकट करने में सुरक्षित हैं, क्योंकि उसने प्राचीन स्रोतों से उपदेश लिया था; उसने हिंदुओं और मिसरी व्यवस्थापकों के ग्रंथों से प्रत्यादेश प्राप्त किया था; और उसने उस सम्मानार्थक उपाधि को धारण करना आवश्यक समझा था, जो लोगों ने कृतज्ञता के भाव से प्रेरित होकर उसके दो अग्रगामियों को प्रदान की थी।

हम बार-बार कह रहे हैं कि ये शब्द—मनु, मेनस, मिनोस, और मूसा—कोई विशेष नाम नहीं, प्रत्युत ये प्राचीन व्यवस्थापकों की उद्बोधक उपाधियाँ हैं, जैसा कि भारत के राजा क्षत्रिय, फ़ारस के राजा कैख़ुसरो, और मिसर के फ़िरऔन कहलाते थे।

जो प्रमाण हम इस पुस्तक के पहले अध्याय में दे चुके हैं, उन्हीं के साथ संतुष्ट रहते हुए हम यह नहीं पूछेंगे कि यूनानियों के उत्सव, उनके 'अपोलो' देवता की पुजारिनें और इल्यूसिस (Eleusis) के रहस्य, जिनका पुरोहितों ने इतनी चतुराई से व्यवहार किया था, जैसा कि हमारा दृढ़ विश्वास है, पूर्वी, देवदासियों और ब्राह्मण-धर्म के रहस्यों से अभिन्न थे। इनके अतिरिक्त, यूनान, जिस पर हिंदुओं के साहित्य, भाषा और दर्शन का इतना भारी प्रभाव पड़ा था, अपनी काल्पनिक उत्पत्ति की शीघ्रता में भुलाकर जल्दी ही अपने ओलिंपस—मूढ़विश्वासात्मक ऐतिह्य के लंपट

देवताओं—पर हँसने लगा, और, जैसा कि हम देख चुके हैं, उच्छृंखल विचार को परास्त करने के उद्देश्य से, दृढ़ता के साथ उस मार्ग पर चलने लगा, जो उसके लिये शास्त्रों ने खोल रक्खा था।

यदि इस प्रशंसनीय देश की शक्ति और जीवन-रस को सुखा देने के लिये रोम, अपने पाशविक आक्रमण के साथ, प्रकट न होता, तो स्वतंत्रता और उन्नति की वे सब समस्याएँ, जो अभी तक भी योरप को राज्य-क्रांतियों के साथ क्षुब्ध कर रही हैं, हेलास (Hellas) के पुत्रों द्वारा, स्वतंत्र तथा प्राचीन हिंदू-समाज के वंशजों द्वारा कभी की हल हो गई होतीं।

यद्यपि सीरीस (Ceres) के पुरोहितों और यूमोलपीडियों (Eumolpides) के परिवार का भी, जो कि साक्षात् लेवियों (Levites) की एक जाति थे, पूर्व काल में यूनान में बड़ा प्रभाव था, फिर भी यह प्रकट नहीं होता कि वे अपने लाभ के लिये जाति के शासन का अपहरण करने में कभी सफल हुए हों। यही एक मुख्य कारण था कि इस संकीर्ण भूमि में मानव-विचार का अच्छा विकास हुआ। इस देश ने, घर पर, ऐसे युग में स्वतंत्रता और प्रजातंत्र-शासन स्थापित किया था, जब कि सारी राजनीतिक और धार्मिक निरंकुश सत्ताएँ संसार को दासत्व की शृंखला में बाँधने के लिये एक दूसरे की सहायता कर रही थीं।

वास्तव में, हम देखते हैं कि हिपियस (Hippias) के पतन से लेकर मक़दूनिया और रोम की विजय के समय तक, एथेंस आधुनिक जातियों के सामने लोकप्रिय शासन का उदाहरण उपस्थित करता रहा है। इस शासन में स्वतंत्रता ने साहित्य, दर्शन और कलाओं की सारी महिमाओं को पूर्णता तक पहुँचाया था।

यद्यपि, सार्वजनिक मतदानाधिकार से, अपने अरकन (Archon),

अपने मजिस्ट्रेट और अपने कर्मचारी चुना करता था; शांति और युद्ध का अधिकार, व्यवस्थापक शक्ति और प्रजा-तंत्र के सभी बड़े-बड़े स्वार्थों का विमर्श लोगों की साधारण सभा के हाथ में था। प्रत्येक स्वतंत्र मनुष्य को अपने मत तथा शब्द। द्वारा उस सभा की सहायता करनी पड़ती थी, अन्यथा उसके सारे अधिकार छीन लिए जाते थे।

संसार में राष्ट्रीय बुद्धि का यह पहला प्रादुर्भाव था। इस समय तक लोगों को किसी एक प्रभु की मनमानी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था। इस नीच अधीनता का सभी समाजों पर शासन था।

भारत पुरोहित के अत्याचार से आर्त्तनाद करता हुआ मर रहा है। इस ऐतिह्य को दायभाग में लेनेवाला मिसर पुरोहित-शाही को गिराकर राजाओं के पंजे में पड़ने से नष्ट हो रहा है। और यूनान, पूर्व को, और उस याजकीय प्रभुत्व को स्मरण करके, जिसको वह त्याग चुका था, अधिक स्वतंत्र भूमि पर अपना विस्तार करने के लिये, उन्नति की एक और छलांग मारता है, और, दास के स्थान में नागरिक को बैठाकर, जाति का शासन जाति द्वारा प्रतिष्ठित करता है।

यहीं से अर्वाचीन भाव की उत्पत्ति हुई। इस प्रकार दक्षिण से इन पहले हिंदू-देशांतर-गामियों ने, ईश्वरीय प्रत्यादेश और पुरोहित की चिरकालिक दासता के उपरांत, क्रमशः इस दासत्व के जुए को उतार फेंका, और स्वतंत्रता तथा बुद्धि के द्वारा उन्नति का युग आरंभ हुआ।

क्या कारण था जो उत्तर के मैदानों से और हिमालय से स्वदेश-त्यागियों की दूसरी लहर, जो योरप में स्कैंडिनेवियन, जर्मन और स्लाव जातियों (निस्संदेह भूमि की शुष्कता और नवीन जल-वायु की कठोरता से रुकी हुई) को लाई, सभ्यता को उतनी शीघ्रता से प्राप्त न कर सकी, जितनी शीघ्रता से कि उसे दक्षिण की जातियों ने

प्राप्त किया था, और एक दिन प्रातःकाल के सुहावने समय में वह उनको नष्ट करने के लिये उन पर झपट पड़ी।

वनों के जंगली बच्चे, ओडिन (Odin) तथा स्कंद (Skanda) के उपासक लोग अपनी उन्नति के पौराणिक अभिज्ञान को सुरक्षित रक्खे हुए थे; पूर्वीय ऐतिह्यों से भरे हुए उनके गीत और कविताएँ उनकी जन्म-भूमियों और निरभ्र आकाशों के जीर्णोद्धार का स्मरण कराती थीं। सूर्य की नगरी, असगर्द, की तलाश में फिरते हुऐ वे रोम में आ पहुँचे—और इसके साथ ही प्राचीन संसार का लोप हो गया।

नवीन संसार एक ऐसे प्रभुत्व के नीचे पंद्रह शताब्दियों से अधिक समय तक सोता रहा, जो प्राचीन प्रभुत्व से कुछ कम याजकीय और कुछ कम कठोर न था। इसके बाद जाकर उसे कहीं यूनान का रिक्थदान, बड़ी-बड़ी सामाजिक तथा राजनीतिक सचाइयाँ और उज्ज्वल अभिज्ञान प्राप्त हुआ।

आठवाँ अध्याय

ज़र्दुश्त और फ़ारस

जो सुधारक फ़ारस देश में ईश्वर का दूत बनकर आया था, उसका नाम, फ़ारसी भाषा में, ज़र्दुश्त है। ज़ंद में उसे ज़र्तुश्तरो और पहलवी भाषा में ज़र्दुश्त कहते हैं। ये भिन्न-भिन्न उच्चारण प्राचीन संस्कृत नाम ज़ुर्यस्तर (Zuryastara) जो सूर्य की पूजा का पुनः प्रचार करता है; सूर्यास्त्र ?) के ही रूपांतर हैं। इसी से यह ज़र्दुश्त नाम निकला है। यह राजनैतिक तथा धार्मिक व्यवस्थापक की एक उपाधि-मात्र है।

उसकी संस्कृत-व्युत्पत्ति पर्याप्त रूप से प्रकट करती है कि (यहाँ तक इतिहास की साक्षी के अनुसार भी) ज़र्दुश्त उत्तर एशिया, अर्थात् भारत में उत्पन्न हुआ था। उसने अपनी आयु का एक बड़ा भाग ब्राह्मणों से भारत के धर्म तथा क़ानून को सीखने में लगाया। वह आप भी निस्संदेह ब्राह्मण था और ब्राह्मणों ने उसे दीक्षा दी थी। भ्रमण करते-करते वह फ़ारस में जा निकला। वहाँ उसने अतीव मूढ़ विश्वास-मूलक रीति-रिवाज देखे। उसने उनको सुधारने और उस देश को एक ऐसा धर्म देने का काम अपने ऊपर लिया, जो नीति और बुद्धि के अधिक अनुकूल था।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि ज़र्दुश्त भारत के मंदिरों और देवालयों से भागा हुआ था। वह जनता को उन सचाइयों और उस उच्च ज्ञान से लाभान्वित करना चाहता था, जिसको पुरोहितों ने केवल अपने लिये ही अलग कर रक्खा था। परंतु उनके डर से वह भारत में प्रचार नहीं कर सकता था। इसलिये उसने प्रचार

के लिये एक ऐसा देश ढूँढ़ा, जो प्रत्यक्ष रूप से अपेक्षाकृत उनके कम अधीन था।

वह महाराजा गुश्तास्प और इसफ़ंदियार की कचहरी में पहुँचा। उसने उन्हें ब्राह्मणों के प्रभाव से निकलने की रीतियाँ बताईं। आज तक उनका अभिषेक ब्राह्मण ही करते थे। उसने चतुर प्रलोभनों से उन्हें अपने पक्ष में कर लिया। उसे अपने नवीन सिद्धांत का प्रचार करने और सारे ईरान, बल्कि सिंधु तक, अर्थात् ब्राह्मण-राज्य के ठीक सीमावर्ती धर्म-मंदिर तक अपने राजनियमों को चलाने की अनुमति मिल गई।

इसी प्रकार, पीछे से, लूथर ने जर्मन राजाओं को निरंकुश और कामचारी पोपों के दासत्व को उतार फेंकने की संभावना दिखाकर अपने सुधार-संघ में भरती किया था।

एक विटंबर्ग का बड़ा महंत (मँक) ही ऐसा था, जिसने अपने अग्रगामी की तरह, जनता की कल्पना को आश्चर्य-जनक पदार्थों और अद्भुत वस्तुओं द्वारा धक्का देने के स्थान, अपने आपको ईश्वर का दूत प्रकट करने के स्थान, अपने उद्देश की सफलता तर्क के नाम पर अपील करने में ही समझ रक्खी थी। निस्संदेह यदि वह कुछ वर्ष पहले जन्म लेता, तो सर्वसाधारण पर प्रभाव डालने के लिये वह अपने आपको रहस्य के दीप्ति-मंडल से घेरे रखने के लिये विवश होता—और केवल थोड़े-से दीक्षित व्यक्तियों के सामने ही रहस्य का परदा उठाता।

ज़र्दुश्त की हिंदू-उत्पत्ति इतनी निश्चित है कि स्वयं इतिहास हमें सूचना देता है कि ब्राह्मणों ने इस झूठे भाई के छोड़ जाने पर रुष्ट होकर, जिसने उनकी शक्ति को पहला घातक धक्का लगाया था, उसे बुला भेजा कि हमारे सामने आकर अपने संप्रदाय की व्याख्या करो। जब वे उसे इस जाल में न फँसा सके, तो उन्होंने एक भारी

सेना लेकर, पूर्वीय भारत से पश्चिमी भारत (ईरान) को, जो उनके आधिपत्य से निकल चुका था, पुनः जीतने के लिये चढ़ाई की। ज़र्दुश्त ने उन्हें हार दी, जिससे उन्हें वापस लौटना पड़ा, और वह अपने नए काम को शांति-पूर्वक करता रहा।

ज़र्दुश्त ने ब्राह्मण-प्रणाली को छोड़कर बहुत ही कम नई बातों की शिक्षा दी। उसने लोगों को जातियों (वर्णों) में बाँटा। इनके सिर पर, और राजाओं से भी ऊपर, उसने मग अर्थात् पुरोहितों को रक्खा। उसने सार्वजनिक और स्वकीय जीवन को सुव्यवस्थित किया, और अंततः एक ऐसी दंड-पद्धति ग्रहण की, जिसके सदृश कि हम भारत और मिस्र में स्थापित हुई देख चुके हैं। इस दृष्टि से उसका धर्म-संशोधन केवल इतना ही था कि उसने उन अनेक मूढ़विश्वासों का परित्याग करके, जिनमें हिंदू-पुरोहितों ने जनता को गिरा दिया था, सबको वैदिक धर्म की, अर्थात् त्रिमूर्ति में ईश्वर की एकता की शिक्षा दी।

उसने परमात्म-तत्त्व, विशेषतः, उत्पन्न करनेवाली शक्ति को ज़र्वने-अकेरीनी (Zervane-Akerene) का नाम दिया।

जगद्धात्री शक्ति का नाम उसने उर्मुज़ और विनाश तथा पुनर्निर्माण-कारिणी शक्ति का नाम अहरिमन रक्खा।

यह ठीक हिंदू-त्रिमूर्ति है। उनके लाक्षणिक गुण और सृष्टि में उनके काम भी ठीक वही हैं।

इसने उन सब मूढ़विश्वासों को जड़ से नहीं उखाड़ा, जिनको वह, कदाचित्, तहस-नहस कर डालने का विचार रखता था; पहले-पहल वह स्वाधीन विचारक (नास्तिक) था, परंतु शीघ्र ही उसने अनुभव किया कि अभी इन विचारों के लिये समय नहीं आया, और जिस प्रकार की संस्थाओं की कल्पना मैंने कर रक्खी है, उनके लिये अभी जनता परिपक्व नहीं हुई। दुर्भाग्य से सदा प्रत्येक

सुधारक के पीछे उसके शिष्यों की एक ऐसी लैन-डोरी रहती है, जिनकी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ उन्नति को रोकने और प्राचीन सिद्धांतों को बदल डालने का कारण बन जाती हैं।

मग शीघ्र ही, बाक़ी सब याजकीय जातियों की तरह, एक दीक्षित श्रेणी—एक इजारेदार श्रेणी—बन गए। वर्ण-विभाग ने उनके अधिकार के सामने जनता को झुकाने में सहायता दी, और जिस प्रकार भारत में हुआ था, जैसे मिसर में हुआ था, लोगों के लिये, जिन्हें अन्य देशवासियों के सदृश ही यह भी मालूम न था कि आडंबर और भंडता से रहित पूजा क्या होती है, रहस्यों, यजनों और जुलूसों की आवश्यकता पड़ी। इसी से उन एक सौ पशुओं के भीषण बलिदानों और सूर्य तथा अग्नि के अमानुषी पर्वों की सृष्टि हुई, जिनको प्राचीन लोगों ने इतनी देर तक स्मरण रक्खा।

ज़र्दुश्त के शिष्य गुरुदेव के संबंध में बहुत-सी कथाएँ सुनाते हैं। उनमें से एक यह है कि एक दिन वह एक ऊँचे पर्वत पर बैठा ईश्वर की उपासना कर रहा था। उसके चारों ओर बादल गर्ज रहे थे और बिजली चमक रही थी। इनसे आकाश के नाना भाग हो रहे थे। ऐसे समय में उसे स्वर्ग में ले जाया गया। वहाँ उसने साक्षात् उर्मुज़्द को पूर्ण ऐश्वर्य और समृद्धि में देखा। उर्मुज़्द ने उसे वे सब शिक्षाएँ दीं, जो पीछे से उसने लोगों को बताईं।

ज़र्दुश्त भूतल पर वापस आते समय अपने साथ नोस्क (Nosk-)-नामक स्मृति ले गया। यह उसने परमात्मा की आज्ञा से लिखी थी।

यह पुस्तक वेदों और हिंदुओं के पवित्र ग्रंथों की अनुलिपि-मात्र है। ये ग्रंथ ज़र्दुश्त ने, युवाकाल में, ब्राह्मणों से पढ़े थे।

इस प्रकार फ़ारस पर और सिंधु के सभी देशों पर भारत का प्रभाव एक ऐतिहासिक सचाई है। यहाँ ऐतिस, जो मिसर को

अपेक्षा कम अस्पष्ट है, धार्मिक और राजनैतिक संस्थाओं के सादृश्य से निकाले हुए सभी प्रमाणों में उन अति प्राचीन युगों के इतिहास की साक्षी जोड़ देता है, जिनमें हम पूर्व के भारत से पश्चिम के भारत तक, गंगा के किनारों से सिंधु के किनारों तक, ज़र्दुश्त के चिह्नों का पता लगा सकते हैं।

क्या अब हम समझ गए कि ये हिंदू-ऐतिह्य बड़े केंद्र से निकलकर किस प्रकार अरब, मिसर, फ़ारस और एशिया माइनर द्वारा, कुछ रूपांतर के पश्चात्, जूडिया, यूनान और रोम में पहुँच सके ?

इस अध्याय को समाप्त करने के पहले हम यह कह देना चाहते हैं कि अपने पूर्ववर्ती मनु और मेनस के सदृश ज़र्दुश्त ने, उन लोगों में जिन पर शासन करने या जिनका उद्धार करने के लिये वह आया था, अपनी उत्पत्ति और अपना जीवनोद्देश्य दिव्य ठहराया था।

नवाँ अध्याय

रोम और उसके वर्ग

रोम और उसकी संस्थाओं की उत्पत्ति एशिया से हुई है—यह एक ऐसी सचाई है, जिसकी व्याख्या का बहुत कम प्रयोजन है। पुराण-कथा कहती है कि इटालस, ट्राय के पतन के उपरांत, पराजित ट्रोजनों के साथ एशिया माइनर से भागकर इटली देश में आ बसा, और उसने अपने नाम पर इसका नाम रक्खा। बाद को, उसी जन्म-स्थान से, कुछ यूनानी जातियों ने आकर बस्ती बनाने में सहायता दी।

लोग कहेंगे कि हम यहाँ जो प्रमाण उपस्थित कर रहे हैं, वे ठीक उन्हीं काल्पनिक और वीर-युगों से लिए हुए हैं, जिनकी धज्जियाँ उड़ाने की हम प्रतिज्ञा करते हैं; इसका उत्तर सुगम है। इस बात को मानकर कि ये काल्पनिक और वीर-युग हिंदुओं के और एशिया के ऐतिह्य-मात्र हैं, उनको सामान्य उत्पत्ति का अभिज्ञान स्वीकार करके, हम समझते हैं, उपनिवेशित पृथ्वी के प्रत्येक कोने में उपनिवेशी का पूर्व से आया बतानेवाले उपाख्यान का पता लगाना हमारे सिद्धांत की और भी पुष्टि करता है। और यदि इस उपाख्यान से ऐसे रीति-रिवाज और संस्थाएँ उत्पन्न हो गई हैं, जो उस संपर्क और उस उत्पत्ति-स्थान को और भी उत्तम रीति से प्रतिष्ठित करती हैं, तो क्या हमें यह समझने का अधिकार नहीं कि हमने इस विषय को यथासंभव पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित कर दिया है।

हम देख चुके हैं कि रोम अपनी शासन-प्रणाली के उज्ज्वल सिद्धांतों के लिये भारत का ऋणी है। यदि लैटिन और ग्रीक भाषाएँ, जैसा आधुनिक विज्ञान स्वीकार करता है, संस्कृत से

निकली हैं; यदि, जैसा कि निर्विवाद है, रोमन ऑर्लिपस ग्रीक ऑर्लिपस से निकला है और ग्रीक ऑर्लिपस की उत्पत्ति भारत, फ़ारस और मिसर के रहस्यों में हुई है, तो इस सत्य को अधिक सत्य बनाने के लिये हम और क्या कर सकते हैं?

क्या रोम में अपनी पूर्ववर्ती अधिक प्राचीन जातियों के सदृश वर्ण न थे? यदि ये वर्ण-विभाग कम महत्त्व रखते थे और अधिक सुगमता से विनष्ट हो गए थे, तो क्या हमें इसका कारण अधिक उर्वरा भूमि पर तरुण रुधिर का छनकर आना और जीवन की प्रयोजनीय वस्तुओं का कम आसानी से, निस्संदेह, अधिक परिश्रम और अधिक शक्ति के साथ, उत्पन्न करना नहीं ठहराना चाहिए।

क्या पुरोहितों, शिष्ट सभा-सदस्यों (Senators) कुलीन (Patricians) और प्राकृत जनों (Plebeians) के रूप में रोमन लोगों की यह रचना हिंदू-समाज के एक दुर्बल चित्र को नहीं प्रकट करती? क्या नीच वर्ण से उच्च वर्ण में आना वैसा ही असंभव नहीं ठहराया गया था? क्या हम, वास्तव में, इस नई सभ्यता के आरंभ में ही, जनता की सुव्यवस्थित पराजय और पतन के द्वारा आधिपत्य जमाने का ही कार्य-क्रम नहीं देखते?

और यदि हम प्रश्न करें कि रोम ने इन संस्थाओं की बुद्धि कहाँ से प्राप्त की, तो हमें पता लगता है कि उसने अपने ऋषियों और अपने व्यवस्थापकों को यूनान, मिसर, बल्कि एशिया में चित्त-प्रबोधन के उस बड़े केंद्र की तलाश में भेजा था, जिसने पूर्व से समस्त प्राचीन जगत् पर प्रकाश डाला था।

इस समय ब्राह्मण-धर्म के जराग्रस्त ऐतिह्यों का सर्वत्र ह्रास हो रहा था। यह सच है कि बुद्ध को हिंदुस्तान से बाहर निकाल दिया गया, परंतु उसने ब्रह्मा के अनुयायियों को एक ऐसी चोट लगाई कि जिसके असर को वे दूर नहीं कर सकते। दुर्लक्षित परिवर्ती

भारत और फ़ारस में क्रांति पैदा कर रहा था। मिस्र में पुरोहित-शाही के दिन बीत चुके थे और राजाओं का युग आरंभ हो गया था। यूनान अपने धुँधले भूतकाल का परित्याग करके अपनी लोक-तंत्र विशिष्ट संस्थाएँ तैयार कर रहा था। यह स्पष्ट है कि पुरोहित और विशेष सत्वधारी श्रेणियों की शक्ति से रोम में इस अवस्था के पुनरुद्धार का जो प्रयत्न हुआ था, उसका परिणाम लगातार युद्धों और गृह-विद्रोहों के सिवा और कुछ न हो सकता था। इन कलहों की समाप्ति, जल्दी या देर से, तब ही हो सकती थी, जब सामाजिक और राजनैतिक समता हो। इस समता का स्वप्न और अभिलाषा लोगों को पहले से ही होने लगी थी।

उच्च श्रेणियों ने, अपने अधिकार को सुरक्षित रखने के लिये व्यर्थ ही युद्धों और विजयों से लोगों की आँखों को चौंधियाने और उनकी शक्ति को लगाए रखने का यत्न किया। वे उस प्राण-दायिनी वायु के सामने, जो उन्हें नष्ट कर डालने की धमकी दे रही थी, हार मानने और क्रमशः सिर झुका देने के लिये विवश थे।

यद्यपि सामाजिक विभागों का लोप कर दिया गया, या उनके प्रभाव को जड़ बना दिया गया, किन्तु रीति-रिवाजों और क़ानूनों में प्राचीन पूर्वीय ऐतिह्य के अमिट चिह्न कम नहीं हो गए थे। यहाँ तक कि आधुनिक जातियों में इन क़ानूनों और रीति-रिवाजों पर उनके उत्पत्ति-स्थान की छाप अभी तक भी मिलती है।

हम इन विचारों को लंबा नहीं करेंगे। इसके अतिरिक्त, क्या लैटिन भाषा उच्च स्वर से इस बात की घोषणा नहीं कर रही कि मैं संस्कृत से उत्पन्न हुई हूँ? क्या हमने शासन-पद्धति पर अपने पहले अध्यायों में उस देश पर भारत के प्रत्यक्ष और प्रबल प्रभाव को प्रमाणित नहीं किया?

दसवाँ अध्याय

भारत में वर्ण-अपचय की जस्टिनियम के क़ानून में Capitis Minatio (नागरिक स्वत्वों के अपचय या ह्रास) के साथ और नैपोलियन-स्मृति में नागरिक मृत्यु (Mort Civile) के साथ तुलना ।

हम हिंदू-पुरोहितों को, वैदिक सभ्यता के पतन (जो उनका अपना ही काम था) के उपरांत, अपने अधिकार की रक्षा के लिये और अपने आखेटों को उपकारक भय के रंग में रँग देने के आशय से, सारी जाति से, आंशिक या पूर्ण बहिष्कार के भीषण दंड की व्यवस्था करते देख चुके हैं । इससे अभागा कृतापराध पशु से भी नीच हो जाता था, क्योंकि पतित हो जाने और उसी के तुल्य बना दिए जाने के भय से उसके साथ कुछ भी सामाजिक संबंध नहीं रक्खा जा सकता था ।

यहाँ तक कि परिवार के बंधन भी तोड़ दिए जाते थे । निष्कासित व्यक्ति के बच्चे अनाथ हो जाते थे और किसी शिक्षक के पास भेज दिए जाते थे । उसकी स्त्री विधवा हो जाती थी, और यदि वह ऐसी जाति की हो, जिसमें विधवा-विवाह का निषेध न हो, तो वह पुनर्विवाह कर सकती थी । उस मनुष्य का वंश समाप्त हो जाता था; और, अंततः यदि उसे कोई मार डाले, तो नागरिक क़ानून मारनेवाले को कुछ भी दंड न देता था । उसे केवल अपनी शुद्धि का धर्म-संबंधी संस्कार ही कराना पड़ता था; क्योंकि वह अछूत के स्पर्श से अपवित्र हो जाता था ।

निरंकुश पुरोहितशाही की यह संस्था अपनी जन्मभूमि भारत से बड़ी शीघ्रता से दूसरे देशों में चली गई । उन्होंने इसे मनुष्य का

एक अद्भुत साधन समझकर, बारी-बारी से, ग्रहण कर लिया। इस प्रकार आग और पानी का निषेध सारी प्राचीन जातियों में एक न्याय-संगत और हितकर दंड समझा जाने लगा।

यह बता देना भी आवश्यक है कि इस कठोर दमन के प्रयोग में एक परिवर्तन भी किया गया।

इस प्रकार, भारत में तो पुरोहित का, या राजा का, स्वच्छंद और निरंकुश अधिकार, दोषों और अपराधों के लिये, धार्मिक तथा सामाजिक पापों के लिये, जाति-बहिष्कार की व्यवस्था देता था, परंतु हिंदू-प्रभाव में रँगी हुई भिन्न-भिन्न प्राचीन जातियों ने अत्यंत कठोरता के साथ, इस दंड का प्रयोग राजनैतिक तथा धार्मिक अपराधों, राजद्रोहों और सब प्रकार के अधिकार के विरुद्ध षड्यंत्रों तक परिमित कर दिया। व्यक्ति के विरुद्ध अपराध और अन्याय दूसरे क़ानूनों के अधीन रक्खे गए। परंतु इस अपवाद में मिसर नहीं था। इसने इस नियम का वैसा ही कठोर और स्वच्छंद प्रयोग बनाए रक्खा। इसका कारण मालूम करना भी कुछ कठिन नहीं।

भारत के पश्चात् मिसर ही हमारे सामने ऐसे लोगों की मूढ़ धर्मभ्रष्टता और अपकर्ष का अत्यंत दुःखमय उदाहरण उपस्थित करता है, जिनके हाथ से सारे सामाजिक और राजनैतिक कार्य छीन लिए गए थे, जिनकी विचार-शक्ति भी किसी हद तक उनसे ले ली गई थी, क्योंकि वे जानने, कर्म करने और बोलने के अधिकार से वंचित किए गए थे; वे नए काम को आरंभ करने की शक्ति से शून्य कर दिए गए थे, इसलिये भोजन, विश्राम और ईश्वर-प्रार्थना के लिये नियत उनके घंटे लंबे, परंतु विनेय साधन थे—इन थोड़े-से निर्वाचित मनुष्यों की सारी मनोत्तेजनाओं को तृप्त करने के उत्पादक यंत्र थे, जिन्होंने धार्मिक विचार, त्रास और मिथ्याचारों की सहायता से अपने आप को निर्वाचित किया था।

ज़र्दुश्त ने इस दंड को रहने तो दिया, परंतु आज्ञा कर दी कि इसका प्रयोग केवल उन्हीं लोगों पर हो, जिन्होंने परमेश्वर और मनुष्यों की दृष्टि में कोई बहुत बड़ा अपराध किया है। इस प्रकार उसने इसे प्रायः असाधारण बना दिया। यूनान में [बहिष्कार (Ostracism) के नाम से, इसका प्रयोग केवल उन्हीं लोगों पर होता था जिनके राजनैतिक प्रभाव का डर रहता था] जल और अग्नि के निषेध की अवस्था, सिवा अस्थायी रूप के, बहुत कम दी जाती थी। और ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कोई विशेष नियम इसके प्रयोग की व्यवस्था करते थे।

भारत और मिसर के उदाहरण के अनंतर, रोम ने इस दमन नीति को अपने लिखित क़ानून में निर्दिष्ट कर दिया; और, क्योंकि पूर्वी धर्म-व्यवस्थापक मनु ने जाति से आंशिक या पूर्ण बहिष्कार को स्वीकार किया था, इसलिये रोमन शासन-प्रबंध ने इस दंड के दरजे नियत कर दिए। इनके नाम बड़ा, मँझला और छोटा ह्रास (Minutio Capitis) थे।

पहले से, नागरिक से सारे सामाजिक और राजनैतिक अधिकार, परिवार के सारे अधिकार छीन लिए जाते थे, और उसकी वही अवस्था हो जाती थी, जो सारी जाति से निष्कासित किसी मिसरी और हिंदू की होती थी।

जल और अग्नि का उसके लिये उसी रूप में और वैसी ही कड़ी रीति से निषेध होता था, जैसा मनु ने चावल, जल और अग्नि का किया है।

उसे दान-वृत्ति से भी अपना पेट भरने की आज्ञा न थी; उसको मार डालना कोई अपराध नहीं था।

दूसरे से, पिता और स्वामी के सभी स्वत्व छिन जाते थे, उसका अपने दासों पर कोई अधिकार न रह जाता था। वे स्वतंत्र हो जाते

थे, और उसका दायाधिकार उसके उत्तराधिकारियों में बाँट दिया जाता था।

तीसरा या छोटा ह्रास अपराधी को केवल न्यायाधिकार से और लोकतंत्र राज्य की सेवा से बाहर कर देता था। परंतु उसका पैतृक अधिकार और अपनी संपत्ति का स्वतंत्र विधान अखंड बना रहता था।

इस प्रकार रोम के लिखित क़ानूनों में लिए जाने से यह परिकल्पन जैसा हम देखते हैं, साधारण क़ानून का एक दंड बन गया।

व्यक्तिगत पदभ्रंश द्वारा, और उस सारे के निर्दय अपहरण द्वारा जो परमात्मा के दिए हुए जीवन का सार है, दमन की ये क्रूर रीतियाँ पूर्व की ही उपज थीं; और ब्रह्मा तथा ओसिरिस (Osiris) के पुरोहितों को ऐसे कलंक गढ़ते देखकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं होता। रोम पर प्राचीन जगत् का प्रभाव पड़ा था और उसने प्राचीन संसार का अनुकरण किया था—इस बात को मैं उसकी निंदा करने के लिये कोई पर्याप्त कारण नहीं समझता, परंतु जब मैं अपने आधुनिक स्मृतिकारों को हमारी स्मृतियों में इस जाति-बहिष्कार को लिखते, वस्तुतः, इस नागरिक मृत्यु का संविधान करते देखता हूँ, तो कोप से मेरे रोमांच हो आता है।

नागरिक मृत्यु ! क्या कोई विश्वास करेगा कि मुश्किल से पंद्रह वर्ष भी नहीं हुए, जब भारत के अछूत के सदृश, इस देश के आखेट का नाम लेने के लिये, ऐसे भाग्यहीन व्यक्ति से थोड़ा-सा प्रेम करने के लिये, और उसके हताश हो जाने पर, अपनी काल-कोठरी में, किसी को स्मरण करके ही जीवन के थोड़े-से दिन काटने के लिये इस भूतल पर उसकी न कोई स्त्री, न कोई संतान और न कोई बंधु होता था ! क्या कोई विश्वास करेगा कि उसकी स्त्री को

दुबारा विवाह कर लेने और उसके बच्चों को उसकी लूट को आपस में बाँट लेने की अनुमति मिल जाती थी ?

सन्, ८९ बीत गया। इसने भी प्राचीन काल के इस भीषण रिक्थदान को स्पर्श करने का साहस न किया, जिसे उस याजकीय और धर्मोन्मत्त मध्यकाल ने सुरक्षित रक्खा था, जो जाति-पाँति की बाँट और पुरोहित के आधिपत्य द्वारा योरप में ब्राह्मण-धर्म की सभी निरंकुशताओं और सभी क्षीण पुण्यताओं को पुनः स्थापित करना चाहता था।

जनता के नाम पर, मनुष्य-समाज के नाम पर यश और स्मृति हो; बड़े-बड़े दुःख झेलकर प्राप्त की हुई उन्नति के इतिहास पर सम्मान और अनुचिंता हो, सनातन न्याय के नाम की, श्रेष्ठ प्रभाव की कीर्ति हो, जिसने सन् १८९३ में हमारी स्मृतियों में से प्राचीन दुराचार और पाप के इस कुत्सित स्मृति-चिह्न को मिटा दिया !

हम कह चुके हैं कि भारत में नागरिक मृत्यु, अर्थात् जाति से पूर्ण बहिष्कार की घोषणा या तो विशुद्ध नागरिक अपराधों के लिये विचारपति करता था अथवा धार्मिक पापों के लिये पुरोहित। मध्यकालों में हिंदू-ब्राह्मणों का अनुकरण करने का यत्न करते हुए पोप-शासित रोम के लिये ऐसी रीतियों को ग्रहण करना निश्चय ही आवश्यक था। यह साधन उसके हाथ के उपयुक्त भी था। यदि उसे यह अपने विश्रुत पूर्वजों से दाय में न मिलता, तो उसे इसका आविष्कार आप ही कर लेना था।

बहिष्कार निरंकुश सत्ता का एक शस्त्र-मात्र था, जो सर्व-साधारण और राजाओं की पराजय और ब्राह्मणों की विजय के लिये ब्रह्मा के मंदिर में ग्रहण किया गया था। हमने मध्यकाल में इसे चलते देखा है, लोगों की संतानों को शाप देते—राजाओं के वंशों को कोसते देखा है।

हम सैवनारोला (Savonarola) को छठे एलेग्ज़ेंडर के कुप्रबंधों पर प्रकाश डालने के कारण सूली चढ़ते, और फ्रांस के धर्मात्मा रॉबर्ट को उसके मित्रों और अतीव स्वामि-भक्त नौकरों द्वारा परित्यक्त और एक धार्मिक भ्रांत बुद्धि के हाथ के नीचे घुटनों तक झुकते हुए देख चुके हैं।

हम श्रद्धा की जलती चिताओं पर सैकड़ों मनुष्यों की बलि चढ़ते और धर्म की वेदी को रक्त से लाल हुई देख चुके हैं।

कई युग बीत गए ; हमारे अंदर स्वाधीन विचार की उन्नति की जागृति-मात्र हुई है। परंतु हमें उस समय तक अनंत युद्धों की आशा करनी चाहिए; जब तक हमारे अंदर सारी पुरोहितशाही को स्वतंत्रता की कचहरी में घसीटने का साहस उत्पन्न न हो जाय।

ग्यारहवाँ अध्याय

देव-दासियाँ अर्थात् मंदिरों की क्वाँरी कन्याएं—सर्व प्राचीन पूजाओं द्वारा सुरक्षित रीतियाँ—एथंस में 'भाव' खेलनेवाली स्त्रियाँ—एंडोर की भाव खेलनेवाली पुजारिन (Pythoness) रोम में वेस्टल-नामक पवित्र पुजारिन कन्याएं।

इस अध्याय के विषयों द्वारा सुझाई हुई बातों पर हम संक्षेप से विचार करेंगे। ये बातें सर्व प्राचीन पूजाओं के पूर्ण अध्ययन का द्वार सुगमता से खोल देंगी। परंतु यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह हमारा उद्देश नहीं है।

हमने अपनी योग्यतानुसार यह सिद्ध कर दिया है कि शासन-प्रबंध और नैतिक तथा दार्शनिक विज्ञान द्वारा सारे प्राचीन समाज पर भारत का प्रभाव था। हमने प्रमाणित कर दिया है कि क्षीणता, ह्रास और प्राचीन सभ्यता के पतन का कारण सिवा इसके और कुछ नहीं कि उन लोगों ने धर्म-बुद्धि को भ्रष्ट कर दिया, जिनका कर्तव्य इसे जनता के सामने विशुद्ध स्वर्गीय रूप में रखना था। हमने प्राचीन जगत् में व्यापक सभी बड़े-बड़े नियमों की कल्पना की एकता एवं श्वेतांग वंश की सभी जातियों की उत्पत्ति की अभिन्नता का प्रतिपादन कर दिया है। अब हम केवल इतना ही बताएँगे कि इन नियमों की अधिक परीक्षा करने से, सकल सापेक्ष विस्तार के साथ इनका अध्ययन करने से, उनसे उत्पन्न होनेवाले सभी परिणामों से हमें, उन विस्तृत विषयों को सुव्यवस्थित और आवश्यक रूप से परिवर्तित करनेवाले भिन्न-भिन्न लोगों की कल्पनाओं के होते हुए भी, संसर्ग की वही बातें, न्यायसंगत सादृश्य के वही विषय

मिलते हैं जो हिंदुओं की दूर की कल्पित कथाओं और उपाख्यानों तक पहुँचनेवाले पिता-पुत्र-संबंध को प्रकट करते हैं।

प्रारंभिक काल में देव-दासियाँ मंदिरों और देवालयों की सेवा के लिये चढ़ाई हुई क्वाँरी कन्याएँ होती थीं। उनकी संख्या जितनी अधिक होती थी उतने ही उनके काम भी बहुसंख्यक होते थे। उनमें से कुछ तो पवित्र त्रिमूर्ति—ब्रह्मा, विष्णु और शिव—की द्योतक प्रतिमा के सम्मुख दिन-रात जलती रहनेवाली पवित्र अग्नि की रक्षा करती थीं। दूसरी, जुलूस के दिनों में, उस रथ के सामने नाचा करती थीं जिसमें या तो इस त्रिमूर्ति की प्रतिमा को या इसको बनानेवाले तीन व्यक्तियों की प्रतिमाओं को रखकर ग्रामों और देहात में घुमाया जाता था।

फिर कुछ देव-दासियाँ, उत्तेजक पेय से उत्पन्न होनेवाले विषम चित्तविभ्रम में, फ़क़ीरों और संन्यासियों को उन्मत्त बनाने या विस्मित जनता से फल, चावल, पशु और धन की एक प्रचुर राशि का चढ़ावा ऐंठने के लिये धर्म-मंदिरों में आकाश-वाणी सुनाया करती थीं। उस उत्तेजक पेय के रहस्य को ब्राह्मण लोगों ने अभी तक भी नहीं खोया है।

कई एक का काम पारिवारिक यज्ञों और पर्वों पर सुख और शांति के पवित्र मंत्रों का गान करना, और अपने प्रभु ब्राह्मणों के पास प्रत्येक प्रकार का दान लाना है। जनता में से प्रत्येक व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि इनको कुछ-न-कुछ दान दे। उनकी उपस्थिति उन अंत्येष्टि-संस्कारों पर भी आवश्यक थी जिनका, माता और पिता की मृत्यु पर और फिर प्रतिवर्ष उसी मृत्यु के दिन, पुत्र के लिये करना धर्म की दृष्टि से अनिवार्य था।

युद्ध या किसी अन्य महान् घटना के एक दिन पहले राजागण उन लोगों से परामर्श लिया करते थे जिनको परमात्मा की ओर से प्रत्यादेश मिलते थे, और उनके बताए हुए शकुनों के अनुसार बड़े भक्ति-भाव से कार्य करते थे। ये प्रत्यादेश सदैव इस प्रकार आरंभ होते थे—

"हे महाराजा दुष्यंत ! जिसकी शक्ति को सारा संसार जानता है, तू ब्राह्मणों को स्वर्ण के हौदेवाले पचास हाथी, और दो सौ ऐसे घोड़े दे जिनके गले में अभी जूआ न पड़ा हो।" इत्यादि।

या अन्यथा—

"हे महाराजा विश्वामित्र ! तू जिसका धन समुद्र को भर सकता है, यदि तू ऐसा पुत्र चाहता है, जो पिता के समान प्रतापशाली और उदार हो, तो ब्राह्मणों को इतना दान दे, जिससे बढ़कर और कोई दे न सके, इत्यादि *।"

संक्षेप में कहें तो कह सकते हैं कि ब्राह्मण का आराधन करो, ब्राह्मण को दान दो, क्योंकि यह जाति तृप्त होनेवाली नहीं।

कहने का प्रयोजन नहीं कि महाराजा दुष्यंत, अथवा विश्वामित्र ने ईश्वरीय प्रत्यादेश को संतुष्ट करने के लिये शीघ्र ही अपने आप को नष्ट कर डाला।

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि ये हिंदू रीति-रिवाज स्वदेश-त्यागियों के साथ-साथ गए, और प्राचीन काल के सभी रहस्यों में स्त्रियों का नियोग इसी का फल समझना चाहिए।

मिस्र की उपकल्पित कुमारियाँ जो देवताओं की मूर्तियों के सामने नाचा करती थीं, डेल्फी (Delphi) की भाव खेलनेवाली कन्याएँ, सीरीस (Ceres) पुजारिनें, जो आकाश-वाणी बताया करती थीं, रोम की पवित्र पुजारिन कन्याएँ जो पवित्र अग्नि की रक्षा करती थीं—ये सब भारत की देव-दासी की उत्तराधिकारिणी-मात्र थीं। इन-

---

* 'हे इँगलैंड के महान् लोगो जिनके धन से तुम्हारी श्रद्धालुता के सिवा और कोई नहीं बढ़ा, लंदन के मुख्य ब्राह्मण को एक करोड़ रुपया दो।' इस प्रकार पूर्व का अत्यंत निडर ब्राह्मण-धर्म अपने पश्चिम के अँगलिकन प्रतिनिधि के सामने फीका हो जाएगा !

के गुण और कर्म आपस में इतने मिलते हैं कि किसी दूसरे परिणाम पर पहुँचना असंभव है।

स्त्री, कुमारी और पुजारिन का यह ऐतिह्य पूर्व से लिया गया है और हम प्राचीन काल की सभी जातियों को ज्यों-ज्यों वे मूढ़विश्वास और रहस्य के जाल से अपने आपको क्रमशः मुक्त करती जाती हैं, इसका परित्याग करते देखते हैं। अब यदि यह प्राथमिक जन्म-स्थान का उत्तरदान दिखाई देता है, तो इससे बढ़कर और कोई बात स्वाभाविक नहीं जान पड़ती कि इसका उस देश तक पता लगाया जाय जहाँ से कि उपनिवेश बसानेवाली जातियाँ रवाना हुई थीं।

प्राचीन काल की अन्य जातियों के सदृश ही इब्रानी लोग भी इन विश्वासों से, जो उस समय सर्वत्र व्यापक थे, बच नहीं सके। और बाइबिल से ज्ञात होता है कि गिलबोआ की लड़ाई के सायंकाल सौल एंडोर (Endor) की जादूगरनी से परामर्श लेने गया। जादूगरनी ने उसे सम्युपल-नामक भविष्यद्वक्ता की प्रेतात्मा का दर्शन कराया।

हम तर्क, विचार और निषेध करें, परंतु हम बल-पूर्वक कहते हैं कि जगत् पर भारत के इस प्रभाव का हम खंडन न कर पाएँगे। यह प्रभाव पग-पग पर क्या बड़े-बड़े सिद्धांतों में और क्या उनके प्रयोग की छोटी-छोटी बातों में पुनः प्रकट हो रहा है।

हम निश्चय से कह सकते हैं कि ये देव-दासियाँ, ये भाव खेलनेवाली स्त्रियाँ (Pythonesses), ये उपकल्पित कुमारियाँ, और ये पवित्र पुजारिन कन्याएँ (Vestals) प्राचीन काल में, भारत की तरह, प्रभुता जमाने का केवल एक और साधन थीं—बहुमूल्य चढ़ावों और पवित्र दानों की अपवित्र धारा को मंदिर की ओर आकर्षित करने के लिये दूसरे कपटों में एक और कपट की वृद्धि-मात्र थीं!

बारहवाँ अध्याय

सरल सिंहावलोकन

हमने प्राचीन सभ्यता पर भारत और ब्राह्मण-धर्म के प्रभाव की यह द्रुत आलोचना समाप्त कर दी है।

हमने इस प्रभाव का वर्णन दो प्रकार से किया है। एक तो इस तरह कि भारत-त्यागी लोगों ने जिन भिन्न-भिन्न भूमियों में जाकर उपनिवेश बसाए, वहाँ उन्होंने अपनी भाषा और अपनी प्राचीन सामाजिक तथा धार्मिक संस्थाओं के अभिज्ञान का पेड़ भी लगाया। दूसरे इस प्रकार कि सभी ऋषियों और व्यवस्थापकों ने अपने ज्ञान को पूर्ण बनाने के लिये, सारे विज्ञान और सारे ऐतिह्य के मूल का पता लगाने के लिये, पूर्व की यात्रा की थी।

सब कहीं हमने प्रत्येक नव-निर्मित समाज के सिर पर पुरोहित के दारुण प्रभाव को अतीव बुद्धिहीन निरंकुशता और जनता का अति-निम्न पराजय और शीलभ्रंश उत्पन्न करते देखा है।

हमने दिखला दिया है कि प्राचीन जगत्, स्वतंत्रता के पद-चिह्न रखते हुए भी, भारत के सदृश, जिसकी वह उपज था, प्रारंभिक जरा-काल में ही मर गया। उसके इतना शीघ्र जीर्णावस्था को प्राप्त हो जाने का मूल-कारण धर्म-बुद्धि की भ्रष्टता से उत्पन्न होनेवाले जनता के मूढ़ विश्वास थे।

परमात्मा की एकता, त्रिमूर्ति और आत्मा के अमरत्व से संबंध रखने-वाली सारी श्रेष्ठ सचाई को ब्राह्मण और पुरोहित लोग जनता से छिपाकर रखते थे। इन लोगों ने अपनी जाति और अपने पारदर्शी पंडितों के प्रभुत्व को सुरक्षित रखने के लिये सर्वसाधारण में ऐसे-

ऐसे मूढ़ विश्वास उत्पन्न कर दिए थे, जिनको मानने से आप उन्हें लज्जा आती थी।

निस्संदेह ज़र्दुश्त की इच्छा इन श्रेष्ठ विचारों का जनता में प्रचार करने की थी; परंतु उसके अनुयायियों ने उसे छोड़ दिया, और उसके सुधार का केवल इतना ही परिणाम हुआ कि याजकीय शक्ति का एक नवीन संस्कार हो गया।

बुद्ध भी, जो उसका पूर्ववर्ती था और जो यद्यपि अपने विचार की स्वतंत्रता के कारण ही भारत से निर्वासित किया गया था, बाद को उसी तरह तिब्बत, चीन और जापान में जनता के वशीकरण और असहिष्णुता का चिह्न बन गया।

ये सुधारक अपने युग से बहुत आगे थे, और उनके भावों को समझनेवाले लोग अभी उत्पन्न नहीं हुए थे।

इस पुस्तक में आगे चलकर हम मूसा और ईसा के व्यवहार पर विचार करेंगे, और उसका समाधान कृष्ण के व्यवहार से करेंगे, जो हम प्रतिज्ञा-पूर्वक कहते हैं, न केवल भारत का, प्रत्युत समस्त भूमंडल का सबसे बड़ा दार्शनिक था।

यदि हमने सफलता-पूर्वक यह सिद्ध कर दिया है कि सारा प्राचीन जगत् भाषा, आचार, रीति-नीति और राजनीतिक ऐतिह्यों की दृष्टि से भारत की उपज-मात्र था, तो फिर यदि हम, दृढ़तापूर्वक और न्याय-संगत रीति से, इस बात को प्रमाणित करने के लिये बाध्य हों कि आदि ईश्वरीय ज्ञान और सारे धार्मिक ऐतिह्य के स्रोत की खोज भारत में ही होनी चाहिए, तो कौन हमको दोष देने का साहस करेगा? जिस जाति ने फ़ारस, मिस्र, यूनान और रोम पर अपनी गहरी छाप लगाई, जिसने इन देशों को उनकी भाषा, उनका राजनीतिक संगठन और उनके क़ानून दिए, उसने क्या उसी प्रकार धर्म-बुद्धि न दी होगी?

जब यूनानी, लेटिन और इबरानी भाषाएँ संस्कृत से उत्पन्न हो सकती हैं, तो क्या यह संप्रदान-क्रिया वहीं समाप्त हो गई ? यह बात मानी नहीं जा सकती।

जिस प्रकार ब्राह्मण-धर्म ने इन भिन्न-भिन्न देशों में सारे मूढ़ विश्वासों का बीज बोया था, और उनकी सहायता से जनता को धोके में डालकर उसे अपनी दासता के जुए में बाँधा था, उसी तरह मनु (Manou) और मेनस (Manes) अपने साथ विशुद्ध प्राथमिक ऐतिह्य—वेदों के ऐतिह्य—लाए थे। इनको इन्होंने पुरोहितों, लेवियों (Levites) और पारदर्शी पंडितों के लिये रख छोड़ा था। इबरानी और ईसाई समाजों के दो प्रवर्तक तत्त्ववेत्ताओं ने भी इन्हीं मूढ़ विश्वासों से प्रत्यादेश प्राप्त किया था।

हम दिखलावेंगे कि मूसा ने बाइबिल की पहली पाँच पुस्तकें—अर्थात् उत्पत्ति, निर्गमन, लैव्य व्यवस्था (Leviticus), गणना (Numbers) और व्यवस्था विवरण (Deuteronomy)—जिनका वह रचयिता समझा जाता है, कहाँ से निकाली थीं।

इबरानी सभ्यता, प्राचीन काल की दूसरी सभी सभ्यताओं के सदृश, भारत का केवल एक प्रतिबिंब, उस सामान्य जननी का केवल एक अभिज्ञान, थी, हमारे इतना प्रमाणित कर देने से जब मार्ग साफ़ हो गया, तब हमें बिना किसी भय के इस बात की आज्ञा है कि हम उस ईसाई तत्त्ववेत्ता के कार्यों की परीक्षा करें, जिसने इबरानी ऐतिह्य को लेकर हिंदू-संस्कारक कृष्ण के आचरणों की सहायता से उसका संशोधन किया। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि इस आचरण का अध्ययन उसने स्वयं मिस्र और भारत की पवित्र पुस्तकों में किया था।

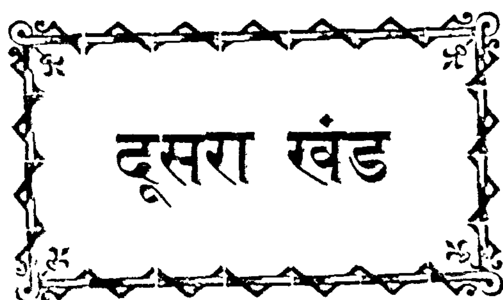
सारे ईश्वरीय प्रत्यादेश को सुबुद्धि, तर्क और ईश्वर की महत्ता के विरुद्ध समझकर जिस समय, हम बड़े बल से उसको अस्वीकार करते हैं, जिस समय हम सभी अवतारों को क़िस्से-कहानी समझते हैं, तब

हमारे परिणाम से बढ़कर और कौन-सी बात स्वाभाविक, सरल और न्यायसंगत हो सकती है ?

क्या हमें यह न मालूम करना चाहिए कि सब जातियों को एकता में बाँधनेवाला कोई सामान्य सूत्र है या नहीं; क्या अतीत सभ्यताओं के इतिहास में विचार की सभी बातें एक दूसरे के साथ मिली हुई नहीं ?

क्या हमारे आधुनिक शाके की उन्नीस शताब्दियों में से प्रत्येक ने अपनी अग्रगति में अपने परवर्ती का समर्थन नहीं किया ? क्या आगे उठनेवाला प्रत्येक पग आश्रय पाने के लिये किसी पहले हो चुकनेवाली बात पर नहीं झुका ?

आज से तीन सहस्र वर्ष उपरांत, जब हमारे स्थान में दूसरे लोग पैदा हो चुके होंगे, जब दूसरी सभ्यताओं ने हमारी सभ्यता का स्थान ले लिया होगा, तब अन्वेषणकर्ता आज के इस स्वतःसिद्ध सत्य की घोषणा करेगा; वह हमारे युग के लिये पुनर्निर्माण का वैसा ही काम करेगा, जैसा कि प्राचीन युगों के लिये हमारी यह पुस्तक चाहती है ।


दूसरा खंड

पहला अध्याय

मूसा अथवा मौसे (Moise) और इबरानी-समाज

ईश्वरीय प्रत्यादेश—अवतार

दूसरे खंड के आरंभ में ही हमारे लिये सब ईश्वरीय प्रत्यादेशों के संपूर्ण निराकरण की घोषणा कर देना आवश्यक है, फिर ये प्रत्यादेश चाहे मनु, ज़र्दुश्त, और मेनस के हों, चाहे मूसा के; कृष्ण और बुद्ध के हों, चाहे ईसा के।

इस इनकार के कारणों का बताना कठिन नहीं।

परमेश्वर ने, संसार की रचना करते समय, जगत् के उपादान-कारण को, भौतिक प्रकृति को, चरम नियम दिए थे। इनको न वह बदल सकता है और न बदलेगा ही। इसी प्रकार आत्मा अर्थात् बुद्धि अथवा नैतिक प्रकृति की सृष्टि करते हुए उसने इसको अप-रिवर्तनशील नियमों के अधीन रख दिया। इन नियमों में थोड़ा-सा भी हेर-फेर करना न उसके माहात्म्य के उपयुक्त है और न उसके ज्ञान के ही।

उसने स्वतंत्र और ज़िम्मेदार मनुष्य के मन में दूसरे जीवन में अमरत्व के, पुण्य और पाप के, सद्गुणों और दुर्गुणों के उच्च विचार उत्पन्न कर दिए; उसे समझा दिया कि संसार का शासक एक सर्वशक्तिमान् सत्ता है। इसके उपरांत उसने अपने सृष्ट मनुष्य को इस भूतल पर अपने रहस्यमय उद्देश्य को संपादित करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया।

नीय मूर्ति बनाता हूँ। यह नश्वर आवरण, कविता और उपाख्यानों के सभी समाधानों के होते हुए भी, न उसके भविष्यत् ज्ञान और न उसकी प्रज्ञा के ही योग्य है; उसको इस प्रकार अपमानित करने की धृष्टता मैं उन्हीं के लिये छोड़ता हूँ, जो इसका साहस करते हैं।

कृष्ण, बुद्ध, ईसा सबने मनुष्य-जीवन व्यतीत किया था, और परमात्मा ने, अन्य सारे लोगों की तरह, उनके सुकर्मों के अनुसार ही उनका विचार किया है।

यह बात उल्लेखनीय है कि इन लोगों में से कोई एक भी ईश्वर की संतान होने का दावा करता नहीं मालूम होता। फिर यह बात द्रष्टव्य है कि ये लोग सर्वसाधारण को अपने उदाहरण और शिक्षा का उपदेश देते हुए इस संसार से चल दिए। इन्होंने अपने सिद्धांतों को लिपिबद्ध करके चिरस्थायी नहीं किया। अपनी शिक्षाओं को सुरक्षित रखने का काम इन्होंने अपने शिष्यों पर ही छोड़ दिया।

मुझे इस बात के मानने में कुछ भी कठिनाई नहीं होती कि उत्तराधिकारियों ने, जो अपने गुरु से भी अधिक चालाक थे, गुरु को परमेश्वर बना दिया, जिससे उनका अपना मार्ग साफ़ हो जाय, वे जनता के सामने अपने को ईश्वर का दूत प्रकट कर सकें, और इस प्रकार अपने ऊर्ध्वदृष्टि अधिकार को पवित्र बना सकें। यही कारण है, जो मैं सारे अवतारवाद से इनकार करता हूँ। क्या इसी के नाम पर पृथ्वी के चारों कोनों में—भारत, चीन, और योरप में—समान रूप से रक्त-पात नहीं हुआ था, और जलती चिताएँ नहीं खड़ी की गई थीं?

हा! यदि परमेश्वर के मन में कभी अवतार लेने का विचार आ सकता है, तो वह इन्हीं निकृष्ट समयों में आ सकता था,

अब उसके नाम पर संसार में लोगों को परम यातना दी जा रही थी। वह उन कूचक्रों को दंड देने के लिये अवश्य आता, जिन्होंने अपने को उसके नियम के परदे में छिपा रक्खा था!

जातियों ने क्रमशः अपने सामाजिक तथा राजनीतिक विप्लव कर डाले हैं; अब उनके लिये अपना धार्मिक उद्धार करना शेष है।



दूसरा अध्याय

जीउस (द्युस् ?)—जेज़ीउस (Jezeus)—आईसिस (Isis)—
जीसस (Jesus)

जिस प्रकार मनु (Manou), मेनस (Manes), मिनोस (Minos) और मूसा (Moses) नाम के चार व्यवस्थापकों का, जिनका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं, समग्र प्राचीन समाज पर पूर्ण आधिपत्य है, उसी प्रकार ज़ीउस (Zeus), जेज़ीउस (Jezeus), आईसिस (Isis) और जीसस (Jesus), ये चार नाम प्राचीन और अर्वाचीन समयों के सर्वधार्मिक ऐतिह्यों में प्रधान हैं *।

ज़ीउस (Zeus द्युस्) संस्कृत में परम देव परमात्मा का सूचक है ; यह सृष्टि के पूर्व निर्गुण और अव्यक्त ब्रह्म का विशेषण है। यह नाम अपने में परम सत्ता—ब्रह्मा, विष्णु, शिव—के सभी गुणों को प्रकट करता है।

ज़ीउस के इस अर्थ को, बिना किसी परिवर्तन के, यूनानियों ने ग्रहण कर लिया। उनके लिये यह शब्द समान रूप से परमात्मा के विशुद्ध तत्त्व—उसकी गूढ़ार्थक सत्ता—को दरसाता था। जब वह अपने विश्राम से जागता है और क्रिया द्वारा निर्गुण से सगुण अवस्था में अपने को व्यक्त करता है, तो परमात्मा का नाम यूनानी देव-माला में ज़ीउस-पेटर (Zeus-Pater), अर्थात्, जूपीटर (बृहस्पति), परम पिता, स्रष्टा, देवों और मनुष्यों का स्वामी हो जाता है।

लैटिन-भाषा इस संस्कृत और यूनानी शब्द ज़ीउस को ग्रहण

करते हुए इसमें केवल थोड़ा-सा लिखित परिवर्तन कर देती है ; ज़ीउस का नाम डीउस (Deus) हो जाता है। इसी से स्वयं हमने दीऊ (Dieu द्यौः) शब्द निकाला है, जिसका आशय ठीक वही है, जो प्राचीन लोगों ने ग्रहण किया था।

वस्तुतः ईसाई-बुद्धि में परमात्मा (गॉड) सांकेतिक सत्ता का नाम है। इसमें त्रिमूर्ति के तीन व्यक्तियों—पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा—के सभी गुण सम्मिलित हैं।

मैं निश्चित रूप से कहता हूँ कि मैं न तो नामों की उन समताओं को, न उन ऐतिहासिक तथ्यों को, न सभ्यताओं की उन अभिन्नताओं को और न भाषा के उन सादृश्यों को, जो मुझे इस परिणाम पर ले जाते हैं कि पूर्व में और भारत में हमारी जाति का जन्म-स्थान था, अपनी ओर से नहीं गढ़ रहा हूँ। मैं युक्ति और सत्य का अवलंब लेना चाहता हूँ, और किसी बात पर उसके पृथक् रूप में विचार करने का, इसकी व्याख्या उसी से या संयोग से करने का, और यह दिखलाने का कभी यत्न नहीं करता कि यदि मनुष्य से मनुष्य की उत्पत्ति होती है, तो इस सचाई का नियत उपसिद्धांत यह है कि जातियाँ अपने से अधिक प्राचीन जातियों से उत्पन्न होती हैं।

मैं फिर कहता हूँ कि यह कोई नई शैली नहीं है। यहाँ केवल युक्ति के तर्क का इतिहास के तर्क पर प्रयोग किया गया है।

मैं इस पर बहुत अधिक हठ नहीं कर सकता। सब कोई स्वीकार करते हैं कि आधुनिक लोगों ने प्राचीनों की नक़ल की है, और आधुनिक लोगों ने यह मान लिया है कि उन प्राचीन लोगों ने पुरानी सभ्यता की मशाल को रोशन किया था। अस्तु, जल्दी या देर में, हमें निश्चय करना पड़ेगा, और स्वीकार करना पड़ेगा कि हमने जिस प्रकार प्राचीन जातियों का अनुकरण किया है, उन्होंने

उससे भी कहीं अधिक चापलूसी से भारत का अनुकरण किया था।

हमें अपनी शताब्दियों और उन लोगों की अतुल प्रशंसा को घटाकर संतुष्ट होना चाहिए, जो हमारे सामने सतत रीति से आदर्श रूप में उपस्थित किए जाते हैं, जिनका अनुकरण करनेवाले लोग तो थे, पर जिन्हें अपना कोई अग्रसर मालूम न था। निस्संदेह उन्होंने पूर्व से प्राप्त किए हुए आदि-प्रकाश की कीर्ति को उज्ज्वल किया था; परंतु उस कीर्ति की पूर्ववर्ती सभ्यताओं की उपेक्षा करने की आज्ञा नहीं देनी चाहिए।

हमें भारत का पता लगे अभी मुश्किल से एक शताब्दी हुई है। उन लोगों की संख्या बहुत ही कम है, जिनमें, उस देश में जाकर, उसके स्मृति-स्तंभों और हस्तलेखों का, जो सब-के-सब उसके आदि-युगों के अपरिमित ख़ज़ाने हैं, अन्वेषण करने का साहस हो। कुछ लोगों ने संस्कृत के अध्ययन में अपना जीवन लगाया है, और योरप में इसकी रुचि को बढ़ाने का यत्न किया है।

फल आशातीत हुआ है। परंतु अभी अन्वेषण और आविष्कार के लिये क्या कुछ बाक़ी नहीं रहता! हमने उस प्राचीन भाषा को खोज लिया है, जिसमें शायद आदि-मनुष्य ने बड़बड़ाहट की थी। कुछ अनुवादित खंडों ने हमें सूचित किया है कि परमात्मा का एकत्व, आत्मा का अमरत्व और हमारे सभी नैतिक और दार्शनिक विश्वास केवल कल ही नहीं बने थे। अतीत काल पर छाया हुआ अंधकार छिन्न-भिन्न होना आरंभ हो गया है। तब बढ़े चलो, सदा आगे बढ़े चलो। अंत में स्रोत प्रकाश को इतना निर्मल बना देगी कि फिर इनकार न हो सकेगा।

परंतु इसके लिये हमें शुद्ध विद्याओं की विजय के उद्देश्य से अवश्य आगे बढ़ना चाहिए; मिथ्या वासना, साकार और स्वप्न

को घुसने नहीं देना चाहिए, केवल परमात्मा और तर्क को ही सिद्धांत मानना चाहिए, और यह बात स्वीकार कर लेनी चाहिए कि इस भूतल पर हमसे पूर्ववर्ती जितनी सभ्यताएँ थीं, वे अपनी उत्तरवर्ती सभ्यताओं को अपने विचारों तथा उदाहरणों का प्रभाव प्रदान किए बिना ही लोकांतरित नहीं हो गईं।

जब कभी यह विषय मेरे सामने उपस्थित होता है, तो मैं इसका और दूर तक अन्वेषण करने के लिये ठहर जाता हूँ, और उस सुदीर्घ पुनरुक्ति-जनित निंदा की कुछ परवा नहीं करता, जिसे ये असाधारण बातें मुझ पर ला सकती हैं।

मैं अज्ञानी और पक्षपाती लोगों की समालोचना का प्रतिवाद किए बिना नहीं रह सकता, और इस पुस्तक में व्याप्त युक्तिसंगत सम्मतियों का विकास करने के लिये मैं असंदिग्ध श्रद्धा और भक्ति का व्यवहार करना चाहता हूँ।

यह पुस्तक स्वतंत्र विचार और तर्क के पक्षपातियों के लिये लिखी गई है, इसलिये मैं उनसे उच्च स्वर से कहता हूँ—

यदि आप मिसर के आईसिस (Isis) के, यूनान के इल्यूसिस (Eleusis) के तथा रोम के वेस्टा (Vesta) के रहस्यों को, जलती हुई झाड़ियों और उन स्वर्गीय दूतों को मानते हैं, जो अब, चाहे हमें उनकी कितनी ही आवश्यकता क्यों न हो, हमारे सम्मुख उपस्थित होने का साहस नहीं करते, यदि आप यह मानते हैं कि किसी अतीत युग में मृतों को पुनर्जीवित कर दिया जाता था, बहरों, लंगड़ों और अंधों के शारीरिक दोष अलौकिक रीति से दूर कर दिए जाते थे, यदि आप राक्षसों, पिशाचों, बीलज़बुब (Beelzebub) और देवताओं के सभी पापात्माओं को मानते हैं, यदि आप देवों, फ़रिश्तों और सिद्धों में विश्वास रखते हैं, यदि आप इनको मानते हैं, तो आपको इस पुस्तक के पढ़ने का

कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं, यह आपके लिये नहीं लिखी गई।

यदि आप इनको नहीं मानते, तो मेरी बातों को ध्यानपूर्वक सुनिए, और मेरी पुष्टि कीजिए। मैं केवल आपके तर्क के सम्मुख ही अपने अभियोग को विचारार्थ रखता हूँ। वही इसको समझ सकता है।

क्या आप समझते हैं, जिस युग का मैं स्वप्न देख रहा हूँ, यदि वह आ गया होता, यदि मैं एक ओर धर्मोन्मत्त लोगों को, "हम इसे मानते हैं; क्योंकि यह असंगत है" पुकारते, और दूसरी ओर अभिज्ञान और नीच मूढ़विश्वासों से प्रभावित स्वतंत्र विचार के कट्टर भक्तों को "मैं नहीं मान सकता" के साथ ही झट "फिर भी हम प्रमाणों का खंडन देखना चाहते हैं" कहते न देखता, तो मैं इस पुस्तक को लिखने का काम हाथ में न लेता ?

अब तक भी हमारी यही स्थिति है।

हमें असंगत की असंगति को सिद्ध करने के लिये उसके साथ युद्ध करने का नीच कार्य करना आवश्यक है।

अपने अन्वेषणों के आरंभ में मैंने एक दिन एक युक्तिवादी से कहा—मेरा मन कहता है कि मूसा ने अपनी इंजील (बाइबिल) मिसरियों की पवित्र पुस्तक से बनाई, और उन्होंने उसे भारत से लिया था।

उसने उत्तर दिया—इसके लिये प्रमाणों की आवश्यकता है।

मैंने कहा—परंतु क्या आप नहीं जानते कि फिरऔन (Pharaoh) के दरबार में उसने पुरोहितों से दीक्षा ली थी ? क्या सब यह परिणाम निकालना युक्तियुक्त नहीं कि इबरानी लोगों के लिये संस्थाएँ बनाते समय उसने उस प्राप्त किए हुए ज्ञान का व्यवहार किया था ?

उसने उत्तर दिया—इसके लिये प्रमाणों की आवश्यकता है।

मैंने कहा—तो क्या आप उसे परमेश्वर का दूत समझते हैं ?

उसने कहा—नहीं, परंतु प्रमाणों का होना अच्छा ही है।

ऐं ! मूसा तीस से अधिक वर्षों तक मिसर में अध्ययन करता रहा, और उसे अपने इबरानी होने का भी ज्ञान न था।

क्या इस सत्य घटना में आपकी बुद्धि को मेरी अभी प्रकट की हुई सम्मति के पक्ष में कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं दिखाई देता ! आओ, तब हम अपने विचार को अस्पष्ट बना देनेवाली इस युग-परंपरा को मिटा दें।

मैंने कहा—यदि किसी योरपियन से मध्य-आफ्रिका की किसी जंगली जाति के लिये क़ानून और पूजा-विधि बनाने के लिये कहा जाय, तो क्या आप समझते हैं, वह स्वदेश में प्राप्त किए हुए ज्ञान को, जिन लोगों का वह पुनरुद्धार करना चाहता है उनकी क्षमताओं के अनुसार परिवर्तित और रूपांतरित करके, व्यवहार करने के स्थान में उस पूजन-विधि और उन नियमों को अपनी ओर से गढ़ने का यत्न करेगा ?

उसने कहा—ऐसी सम्मति निश्चय ही अयुक्ति सिद्ध होगी।

आपकी युक्ति निर्दोष है; परंतु विश्वास कीजिए हमारा बूढ़ा योरप अपनी तांत्रिक पूजा से प्रेम रखता है। यदि आप मूसा के विषय में कुछ कहते हैं, तो प्रमाण दीजिए, और प्रमाण दीजिए, और सदा प्रमाण दीजिए।

यही कारण है, जो वेदों और मनु के ग्रंथों की मूसा के ग्रंथों के साथ, कृष्ण की कृति की ईसा की कृति के साथ केवल तुलना करने की जगह और यह कहने की जगह कि यह उससे लिया गया है, मैंने इस सम्मति की पुष्टि में यह दिखलाना अच्छा समझा है कि समस्त पुरातनता का जन्म पूर्व में और भारत में हुआ था, और इसे ऐसी

उत्तम रीति से दिखाया है कि मेरे विपक्षियों के पास सारी बातों से इनकार करने के—जो दूसरे शब्दों में सब बातों को स्वीकार कर लेना है—सिवा और कोई विकल्प नहीं रह जाता।

इस प्रकार हम दिखा चुके हैं कि जो नाम सब जातियों ने परमात्मा को दिया है, वह संस्कृत शब्द ज़ीउस (Zeus द्यु) से निकला है।

एक दूसरा संस्कृत शब्द जज़ीउस (Jezeus), जो विशुद्ध परमात्मतत्त्व का सूचक है, निश्चय ही पुरातन काल के उन दूसरे बहुत-से नामों का मूल और मौलिक उत्पत्ति है, जिनको देवतों और प्रतिपन्न मनुष्यों ने समान रूप से धारण किया था, जैसे मिस्र की देवी आईसिस (Isis), जोसुए (Josue), इबरानी भाषा में जोसुआह (Josuah), जो मूसा का उत्तराधिकारी था, इबरानियों का राजा जोसियस (Josias), और जेस्युस (Jeseus) अथवा जीसस (Jesus), इबरानी में जिओसुआह (Jeosuah)।

जीसस या जीस्युस या जिओसुआह का नाम, जो इबरानियों में बहुत प्रचलित है, प्राचीन भारत में एक उपाधि थी, एक विशेषण था, जो सभी अवतारों के साथ लगाया जाता था, जिस प्रकार कि सभी व्यवस्थापकों ने मनु नाम ग्रहण किया था।

मंदिरों और देवालयों के पुजारी ब्राह्मण जीसस अर्थात् विशुद्ध तत्त्व या दिव्य प्रकृति की यह उपाधि अब केवल कृष्ण को ही देते हैं। वैष्णव और ब्राह्मण-धर्म के स्वतंत्र-विचारक (नास्तिक) केवल कृष्ण को ही अक्षर और सच्चा अवतार स्वीकार करते हैं।

हम इन व्युत्पत्ति-संबंधी संकेतों का, जिनके सारे महत्त्व को हम समझ सकते हैं, वर्णन-मात्र करते हैं; वे आगे चलकर एक बहुमूल्य पुष्टि बन जायँगे।

हमें इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि पक्षपात-शून्य समालोचना इन

मत का, जो इन भिन्न-भिन्न नामों की सामान्य उत्पत्ति मानता है, खंडन करने में अपना पूर्ण बल लगावेगी; परंतु वह उनके स्पष्ट सादृश्य को मिटाने में सफल न होगी। हमारे लिये इतना ही पर्याप्त है।

जो मनुष्य इन सादृश्यों को संयोग का (जो हताश युक्ति का सदा आश्रय होता है) फल बताते हैं, वे बताते रहें। निश्चय ही सभी विचारशील और स्वतंत्र प्रकृति के लोग हमारा समर्थन करेंगे।

परिवर्तन हुआ है। यदि वह प्राचीन और काल्पनिक समयों में ऐसी बातों को सच मान लेता है, जिन पर आज करुणा से उसे हँसी आती है, तो इसका कारण यह है कि उसमें सरल और युक्ति-संगत मत के लिये निर्भीकता नहीं, और वह आख्यान के उस उद्वेग का परित्याग करने में असमर्थ है, जिसके साथ जन्म से ही उसकी बुद्धि को ढक देना ठीक समझा गया था।

हमें पूरी तरह से मालूम है कि आधुनिक असहिष्णुताएँ किसलिये अपने सारे गर्जनों को तर्क के विरुद्ध झोंकती हैं, और इसकी जीतों का निराकरण करती तथा उन्हें अभिशापित करती हैं। इसका कारण यह है कि जिस दिन से निर्णय की स्वतंत्रता सभी मतों के लिये एक स्वीकृत नीति हो जायगी, उसी दिन से उनका शासन समाप्त हो जायगा; क्योंकि जिन क़िस्से-कहानियों और रहस्यमय अनुष्ठानों पर उनका ज़ोर है, उनका समाधान करना उनके लिये असंभव हो जायगा।

जाइए, आस्ट्रेलिया-निवासियों तथा स्वाधीन अमरीकनों से पूछिए कि वे बुद्ध, मनु, ज़र्दुश्त और मूसा का किस प्रकार स्वागत करेंगे।

यदि बुद्धि के विकास और निर्णय की स्वतंत्रता के कारण इन नवीन लोगों में ऐसी बातें उत्पन्न नहीं हुईं, तो क्या हमारा प्राचीन लोगों में इनकी उत्पत्ति का कारण जाति-पाँति की बाँट और जनता के पराजय तथा अविद्या को समझना युक्ति-संगत न होगा?

यह एक ऐसी मोटी सचाई है कि हमें इसको प्रतिष्ठित करने के लिये प्रमाणों की आवश्यकता नहीं मालूम होती।

परमात्मा करे, हमारे भाई जो समुद्र पार करके एक ऐसे देश में चले गए हैं, जो अतीत काल की सारी परस्पष्टता से, सारी याजकीय निरंकुश सत्ता से रहित है, योरप की सारी शासन-पद्धतियों में

तीसरा अध्याय

मिसर के पेरिया और मूसा

उपनिवेशी बननेवाली आधुनिक जातियों ने उस नवीन भूमि पर, जिसमें वे शक्ति और जीवन लाई हैं, अपने को हास्यास्पद आख्यानों से परिवेष्टित नहीं किया। किसी भी मनुष्य ने उनसे यह कहना आरंभ नहीं किया कि मैं परमेश्वर का दूत हूँ। जो प्रत्यादेश ईश्वर ने मुझे दिया है, वह मैं तुम्हें देने आया हूँ।

अब हम अपने कार्य के अत्यंत महत्त्वपूर्ण भाग पर पहुँच गए हैं। इस जलती हुई भूमि पर, जहाँ हम निर्भय होकर मूसा के यहूदी धर्म से अपने आधुनिक समाजों को प्राप्त सर्व मूढ़-विश्वासों और सर्व असंगतियों पर आक्रमण करनेवाले हैं; हम आलोचना का एक ऐसा भाव उत्पन्न करेंगे, जो दृढ़ और पक्षपात-शून्य होगा, जो सब पद्धतियों और सब अपरिहार्य विश्वासों से रहित होगा, और जो केवल सत्य का ही सम्मान करेगा।

वर्तमान काल में जिन बातों को असंभव होने के कारण हम छोड़ देते हैं, भूत काल में भी असंभव होने से हम उनका परित्याग कर देंगे।

जब कभी विचित्रता का युक्ति के साथ मुक़ाबला होगा, तो हम उसी अधिकार से उससे प्रमाण माँगेंगे, जिससे उसे पक्षपाती युक्ति से माँगते हैं।

जब हमें कोई असंगत मिलेगा, तो हम केवल इतना कहेंगे—तुम असंगत हो; जाओ, चले जाओ।

न मनुष्य के शरीर में और न उसकी मनःशक्तियों में ही कोई

नागरिक अधिकार को धार्मिक प्रभाव से शीघ्र ही मुक्त करने में अपने उदाहरण से हमारी सहायता करें।

जब तक इसको दूर न किया जायगा, किसी प्रकार की उन्नति का होना संभव नहीं। फिर ऐसी संधि के स्वप्न देखना तो और भी असंभव है, जो अब तक केवल विचार के पैरों में बेड़ियाँ डालने, जातियों को दास बनाने और राजों को अपने अधीन करने का ही काम देती रही है।

उपर्युक्त बातें हम ब्राह्मण-धर्म के नीचे दबी हुई प्राचीन सभ्यताओं के शीघ्र वर्णन में देख चुके हैं। भारत के इस पौराणिक धर्म ने इन सब सभ्यताओं को दूषित किया था। इनको हम उन सब धार्मिक कल्पनाओं के अध्ययन से और भी अधिक स्पष्ट रूप में देखेंगे, जिनको यहूदिया (Judea) ने मिसर और भारत से उधार लिया था, और जिन्होंने, जैसा कि हम जानते हैं, आधुनिक समयों में उन्नति को रोकने का काम किया है।

हम दिखा चुके हैं कि मिसर ने मेनस (Manes) अथवा मनु के द्वारा भारत से सामाजिक संस्थाएँ और क़ानून लिए, जिनका परिणाम यह हुआ कि लोग चार वर्णों में विभक्त किए गए। पहली श्रेणी में पुरोहित को रक्खा गया; दूसरी में राजों को; फिर वणिकों और शिल्पियों को। और, सामाजिक सोपान के सबसे अंतिम स्थान में किंकरों, प्रायः दासों को रक्खा गया।

इन संस्थाओं और इसी दंड-नीति ने, भारत की तरह सारी जाति से बहिष्कृत लोगों की सहायता से, एक मिश्रित वर्ग, बाक़ी सबका उच्छिष्ट उत्पन्न किया, जो सदा के लिये अपवित्र और बहिष्कृत विघोषित होने के कारण क़ानून द्वारा अपने ऊपर अंकित अमिट धब्बे को कभी मिटा नहीं सकता।

जाति के ये उच्छिष्ट, मिसर के ये पेरिया, मूसा द्वारा स्वतंत्रता

की आशा से फुसलाए जाकर, इबरानियों के, जो बड़े गर्व के साथ परमेश्वर की जाति कहलाते हैं, जनयिता बन गए।

जब हम उस युग के सारे समाजों की, क्या समष्टि रूप से और क्या व्यष्टि रूप से, परीक्षा करते हैं, तब इस नीच जाति के पुनरुद्धार के विषय में और किसी परिणाम को ग्रहण करना असंभव जान पड़ता है।

यदि भारत में अछूत थे, तो यूनान में क्रीत दास (Helot) थे। यदि मिसर में अपांक्त थे, तो रोम में भी नीच जाति थी, जिसको उसने चिरकाल तक नागरिक के नाम से वंचित रक्खा।

गुलामों का रखना, चाहे विजय द्वारा और चाहे अपराधियों को, बल्कि उनके वंशजों को भी समाज-निष्कासन द्वारा पतित बनाकर हो, पूर्ण रूप से प्राचीन लोगों का अनुकरण था, और यदि हम इबरानियों को मिसर की निष्कासित जातियों के वंशज बताते हैं, तो यह इसलिये कि पुराने-से-पुराने ऐतिहासिक ऐतिह्यों को खोज डालने पर भी यह प्रकट नहीं होता कि वे युद्ध-विपाक से दासता की दशा में पतित हो सके हों, और जाति-रूप से उनकी उत्पत्ति केवल मूसा के समय से ही है।

परन्तु हमें इस उत्पत्ति—जो युक्तिसंगत और प्राचीन सभ्यता की सामाजिक दशा के योग्य है—और उस उत्पत्ति में से, जो स्वयं मूसा बाइबिल की पहली दो पुस्तकों—उत्पत्ति और निर्गमन—में अपने लोगों की बताता है, एक को चुनना पड़ेगा।

तब हमें देखना चाहिए कि वह व्यवस्थापक कौन था। इस अन्वेषण से ऐसे निर्णायक प्रमाण मिल जायँगे, जिनका लगभग चार हज़ार वर्ष के व्यतीत हो जाने पर किसी ऐसे युग के विषय में दिया जाना संभव हो सकता है, जिसको अंधकार और कल्पना से ढकने में सब प्रकार की किंवदन्तियों ने कुछ कम भाग नहीं लिया।

स्वयं मूसा के कथनानुसार, जब इब्रानी लोग इतने बढ़ गए कि जाति के अंदर जाति बन गई, और तत्कालीन राजा फ़िरऔन (Pharaoh) को उनसे भारी डर हो गया, तब उसने उनको नष्ट कर डालने का भरसक यत्न किया, और आज्ञा दे दी कि लड़कों को पैदा होते ही मार डाला जाय। एक दीन स्त्री, जो अपनी आँखों के सामने अपने पुत्र की हत्या नहीं देख सकती थी, बालक को बेदमजनूँ की टोकरी में रखकर नील नदी के तट पर फेंक आई। फ़िरऔन की पुत्री दासियों सहित नदी पर स्नान करने आई। नन्हे-से बालक को पड़ा देखकर उसे दया आ गई। उसने उसे बचा लिया, उठवाकर अपने राजभवन में ले आई, और उसे अपना दत्तक पुत्र बना लिया। यह बालक मूसा था।

चालीस वर्ष तक वह मिस्र के राजपरिवार में पलता रहा, और उसकी उत्पत्ति के विषय में उसे किसी ने भी कुछ न बताया। एक दिन उसे एक मिस्री को मारने के लिये, जो एक इब्रानी से कुव्यवहार कर रहा था, विवश होकर मरुस्थली में जाना पड़ा। यहाँ ईश्वर ने उस पर उसका पूर्व-निरूपित जीवनोद्देश्य प्रकट किया।

मैं कट्टर-से-कट्टर पक्षपाती से पूछता हूँ कि क्या इससे यह परिणाम निकालना स्वाभाविक और तर्कसंगत नहीं कि मूसा को पुरोहितों ने पाला, और उसे शुद्ध ईश्वर-पूजा तथा उच्च श्रेणियों की विद्या सिखाई। उसके ज्ञानवान् होने का यही कारण था।

बाद को उसकी उत्पत्ति का पता लग जाने के कारण, जिसे उसकी रक्षा करनेवाली राजकुमारी ने छिपा रक्खा था, या जैसा कि वह आप ही हमें बताता है, एक मिस्री को मार डालने के कारण, जब वह फ़िरऔन के राजभवन से निकाल दिया गया, तब क्या क्रोध और प्रतिहिंसा ने उसे उस जाति का उद्धार करने के लिये बाध्य न किया होगा, जिसमें उसका जन्म हुआ था?

तब उन भीषण दुर्भिक्षों में से, जो भूमि को उर्वरा बनानेवाली नील-नदी की बाढ़ों के अभाव से मिस्र को नष्ट कर डालते हैं, अथवा प्लेग और सान्निपातिक ज्वररूपी उन विनाशक कीड़ों में से, जिनकी उन देशों में कमी नहीं है, किसी एक-से लाभ उठाकर, उसने अपने को तत्कालीन शासक के सामने एक ईश्वरीय दूत प्रकट किया, और उन व्याधियों को ईश्वर के कोप का फल बताया। वह राजा से हतभाग्य इब्रानियों को उनकी दुःखित अवस्था से निकालने की आज्ञा लेने में सफल हो गया।

परंतु मैं तो इब्रानियों के विद्रोह और स्थानांतर-गमन को मूसा और उसके भाई आरोन (Aaron) की चिरकाल की तैयार की हुई क्रांति समझता हूँ। आरोन मूसा की प्रत्येक कल्पना का अनुमोदन करता था, और मिसरियों को इन योजनाओं का केवल उस समय पता लगा, जब इनको दबाने का समय गुज़र चुका था।

फ़िरऔन के अपनी सारी सेना सहित लाल समुद्र में नष्ट हो जाने और भगोड़ों के उसी समुद्र पर से सूखे-पैर पार हो जाने को मैं चमत्कार और आविष्कार का संदिग्ध प्रमाण-विषय मानता हूँ।

हम यह कल्पना कर सकते हैं कि मूसा, जिसने अपने को परमेश्वर का दूत बताने के पश्चात् ये सब बातें लिखीं, उनको अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये, अपने बहुत ही अनुकूल, रहस्यमय परिवेश से परिवेष्टित करने का ख़्याल रखता था।

उसके सभी पूर्ववर्तियों ने अलौकिक और आश्चर्यजनक बातों से ही अनभिज्ञ और मूढ़-विश्वासी जनता को ठगा था। वह एक चतुर मनुष्य था, और उसका उद्देश्य अपने अधिकार पर ईश्वर की मुहर लगाना था, जिससे इसके विषय में किसी को संदेह करने का साहस ही न हो।

यह काम करने का समय था। जन-समूह इन भौतिक चमत्कारों को सुनकर भयभीत हो गया। वे उन्हें समझ नहीं सकते थे। जल्दी से मुखिया प्रकट हुआ। उसके मुखमंडल पर देव-ज्ञान की झलक थी। उसको देखते ही लोग सम्मान के भाव से शांत हो गए। उसने मूर्तियों को तोड़ डाला, और उच्च स्वर से गर्जकर कहा कि जगदीश्वर ने तुममें श्रद्धा की कमी और असंतोष देखकर तुम्हें यह दंड दिया है कि अपने अभिलषित देश में पहुँचने के पूर्व अभी तुम्हें और चलना पड़ेगा। इसलिये उन्होंने चलना जारी रक्खा। यह उसे समय मिल गया।

अंत को वे एक पर्वत-शिखर पर पहुँचे। वहाँ से उन्हें हरियाली से ढके हुए विस्तृत मैदान दिखाई पड़े। अब उचित समय था; कलह और क्लांति से चकनाचूर, जीवन की अवधि पर पहुँचा हुआ मूसा उधर से केवल इतना ही कह सका—"वह देखो भूमि, जहाँ तुम्हें ले जाने के लिये परमेश्वर ने मुझे आज्ञा दी थी।" उसने अपनी बाँहों को फैलाया, मानो उसे अपने अधिकार में लाने लगा है—और इसके साथ ही उसकी मृत्यु हो गई। अपने कार्य को पूर्ण करने का भार वह अपने भाई तथा भक्त पर, जिसको उसने तैयार किया था, छोड़ गया।

अपने लंबे भ्रमणों में उसने एक धर्म-शास्त्र लिखा। इसमें उसने इस दल के लोगों का एक कृत्रिम भूतकाल ठहराया, और उन पोथियों तथा धर्म-ग्रंथों से प्रोत्साहित होकर, जिनका उसने मिस्र में अध्ययन किया था, उसने परमात्मा तथा सृष्टि-संबंधी हिंदू-उपाख्यानों को पुनर्जीवित किया, पुरोहितों अथवा लेवियों (Levites) की व्यवस्था की, बलिदानों तथा उनकी रीतियों का विधान किया, और छोटे-से नागरिक और धार्मिक नियमों से इस नवीन समाज की नींव रक्खी, जिसे उसके उत्तराधिकारी बनाने को थे।

सारे पानियों को लहू बना देता है। फ़िरऔन के जादूगर भी यही चमत्कार दिखलाते हैं, जिससे उसका हृदय कठोर ही बना रहता है।

अध्याय ८, अंश १—परमेश्वर मूसा को फ़िरऔन के पास भेजता है। राजा का मन वैसा ही कठोर बना रहता है। मिसर पर एक और महामारी, अर्थात् मेंढकों की महामारी, आती है।

अंश २—दूसरी महामारी से भी फ़िरऔन नरम नहीं होता, तब परमेश्वर उस पर तीसरी महामारी, अर्थात् मच्छड़ भेजता है।

३—इन उत्पातों से छुटकारा पाने के लिये फ़िरऔन इसरायल-वंशियों को जाने देने का वचन देता है; परंतु वह अपना मन बदल देता है और फिर कठोर बन जाता है।

अध्याय ९, अंश १—पाँचवीं महामारी। परमेश्वर मिसर के सारे पशुओं में भारी मरी फैलाता है, किंतु इसरायल-वंशियों के पशुओं को छोड़ देता है।

अंश २—छठी महामारी। परमेश्वर हवा में से अंगारे फेंकता है, उनसे सारे मिसर में मनुष्यों और पशुओं के घाव हो जाते हैं।

अंश ३—सातवीं महामारी, ओले और तूफ़ान। परमेश्वर फ़िरऔन को सूचना देता है, ताकि वह इससे बच जाय; परंतु उसका हृदय ज़ियादा कठोर होता जाता है।

अंश ४—उस उत्पात से डरकर फ़िरऔन इसरायल-वंशियों को जाने देने का वचन देता है; परंतु यह देखकर कि मैं अब छूट गया हूँ, वह और भी कठोर होता जाता है।

अध्याय १०, अंश १—परमेश्वर मिसर में आठवीं महामारी टिड्डियों की भेजता है। मिसर में जो चीज़ तूफ़ान से बच रही थी, उसे वे चट कर जाती हैं।

अंश २—जब इन महामारियों से भी फ़िरऔन का हृदय नरम नहीं होता, तब परमेश्वर नवीं महामारी, अर्थात् अंधकार, भेजता है,

जो सारे मिसर को घेर लेता है। इस पर फ़िरऔन पहले तो इसरायल-वंशियों को जाने की अनुमति दे देता है, परंतु शीघ्र ही अपने वचन से फिर जाता है, और उसका चित्त फिर कठोर हो जाता है।

अध्याय ११, अंश १—दसवीं और अंतिम महामारी का भविष्य-कथन, जो परमेश्वर मिसर में भेजेगा, मिसरियों से सोने और चाँदी के बर्तन उधार लेने की इसरायल-वंशियों को आज्ञा।

अध्याय १२, अंश १—प्रभु परमेश्वर इसरायल-वंशियों को पहला ईस्टर पर्व मनाने की आज्ञा देता है। वह उसमें की जानेवाली प्रक्रियाओं का विधान करता है।

अंश २—प्रभु परमेश्वर मिसरियों के सभी जेठे बच्चों को मार डालने और इसरायल-वंशियों के जेठों को छोड़ देने की अनुमति देता है। वह उस दिन की स्मृति को एक गंभीर उत्सव द्वारा सदा मनाते रहने की आज्ञा करता है।

अंश ३—इसरायल-वंशियों को भेड़ का बच्चा मारने और उसका लहू अपने घरों के दरवाज़ों में डालने की आज्ञा (ताकि मौत का फ़रिश्ता, जो अपना मृत्यु का काम करने आ रहा था, इसरानियों के घरों को मिसरियों के घरों के साथ गड़बड़ न कर दे)।

अंश ४—प्रभु परमेश्वर मिसर के सभी जेठे बच्चों को मार डालता है। फ़िरऔन भयभीत होकर इसरायल-वंशियों को उसका देश छोड़ जाने पर ज़ोर देता है। वे मिसरियों से सोने के बर्तन तथा कपड़े उधार लेते हैं, और छः लाख की संख्या, छोटे बच्चों के एक अनंत समूह सहित, शीघ्रता से कूच कर जाती है।

बस, रहने दीजिए ! ऐसे मूढ़ विश्वासों और ऐसी नीचताओं के पर्यवेक्षण से हृदय घृणा और कोप से भर जाता है !

निश्चय ही यदि मैंने सारे पक्षपात का, सारे संकीर्ण विश्वासों का चिरकाल से शपथ-पूर्वक परित्याग न भी कर दिया होता, तो इन असंगतियों का पाठ ही मुझे शुद्ध बुद्धि का उपासक बनाने के लिये पर्याप्त था। इस शुद्ध बुद्धि के द्वारा मुझे चटपट देव की अतीव सरल और अतीव उच्च कल्पनाएँ मिलती हैं।

क्या आप इस ईश्वर को मेंढकों और छोटी-छोटी मक्खियों द्वारा आक्रमण करते, फिर सारी-की-सारी जाति को महामारी और भयानक व्रणों द्वारा पीड़ित करते और अंततः प्रत्येक परिवार के सभी जेठे लड़कों की हत्या से अपनी शक्ति को प्रकट करते देखते हैं ?

हास्यास्पद से भीषण तक यह एक कैसा क्रम है !

हां, आप सारी प्राचीन देवमालाओं को देख डालिए, आलिंपस के सारे रहस्यों में गहरी डुबकी लगाइए, सभी जातियों के अतीव दुर्बोध ऐतिह्यों का अन्वेषण कीजिए, मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ, आपको ऐसी शोचनीय और ऐसी घोर दुर्वृत्तकारिणी बात कहीं न मिलेगी। मैं सदर्प कहता हूँ, यदि मुझे मूसा के परमेश्वर और 'एपिस वृषभ' में से कोई एक चुनना पड़े, तो मैं वृषभ को ही अपना परमेश्वर चुनूँ !

जब उसने नाना प्रकार के दंडों द्वारा मिसर को भली भाँति खंड-खंडितकर दिया, तब यहोवह (परमेश्वर) ने उसके कार्य को बच्चों की बीभत्स हत्या के साथ समाप्त किया। किंतु अभी इतना ही पर्याप्त नहीं था; उसने अपने लोगों को इस पुण्य-कार्य का शाश्वत अभिज्ञान बनाए रखने और प्रक्रियाओं और गीतों के साथ त्योहार के रूप में इसका वार्षिकोत्सव मनाने की आज्ञा दी। और, आधुनिक भाव अभी तक ऐसे अत्याचारों पर प्रसन्न होता है ! मैं अभी

पुरोहितशाही को मुझे पागल और ईश्वर-निंदक बताकर धमकाते सुन रहा हूँ !

तब कौन पागल है ? कौन ईश्वर-निंदक है ?

कौन ईश्वर को रक्त की पालकी में लोटाता है ? या कौन सर्व-शक्तिमान्, सर्वज्ञ और पूर्ण परमेश्वर को बूचड़ मानने से इनकार करता है ?

यह धर्मोन्मत्त दास, जो फ़िरऔन के राजपरिवार की उदारता से पला था, अवश्य ही उन लोगों की नीचता और अज्ञता को भली भाँति जानता होगा, जिनका उसने उद्धार किया था। इसीलिये उसने इस क्रांति का इतिहास लिखते समय इसको इन हास्यास्पद विभीषिकाओं से परिवेष्टित करने का साहस किया।

वस्तुतः यह मूसा का अपना ही है। अनुकरण करने के लिये उसे और कहीं नहीं मिला। अभी, जब हम यह दिखलावेंगे कि बाइबिल का जेनिसिस हिंदुओं की धर्म-पुस्तकों की झूठी और भद्दी नक़लों के सिवा और कुछ नहीं, तब हमें यह प्रकट करने का अवसर मिलेगा कि वे लोग, परमेश्वर को एक संत्रास-हेतु बनाना तो दूर, उसकी शक्ति के अतीव सुंदर गुणों, दयालुता और क्षमा पर विचार करके आह्लादित होते हैं।

जिन लोगों को मूसा मरुभूमि में ले गया था, वे वास्तव में अछूत ही थे !

जिनके गले में कल अभी दासता का जुआ पड़ा हुआ था, और जो धर्मांधता से कलंकित हो रहे थे, उन्हें मिस्र के देवता ऐसी अमंगलकारिणी काली आत्माएँ ही दिखाई देते थे, जो अपने भक्तों के वेदना-विलाप को सुनकर प्रसन्न होती थीं; क्योंकि उनके उच्च श्रेणी के शासकों ने उन्हें ऐसी ही शिक्षा दी थी। इस्राईली लोग स्वतंत्रता को समझने के बिना ही स्वतंत्र हो गए, और मूसा ने, जो अपेक्षाकृत

उन पर अच्छा शासन कर सकता था, अपनी पुस्तक को पवित्र सिद्धांतों और नीच मूढ़-विश्वासों की, पुरोहितों से पढ़े हुए वेदों के दुर्वल स्मरण और मिसरियों की नीच पूजा के ऐतिह्यों की एक खिचड़ी बना दिया।

जो जाति एपिस-वृषभ और स्वर्णीय तर्णक में अपने पुराने विश्वासों के पुनर्ग्रहण के लिये सदैव उद्यत रहती हो, उस पर शासन करने और उससे अपने विघोपित परमेश्वर को स्वीकार कराने के लिये आवश्यक था कि वह भी अतीत काल के देवताओं का-सा ही काम करता।

और, क्या इस नीच जन-समूह को, जिसे भूतकाल में सामान्य वेदना की स्मृति के विना और कोई भी बात इकट्ठा करके एक जाति बनानेवाली न थी, ढकेलकर आगे बढ़ाने के लिये, भय और चमत्कार समान रूप से आवश्यक न थे?

मूसा ने अपने आरंभ की कठिनता का उस समय अवश्य अनुभव किया होगा, जब एक दिन, फ़िरऔन के देश में, उसने दो इब्रानियों को झगड़ते देखकर उनमें से झगड़े के आरंभ करनेवाले से कहा—"तु इस प्रकार अपने भाई को गालियाँ क्यों देता है?"

तब उसे उत्तर मिला—"तुझे किसने हमारा राजा और विचार-पति बनाया है? क्या तू मुझे भी उसी तरह मार डालेगा, जिस तरह कल तूने एक मिसरी को मारा था?"

इस समय, निस्संदेह, उसने अनुभव किया होगा कि मेरा परिचिंतित निर्गमन निष्कासितों, दासों और व्यवसाय-शून्य लोगों के इस समूह को सभ्य बनाने के कार्यक्रम का सुगमतम भाग है।

जो विनाशक यहाँ सदा प्रतिहिंसा और विभीषिका द्वारा ही अपनेको अभिव्यक्त करता है, उसकी सृष्टि का कारण मैं केवल

नहीं समझ सकता हूँ। यह निरंकुश और असंतोष से घबड़ानेवाले लोगों के लिये एक हितकर रोक है।

परंतु यदि मैं इसे किसी जाति के प्रथम आविर्भाव पर नीच विद्रोह से उत्पन्न हुआ एक उपाय समझूँ, तो मैं इसे इससे बढ़कर और कुछ नहीं समझता, और न ही इसे एक पीछे का विश्वास स्वीकार कर सकता हूँ। मैं इसकी गणना उन कल्पित कथाओं और संग्रामहेतुओं में करता हूँ, जिनका प्रयोग प्राचीन समाजों के संस्थापकों ने किया था।

इसलिये अब हमें परमेश्वर की जाति (!) के विषय में और अधिक न सुनना चाहिए।

अपनी कल्पित उत्पत्ति को हत्याओं और लूट-मार से परिवेष्टित करने के कारण (क्योंकि वे सदा परमेश्वर की आज्ञा (!) से मिसरियों के सोने के बर्तन और पोशाकें उधार लेकर उनको नितांत लूटते हैं!) इबरानी लोग उनके विषय में मेरे इस निर्णय को कि वे अभिद्रोही अकृत-मात्र हैं, कभी नहीं बदल सकते। मेरी अपनी दी हुई युक्तियों के अतिरिक्त स्वयं बाइबिल में एक ऐसी युक्ति है, जिसे मैं यदि भूतकाल के इन अध्ययनों में सत्य का मूल्य केवल असंगति से ही न लगाया जाय, असंदेहनीय कह सकता हूँ।

यहूदी काल-गणना के अनुसार याक़ूब सन् २२६८ में मिसर में बसने के लिये गया। उसके साथ सत्तर व्यक्तियों—पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र—का उसका सारा परिवार था।

क्या एक क्षण के लिये भी यह मानना संभव है कि इस छोटी-सी अवधि में, और उस दौरात्म्य के होते हुए, जो उन्हें सहना पड़ा, याक़ूब के वंशज ऐसी शीघ्रता से बढ़ सकते थे? इस उपाख्यान की सत्यता को प्रतिष्ठित करने का यत्न क्या सहज बुद्धि पर अत्याचार न होगा?

यूसुफ़ और कुलपतियों के इतिहास या तो मूसा की गढ़ी हुई परिकथाएँ हैं, या जो मेरी सम्मति में उत्तम जान पड़ता है, ये मिसर के ऐतिह्य हैं, जिनको इस व्यवस्थापक ने इकट्ठा कर लिया है, और यह प्रकट करने के लिये इनका प्रयोग किया है कि इबरानियों का ईश्वर-विहित उद्देश्य बहुत पुराना है, और उनके पूर्वज पहले ही परमेश्वर के प्रिय रह चुके हैं।

मैं पूर्ण सुहितता से पूछता हूँ कि क्या एक स्वतंत्र, समझदार और ऐतिहासिक समालोचक को चमत्कारों और घोर मूढ़ विश्वासों की इस राशि का, जो इबरानी जाति की उत्पत्ति को बोझ से लाद रही है, अस्वीकार नहीं कर देना चाहिए?

हमने यूनानी और रोमन देवमालाओं को मानने से घृणापूर्वक इनकार कर दिया है। तो फिर यहूदियों की देवमाला को सम्मान-पूर्वक क्यों स्वीकार करें?

क्या जूपीटर के चमत्कारों की अपेक्षा यहोवह के चमत्कारों का हम पर अधिक परिणाम होना चाहिए?

क्या परम बुद्धि, अर्थात् विवेक द्वारा हम पर प्रकाशित ईश्वर को इन दो क्रोधी और रक्तप्रिय सत्ताओं में से, जो बदला लेने के लिये तत्पर और लौकिक श्रद्धालुता के संत्रासहेतु हैं, किसी एक में मानना संभव है।

और, फिर अविनय और अभिमान का यह अभिनय, जिसके समान इतिहास में दूसरा नहीं मिलता, क्या है?

एक जाति अपने को ईश्वर की एकमात्र प्रिय जाति बताकर अभिमान करती है, अपने पड़ोसियों के सामने केवल कपट और निर्दयता के अत्यंत गर्ह्य उदाहरण उपस्थित करती है, और परमेश्वर के नाम पर उन देशों के अधिवासियों का उन्मूलन करती है, जिनको वह अपने लिये लेना चाहती है !

जो लोग अभी कल दास थे, वे क्या अपने नवीन समाज में दासता का नाश कर देंगे ? नहीं, वे अब तक भी ईश्वर के नाम पर अपने विजित लोगों को दास बना रहे हैं !

जहाँ तक मुझे ज्ञात है, अतीत काल में और कोई जाति ऐसी नहीं हुई, जो दंभ में इतनी दृढ़ हो, और जो अपनी अभीष्ट-सिद्धि के लिये प्रत्येक उपाय को पवित्र बना लेती हो ।

परंतु इस पर हमें आश्चर्य न होना चाहिए । मूसा द्वारा प्रतिष्ठित इस ईश्वर-कर्तृक शासन के सिर पर पुरोहित अर्थात् लेवी (Levite) प्रकट हुआ । वह शीलभ्रंश द्वारा वशीकरण के प्राचीन याजकीय अभिनय का भक्त था । हिंदू-पौराणिक-धर्म के उत्तराधिकारी ने, जैसा कि इसने मिसर में, फ़ारस में और सभी प्राचीन समाजों में किया था, परमात्मा को अपनी निरंकुश कामनाओं का साधन बनाना, और भद्रालु लोगों को अपनी जाति के स्वच्छंद प्रभाव के अधीन करने के लिये धर्म-वृद्धि से काम लेना जारी रक्खा ।

प्राचीन जगत् की दूसरी जातियों के विषय में जो अन्वेषण हो चुके हैं, उनके बल पर हम कह सकते हैं कि अब यह मत विरोधाभास नहीं रहा ; यह हिमालय की समस्थली को छोड़नेवाले स्वदेश-त्यागियों के उस महान् आंदोलन का केवल तर्कसंगत और अविरुद्ध सातत्य है जिसका प्रभाव कि संसार के चारों कोनों तक फैला था, और जिससे यह मान लेना स्वाभाविक है कि मिसर से निकलनेवाले इसराईलवंशी लोग न बचे थे।

इबरानी व्यवस्थापक के ग्रंथ की हिंदू-व्यवस्थापक के ग्रंथ के साथ तुलना करते समय हम इसको एक सचाई प्रमाणित करेंगे, और भूमि के इस प्रकार साफ़ हो जाने पर, हम बेधड़क होकर सृष्टि की उत्पत्ति पर वेदों के और हिंदुओं के उन लिखित ऐतिह्यों के अनुसार विचार करेंगे, जिनको बाइबिल ने बहुत थोड़े परिवर्तन के साथ दुबारा वर्णन किया है।

एक शब्द कहकर हम बस कर देंगे।

जिन मतों के साथ संसार के प्राचीन समाजों के विषय में विवेक और अन्वेषण मुझे प्रोत्साहित करते हैं, उनकी क्रूरता और वंचना के इस जाल की यशू के समाज द्वारा मूल्य-वृद्धि के साथ तुलना करना मुझे दिलचस्पी से ख़ाली नहीं जान पड़ता।

निर्गमन की पुस्तक के माथे पर फ़ादर डी कैरीएर्स (Father de Carrières) की लिखी यह विज्ञप्ति है—

"इस प्रकार ईसाई लोग इस महान् ईश्वरदूत (सेंट पाल) से ईश्वर के उन गंभीर निर्णयों का आदर करना, जिन पर दृढ़ रहते हुए उसने फ़िरऔन का साथ छोड़ दिया, और उस अनंत ज्ञान की प्रशंसा करना सीखते हैं, जिसके द्वारा उसने उस राजा की ढिठाई से, जो उसने उसका प्रतिरोध करते हुए दिखाई थी, अपनी शक्ति और महिमा को अभिव्यक्त करने में सहायता ली।"

"वही ईश्वरदूत उन्हें सिखाता है कि लाल समुद्र के मार्ग को अपने बप्तिस्मे का आदर्श स्वरूप समझो; स्वर्ग से गिरनेवाले वंशलोचन को यूकरिस्ट (Eucharist) का सांकेतिक समझो; मरुभूमि में इसराईली लोगों के पीछे-पीछे जानेवाला जल जिस चट्टान से निकला था, उसे यशू खीष्ट का रूप समझो, जो इस जीवन में ईसाइयों का पोषण करता और आत्मा तथा शांति में उनके पीछे-पीछे चलता है, जब तक वे सच्ची प्रतिज्ञात भूमि में नहीं पहुँच जाते; और सिनाई पर्वत को ऐहिक जेरूसलम की प्रतिमा समझो। धर्म-नियम को एक ऐसा उपदेष्टा समझो, जो सच्चा न्याय नहीं सिखला सका, किंतु जो यशू खीष्ट को इसका स्रोत बताता है। मूसा के मुख के प्रकाशमान तेज को सुसंवाद (बाइबिल) के मुख की प्रतिच्छाया समझो। जिस आवरण से उसने अपने को ढाँपा था, उसे यहूदियों के अंधेपन का रूप समझो। उपासना-मंदिर को, जो स्वर्गीय-धर्ममंदिर का नमूना है, यशू खीष्ट के रक्त को दिखलानेवाला बलि होनेवाले लोगों का रक्त समझो।"

इसलिये नाना प्रकार के दंडों, महामारियों और हत्याओं द्वारा मिस्र देश का दंडित किया जाना हमारे आधुनिक लेवियों (पुरोहितों) के अनुसार ईश्वर की महामहिमा का द्योतक है!

इसमें संदेह नहीं कि मध्यकाल में सैकड़ों मनुष्यों के निठुर बलिदान भी समान रूप से दिव्य-शक्ति की अभिव्यक्ति के लिये ही थे, और दुराग्रही सिसलियों ने वॉडोइस (Vaudois) और सेंट बार्थोलोम्यू की बलियों का नमूना दिखाया था!

कैसा उन्मार्ग-गमन है! नैतिक बुद्धि का कैसा विपर्यय है!

यह सोचकर और दुःख होता है कि हमें अभी तक ऐसे कट्टर-विश्वासों पर वाद-प्रतिवाद करना पड़ता है, और [illegible]

धर्म के विनाश ने भी लोगों को स्वतंत्र विचार और धार्मिक स्वतंत्रता के मार्ग का अनुगामी नहीं बनाया !

आओ, हम साहसपूर्वक उनके छद्म वेष को फाड़ डालें, और सबको दिखला दें कि वे केवल मानव-निर्बलताओं और मानुषी मनोविकारों के ही काम हैं।



चौथा अध्याय

भारत और मिस्र के समाजों के नमूने पर मूसा इबरानी-समाज की स्थापना करता है

अपनी धार्मिक तथा राजनीतिक संस्थाओं की स्थापना करते हुए मूसा उस प्रभाव से नहीं बच सका, जिसे हमने समस्त प्राचीन जगत् में व्याप्त वर्णन किया है।

निष्कासितों के इस समूह को मरुस्थली में ले जाने और, बाइबिल के कथनानुसार, उनके पीछे मिस्री जन-समूह के जाने से उनको शिक्षित करना, उनके लिये नियम बनाना और नियमित स्वभावों का उन्हें आदी बनाना आवश्यक हो गया। जाति-पाँति का विचार उनके आचार-व्यवहार में इतना गहरा गड़ चुका था कि वे उसकी उपेक्षा न कर सकते थे; अतः यह नवीन शासन की रचना में पैठ गया। यह नया शासन हिंदुओं के ब्राह्मण-शासन की हूबहू नक़ल के सिवा और कुछ न था।

चार के स्थान में यहाँ बारह वर्ण बनाए गए। इनमें से पहला सदा की भाँति पुरोहित वर्ण था। जाति के सभी नागरिक तथा धार्मिक व्यापार इसी के अधिकार में थे। यह ईश्वरीय ज्ञान का व्याख्याता और मंदिरों का संरक्षक था। यज्ञ (बलिदान) करने की केवल इसे ही आज्ञा थी। मानसिक पापों और सामाजिक अपराधों का एकमात्र निर्णेता यही था।

दोनों प्रकार के विषयों में उसके शब्द राजनियम माने जाते थे। वह अपने कार्यों के लिये केवल परमेश्वर के सामने ही उत्तरदाता था।

पोप के भक्तों (Ultramontanism) को आज इसी आदर्श के स्वप्न हो रहे हैं। वे पोपों के लाभार्थ इस अधिकार को प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। इस अभीष्ट की सिद्धि के लिये वे आधुनिक समाजों की शक्ति को घटाकर उन्हें केवल ऐसे जत्थे बना देना चाहते हैं, जिनको अपने प्रत्येक कार्य तथा विचार के लिये रोम से आज्ञा लेनी पड़े।

क्या कोई यह कहेगा कि इबरानियों की उपजातियाँ 'वर्ण' नहीं, किंतु ये याक़ूब के पुत्रों से उनके जन्म तथा उत्पत्ति के स्वाभाविक विभाग थे ?

मैं समझता हूँ, यह पिता-पुत्र-संबंध मूसा की चतुर कल्पनामात्र है, जिससे लोग यह मानने लगें कि उसके द्वारा प्रतिष्ठित विभाग स्वयं परमेश्वर की ही रचना है। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि लोगों को इनके विरुद्ध अवश्य ही शिकायत होगी। इसके अतिरिक्त क्या इस प्रकार अतीत काल के सादृश्यों का प्रचलित करना आवश्यक न था, जिससे इबरानियों को वे दुःख याद आते रहें, जो उन्होंने मिस्र की निरंकुश राजसत्ता के नीचे भोगे थे, और किसी को भी अपनी जाति बदलने के लिये न ललचाय ?

स्वतंत्र होते ही, सदा उसी संकल्प से, इबरानी व्यवस्थापक ने अपनी युक्तियों तथा महत्त्वाकांक्षाओं में दीक्षित सहचरों से अपने को परिवेष्टित कर लिया, उनको पुरोहित बना दिया और उनको ईश्वरीय रक्षा में रख दिया जिससे लोग उनके अधिकार की सत्यता के विषय में प्रश्न न करने लगें।

इन व्यावर्तित उपजातियों अथवा वर्णों को, भारत और मिस्र के

वर्णों की भाँति, मूसा ने निस्संदेह लेवियों (Levite) का स्थायी प्राधान्य स्थापित करने और इस कुल की दूसरी उपजातियों के साथ विवाह करने से रक्षा करने के लिये ही ग्रहण किया था।

ऐसे युग में, जब कि सभी जातियाँ पुरोहित के शासन के नियम को ग्रहण कर चुकी थीं, इससे बढ़कर सरल बात और क्या हो सकती थी कि मूसा हिंदू स्वदेश-त्यागियों और उपनिवेशियों की रचना की, जिसकी मिसर तथा सारे एशिया भूखंड में प्रतिष्ठा थी, कुछ रूपांतर के उपरांत, केवल नक़ल कर लेता ?

इसके समाधान के लिये ईश्वरीय उद्देश्य का और उन कहानियों और सृष्टिक्रम-बाह्य अद्भुत बातों का प्रयोजन नहीं, जिनका प्रयोग इस इबरानी व्यवस्थापक ने अपने अधीनस्थ दुर्दांत और विगुण जन-समूह को अधिक सुगमता से वश में रखने के लिये किया था। आज्ञाभंग, असंतोष और अभिद्रोह इतने अधिक होते थे कि हम पूछते हैं, यदि वह चालाकी से इस परमेश्वर की रचना न करता, जो अतिक्रम पर सदा ईश्वर-निंदकों तथा विद्रोहियों का वध कर डालता और अपनी प्रतिहिंसा के अत्याचारों से जनता को भयभीत रखता है, तो संभवतः इसे सफलता कैसे हो सकती ? क्या लेवी (Levi) वर्ग अर्थात् पुरोहितों ने सुनहरे बछड़े के संप्रदाय के पश्चात् यहोवह के नाम पर ही तेईस सहस्र इसराईलियों की हत्या नहीं की थी ? मूसा की चाहे कितनी ही शक्ति क्यों न हो, हमको इन भीषण दृश्यों को सामने रख कर यह कहना पड़ता है कि यदि उसने जनता को भिन्न-भिन्न श्रेणियों या वर्णों में बाँट न दिया होता, और सबसे बढ़कर, यदि उसने पुरोहित वर्ग को, जो उसकी अपनी जाति में से थे, उसके रक्षा-पोषक के, धर्मोन्मत्त न बना दिया होता, तो अवश्य ही इसका परिणाम उसकी अपनी मृत्यु होता। यदि मुझसे पूछो, तो मुझे तो वैदिक हिंदू-धर्म और लेवियों के धर्म (Levitism) में कुछ

भी भेद नहीं देख पड़ता, और प्रत्येक चीज़ इसी बात की घोषणा करती सुनाई देती है कि लेवीधर्म पौराणिक हिंदू-धर्म से ही उत्पन्न हुआ है।

इन दोनों सभ्यताओं को उनके रीति-रिवाजों द्वारा जोड़ते हुए हमें अब यह दिखलाने का अवसर मिलेगा कि इनमें से एक का दूसरी से उत्पन्न होना काल्पनिक-मात्र नहीं, संस्थाओं का केवल सादृश्य ही नहीं।

ईश्वर के एकत्व की महान् कल्पना का, अस्पष्ट रूप से, सबसे पहले प्रतिपादन करनेवाला मूसा को माना गया है। इस कल्पना को उसकी समकालीन दूसरी जातियों ने, कम-से-कम उस युग के ऐतिहासिक ग्रंथों में, वैसी ही पूर्ण रीति से समझा मालूम नहीं होता—यह मत एक भारी भ्रम है। इसका खंडन करना कुछ भी कठिन नहीं; यद्यपि इसको काल और ईसाई सिद्धांत ने सुप्रतिष्ठित किया है। इबरानी परंपरा को स्वीकार कर लेने के कारण ईसाई मत का इसको बड़े अनुराग के साथ ग्रहण करना और इसका प्रचार करना स्वाभाविक ही था।

मूसा ने, जो मिसर में राजकीय शिक्षा द्वारा हिंदुओं के एकेश्वरवाद में दीक्षित हो चुका था, इबरानियों के लिये उन मूढ़-विश्वासों पर आश्रित कोई पूजन-विधि नहीं तैयार की, जिनका मिसरदेशीय पुरोहितों ने, एक स्पष्ट उद्देश से निम्न जातियों को अभ्यास कराया था। इसके स्थान में वह पहला मनुष्य था, जिसने ईश्वर के एकत्व और सृष्टि की उत्पत्ति के ऐतिह्यों (जो भारत और मिसर ने केवल ब्राह्मणों और पुरोहितों के विशेष स्वत्वधारी वर्गों के लिये ही परिरक्षित रक्खे हुए थे) पर आश्रित दीक्षा के रहस्यों का उन पर उद्घाटन किया। परंतु यह बात ध्यान देने योग्य है कि लोगों पर परमात्मा की एकता-संबंधी इन उच्च कल्पनाओं को प्रकट करते हुए भी उसने उनका

विशुद्ध रूप बताने का साहस नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि ये लोग दासता की संतान थे, बुद्धि-शून्य थे और भूतकाल से इतनी यथेष्ट रीति से मुक्त नहीं हुए थे कि वे ईश्वर—सृष्टि-कर्ता, सर्वशक्तिमान्, और दयालु—की कल्पना को क्रूर प्रतिहिंसा और भीषण दंड की सभी सहकारिणी कल्पनाओं से अलग कर सकें।

इसीलिये मूसा ने अपने यहोवह को उन भुवनों का, जो हिंदुओं की धर्म-पुस्तकों के अनुसार शांत और प्रसन्न हैं, अधिष्ठातृदेव बनाने का साहस नहीं किया; क्योंकि इसके योग्य केवल दिव्य परमेश्वर ही हैं।

यदि एक ओर उसमें, अपने अग्रगामियों से बढ़कर, यह गुण था कि वह जाति के क्रोध की कुछ परवा न करके ईश्वर के एकत्व की घोषणा और उन मूढ़-विश्वासों का बहिष्कार कर सकता था, जिनको मनु और मेनस (Manes) लोगों के लिये अच्छा समझते थे, वहाँ दूसरी ओर, पीछे क़दम हटाते हुए, अपने अधिकार तथा उन संस्थाओं के परित्राण के लिये, जिनको वह बना रहा था, वह उस ईश्वर को एक ऐसी क्रूर सत्ता बनाने के लिये विवश हुआ था, जो लोगों में त्रास उत्पन्न कर सके, और बिना सोचे-समझे उनसे आज्ञा का पालन करा सके।

त्रासों और भीषण अभिव्यक्तियों के समूह को, जिसे दूसरों ने संख्यातीत देव-मूर्तियाँ बनाकर अनंत रीति से बाँट डाला था, मूसा ने केवल एक में इकट्ठा कर दिया, और उसकी बताई हुई पूजन-विधि दूसरों की अपेक्षा न कम घोर और न कम निष्ठुर ही थी। अपने काल के गुरु-प्रशंसक और मिस्र के प्राचीन दासों के लिये मार्ग साफ़ करने के उद्देश्य से क्या यहोवह ही बाइबिल के सारे संहारों और मूर्ति-पूजक जातियों के सारे हत्याओं की आज्ञा नहीं देता?

मूसा को एक असभ्य कल्पनाकारी के सिवा, जिसके प्रधान साथी आग और तलवार थे, और कुछ समझने, और यहोवह को एक संत्रासहेतु, याजकीय अल्पजनसत्ता राज्य (Sacerdotae Oligarchy) के हाथ में प्रभुताप्राप्ति के एक साधन के सिवा और कुछ मानने के लिये मनुष्य की आत्मा में भयंकर पदार्थों के प्रति सम्मान का भाव— असहिष्णुता के मूढ़ कलह का प्रेम होना आवश्यक है।

सारांश यह कि मूसा द्वारा प्रतिष्ठित शासन पुरोहितों के परम प्रमोदन के अधीन एक ईश्वरकर्तृक शासन था। जातियों के जिन विभागों का उसने विधान किया, वे वर्ण थे, जो नवीन शक्ति और नवीन संस्थाओं की सफलता को निश्चित करने के योग्य स्थिरता की दशा में लोगों को बनाए रखने के उद्देश्य से गढ़े गए थे। इस-लिये हम कह सकते हैं कि इबरानी लोग न अपने विश्वासों और न अपनी सामाजिक अवस्था की दृष्टि से ही उस नियम का अपवाद थे, जो सभी प्राचीन जातियों में व्यापक था।

अनेक लोग मूसा की दस आज्ञाओं की श्रेष्ठता का आश्रय लेकर इबरानियों के सिर पर नीति का मुकुट रखते हैं, और उनके सहयोगियों को इससे वंचित करते हैं।

इन दस आज्ञाओं में माता-पिता का सम्मान करने, वध न करने, व्यभिचार न करने, चोरी न करने, पड़ोसियों के विरुद्ध मिथ्या साक्षी न देने और दूसरों की संपत्ति का लालच न करने का उपदेश है।

ये नियम सिनाई पर्वत के समय से ही नहीं, ये इबरानियों और उनकी अग्रगामिनी सभी सभ्यताओं के भी पहले के हैं। जिस समय मूसा ने पर्वत पर इनका प्रकाश जनता पर किया, अंतरात्मा उससे बहुत पहले सभी निष्कपट मनुष्यों को इनका ज्ञान करा चुकी थी। इसके अतिरिक्त ये दस उपदेश, जो राजाओं और पुरोहितों को

बजाते हुए एक भारी आडंबर के साथ इजरायली लोगों पर विघोषित किए गए थे, मुझे एक बड़ी कटु व्यंगोक्ति प्रतीत होते हैं। यह दिखलाने के लिये बाइबिल का पाठ ही पर्याप्त है कि उस समय कुछ ही लोग अधिक दुष्ट थे, कुछ ही लोग अपने पड़ोसियों के साथ धोखा करते थे और थोड़े ही लोगों के हृदय में दूसरों की संपत्ति के लिये सम्मान का भाव न्यून था।

मिस्र को छोड़ने के पहले इन्होंने उसकी जेबें कतर लीं, मरुस्थली को तय किया, अपनी लूट जारी रक्खी, प्रत्येक नई भूमि को, जहाँ वे गए, बलात् नष्ट कर दिया: यहाँ तक कि लोगों का धैर्य हाथ से जाता रहा। फलतः उन्हें घोर रूप से दंडित किया गया, और वे फिर दासत्व के गहरे गड्ढे में ढकेल दिए गए।

मूसा और उसके उत्तराधिकारियों के होते भी पतित पतित ही बने रहे; मिस्रयौन के इन पूर्वतन दासों को एक स्थान में घर बनाकर बसने और परिश्रम करनेवाले संभ्रांत मनुष्य बना देना असंभव था। वे आरंभ में भी गृहशून्य आवारागर्द थे, और फिलिस्तीन (Palestine) में पड़ाव डालने पर भी आवारागर्द ही बने रहे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी पड़ोसी जातियाँ उनके बार-बार होते रहनेवाले अत्याचारों को रोकने तथा उन्हें दंडित करने के उद्देश्य से आपस में मिल गई।

यह समाज उस समाज से सर्वथा भिन्न था, जो हमें वेदों के भारत में, प्राक्कालीन पवित्र ऋषियों के भारत में दिखाई देता; और यदि मूसा के इन उपदेशों की मौलिक सचाइयों की इतनी प्रशंसा की जाती है, तो हम उन महान् दार्शनिक और नैतिक नियमों को किस भाव से देखें, जिनका ईसाई सुधारकों ने यहाँ से लाकर इस जाति को पुनः उपदेश दिया, जो उन्हें भूला हुआ था!

मूसा इनको जानता था, और उसने इनका निस्संदेह अपनी दुरा-

मैं तुम्हें वह रचना दिखलाने आया हूँ, जिसका विध्वंस कर डालना चाहिए, ताकि तुम भूत की शिक्षाओं से भविष्य की रचना कर सको। मैं तुम्हें यह बतलाने आया हूँ कि उस विनाश को देखते हुए, जो विशेष-विशेष वस्तुओं ने उत्पन्न किया है, उन वस्तुओं से किसी भी रचना का बनाना संभव नहीं,"—जिस स्वाधीन-विचारक में यह कहने का साहस होगा, मुझे पूर्ण विश्वास है, उस भावी पथ-प्रदर्शक को उन सब सूरों के सदृश, जिनके मार्ग का उसने अवलंब किया है और जिनके ग्रंथ आग में जला दिए गए थे; क्योंकि अब मनुष्यों को जलाने की आज्ञा नहीं रही थी, तिरस्कृत और बहिष्कृत कर दिया जायगा।

पाँचवाँ अध्याय

इबरानियों की दंड-नीति

जिस दंड-नीति की मूसा ने प्रतिष्ठा की, वह हूबहू मिस्र या भारत की दंड-नीति न थी; किंतु उनमें जो प्रभेद हमें मालूम होते हैं, वे उस उत्पत्ति पर किसी प्रकार का प्रभाव डालने के स्थान में, जो हमने दृष्टरायणियों की निश्चित की है, स्पष्ट रूप से उसी मूल को सिद्ध करते हैं।

मूसा, अपने पूर्वाधिकारियों की तरह, दमन और प्रायश्चित्त के साधनों के तौर पर, यह विधान करता है—

मृत्यु, लाठी की मार, अर्थ-दंड, और बलिदान द्वारा शुद्धि।

परंतु उसने जाति अथवा वर्ण से समग्र और असमग्र सभी प्रकार के बहिष्कार का परित्याग कर दिया। इस बहिष्कारस्वरूपी दंड को, जैसा कि हम देख चुके हैं, ईरान, यूनान और रोम ने ग्रहण किया था, और यह जस्टिनियन की व्यवस्थाओं के साथ, पीछे से, आधुनिक दंड-नीतियों में 'नागरिक मृत्यु' के नाम से प्रविष्ट हो गया है।

इबरानी धर्म (जूडाइज़्म) का बड़े-से-बड़े अपराधियों के लिये भी आग और पानी का निषेध (जो कि पूर्वोक्त रीति के इतना सदृश है) न मानना एक ऐसा अपवाद है, जो तर्कसंगत रीति से अपना समाधान आप ही करता है।

दिल्लगी की थी। बाइबिल के पाठ-मात्र से यह मालूम हो जाता है कि यह धर्म मनुष्य-वध और मनुष्य-बलिदानों से भरा पड़ा है, और स्वयं पुस्तक ही रक्त से लिखी हुई है।

अतएव हम यहाँ प्राचीन आचार को नरम किया हुआ नहीं देख सकते।

जिस विचार से मूसा प्रेरित हुआ था, वह इतना सरल है कि वह सत्य नहीं हो सकता, और हम कह सकते हैं कि यह उस अवस्था के लिये अलंघनीय था।

यदि इबरानी लोग, जैसा कि हम दिखला चुके हैं, मिसर के अपराधी वर्णों के उच्छिष्ट-मात्र थे, यदि वे फ़िरऔनों के अधीनस्थ समाज के पेरिया (पतित) थे, तो यह आवश्यक था कि मूसा इबरानी समाज में अछूत उत्पन्न न करता।

प्रथम तो इस बात की आवश्यकता थी कि इन नए लोगों को इस बात का पता न लगने दिया जाय कि किसी अवस्था में उनके उसी विपन्न दशा में दुबारा लौट जाने की भी संभावना है, जिसमें से वे अभी बचकर निकले थे।

फिर राज्य का भी एक कारण था। निस्संदेह मूसा ने इसका अनुभव किया था। वह इस वर्ण-बहिष्कार से जाति के भीतर एक दूसरी जाति उत्पन्न नहीं करना चाहता था, ताकि वह कहीं क्रमशः बढ़ते-बढ़ते एक दिन सामाजिक भीति का रूप न धारण कर ले।

इसरायलियों की वृद्धि को मिसिरियों ने संहार और दौरात्म्य द्वारा रोकने की चेष्टा की थी। इस बात को पहले से ही समझ लेना कि वही कारण एक दिन दासों की क्रांति के डर से वैसे ही उपायों का अवलंब करने पर विवश करेंगे, बड़ी ही बुद्धिमत्ता की बात थी। इसलिये इस प्राचीन दंड को ग्रहण करने की अपेक्षा, जिसका भावी परिणाम अमोघ रूप से अंतःक्षोभ और विश्लेष था, मूसा ने सारे

बड़े-बड़े अपराधियों की समूहतः हत्या कर डालना ही अच्छा समझा। इस प्रकार उन्होंने यहोवह को न माननेवालों और इस व्यवस्थापक तथा उसके उत्तराधिकारी पुरोहितों के प्रभुत्व के विरुद्ध शिकायत करनेवालों से छुटकारा पाया।

कम महत्त्व के अपराधों के लिये, जो राज्य की कल्पनात्मक रचना के मूल पर किसी प्रकार का प्रभाव नहीं रखते थे, बदला लेने का नियम स्थापित किया गया; अर्थात् आँख के बदले आँख, दाँत के बदले दाँत, इत्यादि। देखो बाइबिल की "निर्गमन" पुस्तक, अध्याय २१, वाक्य २४,२५।

प्राचीन समाजों में बदला लेने के क्रूर नियम के इस प्रथम प्रादुर्भाव की जय हो!

जिस बात की कल्पना करने में पुरोहित-शासित भारत और मिस्र असमर्थ थे; जिसको मनु, बुद्ध, ज़र्दुश्त और मेनस मारे भय के दूर फेंक देते, उसका हमें देना यहूदी धर्म और यहोवह के लिये ही रह गया था।

यह किसी दूसरे का अनुकरण नहीं था। इस आँख के बदले आँख और दाँत के बदले दाँत लेने के नियम को मूसा अपनी व्यवस्था-पत्र की रत्नमाला में एक अपूर्व और स्वरचित पुष्प कह सकता है!

हम इस बात को अनेक जातियों के प्रथम प्रादुर्भाव पर दिखाई देता है, परंतु केवल उनके प्राथमिक निर्दय रीति-रिवाजों में ही। इस-लामियों के सिवा और किसी जाति ने भी इसे अपने लिखित

कि भेड़-बकरी चरानेवाला अस्थिर-निवासी मनुष्य लाठी के सिवा और किसी अधिकार को मानता ही न था।

कैन हाबिल से कहता है—"यह भूमि मुझे दे दो, नहीं तो मैं तुम्हें मार डालूँगा।"

मूसा इबरानियों से कहता है—"ईश्वरीय वचन के सामने दीन भाव से सिर झुकाओ, नहीं तो तुम्हें मृत्यु-दंड मिलेगा।" फिर इबरानी लोग अपनी बारी पर अपनी पड़ोसी जातियों से कहते हैं—"अपनी संपत्ति, अपनी कुँआरी बेटियाँ और अपने घर हमारे सिपुर्द कर दो, नहीं तो आग और तलवार से तुम्हारा नाश कर दिया जायगा।"

मैं उन थोड़ी-सी पंक्तियों को नहीं छोड़ सकता, जिनमें उन सारी प्रथाओं और रक्तपातों का सविस्तर वर्णन है, जो यहोवह की आज्ञा से या तो मूसा और उसके उत्तराधिकारियों ने स्वयं इसरायलियों पर, अथवा इसरायलियों ने उन लोगों पर, जिनको वे लूटना चाहते थे, किए थे।

यह मेरे विषय का उत्क्रम नहीं कहला सकता; क्योंकि इससे मिलनेवाली उस उच्च नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त मैं इससे उन लोगों के विरुद्ध जो हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के प्रमाण को अस्वीकार करने से कभी नहीं चूकते—जो उनको बाइबिल से नक़ल किया हुआ बताते हैं, एक अकाट्य युक्ति निकालूँगा।

ईश्वर की एकता, त्रिमूर्ति, सृष्टि-उत्पत्ति, मौलिक अतिक्रम और निष्कृति-विषयक उच्च ऐतिह्यों ने भारत में एक श्रेष्ठ दार्शनिक और नैतिक सभ्यता उत्पन्न की थी।

ये ऐतिह्य इबरानी भूमि की उपज न थे। इसलिये उनका अनुकरण इन लोगों का, जो हत्या और अपहार से उत्पन्न हुए थे, और केवल हत्या और अपहार से ही जीवन बिताना जानते थे, पुनरुद्धार न कर सका।

यह पुस्तक अत्याचार और विध्वंस का एक प्रगल्भ गुणकीर्तन-मात्र है। इसमें इबरानी उत्पत्ति के पहले दो अध्याय असामयिक हैं। ये दोनों अध्याय वेदों से लिए गए हैं, और इन्हें वेदों को ही दे देना चाहिए।

चाहे सभी पुराने मूढ़-विश्वासी लोग मुझे अभिशाप दें, मेरा अभी तक यही मत है। मेरे प्रमाण सुनिए।

छठा अध्याय

बाइबिल का चिट्ठा (Balance sheet)—दंड, संहार, विध्वंस

मूसा का वृत्तांत पढ़ते समय कोई भी पृष्ठ ऐसा नहीं आया, जब कि हमने इस पुस्तक, बाइबिल के घोर धर्मोन्माद और क्रूर सिद्धांतों पर क्रोध प्रकट न किया हो। पर जनता बिना सोचे-समझे और बिना परीक्षा किए इस पुस्तक के सामने घुटने टेकती है। अनेक लोग इसे परम नियम और ज्ञानस्वरूप की कृति मानते हैं; परंतु हमारी दृष्टि में यह भीषण मूढ़-विश्वासों की एक संहिता-मात्र है। आइए, हम उस निंदासूचक नीच प्रशंसा को एक ओर फेंक दें, जिसका उपदेश हमें बाल-काल में मिला था। आइए, हम अपने भीतर दृष्टि डालें। आइए, हम उस भीतरी सुबुद्धि पर भरोसा करें, जो अंतरात्मा का शब्द है; तब पढ़िए और विचार कीजिए।

इबरानियों के भाग जाने को सुगम करने के लिये यहोवह को इससे अच्छा और कोई साधन नहीं मिला कि वह मिसरियों के सभी जेठे बच्चों का नाश कर डाले, अर्थात् निरपराधों की हत्या कर दे।

इबरानी लोगों ने दौड़ते समय सोने के सभी पात्र और बहुमूल्य वस्त्र उधार लेकर, जिनको वे उठाकर ले जा सकते थे, मिसरियों को लूट लिया। यहोवह इबरानियों को लौटने की आज्ञा और फ़िरऔन को उनका पीछा करने का प्रलोभन देता है, जिससे वह उसे उसकी सारी सेना सहित नष्ट कर दे, (यह एक निरर्थक और क्रूर बदला था; क्योंकि इबरानी लोग भय से बाहर थे)।

इसरायल-वंशी मरुस्थली में अभाव से मरने लगते हैं, तो यहोवह उनके लिये बटेर और वंशलोचन भेजता है।

"सुनहले बछड़े" के पूजन से क्रुद्ध होकर यहोवह सारे इसरायलियों का नाश कर डालना चाहता है। मूसा बीच में पड़ता और उससे प्रार्थना करता है कि जिन तेईस सहस्र मनुष्यों का मैं पुरोहितों द्वारा वध करा चुका हूँ, उन्हीं पर संतुष्ट रहिए। शस्त्रों के इस करतब के उपरांत परमेश्वर इसरायलियों को सहायता देना स्वीकार कर लेता है (मैं समझता हूँ केवल नरमांस-भक्षियों की देवोत्पत्तियों में ही हमें ऐसे घोर कर्म मिल सकते हैं)।

यहोवह इसरायलियों को चेतावनी देता है कि यदि तुम मुझे अपने को अभिव्यक्त करने के लिये पुनः विवश करोगे, तो मैं तुम्हें समूल नष्ट कर दूँगा। मूसा यहोवह का मुँह देखना चाहता है, परंतु वह उत्तर देता है कि मैं तुम्हें अपने पिछले भाग ही दिखला सकता हूँ—"Videbis posteriora mea". (कैसी अपमान-जनक असंगति है!)।

ऊपरी अग्नि के साथ बलिदान देने के अपराध पर नादाब और अबीहू को मृत्यु-दंड दिया जाता है।

प्रभु को भेंट चढ़ाने के लिये रक्खे हुए बैल, भेड़ या बकरी को मारनेवाले की प्राण-हानि की जाती है।

जो अपने बच्चों को देव-मूर्तियों पर चढ़ाता है, उसे मार डाला जाता है।

इसरायल-वंशी अकाल से चकनाचूर होकर प्रभु परमेश्वर के विरुद्ध बड़बड़ाते हैं, और वह उनके विरुद्ध साँप भेजता है, जो कि अनेकों को नष्ट कर डालते हैं।

इबरानी फिर कुड़कुड़ाते हैं। वह बाईस वर्ष और इससे बड़ी आयु के सभी लोगों को मरुस्थली में मरने का दंड देता है।

कोरह, दातान और अबीराम ने कुछ लोगों के साथ मूसा के विरुद्ध विद्रोह किया; यहोवह अग्नि को पृथ्वी से निकालकर उनको विध्वंस कर डालने की आज्ञा देता है।

लोग फिर कुड़कुड़ाते हैं, वही आग चौदह हज़ार सात सौ व्यक्तियों को नष्ट कर डालती है।

इबरानी लोग फिर यहोवह की निंदा करते हैं। वह उनके विरुद्ध एक अग्निमय सर्प भेजता है और अनेकों को नष्ट कर डालता है।

इसरायल-वंशी, परमेश्वर की आज्ञा से, कनानियों और अमोरियों (Amorites) का नाश कर डालते हैं। वे बशन के राजा ओग और उसकी सारी प्रजा को बिना किसी अपवाद के टुकड़े-टुकड़े कर डालते और विजित भूमि पर आप बस जाते हैं।

मोआब की बेटियों के साथ संसर्ग के कारण पुरोहितों ने चौबीस सहस्त्र इसराइलियों का वध कर डाला।

यहोवह मूसा को मिद्यानियों को दंडित करने की आज्ञा देता है। बारह सहस्त्र इसरायली लोग उन पर चढ़ाई करते हैं। सब लोग तलवार के घाट उतारे जाते हैं, राजों का वध किया जाता है और स्त्रियाँ क़ैद कर ली जाती हैं।

मूसा क्रोध करता है कि सारी मिद्यानी स्त्रियाँ क्यों बचाई गई हैं। वह उन सबको छोटे लड़कों समेत मरवा डालता है और उन्हें केवल कुँआरी लड़कियों को ही न मारने की आज्ञा देता है— "Puellas autem, et omnes feminas virgines reservate vobis."

और उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं। क्या इन प्राथमिक

इबरानी समयों का सारा इतिहास विध्वंस, हत्या और अपकर्षकारी मूढ़-विश्वासों के सिवा हमें और कुछ दिखा सकता है?

क्या तत्सदृश इतिहासवाली और कोई जाति है, जिसने इसको परमात्मा की रक्षा में रखने का साहस किया हो?

यदि मान लिया जाय कि ये सब हत्याएँ वस्तुतः हुई थीं, तो हम इनका कारण केवल मूसा के धर्मोन्माद को ही ठहरा सकते हैं; क्योंकि वह चाहता था कि जो कोई व्यक्ति पुरोहितों को दिए हुए हक़ों, अपने अथवा ईश्वर के अधिकार के विरुद्ध शिकायत करने का साहस करे, उसे वे मार डालें।

मरुस्थली शायद सारी जाति के लिये यथेष्ट आहार न दे सकती थी, इसलिये नेता ने उपज का दसवाँ भाग लेने का निश्चय किया, जिससे वह घोरतर संहार के उन दृश्यों को रोक सके, जो दुर्भिक्ष का अनिवार्य परिणाम होते हैं।

चाहे जो हो, इस जाति तथा इसके युग का हमारे लिये विचार हो चुका है। अतीत काल के इतिहास में मनुष्य-समाज के उद्दंड-शासन और निर्दयताओं के प्रमाण इससे बढ़कर और कहीं नहीं दिखाई देते।

कई लोग ऐसे भी हैं, जिनको इन हत्याओं में, जहाँ क्वाँरी लड़कियों के सिवा स्त्री अथवा बच्चा कोई भी जीता न छोड़ा गया था, ईश्वरीय शक्ति की अभिव्यक्ति दिखाई देती है। हमें तो यह उन अशिष्ट और अशिक्षित लोगों पर, जो मिस्र को छोड़ने से केवल लूट-खसोट और हत्या के द्वारा ही अपना मार्ग बना सके थे, निरंकुश शासन करनेवाले पाप के भाव की ही अभिव्यक्ति जान पड़ती है।

सातवाँ अध्याय

मिसर द्वारा इवरानी समाज पर स्थापित प्रभाव के कुछ विशेष उदाहरण

यहूदिया के आचार-विचार और रीति-रिवाज भारत के रीति-रिवाजों से इतना अधिक मिलते हैं कि हिंदोस्तान के स्वदेश-त्यागियों के पुरानी दुनिया में बस्तियाँ बसाने के विषय में कुछ भी संदेह बाक़ी नहीं रह जाता।

हमने उस प्राचीन सभ्यता की बड़ी-बड़ी विशेषताओं को मिसर, फ़ारस, यूनान और रोम में फैला हुआ देखा है। यहूदिया अब उसी प्रभाव को, यहाँ तक कि उसके सामाजिक संगठन की अतीव छोटी-छोटी बातों में भी, दिखलानेवाला है।

संसर्ग और स्पष्ट सादृश्य की उन अनेक बातों में से, जो सभी प्राचीन जातियों की उत्पत्ति के एक होने के विषय में हमारी और भी अधिक निश्चित प्रतिज्ञा को, जिसका हमने पहले ही पृष्ठों से प्रतिपादन किया है, प्रायः एक तत्त्व के रूप में प्रमाणित करती हैं, किसी यत्न-पूर्वक निर्वाचन का प्रयोजन नहीं।

इवरानी और हिंदू-विधवाओं का विवाह

बाइबिल का "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक में लिखा है—

"यहूदा ने अपने जेठे पुत्र एर का विवाह तामार नाम की एक स्त्री से कर दिया। एर यहोवह की दृष्टि में दुष्ट था, इसलिये यहोवह ने उसे मार डाला। यहूदा ने तब अपने दूसरे पुत्र ओनान से कहा कि तू अपनी भौजाई—तामार से विवाह कर ले, और अपने भाई के लिये संतान उत्पन्न कर।

ओनान यह जानता था कि यह संतान मेरी नहीं, प्रत्युत मेरे भाई

की कहलेगी। इसलिये जब वह अपनी भौजाई के पास गया, तब उसने अपना वीर्य भूमि पर स्खलित करके नष्ट कर दिया।"

फिर रूत के वृत्तांत में लिखा है—

बोअज़ ने कहा—"मैं महलोन की स्त्री रूत मोआबिन को अपनी स्त्री बनाता हूँ, जिससे उसके मरे हुए पति का नाम उसके निज भाग पर स्थिर करूँ, ताकि कहीं ऐसा न हो कि उस मरे हुए का नाम उसके भाई-बंधुओं में से और उसके निवास के नगर में से मिट जावे।"

बाइबिल के अनेक और वचन यह बताते हैं कि उन दिनों यह नियम था कि जो पुरुष संतानहीन मर जाता, उसके निकटतम संबंधी को उसकी विधवा से विवाह करना पड़ता था। उनसे उत्पन्न होनेवाले बच्चे मृत की संतान समझे जाते थे, और उसके दायभाग को बाँटते थे।

यह रिवाज कहाँ से चला, और व्यवस्थापक के इसे कर्तव्य ठहराने के कारण की विवृत्ति क्या है? हमने बाइबिल के पुराने धर्म-नियम की सभी पुस्तकें छान डाली हैं। वे इस विषय पर कुछ भी प्रकाश नहीं डालतीं। बहुत से टीकाकार बोअज़ के रूत के साथ अपने विवाह के बताए हुए उद्देश को स्वीकार करके यह विश्वास करते हैं कि विधवा या उसके मृत पति के भाई अथवा संबंधी के साथ सहवास का प्रयोजन पति की संतति को जारी रखने के सिवा और कुछ न होता था।

जो यद्यपि दूसरे के कुल को जारी रखता है, पर उनके अपने वंश को समाप्ति कर डालता है ?

यह रीति, जिसका यहूदी-धर्म कोई भी समाधान उपस्थित नहीं कर सकता, हिंदुओं के धार्मिक विश्वासों में उत्पन्न हुई, भारत से जानेवाले लोगों ने इसका मिसर में प्रचार किया, और संभवतः इसके आशय को न समझते हुए इबरानियों ने इसे ग्रहण कर लिया।

हिंदुओं के विश्वासानुसार पिता तभी स्वर्ग में जा सकता है, जब उसका पुत्र उसकी मृत्यु पर उसका क्रिया-कर्म और श्राद्ध करे, और प्रतिवर्ष उसी मृत्यु-तिथि पर करता रहे। ये पूजन और श्राद्ध मृतक की आत्मा से उन सब दोषों को दूर कर देते हैं, जो उसको ईश्वरीय तत्त्व—परमानंद में लीन होने से रोकते हैं।

इसलिये यह परम प्रयोजनीय समझा गया कि प्रत्येक मनुष्य का एक पुत्र हो, जो उसके लिये स्वर्ग-धाम का द्वार खोल दे। यही कारण है कि धर्म भाई अथवा संबंधी की भक्ति को उत्तेजित करता और ऐसे पवित्र कर्त्तव्य का पालन करने से इनकार करनेवाले को निंदनीय ठहराता है।

इबरानियों में विधवा के सभी पुत्र उसके मृत पति के माने जाते हैं। यह बड़ा ही असंगत है; क्योंकि यह एक के वंश को जारी रखने में दूसरे के वंश का दीपक बुझा देता है।

इसके विपरीत हिंदुओं में इस प्रकार उत्पन्न हुआ पहला पुत्र ही अपनी माता के मृत पति का होता है, वही उसका उत्तराधिकारी बनता है, और मृतक का आवश्यक क्रिया-कर्म करना उसके लिये अनिवार्य होता है। शेष सभी बच्चे उस भाई अथवा संबंधी के समझे जाते हैं, जिसने उस विधवा से विवाह किया है, और इस प्रकार उसका धर्मकृत्य उसकी अपनी आशाओं का नाश नहीं करता; यदि उसके दूसरा पुत्र उत्पन्न न हो, तो क़ानून उसे किसी

ऐसे लड़के को दत्तक बना लेने की आज्ञा देता है, जो उसके नाम को बनाए रक्खे, और मरने के उपरांत उसका क्रिया-कर्म करे।

इबरानी रीति एक असंगति-मात्र है; क्योंकि यह सारे बच्चे मृतक के ही ठहराती और स्वाभाविक पिता का कुछ भी विचार न करके उसको संतति से वंचित रखती है।

हिंदू-रिवाज तर्क-संगत और युक्ति-सिद्ध है; क्योंकि यह दोनों के स्वार्थों की रक्षा करता है, और इस कर्म के लिये, जो अन्यथा अतर्क्य है, एक धार्मिक हेतु ठहराता है। किंतु बाइबिल इसकी न्यायात्मक सिद्धि की कुछ भी चेष्टा नहीं करती। यदि करती भी, तो संभवतः उसे इसमें सफलता न होती।

हम साफ़ देखते हैं कि यह एक सुरक्षित हिंदू-ऐतिह्य-मात्र है, जिसका यथार्थ उद्देश विस्मृत हो गया है। इसमें निश्चय है कि ओनान को कभी तामर के बाँझपन को बढ़ाने का विचार भी न आता, यदि क़ानून केवल उनके जेठे पुत्र को ही उसके भाई का ठहराता।

बाइबिल इन पशुओं को अपवित्र समझकर निषिद्ध ठह-राती है—

मूसा सब जुगाली करनेवाले पशुओं के, जिनके खुर फटे हुए होते हैं, और सुअरों के उपयोग का, जो खुर फटे होने पर भी जुगाली नहीं करते, निषेध करता है।

मछलियों में से वह केवल पर और छिलकेवालियों के भोजन की ही आज्ञा देता है, और शेष सबको अपवित्र बताकर उनका निषेध करता है।

और भाँति-भाँति के बाज़। हवासिल, हाड़गील, उल्लू, राजहंस, धनेश, गिद्ध, सब भाँति के बगले, टिटिहरी, चमगीदड़ और जितने पंखवाले चार पाँव के बल चलते हैं।

स्थल के जंतुओं में निम्नलिखित अपवित्र और निषिद्ध ठहराए गए हैं—सब भाँति के न्योले, चूहे, बिसखोपड़ और घड़ियाल, गिरगिट, छिपकली, छछूँदर और चूहा। जो मनुष्य इन जंतुओं को खाता है, वह उनके सदृश ही अपवित्र हो जाता है। जो इनके शव को छूता है, वह सायंकाल तक अपवित्र रहता है। जिस पात्र में ये पड़े हों, वह अपवित्र हो जाता है, उसे तोड़ डालना चाहिए।

मनु और पुराणों द्वारा अभक्ष्य ठहराई हुई चीज़ें—

द्विजों के लिये, उनको छोड़कर जिनकी धर्म-ग्रंथ आज्ञा देते हैं, शेष सब चौपाए, जिनके खुर चिरे हुए नहीं, अभक्ष्य हैं।

पालतू सुअर (जंगली सुअर नहीं), यद्यपि उसके खुर चिरे होते हैं, अभक्ष्य ठहराया गया है। सभी शिकारी पक्षी—जैसे गिद्ध, उकाब और चील जो चोंच से मारते और पंजों से चीरते हैं, निषिद्ध हैं।

यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि यही निषेध चिड़ियों की रक्षा करता है; क्योंकि ये हानिकारक कीड़ों को मारती और फ़सलों को बचाती हैं। फिर कुलंग, तोता, राजहंस, कठफोड़ा और जीभ से शिकार को पकड़नेवाले सारे पक्षी अभक्ष्य हैं। पंखों और चानों से रहित सभी मछलियाँ भी अभक्ष्य हैं।

अंततः रेंगनेवाले जंतु अथवा जो अपने पंजों से बिल खोदते हैं, सबसे अधिक अपवित्र समझकर निषिद्ध ठहराए गए हैं।

निर्जीव जंतुओं की लाशों के छूने से लगनेवाली सभी प्रकार की अपवित्रता सद्गुण और पांडित्य के लिये मनुष्य की ख्याति के अनुसार दस दिन और दस रात तक या चार दिन तक या केवल एक ही दिन तक रहती है।

पीतल, चाँदी या सोने का बर्तन, जिसमें मैली चीज़ पड़ी हो, या जो मैले पदार्थ को केवल छू ही गया हो, विधिपूर्वक शुद्ध किया जाना चाहिए।

मिट्टी के बर्तन को तोड़कर पृथ्वी में गहरा दबा देना चाहिए; क्योंकि कोई भी वस्तु इसे शुद्ध नहीं कर सकती।

ऐसी अनुरूप विधि-रचना के विषय में हमें क्या कहना चाहिए? क्या कोई इस पर आपत्ति करेगा कि ये निषेध स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी नियम हैं, और सभी प्राच्य जातियों में पाए जाते हैं? भारत इसका प्रथम उपदेशक है।

इन सबके खंडन का एक ही मार्ग है। वह यह कि भारत की प्राचीनता से इनकार किया जाय! एक विशेष श्रेणी के शपथ लिए हुए योद्धाओं से मुझे इस प्रकार की किसी चीज़ की पूर्ण प्रत्याशा है। मैं उनसे कुछ और आगे जाने और संस्कृत को इबरानी भाषा से उत्पन्न हुई प्रमाणित करने की प्रार्थना करता हूँ! इबरानी संस्कृत की माता! कौन जानता है, शायद मुझे वस्तुतः ही ऐसा परिहास देखना पड़े! ......

ऐसी स्त्रियों की परीक्षा, जिन पर व्यभिचार का संदेह हो,

बाइबिल में लिखा है (गणना)—

वह पुरुष अपनी स्त्री को याजक के पास ले जाय, और उसके लिये एपा का दसवाँ अंश जौ का मैदा चढ़ावे के तौर पर ले जाय; परंतु उस पर न तेल डाले, न लोबान रक्खे; क्योंकि वह जलनेवाली और स्मरण दिलानेवाली अर्थात् अधर्म का स्मरण करानेवाली भेंट होगी।

न किया हो और तू पति के सिवा दूसरे की ओर फिरकर अशुद्ध न हो गई हो, तो उस दशा में तू इस कड़वे जल के गुण से, जो शाप का कारण होता है, बची रहे। परंतु यदि तू अपने पति के सिवा दूसरे की ओर फिरकर अशुद्ध हुई हो, और तेरे पति के सिवा किसी दूसरे पुरुष ने तुझसे प्रसंग किया हो, तो यह जल, जो शाप का कारण होता है, तेरी अँतड़ियों में जाकर तेरे पेट को फुलावे और तेरी जाँघ को सड़ा दे।" इन शब्दों के साथ वह उस स्त्री को वह घूँट दे।

इधर गौतम कहता है (मनुस्मृति की टीकाएँ)—

"यह एक पुरानी रीति थी कि जब किसी स्त्री पर पर-पुरुष-गामिनी होने का अभियोग लगता था, तो उसे मंदिर के द्वार पर लाकर मंदिर के अधिकारी ब्राह्मण के सिपुर्द कर दिया जाता था। वह एक पात्र में कुश का एक तिनका, किसी अशुद्ध जंतु के चरण-चिह्नों की थोड़ी-सी धूल, और किसी पतित द्वारा कुएँ से निकाला हुआ जल डालकर उस स्त्री को पीने के लिये देता और उससे कहता था—'यदि तेरे गर्भाशय में कोई ऊपरी वीर्य नहीं गया, तो यह पान तुझे अमृत के समान मधुर प्रतीत होगा। यदि इसके विपरीत तू इस प्रकार दूषित हो चुकी है, तो तू मर जायगी, और गीदड़ की योनि में जायगी। परंतु इस बीच में तुझे श्लीपद-रोग हो जायगा, और तेरा शरीर सड़ जायगा।' इस धार्मिक अनुष्ठान के लिये क़ानून ने बहुत दिनों से" इत्यादि-इत्यादि।

लोथों के स्पर्श का दूषण (बाइबिल, गणना)—

"जो किसी मृत मनुष्य के शरीर को छूता है, वह सात दिन तक अपवित्र रहता है। प्रायश्चित्त के जल से उसके कलंक को साफ़ करना चाहिए।

"मृतक के तंबू में जानेवाले सभी लोग, और उसके भीतर के

सभी पात्र सात दिन तक अपवित्र रहते हैं। दूषित मनुष्य जिन पदार्थों को छूता है वे सब भी दूषित हो जाते हैं।"

मृतक के स्पर्श का दूषण (मनु और पुराण)—

"मृतक को छूने का अशौच दस दिन तक रहता है।" (मनु, अ० ५)

"ब्राह्मण तीन दिन में शुद्ध हो जाते हैं।"

"जो व्यक्ति मृत वैश्यों या शूद्रों के घर में जाता है, वह दस दिन तक अपवित्र रहता है।"

"मृत ब्राह्मण के स्पर्श का दूषण केवल एक ही दिन तक रहता है।"

"जब कोई मनुष्य मर जाता है, तो घर के सभी पात्र अशुद्ध हो जाते हैं। धातु के पात्र आग से शुद्ध किए जाते और मिट्टी के बर्तन तोड़कर दबा दिए जाते हैं।"

"शुद्ध के जल में स्नान करने से मनुष्य शुद्ध होता है।"

मनु अपने समय की शुद्धि की कुछ रीतियों और संस्कारों का वर्णन करता है। ऐसे मूढ़विश्वास-मूलक अनुष्ठानों की चर्चा करते हुए वह एक ऐसे उच्च आदर्श से, जिसका बाइबिल को पता ही नहीं, कहता है—

"सारी पवित्र वस्तुओं में से धनोपार्जन में पवित्रता सबसे उत्तम है। जो मनुष्य धनाढ्य बनने में अपनी शुद्धता की रक्षा करता है, वही वस्तुतः शुद्ध है, न कि वह, जो मिट्टी और जल द्वारा शुद्ध हुआ है।

"ज्ञानी लोग अपने को अपराधों की क्षमा, दान और प्रार्थना द्वारा शुद्ध करते हैं।

मृतक से दूषण का यह विचार, जो जड़ पदार्थों तक फैला हुआ है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि हिंदुओं से आया है। मूसा ने इन प्राचीन ऐतिह्यों की अक्षरशः नक़ल की है; परंतु आचार-व्यवहार को पुनर्जीवित करते हुए उसने सावधानता-पूर्वक उन उदार मतों, उन उज्ज्वल विचारों, का पुनः प्रचार नहीं किया, जो मनु में, जब वह पुरोहितशाही की दासता को भूलकर प्राथमिक और सविस्तर वेदों के श्रेष्ठ उपदेशों को प्रतिध्वनित करता है, हमें पग-पग पर मिलते हैं।

बाइबिल उसके आदर्श से इस बार ही नीची नहीं पाई गई। वह इससे कभी नहीं बढ़ेगी।

उस प्राचीन सभ्यता के म्लान प्रत्यावर्तन ने, जिसने प्राचीन जगत् में जीवन का संचार किया था, ऐसा जान पड़ता है कि केवल नवीनों को ही उन हास्य-जनक कुसंस्कारों की दीक्षा देने का नियम बना रक्खा था, जिनमें पौराणिक पुरोहितशाही लोगों के जीवनों को रत रखती थी, ताकि वे अपनी दासता को भूल जायँ।

लेवियों और हिंदुओं के यज्ञ और अनुष्ठान

जिन यज्ञों और अनुष्ठानों की मूसा ने व्यवस्था दी है, उनकी प्रत्येक छोटी-से-छोटी बात भी भारत की अशिष्ट पूजा से ली गई है।

पौराणिक यज्ञों का विशेष हव्य वृषभ है, जो भारत में परमेश्वर के चढ़ावे के लिये सर्वोत्तम बलि होने के कारण, सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

लैव्यव्यवस्था (बाइबिल) भी तम्बू के द्वार पर बैल के बलिदान का ही विधान करती है।

कम महत्त्व के अनुष्ठानों में पौराणिक पुरोहित लाल हरिण और बकरियों को, ऐसी भेड़ों को जिन पर कोई धब्बा न हो, और उनको

जिन्होंने अभी बच्चा न जना हो, काले मुर्गों, धब्बेवाली मुर्गियों, और कपोतों (Turtle dove) को वेदी पर चढ़ाना था।

"लेव्यव्यवस्था" भी इसी प्रकार भेड़ों, बकरियों और कपोतों के बलिदान का विधान करती है।

हिंदुओं के फलों के चढ़ावे में ये चीज़ें होती थीं—आटा, चावल, तेल, घी और सब प्रकार के मेवे।

इबरानी लोग इसी बलि के लिये इन चीज़ों का व्यवहार करते हैं—आटा, रोटी, तेल और सब नाजों के पहले फल।

दोनों जातियाँ चढ़ावों में नमक का डालना आवश्यक समझती हैं। ब्राह्मण और लेवी लोग एक ही तरह बलि का कुछ भाग आपस में बाँट लेते हैं।

हिंदू-वेदी पर सदा आग जलती रहती है, देव-दासियाँ, अर्थात् सुप्रतिष्ठित धर्मयाजिकाएँ इसके बुझने का ध्यान रखती हैं।

यही आग इबरानी उपासना-मंदिर में जलती है, और लेवी इसके बुझने का ध्यान रखते हैं; क्योंकि मूसा किसी को परमात्मा की पूजा की आज्ञा नहीं देता।

अंत को भारत में और इसी प्रकार यहूदिया में, सारे पापों और धर्म के विरुद्ध सारे अपराधों की निष्कृति शुद्धि के यज्ञों और अनुष्ठानों द्वारा होती है।

मैं इस विषय में और अधिक नहीं कहूँगा। जो कुछ मैं कह चुका हूँ, मैं समझता हूँ अनुकरण सिद्ध करने के लिये बहुत काफ़ी है।

यह सम्मान निर्विवाद रूप से भारतीय उपज है। इस प्रकार बाइबिल के प्रत्येक पृष्ठ पर हमें इस प्रकार के वचन मिलते हैं—

"तू उस बैल का मुँह मत बंद कर, जो नाज को रौंदता है, और तू उसे वह खाने दे।"

"तू बैल को गधे के साथ जोतकर हल मत चला।"

हमें मानना पड़ेगा कि सम्मान के ये प्रमाण मिसरियों के प्राचीन, अशिष्ट कुसंस्कारों का अवशेष-मात्र हैं। मूसा अपने को इनसे मुक्त करने में सर्वथा असमर्थ था।

संतानोत्पत्ति के उपरांत स्त्रियों की हिंदू तथा इबरानी रीति के अनुसार

शुद्धि—

"लैव्यव्यवस्था" में लिखा है—

"जो स्त्री गर्भिणी होकर लड़का जने, उसे सात दिन का अशौच लगे, अर्थात् जैसे वह ऋतुमती होकर अशुद्ध रहा करती है, वैसे ही जनने पर भी अशुद्ध रहे।

"यदि वह लड़की जने तो उसको ऋतुमती का-सा अशौच चौदह दिन का लगे, और उसकी शुद्धि के लिये साठ दिन लगें।

"और जब उसके शुद्ध हो जाने के दिन पूरे हो जायँ, तब चाहे वह बेटा जनी हो चाहे बेटी,

मनु कहता है—

"बच्चे के जन्म से माता-पिता, विशेषकर माता अशुद्ध हो जाती है। वह उतने दिन तक अशुद्ध रहती है, जितने मास तक उसने गर्भधारण किया हो। उसकी शुद्धि वैसे ही होती है, जैसे उसके ऋतुमती होने के उपरांत होती है।"

कुल्लूक की टीका में लिखा है—"पूर्व-काल में यह रीति थी कि शुद्धि-संस्कार की समाप्ति पर, स्नान के पश्चात्, स्त्री एक अनमुँदे लौंडे, मधु, चावल और घृत का चढ़ावा चढ़ाती

यह होमबलि के लिये बरस दिन का भेड़ी का बच्चा, कबूतरी का एक बच्चा अथवा पिंडुकी उपासना-मंदिर के द्वार पर याजक के पास, निष्कृति के तौर पर, ले जाय।"

थीं। आजकल, स्नान के उपरांत, वह ब्राह्मण संन्यासियों को चावल के दस मान, और घी के छः कुप्पे भेंट चढ़ाती है।"

ब्राह्मणों के लिये संपत्ति रखने का निषेध

मनु के अनुसार ब्राह्मण का धर्म यज्ञ कराना और वेद पढ़ाना है। उसका सारा समय ईश्वर को अर्पित होने के कारण वह उसका कोई भी भाग खेती करने, पशु चराने अथवा वस्तुएँ इकट्ठी करने में नहीं खर्च कर सकता। ये काम परमेश्वर ने वैश्यों के लिये नियत किए हैं। परंतु भारत में एक भी ऐसा खेत, ऐसा फल, ऐसा पेड़, अथवा ऐसा गृह-पशु नहीं, जो ईश्वर के निरूपित उस ब्राह्मण के अभावों को पूरा करने में सहायता न देता हो।

नारद स्मृति कहते हैं—"प्रति वर्ष अपने चावलों का सबसे प्रथम इकट्ठा किया हुआ भाग, अपना जेठा बछड़ा, जेठा मेढ़ा और जेठा मेमना ब्राह्मणों को दो। अपने नारियल के पेड़ों के पहले फल, अपने कोल्हू का पहला तेल, अपना पहला बुना हुआ कपड़ा उनको दो। यदि तुम चाहते हो कि परमेश्वर तुम्हारी संपत्ति तुम्हारे पास सुरक्षित बनाए रक्खे, और पृथ्वी तुम्हारी इच्छा के अनुसार प्रचुर उपज दे, तो जान लो कि तुम्हारे अधिकार में, जो कुछ है, उसका संपूर्ण पहला और सर्वोत्तम भाग उनका है।"

और तेल में सर्वोत्कृष्ट है, जो परमेश्वर को जेठे फलों के रूप में चढ़ाया जाता है। पृथ्वी के सभी पहले फल, जो परमेश्वर की भेंट किए जाते हैं, तुम्हारे उपभोग के लिये सुरक्षित हैं; तुम्हारे कुल के पवित्रात्मा व्यक्ति उन्हें खायँगे।

"इसरायल-वंशी जो कुछ मेरे लिये संकल्प करते हैं, वह तुम्हारा होगा। सभी जेठे बच्चे चाहे वे मनुष्य के हों अथवा पशु के, जो ईश्वर की भेंट चढ़ाए जाते हैं, तुम्हारे हैं, फिर भी शर्त यह है कि तुम मनुष्य के जेठे के लिये मूल्य स्वीकार करो, और अशुद्ध जंतुओं के लिये निष्कृति धन ले लो।

"परंतु तुम बैल, बकरी और भेड़ के जेठे बच्चों को रुपया लेकर न लौटाओ; क्योंकि वे ईश्वर को भाते हैं।"

हिंदू और इबरानी में केवल इतना ही भेद है कि ब्राह्मणों को मनुष्य का जेठा नहीं चढ़ाया जाता था और अशुद्ध पशुओं का जेठा बच्चा नहीं चढ़ाया जा सकता था।

इनकी इतनी बड़ी अभिन्नता पर किसी टीका-टिप्पणी का प्रयोजन नहीं। भारत का प्रभाव उसके प्राचीन जातियों को दायभाग में दिए हुए क्या बड़े-बड़े सामाजिक नियमों में, क्या उनकी छोटी-छोटी बातों में और क्या उनके व्यापक कार्य में, प्रत्यक्ष देख पड़ता है।

लेवियों की अशुचिता और उसकी शुद्धि

हम जब "लैव्यव्यवस्था" के पंद्रहवें अध्याय में स्त्री और पुरुष के अकाम अशौच की शुद्धि के नियमों को पढ़ते हैं, तब हमें उनको इसी विषय पर हिंदुओं के धार्मिक नियमों की प्रतिलिपि-मात्र देखकर स्वभावतः ही बड़ा आश्चर्य होता है।

अच्छा अब हम—उदाहरणार्थ—उपर्युक्त अध्याय की दो बातें लेकर उनकी तुलना उनके समान हिंदू-नियमों से करते हैं।

पुरुष की अशुचिता—

"इसरायल-वंशियों से कह दो कि जिस पुरुष के वीर्य झरता हो, वह उस कारण अशुद्ध ठहरे और, चाहे बहता हो और चाहे बहना बंद भी हो, तो भी उसकी अशुद्धता ठहरे ही गी।

"जिसके वीर्य झरता हो, वह जिस-जिस बिछौने पर लेटे, वह अशुद्ध ठहरे, और जिस-जिस वस्तु पर वह बैठे, वह भी अशुद्ध ठहरे। और जो कोई उसके बिछौने को छुए, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और, जिसके वीर्य झरता हो, वह जिस वस्तु पर बैठा हो, उस पर जो कोई बैठे, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जिसके वीर्य झरता हो, उससे जो कोई छू जाय इत्यादि-इत्यादि।"

"और जिसके वीर्य झरता हो यदि वह किसी शुद्ध मनुष्य पर थूके, तो जिस पर उसने थूका हो, वह अपने वस्त्रों को इत्यादि-इत्यादि, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जिसके वीर्य झरता हो वह सवारी की वस्तु पर बैठे, वह अशुद्ध ठहरे।"

"और जो कोई किसी वस्तु को, जो उसके नीचे रही हो, छू ले, वह साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जो कोई ऐसी किसी वस्तु को उठाये, वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"फिर जिसके वीर्य झरता हो, वह जब अपने रोग से चंगा हो जाय, तब से शुद्ध ठहरने के सात दिन गिन ले, और उनके बीतने पर अपने वस्त्रों को धोकर बहते हुए जल से स्नान करे, तब वह शुद्ध ठहरेगा।"

"और आठवें दिन वह दो पिंडुक अथवा कबूतरी के दो बच्चे लेकर मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह के सम्मुख जाकर उन्हें याजक को दे।"

"तब याजक उनमें से एक को पाप-बलि और दूसरे को होम-बलि करके चढ़ावे। इस भाँति याजक उसके लिये उसके वीर्य झरने के निमित्त यहोवह के सामने प्रायश्चित्त करे।"

"और जब कोई पुरुष स्त्री से प्रसंग करे, तो वे दोनों जल से स्नान करें, और साँझ तक अशुद्ध रहें।"

स्त्री की अशुचिता—

"फिर जब कोई स्त्री ऋतुमती हो, तो वह सात दिन तक अशुद्ध रहे, और जो कोई उसको छुए वह साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जब तक वह अशुद्ध रहे, तब तक जिस-जिस वस्तु पर वह लेटे, और जिस-जिस वस्तु पर वह बैठे, वे सब अशुद्ध ठहरें।"

"और जो कोई उसके बिछौने को छुए, वह अपने वस्त्र धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"यदि कोई पुरुष उससे प्रसंग करे, और उसका रुधिर उसके लग जाय तो वह पुरुष सात दिन तक अशुद्ध रहे, जिस-जिस बिछौने पर वह लेटे, वे सब अशुद्ध ठहरें।

"फिर यदि कोई स्त्री अपनी ऋतु के योग्य समय को छोड़ बीच के दिनों में भी रजस्वला हो, अथवा उस योग्य समय से अधिक ऋतुमती रहे, तो जब तक वह ऐसी रहे, तब तक अशुद्ध ही रहे।

"उसके ऋतुमती रहने के सब दिनों में जिस-जिस बिछौने पर

वह लेटे, वे सब उसके रजस्वाले बिछौने के समान ठहरें, और जिस-जिस वस्तु पर वह बैठे, वे भी उसके ऋतुमती रहने के योग्य दिनों की तरह अशुद्ध ठहरें।"

"और जो कोई उन वस्तुओं को छूए, वह अशुद्ध ठहरे। वह अपने वस्त्रों को धोकर जल से स्नान करे, और साँझ तक अशुद्ध रहे।"

"और जब वह स्त्री अपनी ऋतु से शुद्ध हो जाय, तब से वह सात दिन गिन ले, और उनके बीतने पर वह शुद्ध ठहरे।"

फिर आठवें दिन वह दो पिंडुक अथवा कबूतरी के दो बच्चे लेकर मिलापवाले तंबू के द्वार पर याजक के पास जाये।

"तब याजक एक को पाप-बलि और दूसरे को होम-बलि करके चढ़ावे इसी भाँति याजक उसके लिये उसके रजस् की अशुद्धता के कारण यहोवा के सामने प्रायश्चित्त करे।"

"इस-इस प्रकार से, हे मूसा और हारून! तुम इस्राएल-इयों को भाँति-भाँति की अशुद्धता से न्यारे कर रक्खो। कहीं ऐसा न हो कि वे मुझ यहोवा के निवास को, जो उनके बीच है, अशुद्ध करके अपनी अशुद्धता में फँसे हुए मर जायें।"

"जिसके धातु भरता हो, और जो पुरुष वीर्य स्खलित होने से अशुद्ध हो, और जो ऋतुमती हो, और क्या पुरुष और क्या स्त्री, जिस किसी के भरता हो और जो पुरुष अशुद्ध स्त्री से प्रसंग करे, इन सभों के यही व्यवस्था है।"

महात्मा है। दक्षिणी भारत के ब्राह्मण धर्म-पंडितों में उसका बड़ा सम्मान है। धर्म-संबंधी सभी यज्ञों और अनुष्ठानों के विषय में वह प्रमाण माना जाता है।

इस विषय में उसके शब्द ये हैं—

"स्त्री और पुरुष, दोनों समान रूप से उस स्थिति के अधीन हैं, जो उनको अशुद्ध होने के कारण पारिवारिक उत्सवों और देव-मंदिर के अनुष्ठानों में भाग लेने से रोकती है। जब तक उस स्थिति की समाप्ति न हो जाय, गंगा के पवित्र जल में स्नान करने से भी वे शुद्ध नहीं हो सकते।"

पुरुष की अशुचिता—

"जिस पुरुष को स्त्रियों के उपयोग अथवा दुरुपयोग से कोई रोग हो जाय, वह उस रोग के दिनों में, और फिर नीरोग हो जाने के उपरांत दस दिन और दस रात तक अशुद्ध रहता है।"

"उसकी साँस अशुद्ध है, उसका थूक और उसका पसीना अशुद्ध हैं।"

"वह अपनी भार्या के साथ, अपने बच्चों के साथ, अपने वर्ण के किसी मनुष्य और अपने किसी संबंधी के साथ न खाय। उसका भोजन अशुद्ध हो जाता है। जो कोई उसके साथ खाता है, वह तीन दिन तक अशुद्ध रहता है।"

"उसके वस्त्र अशुद्ध हो जाते हैं। उन्हें शुद्धि के जल से साफ़ करना चाहिए।"

"जो लोग उसे छूते हैं, वे तीन दिन तक अशुद्ध रहते हैं।

"जो कोई हवा के रुख़ से उससे बातचीत करता है, वह अशुद्ध है, और सूर्योदय पर स्नान करने से अपने को पवित्र करता है।"

"उसके बिछाने की चटाई अशुद्ध है। उसे जला देना चाहिए।

"उसका बिछौना अशुद्ध है। उसे शुद्धि के जल से साफ़ करना चाहिए।"

"उसके जल पीने के पात्र, और उसकी मिट्टी की रकाबियाँ जिनमें उसके चावल थे, अशुद्ध हैं। उन्हें तोड़कर पृथ्वी में दबा देना चाहिए।"

"यदि उसके पात्र तांबे अथवा किसी अन्य धातु के हों, तो उन्हें शुद्धि के जल अथवा अग्नि से शुद्ध किया जा सकता है।"

"जो स्त्री अपनी दशा को जानते हुए भी, उसे अंगीकार करती है, वह दस दिन और दस रात तक अशुद्ध रहती है। वह सब अशुचिताओं के लिये निरूपित तालाब में स्नान करने के उपरांत शुद्धि का याग करे।"

"इस प्रकार अशुद्ध हुआ पुरुष अपने मृत माता-पिता का वार्षिक श्राद्ध करने में अक्षम हो जाता है। उसका किया श्राद्ध और यज्ञ अशुद्ध है। परमेश्वर उसे अस्वीकार करता है।

"जिस घोड़े, ऊँट अथवा हाथी पर चढ़कर वह यात्रा करता है, वह अशुद्ध हो जाता है।"

"उसे जल में कुश डालकर स्नान करना चाहिए।"

"उसके गंगा-स्नान करने से भी उसका पाप दूर नहीं होगा; क्योंकि स्नान के समय वह अशुद्ध था।"

"यदि वह पवित्र गंगा-जल घर लावे, तो लोग उसे शुद्धि का जल समझकर काम में लावें। अन्यथा वे भी उसके सदृश ही अशुद्ध हो जायेंगे।"

"ईश्वर-भक्तों को वह प्रचुर नैवेद्य दे।"

"तब वह मंदिर के द्वार पर जाय, और चावल, शहद, घी और ऐसे मेमने का चढ़ावा चढ़ावे, जिसका उस समय तक कभी मुंडन न हुआ हो। यदि वह निर्धन हो और भेड़ का बच्चा न चढ़ा सके, तो कबूतर के ऐसे बच्चों का जोड़ा चढ़ावे, जिन पर दाग़ न हो, और जिन्होंने उस समय तक घोंसले न बनाए हों, अथवा प्रणय का गीत न गाया हो।"

"तब वह शुद्ध ठहरेगा, और अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ आनंद भोग सकेगा।"

स्त्री की अशुचिता—

महर्षि मनु ने कहा है—"सोलह पूरे दिन, उन चार विभिन्न दिनों सहित, जिनको महात्माओं ने निषिद्ध ठहराया है, स्त्री का स्वाभाविक ऋतुकाल हैं। इन दिनों में ही पति उसके पास जा सकता है। इन सोलह दिनों में से पहले चार तथा ग्यारहवाँ और तेरहवाँ दिन निषिद्ध हैं। शेष दस दिनों की ही आज्ञा है।"

वेद कहता है—"स्त्री के ऋतुकाल में पति को उसका वैसा ही सम्मान करना चाहिए जैसा कि हम कदली-कुसुम का करते हैं; क्योंकि वह उर्वरता और आनेवाली फ़सल की घोषणा करता है।"

"संयम के प्रयोजन से ग्यारहवाँ और तेरहवाँ दिन निषिद्ध ठहराया गया है। केवल पहले चार दिन ही उन लोगों के लिये अशुचिकर समझे गए हैं, जो उनका सम्मान नहीं करते।

"इन चार दिनों में स्त्री अशुद्ध होती है। वह अपने अलग कमरे में रहे, और अपने को अपने पति, संतान और भृत्यों से छिपाए रक्खे।

"उस की साँस, उसका थूक, और उसका पसीना अशुद्ध है।

"जिस वस्तु का वह स्पर्श करती है, वह तत्काल अशुद्ध हो जाती है, और उसके दूध के बर्तन को हाथ में लेने से वह दूध फट जाता है।

"उसके बिछाने की चटाई अशुद्ध हो जाती है, इसलिये उसे जला देना चाहिए, और खाट को शुद्धि के जल से झाड़ कर डालना चाहिए।"

"जिस वस्तु पर वह विश्राम करती है, वह अशुद्ध हो जाती है। जो उस को से छूते हैं वे अशुद्ध हो जाते हैं। उन्हें सायंकाल के स्नान से अपने को शुद्ध करना चाहिए।"

"इस दशा में वह न अपने पति का, न पिता का, और न माता का ही नाम उच्चारण करे; क्योंकि वह अशुद्ध है, और इससे वे भी अशुद्ध हो जायेंगे।"

"वह अपने शरीर पर कुंकुम न मले।"

"वह अपने को पुष्पों से अलंकृत न करे।"

"वह दासियों से अपने बालों को सँवारने के लिये न कहे। इस दशा में वह प्रसंग करने का यत्न न करे।"

"वह अपने आभूषणों को उतार दे, नहीं तो वे अशुद्ध हो जायेंगे और उन्हें आग से शुद्ध करना पड़ेगा।"

"उसे अपने पति, बच्चों और अपनी परिचारिकाओं के साथ, चाहे वे उसके अपने वर्ण का ही क्यों न हों, न खाना चाहिए।"

"वह होम न करे और न श्राद्ध ही में सहायता दे; क्योंकि उसका किया होम अशुद्ध और उसका किया श्राद्ध अपवित्र है।

नैवेद्य चढ़ावे। वह भेड़ का एक ऐसा बच्चा भी चढ़ावे, जिस पर न कोई दाग़ हो, और जो तब तक न कभी मूँड़ा ही गया हो। यदि यह न मिल सके, तो वह कबूतरों का एक ऐसा जोड़ा दे, जिसने उस समय तक प्रणय का गीत न गाया हो, अथवा अपने घोंसले न बनाए हों।

"इतना कर चुकने के उपरांत वह पवित्र होकर घर का काम-काज करे।"

"अब उसे पति को बुलाने की आज्ञा है, जिसने शास्त्र की इस आज्ञा के अनुसार अपने को उससे अलग किया था,—"जो मनुष्य निषिद्ध रातों में स्त्री-समागम नहीं करता, वह द्विज अथवा ब्रह्मचारी के समान पवित्र है।"

इबरानी और हिंदू-समाज में ऐसे स्पष्ट सादृश्यों को देखते हुए भी जो मनुष्य मूसा को एक व्यवस्थापक के अतिरिक्त कुछ और समझता है, वह वस्तुतः ईश्वरीय ज्ञान का एक असंकोचशील योद्धा है। मूसा को ऐसे लोगों के लिये व्यवस्था तैयार करनी थी, जो एक दास-समूह की, एक ऐसे मनुष्य-समुदाय की संतान थे, जो परिश्रम और तितिक्षा के नियमों के सिवा और किसी के अधीन होना जानता ही न था। इसलिये वह मेनस (Manes) और उन मिसरी संस्थाओं की नक़ल करके ही संतुष्ट हो गया, जो निर्विवाद रूप से पूर्व की उपज हैं।

इसके अतिरिक्त क्या हमें यह मालूम नहीं कि एशिया के सभी लोग इन्हीं रीति रिवाजों के अधीन थे, और उनमें से बहुत-से अभी तक भी उनका सम्मान करते हैं।

उन गरम देशों में धर्म ने शारीरिक शुचिता के लिये स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी व्यवस्थापन का काम भी अपने ही ऊपर लिया; क्योंकि उन भयानक महामारियों को रोकने का, जो समय-समय पर उन देशों को उजाड़ डाला करती हैं, और कुष्ठ-जैसे भयानक रोग से

बचने का, जो अब योरप में तो नहीं रहा, परंतु पूर्व में अभी तक प्राचीन समयों की-सी तीव्रता से फैल रहा है, वहाँ एक-मात्र उपाय था ।

मनु से लेकर मुहम्मद तक स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी नियम एक ही रहे हैं । जलवायु आवश्यकता को प्रकट करता था, और यदि कुछ लोग ऐसे मौजूद न होते, जो अपने धर्मोन्माद में, चाहे वह सच्चा हो अथवा दिखलावे का, सब कहीं ईश्वरीय प्रत्यादेश और ईश्वर का हाथ देखने पर दुराग्रह करते हैं, तो मैं यह दिखलाने का कभी यत्न न करता कि मूसा ने पुराने रीति-रिवाजों की केवल नक़ल की है, और उनका ग्रहण करना उसके लिये स्वाभाविक था ।

मूसा ने ब्राह्मणों, मिश्र के भविष्यद्वक्ताओं, फ़ारस के मगों तथा प्राचीन यूनान के पुरोहितों के उदाहरण का अनुकरण करते हुए वेदी पर बैल की बलि की आज्ञा दी । परंतु कितने आश्चर्य का विषय है कि जेसुइट, मनोचियंस (Menochins) और केरीर (Carriere) लोग इसको अति प्राचीन रीति-रिवाजों का स्वाभाविक परिणाम न समझ, इसे महायज्ञ (Eucharist) का नमूना और चिह्न मानते हैं ।

परंतु हम आश्चर्यान्वित क्यों हैं ? क्या हमें यह बहुत देर से मालूम नहीं कि मनुष्यों की विशेष श्रेणियाँ ऐसी हैं, जो अपनी सीमा के बाहर किसी भी ऐतिहासिक तथ्य, सुबुद्धि और युक्ति का स्वीकार नहीं करतीं ?

क्या ब्राह्मण, मजूस, लेवी और भविष्यद्वक्ता, जो अपने आपको ईश्वर के प्यारे, सत्य और धर्म के एक-मात्र उपदेशक विवोषित करते हैं, एक चण के लिये भी अपनी प्रतिष्ठा के विषय में विचार करने की आज्ञा देंगे ? क्या वे अपने शत्रुओं का बहिष्कार नहीं करते? क्या उन्होंने उन अपने शासन से छुटकारा पाने की चेष्टा करनेवाले सम्राटों को कंपायमान नहीं किया ? क्या उन्होंने यातना और सूली का डर दिखाकर शासन नहीं किया ?

इसलिये यदि हम ऐतिह्य को निरंतर पाते हैं ; यदि दाय को दायाद मिल गए हैं, और यदि आधुनिक लेवी समाज (Levi teism) ने युक्ति और स्वतंत्रता को बहिष्कृत करने, और उस प्राचीन याजकीय निरंकुशता को, जिसने प्राचीन काल में संसार को खँडहरों और धर्मवीरों से भर दिया था, पुनर्जीवित करने के व्यक्त उद्देश्य से घोर युद्ध करने के लिये अपनी सभी सेनाओं को एकत्र किया है और सारी संचित सेना को वापस बुला लिया है, तो हमारे पास आश्चर्य करने के लिये कारण ही क्या है ?

वाइबिल में पशुओं के रक्त को खाने का निषेध

लैव्यव्यवस्था में लिखा है—"फिर यहोवह ने कहा इसरायल के घरानेवालों में से अथवा उनके बीच रहनेवाले परदेशियों में से कोई मनुष्य क्यों न होवे, जो किसी प्रकार का लोहू खावे, मैं उस लोहू खाने-वाले के विमुख होके उसको उसके लोगों के बीच से नष्ट कर डालूँगा।

"क्योंकि शरीर का प्राण जो है सो लोहू में रहता है और उसे मैंने तुम लोगों को वेदी पर चढ़ाने के लिये दिया है जिससे तुम्हारे प्राणों

के लिये प्रायश्चित्त किया जावे, क्योंकि लोहू में प्राण जो रहता है सो लोहू ही से प्रायश्चित्त होता है।

"इसी कारण मैं इस्रायलवंशियों से कहता हूं कि तुममें से कोई प्राणी लोहू न खावे और जो परदेशी तुम्हारे बीच रहे सो भी लोहू न खावे।

"सो इस्रायलवंशियों में से अथवा उनके बीच रहनेवाले परदेशियों में से कोई मनुष्य क्यों न हो जो अहेर करके खाने के योग्य पशु अथवा पक्षी को पकड़े वह उसके लोहू को उंडेल के धूलि से ढांपे।

"क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण जो है उनका लोहू ही उनका प्राण ठहरा है, इसी से मैं इस्रायलवंशियों से कहता हूं कि किसी प्रकार के शरीरधारी के लोहू को तुम न खाना, क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण उनका लोहू ही है। उसको जो कोई खावे सो नष्ट किया जावे।"

मृत पशुओं का निषेध

"और देशी हो चाहे परदेशी हो जो किसी लोथ अथवा फाड़े हुए पशु का मांस खावे सो अपने वस्त्रों को धोवे जल से स्नान करे और सांझ लों अशुद्ध रहे, पीछे वह शुद्ध ठहरेगा।

"और यदि वह तन को न धोवे और न स्नान करे, तो उसको अपने अधर्म का बोझ उठाना पड़ेगा।"

इसी विषय पर पौराणिक हिन्दूधर्म का निषेध

रामचरित(Ramatsarit)—

"लोहू प्राण है, यह वह दिव्य रस है जो उस उपादान को सींचता और उर्वर बनाता है जिससे शरीर बना है। जिस प्रकार गंगा की सैकड़ों शाखाएँ पुण्यभूमि को सींचती और उपजाऊ बनाती हैं, जिस प्रकार इस महानद के स्रोत को सुखा डालने की चेष्टा करना बुद्धिहीनता है, उसी प्रकार जीवन के स्रोतों को व्यर्थ न निचोड़ा जाय और न भोजन बनाकर उन्हें अपवित्र ही किया जाय।

"महान् परमेश्वर (जो सब कुछ है और सबमें है) से निकला हुआ दिव्य तत्त्व, जो प्राण है, लहू के द्वारा ही शरीर के साथ संयुक्त होता है। लहू ही भ्रूण को माता से युक्त करता है, लहू से ही हम परमेश्वर से बँधे हुए हैं।

"हम पेड़ों का रस, जो उनका रक्त है और फल उत्पन्न करता है, नहीं खाते। इसी प्रकार हमें पशुओं का रक्त, जो उनका रस है, नहीं खाना चाहिए।

"रक्त में जीवन के गुह्य रहस्य भरे पड़े हैं, और सृष्ट प्राणी इसके विना जी नहीं सकता। रक्त का खाना स्रष्टा के महान् कार्य को अपवित्र करना है।

"जिस मनुष्य ने इसे खाया है उसे डरना चाहिए कि क्रमिक-पुनर्जन्मों में वह उस अशुद्ध जंतु के शरीर से कभी नहीं छूटेगा जिसमें उसकी आत्मा का पुनर्जन्म हुआ है।

"ऋत्विज् बैल, भेड़ के बच्चे अथवा बकरी को वेदी पर चढ़ाने के पहले उसका गला काटता है; इसे अपने लिये उदाहरण बनाओ।

"जब तुम्हारी इच्छा ऐसे जंतुओं का मांस खाने की हो, जो शुद्ध हैं और निषिद्ध नहीं, चाहे वे जुगाली करनेवाले और चिरे हुए खुर-वाले हों, चाहे अन्य शिकार में पकड़े हुए, पक्षी अथवा चौपाए हों, तो पृथ्वी में एक गड्ढा खोदो और उसमें, जिस जंतु को तुम खाना चाहते हो उसका रक्त फेंककर उसे ऊपर से ढक दो।

"जो मनुष्य इन निषेधों का उल्लंघन करता है वह परलोक की यातनाओं के अतिरिक्त श्लीपद, कुष्ठ और अतीव गर्ह्य रोगों से पीड़ित होता है।"

मरे हुए जंतुओं का निषेध

"स्वाभाविक मृत्यु से या अकस्मात् मरा हुआ जंतु अशुद्ध है, चाहे वह धर्मशास्त्र-निषिद्ध जाति का न हो, क्योंकि उसके शरीर में अभी तक भी रक्त है और वह पृथ्वी पर फेंका नहीं गया।

"जो इसे खाता है वह मांस के साथ रक्त को भी खाता है, जो कि निषिद्ध है, और वह उसके सदृश ही, जिसका उसने मांस खाया है, अशुद्ध हो जाता है।

"नीच जातियों के बहुत-से लोग कुष्ठ और गर्ह्य रोगों से मरते हैं। ये रोग उनकी मृत्यु के पहले ही उनके शरीरों को कीड़ों का शिकार बना देते हैं। इसका कारण यह है कि वे लोग जो भी इन जंतु उन्हें मिल जाय उसे खा लेते हैं।

"जिसने इस प्रकार खाया हो वह अशुचिताओं के लिये नियत किए हुए जलाशय पर जावे, और अपने वस्त्रों को धोकर, उस जल में डुबकी लगावे, और तीन लंबे स्नानों के पश्चात्, दूसरे दिन के सूर्योदय तक उपवास करे।"

निषेध विकसित होता, समझ में आने योग्य बनता, और लोगों को यह समझाया जाता कि यह क्यों बनाया गया है, तब इससे संबंध रखनेवाले विमर्शों का गौरव उच्च होता। बाइबिल ने इसका अनुभव नहीं किया, क्योंकि इसका पाठ एक अपूर्ण अनुचिंता-मात्र था—

"लोहू प्राण है, यह वह दिव्य रस है जो उस उपादान को सींचता और उर्वर बनाता है जिससे शरीर बना है, जिस प्रकार कि गंगा की सैकड़ों शाखाएँ पुण्यभूमि को सींचती और उपजाऊ बनाती हैं।"

"महान् पूर्ण (परमेश्वर) से निकला हुआ विशुद्ध तत्त्व, जो प्राण है लहू के द्वारा ही शरीर से युक्त होता है।"

वेद के इस लक्षण पर विज्ञान चाहे हँस दे, परंतु विचारक इसकी प्रशंसा करेंगे।

मूसा ने अपने ठहराए हुए नियम का यह सरल समाधान लिखकर निश्चय ही अपनी अनुचिंताओं को संक्षिप्त कर दिया, "क्योंकि सब शरीरधारियों का प्राण उनका लोहू ही है।"

क्या ये स्पष्ट सादृश्य निर्विवाद रूप से यह सिद्ध नहीं करते कि बाइबिल पूर्वीय संस्थाओं की प्रतिध्वनि-मात्र है? पता नहीं कि मैं शायद भ्रम में हूँ, परंतु मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि गंभीरता-पूर्वक विचार करने से, मूसा की छोड़ी हुई पुस्तक का सरल अध्ययन हमारे सामने स्वभावतः यही परिणाम उपस्थित करता है।

बाइबिल की जिन पाँच पुस्तकों का संबंध इस व्यवस्थापक से बताया जाता है उनमें प्रत्येक पग पर हम ऐसे विस्तार, आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज, प्रक्रियाएँ, यज्ञ-विधियाँ, और नियम, बिना किसी समाधान के दिए हुए पाते हैं जिनका सत्ताहेतु सिवाय प्राचीन सभ्यताओं के अनुकरण के और कुछ हो ही नहीं सकता। इस सापेक्ष अध्ययन में ज्यों-ज्यों हम आगे बढ़ते हैं त्यों-त्यों हम यह मानने पर अधिक विवश होते हैं कि मूसा ने इबरानियों के उपयोग के

लिये मिस्र की इन संस्थाओं का केवल संक्षेप ही किया है, जो मिस्र में भारत से पहुँची थीं।

इस्रायलवंशियों को उपासना-मंदिर (मिलापवाले तंबू) के सामने के अतिरिक्त, और सब कहीं अपने बैलों, भेड़ों और बकरियों को मारने का निषेध है।

"लैव्यव्यवस्था" कहती है—

फिर यहोवा ने मूसा से

———

जंतुओं—बैल, भेड़ के बच्चे और बकरी—को, बिना उपासना-मंदिर के द्वार पर और याजक के हाथों से, मारने के निषेध की विचित्र आज्ञा के सांकेतिक अर्थों की खोज करने के पहले आओ हम देखें कि इस विषय में हिंदुओं के नियम क्या हैं।

"इस विधि का यह कारण है कि इसरायलवंशी जो अपने बलि-पशुओं को खुले चौगान में बलि किया करते हैं सो उन्हें मिलापवाले तंबू के द्वार पर याजक के पास यहोवह के लिये ले जाके उसी के लिये मेल-बलि जानके बलि किया करें।

"और याजक लोहू को मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह की वेदी के ऊपर छिड़के और चरबी को उसके लिये सुख-दायक सुगंध जान के जलावे।

"इस प्रकार से वे जो बकरों के पूजक होकर मानो व्यभि-चार करते हैं सो फिर अपने बलिपशुओं को उनके लिये बलि न करें। इसरायलियों की पीढ़ी-पीढ़ी में यह सनातन विधि ठहरे।

"सो हे मूसा, तू उनसे कह कि इसरायल के घरानेवालों में से अथवा उनके बीच रहनेवाले परदेशियों में से कोई मनुष्य क्यों न हो जो होम बलि अथवा मेल-बलि चढ़ावे।

किए हुए पशु का ही मांस, इसे परमेश्वर को चढ़ाने के उप-रांत, खाता है वह पापी नहीं होता, क्योंकि यज्ञ की सिद्धि के पश्चात् मांस का खाना ईश्वरीय विधि कहा गया है।

"मंत्रों से संस्कार न किए हुए पशुओं के मांस को ब्राह्मण कभी न खाए, किंतु सनातन विधि का आश्रय लेनेवाला मनुष्य सदैव मंत्रों द्वारा शुद्ध किए हुए पशुओं के मांस को खा सकता है।

"खाने योग्य प्राणियों को खानेवाला प्रति दिन मांस खाता हुआ भी पापी नहीं होता, क्योंकि ब्रह्मा ने ही विशेष प्राणी खाए जाने के लिये और दूसरे उनको खाने के लिये रचे हैं।

"विधि का जाननेवाला द्विज, आपत्तिरहित काल में विना विधि के मांस न खाए।

"जो अहिंसक जीवों को केवल अपने सुख की लालसा से मारता है, उसका सुख न उसके जीवन में और न उसकी

"और इसको मिलापवाले संदूक द्वार पर यहोवह के लिये चढ़ाने को न ले आवे वह मनुष्य अपने लोगों में से नष्ट किया जावे।"

मृत्यु के पश्चात् ही पड़ता है।

"परंतु वन में निवास करता हुआ शुद्धात्मा द्विज आपत्ति में भी ऐसी हिंसा न करे, जो वेद-विहित नहीं है।"

सामवेद के प्रमाण—

"हमें पशुओं का सम्मान करना चाहिए, क्योंकि इनकी रचना संसार का शासन करनेवाली परम बुद्धि का कार्य है, और उस बुद्धि का इसके छोटे-से-छोटे कामों में भी सम्मान करना परमावश्यक है।

"इसलिये तुम बिना प्रयोजन, केवल सुख के लिये, पशुओं को मत मारो, क्योंकि वे तुम्हारी ही तरह ईश्वर के रचे हुए हैं।

"तुम इनको दारुण पीड़ा मत दो।

"तुम इन्हें मत सताओ।

"तुम इनसे इनके बित्ते से बाहर काम मत लो।

"इन्होंने तुम्हारी जो सेवा की है उसको स्मरण करके इन्हें बुढ़ापे में इनका परित्याग मत करो।

"मनुष्य पशुओं को केवल भोजन के लिये ही मारे; और अपवित्र होने के कारण निषिद्ध हैं उनको ध्यानपूर्वक छोड़ दे।

"यदि वह विहित विधियों का पालन नहीं करता, तो उनके भोजन के लिये मारने में भी वह पापी ठहरता है, और घोर दंड से दंडित होता है।

"जो मनुष्य वेद-विहित विधि के विना मांस खाता है वह अपयश की मृत्यु मरता है, क्योंकि उसने सर्व पदार्थों के स्वामी परमेश्वर को वलि चढ़ाने के विना ही रक्तपात किया है।"

इसी विषय पर रामसरियर (टीकाएँ)—

"जो मनुष्य विहित-विधि का पालन करता है वह पशुओं का मांस तब तक नहीं खाता जब तक कि ऋत्विज् उनकी परमेश्वर को बलि नहीं देता। याजक वेदी पर रक्त छिड़कता है, क्योंकि मृत्यु को पवित्र करने के लिये स्रष्टा को रक्त की बलि देना आवश्यक है।

"जो विना वलि दिए मांस खाता है वह इस लोक तथा परलोक में आक्रुष्ट ठहरता है, क्योंकि महर्षि मनु कहते हैं, 'जिसका मांस मैं इस लोक में खाता हूँ वह दूसरे लोक में मुझे खायगा।"

"लैव्यव्यवस्था" के ऊपर दिए वचन से प्रकट होता है कि मूसा ने इवरानियों के लिये, मृत्यु-दंड की धमकी देकर, मिलापवाले तंबू (उपासना-मंदिर) के द्वार को छोड़कर और किसी स्थान पर भी पशुओं का वध करने का निषेध किया है।

परंतु, सामान्यतः, यह व्यवस्थापक अपने प्रयोजनों और अपने निषेध के उद्देश की व्याख्या नहीं करता।

किस कारण, बाइबिल के शब्दों में, छावनी में अथवा छावनी से बाहर, सब जंतुओं के वध का निषेध है ?

"लैव्यव्यवस्था", अध्याय १७, वाक्य ७ में, जिसमें इस विषय का वर्णन है, इन शब्दों में व्याख्या का आभास मिलता है; "अब से वे झूठे देवताओं के लिये अपने पशुओं की वलि न करें।"

परंतु इस वचन से क्या सिद्ध होता है ? यह केवल इतना ही प्रकट करता है कि पूर्वकाल में इसरायलवंशी उन देवताओं की मूर्तियों के लिये वलि चढ़ाया करते थे जिनको यहोवह ने परास्त किया था, और वही रीति नवीन पूजा के लाभार्थ जारी रही।

मूसा के ग्रंथों में हम उस विचार को ढूँढ़ना चाहते हैं जिससे प्रेरित होकर उसने मिलापवाले तंबू के द्वार के सिवा और सब कहीं बलिदान का निषेध किया कि मारा हुआ पशु परमेश्वर द्वारा पवित्र किया जाना चाहिए।

मूसा ने प्राचीन मिस्र और भारत के नियमों का केवल संक्षेप ही किया है, और उस रिवाज को बनाए रखने में वह सदैव उन मूलादर्शों को भूल जाने का यत्न करता है (वह नक़ल करने में बहुत असावधान है) जिसने उसे जन्म दिया था।

आओ हम इसी विषय पर मनु और वेद के उद्धृत किए वचनों पर विचार करें। तब ही बाइबिल-वचन की अस्पष्टता को दूर करना, उसका युक्तिसंगत रीति से समाधान करना संभव होगा। इससे सदा यही स्वाभाविक परिणाम निकलेगा कि यह पुस्तक, बाक़ी सारी पुस्तकों की तरह, एक बुरी तरह से की हुई नक़ल का परिणाम-मात्र है।

सभी प्राचीन जातियाँ, और सबसे बढ़कर हिंदू, ईश्वरीय सृष्टि के रहस्यमय कार्य के प्रति अतीव सम्मान-भाव रखते थे, और उन्हें सदा यही चिंता रहती थी कि इसके साथ छेड़छाड़ न की जाय। रक्त और पशु-वध से उनके डरने का यही कारण था। एक ओर यह सम्मान-भाव था और दूसरी ओर जीवन-संबंधी उनकी दैनिक आवश्यकताएँ थीं, जो मांसाहार के लिये विवश करती थीं। इन दोनों के मध्य में उन्होंने यह धार्मिक परिकथा गढ़ ली जिसके अनुसार उनके निर्वाह के लिये निरूपित पशु को देवता को अर्पित करके खाना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार गिराए हुए रुधिर की रक्षा के लिये बलि चढ़ाकर उसे न्यायसंगत किया जाता।

क्योंकि ऐसा ही वेद कहता है—

भक्तों, और धर्मपरायण लोगों के लिये ऐसे पशु के मांस खाने का निषेध करती हैं जो पहले ईश्वर के लिये बलि नहीं किया गया है। बाइबिल के इन शब्दों का कारण भी यही है।

"इसरायल के घराने में से कोई मनुष्य हो जो बैल अथवा भेड़ अथवा बकरी को, चाहे छावनी में चाहे छावनी के बाहर, बलि करके मिलापवाले तंबू के द्वार पर यहोवह के लिये चढ़ाने के निमित्त न ले जावे तो उस मनुष्य को लोहू बहाने का दोष लगेगा।"

इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि सारे पूर्वी लोगों ने मांस को खाने के पहले, उसके रुधिर (उसके प्राण) की ईश्वर के लिये बलि चढ़ाकर उसे पवित्र कर लेने की रीति भारत से ही ग्रहण की थी।

पीछे से, प्राचीन कल्पना अव्यक्त और सांकेतिक हो गई; और प्रत्येक मारे जानेवाले पशु को परमेश्वर के लिये चढ़ाने की रीति बंद हो गई। इस दैनिक व्यवहार के स्थान में सामयिक उत्सव रख दिए गए। इन उत्सवों में लोग याजक से साधारण शुद्धि के निमित्त, वेदी पर बलिदान कराने के लिये सब प्रकार के पशु लाया करते थे।

एक भारत ही ऐसा है जिसने अपने प्राचीन व्यवहारों को नहीं छोड़ा और आज भी ऊँचे वर्ण और ब्राह्मण केवल वही मांस खाते हैं जिसका पहले मंदिर में संस्कार हो चुका हो।

इस प्रकार सभी प्राचीन सभ्यताएँ एक दूसरी से निकली हैं; और इस प्रकार, जीवन की अतीव छोटी-छोटी बातों में उनके अभ्यस्त व्यवहारों की तुलना करके हम उस मूल समाज को ढूँढ़ लेते हैं जो विरोधाभासात्मक कल्पना होना तो दूर, मानव-विकास के नियमों का अवश्यंभावी और युक्तिसंगत परिणाम है।

कैथोलिक (उदार) संप्रदाय, जो प्राचीन इबरानी व्यवहारों को न्यू चर्च का नमूना समझने पर ज़ोर देता है लैव्यव्यवस्था के इस अध्याय की व्याख्या एक और ही ढंग से करता है।

इसके मतानुसार परमेश्वर ने ही इसरानियों को मिलापवाले तंबू के सिवा और किसी स्थान में बलिदान चढ़ाने से रोकने के लिये ये निषेध बनाए थे।

मैं कहता हूँ कि बाइबिल इन शब्दों का प्रयोग करती है (Homo quilibet de domo Israeli;) अर्थात् इसराइल के वंश में से कोई भी मनुष्य जो मिलापवाले तंबू के द्वार को छोड़ किसी अन्य स्थान में पशु-वध करता है।

यदि परमेश्वर के लिये बलि चढ़ाने की अभिलाषा होती थी, तो केवल याजक को ही इसे चढ़ाने का अधिकार था; परंतु जो व्यवस्था हमारे सामने है उसके प्रत्येक इसरानी को, यदि वह बलि के अंश को प्रायश्चित्त के रूप में वेदी पर छिड़कने के लिये याजक को देकर अपने कर्म को पवित्र कर लेता है, तो मिलापवाले तंबू के सामने वध करने का अधिकार है।

इसीलिये केवल उन्हीं पशुओं का वर्णन है जो आहार के लिये निरूपित हैं न कि उनका जो विशुद्ध धार्मिक प्रक्रियाओं के लिये नियत हैं।

(Ante ostium Tabernaculi testimonii immolent eas hostias pacificas.) वे अपनी मेल-बलि उपासना-मंदिर (मिलापवाले तंबू) के द्वार पर चढ़ाते हैं।

इसरानियों के लिये ऐसी ही आज्ञा है।

मंदिर में, जहाँ उसके सिवा और कोई नहीं जा सकता था।

इसके अतिरिक्त, जिस समाधान का प्रतिकार हम कर रहे हैं, वह मूल पाठ के विलक्षण तोड़-मरोड़ से ही संभव हो सकता है।

यहाँ हम इस वचन का वह अर्थ देते हैं जो फ़ादर डी करियर (Father de Carriere) ने बाइबिल के स्वीकृत संस्करण में दिया है।

"लैव्यव्यवस्था" का मूल वचन—

Homo qui libet de domo Israel, si occiderit bovem, aut capram, in castris vel extra castra.

Et non obtulerit ad ostuim Tabernaculi oblationem Domino, sangui nis reus erit, quasi si sanguinem fuderit, sic peribit de medio populi suio.

Ideo sacerdoti afferre debent filii Israel hostias suas quas occident in agro, ut sanctificentur Domino.

शब्दार्थ—

इस्रायल के वंश का प्रत्येक मनुष्य जो छावनी के अंदर अथवा बाहर कोई बैल, अथवा भेड़, अथवा बकरी का वध करेगा. और जो मिलापवाले तंबू के द्वारों पर परमेश्वर के लिये उसकी बलि नहीं चढ़ाएगा, वह रक्तपात का दोषी होगा, और रक्तपात करने के कारण अपने लोगों के बीच से नष्ट हो जायगा।

इस कारण इसरायल की संतान खेतों में मारी हुई अपनी बलियों को याजक को दे, जिससे परमेश्वर द्वारा उनका संस्कार हो जाय।

जेसूइट फ़ादर डी केरियर का अनुवाद—

इस्रायल के घराने का, अथवा उनके बीच रहनेवाले मतांतर-ग्राहियों का, प्रत्येक मनुष्य, जो परमेश्वर के लिये बलि चढ़ाने की इच्छा से, संकल्प के साथ छावनी में अथवा छावनी के बाहर, बैल, भेड़, अथवा बकरी का वध करता है। जो मिलापवाले तंबू के द्वार पर परमेश्वर के लिये इसकी बलि नहीं चढ़ाता, उसे हत्या का दोष लगता है, और वह अपने लोगों के बीच नष्ट हो जाता है, मानो उसने मनुष्य का रक्तपात किया हो।

लैव्यव्यवस्था, अध्याय इक्कीस के अनुसार, मृतक से होनेवाली अशुद्धता और अशुचिता से रक्षा

"फिर यहोवह ने मूसा से कहा, हारून के पुत्र जो याजक हैं उनसे कह कि तुम्हारे लोगों में से कोई मरे तो उसके कारण तुमसे कोई अपने को अशुद्ध न करे।

हाँ अपने समीपी कुटुंबियों अर्थात् अपनी माता वा पिता वा बेटे वा बेटी वा भाई के लिये वह अपने को अशुद्ध करे तो करे।

और उसकी कुँवारी बहन जिसका विवाह न हुआ हो सो भी उसकी समीपिन है। इससे वह उसके लिये भी अपने को अशुद्ध करे तो करे। परंतु याजक अपने लोगों के राजा की मृत्यु पर भी अपने को अशुद्ध न करे।

इन अवसरों पर याजक न अपना सिर मुँडावें और न दाढ़ी, और न अपने शरीर ही चीरें।

वे अपने परमेश्वर के लिये पवित्र रहें, और उसका नाम अपवित्र न करें, क्योंकि वे परमेश्वर को धूप चढ़ाते हैं, और अपने परमेश्वर के भोजन को चढ़ाते हैं, इस कारण वे पवित्र ही रहें।"

लैव्यव्यवस्था, अध्याय २२

"यहोवह (परमेश्वर) ने मूसा से कहा—

हारून और उसके पुत्रों से कह दे कि, जब वे अशुद्ध हों, तब इसरायलवंशियों की पवित्र बलियों को स्पर्श न करें, उन वस्तुओं को दूषित न करें जो वे मुझे चढ़ावें और मेरे लिये पवित्र करें, क्योंकि मैं परमेश्वर हूँ।

उनसे और उनकी संतानों से कह दे ; तुम्हारे वंश का जो कोई अशुचिता की अवस्था में, उन वस्तुओं के पास जावे जो इसरायलवंशियों ने परमेश्वर को चढ़ाई हैं, और उसके लिये पवित्र की हैं वह परमेश्वर के सम्मुख नष्ट किया जावेगा।

हारून के वंश में से कोई क्यों न हो जो कोढ़ी हो अथवा उसके वीर्य भरता होवे वह मनुष्य जब लों चंगा न हो जावे । तब लों पवित्र की हुई वस्तुओं में से कुछ न खावे ।

ऐसे ही जो लोथ के हेतु अशुद्ध हुआ हो वा जिसका वीर्य स्खलित हुआ हो ऐसे किसी मनुष्य को जो याजक छूए ।

और जो याजक किसी ऐसे रेंगनेवाले जंतु को छूए जिससे लोग अशुद्ध होते हैं अथवा किसी ऐसे मनुष्य को छूए जिसमें किसी प्रकार की अशुद्धता होवे ।

जो प्राणी इनमें से किसी को छूए सो सांझ लों अशुद्ध रहेगा और तब भी यदि वह जल से स्नान न करे तो पवित्र की हुई वस्तुओं में से न खावे ।

हाँ, यदि स्नान करे तो जब सूर्य अस्त हो जावे तब वह शुद्ध ठहरेगा और उसके पीछे पवित्र की हुई वस्तुओं में से खा सकेगा, क्योंकि उसका भोजन वही है ।

जो जंतु आप से मरा वा पशु से फाड़ा गया हो उसके खाने से वह अपने को अशुद्ध न करे ।

इक्कीसवाँ अध्याय आज्ञा देता है कि याजक अशुद्ध करनेवाले अंत्येष्टि-संस्कारों में सहायता न दे।

उन्हें केवल समीपी संबंधियों के अंत्येष्टि-संस्कार कराने की ही आज्ञा है, और वहाँ भी उन्हें सदा प्रत्येक ऐसी बात से बचते रहने के लिये कहा गया है, जो अशुद्ध करनेवाली हो।

लोगों के राजा की मृत्यु पर भी अंत्येष्टि-कर्म-संबंधी इस नियम को तोड़ने की आज्ञा नहीं।

बाईसवाँ अध्याय याजकों को अशुद्धता की अवस्था में, अर्थात् जब उन्हें कुष्ठ हो, वे विशेष रोगों से पीड़ित हों, अथवा लोथ के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छू जाने से अथवा पृथ्वी पर रेंगनेवाले जंतुओं, और लैव्य व्यवस्था के शब्दों के अनुसार, सामान्यतः अशुद्ध वस्तुओं के स्पर्श से दूषित हों, तब पवित्र वस्तुओं के स्पर्श का निषेध करता है।

और वे चाहते हैं कि हम इसे ईश्वरीय प्रत्यादेश स्वीकार कर लें। जो याजक अपने दूसरे मनुष्य भाई की परलोक-यात्रा में श्मशान तक साथ जाता है वह अशुद्ध हो जाता है। लोथ के साथ प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छूने से याजक दूषित हो जाता है। रोग से अकामतः पीड़ित होने से याजक अशुद्ध हो जाता है। रेंगनेवाले जंतुओं के स्पर्श से याजक अशुद्ध हो जाता है। हास्यजनक मूढ़-विश्वासों का कैसा विचित्र संग्रह है! ओशोनिया द्वीपसमूह की कुछ जंगली जातियों की ब्रह्मविद्या में ऐसी बातें देखकर हम करुणा से कैसे कंधे हिलाया करते हैं।

ऐ! क्या ऐसी बातें परमेश्वर के मुख से निकल सकती थीं! क्या परमेश्वर ने लोगों को ऐसे विचित्र अनुष्ठानों पर विवश करने के लिये ही अपना प्रकाश किया था!

मैं यह तो समझ सकता हूँ कि ये सब किसी सीमा तक, इन इस्रायल-वंशियों के लिये, जो दासता से नर-पशु बन चुके थे, और जिन्होंने अपनी मुक्ति में केवल लूट-मार में ही नाम पाया था, अच्छे थे; परंतु

वर्तमान काल में हमसे ऐसी असंगतियों के सामने सिर झुकाने को कहना, मैं यह कहने से रुक नहीं सकता, मानव-बुद्धि के विरोध सेतुत्व से सदा के लिये हाथ धो बैठना है।

सौभाग्यवश यह दिखलाने से बढ़कर कि इस सम्बोधन में कोई भी नई बात नहीं बताई गई, कोई भी चीज़ मुनासिब नहीं। ऐसे ही यह सिद्ध करना आसान है कि मूसा ने पूर्व के [illegible] को [illegible] रखने, और ब्राह्मणों और मिस्र के याजकों के नमूने पर [illegible] की स्थापना करने से बढ़कर और कुछ नहीं किया।

दूसरी व्यवस्थापक की बाइबिल में, अर्थात इन पाँच पुस्तकों में जिनका संबंध उसके साथ ठहराया जाता है, यह बात [illegible] योग्य है कि दुराचार की, या यों कहिए कि अपराध की, [illegible] विषय में बहुत थोड़ा कहा गया है। अनुचित का नाम [illegible] वस्तुओं के स्पर्श को ठहराया गया है।

क्रोध का, रेंगनेवाले जंतुओं का, और स्वाधिकार [illegible] उसने — मत करो, अन्यथा तुम परमेश्वर के सम्मुख नष्ट किए जाओगे (Peribit Coram Domino)।

है, एक ऐसा है, जो उनके अभिप्राय का भाव-मात्र भी नहीं छोड़ता, जिसके बिना कि वे असंगत हैं।

निम्नलिखित निषेध को वास्तव में असंगत से भी निकृष्टतर कह सकते हैं—

"Et ad omnem mortuum non ingreditur omnino; super patre quoque suo et matre non contaminabitur और वह किसी मृत व्यक्ति के पास न आवे, चाहे वह उसका पिता अथवा माता ही क्यों न हो; क्योंकि वह अशुद्ध हो जायगा।"

मैं भली भाँति जानता हूँ कि लोग कहेंगे कि बाइबिल को नहीं समझता। वे कहेंगे, उस सारी पुस्तक में ऐसे अलंकारात्मक अर्थ हैं, जिन तक मेरी पहुँच नहीं क्योंकि मेरे नेत्रों में श्रद्धा की ज्योति नहीं, ये रीति-रिवाज केवल आदर्श-स्वरूप हैं, और प्राचीन लेवियों के लिये आवश्यक ठहराई हुई यह शुचिता उस शुचिता का अलंकार-मात्र है, जो नवीन धर्म के पुरोहितों के लिये आवश्यक है।

मैं फ़ादर डी केरियर तथा दूसरों के मत को, और उनके शिष्यों के मत को भली भाँति जानता हूँ। मैं उनके अनुवाद करने और वचन को तोड़ने-मरोड़ने की पद्धति को भी जानता हूँ। अब वे नास्तिकों को यातना नहीं पहुँचा सकते।

हमसे यह मानने की आशा करना कि सारे रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों और जाति के जीवन के स्वभावों का ईश्वर ने एक ऐसे धर्म के चिह्न, रूप और भविष्य-कथन के तौर पर प्रत्यादेश किया था, जिसको भविष्य में प्रतिष्ठित करने का उसका संकल्प था, बड़ा ही असंगत होगा।

आह! महाशयगण, हम आपके विचारों को स्वीकार नहीं कर सकते; क्योंकि परमेश्वर कोई ऐसा अनाड़ी कारीगर नहीं, जिसके

पहले अपने धाम को तुम्हारा साफ़ करने की आवश्यकता हो। उस निगूढ़ उद्देश्य से, जिसे हम केवल अगले जन्म में ही जान सकेंगे, उसने हमें उत्पन्न करते समय हम पर अपनी दिव्य विभूति की एक चिनगारी फेंककर हमें एक अतीव श्रेष्ठ बुद्धि प्रदान की है—और विश्वसनीय मन अपने स्मरण को भुलाता नहीं।

अतएव इस इब्रानी ईश्वरीय प्रत्यादेश को छोड़ दो, जिसे बुद्धि कभी स्वीकार नहीं कर सकती; और विश्वास करो कि ईसा के श्रेष्ठ और मर्मस्पर्शी आचरण को प्राचीन समयों के ऋषियों द्वारा लौकिक आहार के रूप में छोड़े हुए गूढ़ विश्वासों और पूर्व विधियों का प्रयोजन नहीं।

मतवाद से उत्पन्न होनेवाली आपत्तियों पर मनु, वेद और [illegible] शास्त्रकार का मत

"जो बालक दो वर्ष का होने के पहले मरा है और जिसका चूड़ाकरण नहीं हुआ, उसको माता-पिता ले जाकर शुद्ध भूमि में गाड़ देवें, जलावें नहीं, माता-पिता तीन दिन तक अशौच करें।

"सहाध्यायी के मरने पर द्विज एक दिन तक अशुद्ध रहता है।

"जिन कन्याओं की सगाई हो चुकी है, पर अभी विवाह नहीं हुआ, उनके मरने पर मातृ-पक्ष के संबंधी तीन दिन में शुद्ध होते हैं। पितृ-पक्ष के संबंधी भी उसी प्रकार शुद्ध होते हैं; वे इन तीन दिनों में नित्य स्नान करें।

"आचार्य के मरने पर, उसके पास जानेवाले सभी लोग केवल तीन रातों के लिये ही अशुचि रहते हैं।

"राजा के मरने पर, यदि वह दिन में मरे, उसके पास जानेवाले सभी लोग दिन की ज्योति तक, और यदि रात को मरे, तो तारों के प्रकाश के रहने तक अशुचि रहें।"

मृतक को स्पर्श करनेवालों के लिये मरण के अशौच के नियमों का यही सार है। अब देखना चाहिए कि याजक किस बात से अशुद्ध होता है, और लोथ के स्पर्श से उसे किस प्रकार अपने को शुद्ध करना चाहिए।

वेद के अवतरण (व्यवस्थाएँ)—

जिस ब्राह्मण का उपनयन हो चुका है, और जिसे इस प्रकार यज्ञ कराने और वेदों की व्याख्या करने का अधिकार दिया गया है, उसे लोथ का स्पर्श करने से सब प्रकार बचना चाहिए; क्योंकि लोथ अशुचि कर देती है और ऋत्विज् का सदा पवित्र रहना आवश्यक है।

"वह अशुद्ध व्यक्ति को देखने-मात्र से अशुद्ध हो जाता है, और उसे पूर्व निर्दिष्ट स्नान के अनंतर, धीमे स्वर से अशौच को दूर कर देनेवाले मंत्रों का पाठ करना चाहिए।

"परंतु अपने माता-पिता की मृत्यु पर अंत्येष्टि-संस्कार कराने से

ब्राह्मण अशुद्ध नहीं होगा; क्योंकि सारे जगत् के स्वामी परमेश्वर ने कहा है—"जो अपने माता-पिता का इस जीवन में सम्मान करता है, और उनके मरण पर, जो ईश्वर में उनका जन्म है, ध्यान करता है, वह कभी भी अशुद्ध नहीं हो सकता।"

"यदि वह अपने भाइयों और अविवाहित बहनों का अन्त्येष्टि-संस्कार कराता है, तो वह संस्कार की समाप्ति तक अशुद्ध रहता है, और वह स्नान तथा ईश्वर-प्रार्थना द्वारा दूसरे सूर्योदय तक अपने को शुद्ध करे।

"अशुद्धता की अवस्था में वह देवालय में सर्वेश्वर का स्मरण अथवा यज्ञ के लिये कभी न जाय; क्योंकि उसका किया सब अशुद्ध होगा।

"यहाँ तक कि मृत्यु भी उसे अशुद्ध नहीं करती; क्योंकि द्विज महात्मा के लिये मृत्यु ब्रह्म की गोद में पुनर्जन्म है।"

रामसरियर (वेद-भाष्य)—

"लोथ के अशुद्ध स्पर्श से, और उन सारे पदार्थों को छूने से, जिनको धर्म ने अशुद्ध ठहराया है, शरीर अशुद्ध हो जाता है।

"आत्मा पाप से अशुद्ध होती है।

"शारीरिक अशौच के ये नियम उसने बनाए थे, जो केवल अपनी इच्छा की शक्ति से ही विद्यमान है, ताकि मनुष्य अपने भौतिक जीवन की रक्षा कर सके, और जल के साथ, जो सर्वश्रेष्ठ शोधक है, स्नान करके इसे स्वास्थ्य और शक्ति प्रदान करे।

"आत्मा के अशौच वेदों के अध्ययन, और पावन-यज्ञों और ईश्वर-प्रार्थनाओं आदि से दूर होते हैं।

"और, जैसा कि महर्षि मनु ने कहा है, ब्राह्मण सब सांसारिक वासनाओं को छोड़ देने से शुद्ध होता है।"

मिलापवाले तंबू में प्रवेश करने के पहले लेवियों को मदिरा-पान का निषेध—लैव्य व्यवस्था, अध्याय १०

"फिर यहोवह ने हारून से कहा कि जब-जब तू या तेरे पुत्र मिलापवाले तंबू में आवें, तब-तब तुम में से कोई न तो दाख-मधु पिए हो और न किसी प्रकार का मद्य, नहीं तो मर जाओगे। तुम्हारी पीढ़ी-पीढ़ी में यह विधि ठहरी रहे।

देवालय में प्रवेश करने के पहले ब्राह्मणों के लिये मदिरा का निषेध। वेद ('ब्राह्मणों' अर्थात् व्यवस्थाओं की पुस्तक से संग्रह)—

प्रायश्चित्त की बलि चढ़ाने के लिये देवालय में जगत्-स्वामी की विभूति के अभिमुख होने के पहले ऋत्विजों को मादक द्रव्यों और विषय-भोगों से निवृत्त होना चाहिए।

"मदिरा से उन्माद पैदा

"इसका कारण यह है कि तुम पवित्र-अपवित्र में और शुद्ध-अशुद्ध में अंतर कर सको।

"और इस्रायल-वंशियों को वे सब विधियाँ सिखा सको, जो मैंने उनको मूसा से सुनवा दी हैं।"

होता है, कर्तव्य छूट जाता है और प्रार्थना भ्रष्ट हो जाती है।

"मदिरा-पान के विरुद्ध गुरु के बंदों की ईश्वरीय आज्ञाओं का उल्लंघन न होना चाहिए।"

"यहाँ तक कि मृत्यु भी उसे अशुद्ध नहीं करती; क्योंकि द्विज महात्मा के लिये मृत्यु ब्रह्म की गोद में पुनर्जन्म है।"

रामसरियर (वेद-भाष्य)—

"लोथ के अशुद्ध स्पर्श से, और उन सारे पदार्थों को छूने से, जिनको धर्म ने अशुद्ध ठहराया है, शरीर अशुद्ध हो जाता है।

"आत्मा पाप से अशुद्ध होती है।

"शारीरिक अशौच के ये नियम उसने बनाए थे, जो केवल अपनी इच्छा की शक्ति से ही विद्यमान है, ताकि मनुष्य अपने भौतिक जीवन की रक्षा कर सके, और जल के साथ, जो सर्वश्रेष्ठ शोधक है, स्नान करके इसे स्वास्थ्य और शक्ति प्रदान करे।

"आत्मा के अशौच वेदों के अध्ययन, और पावन-यज्ञों और ईश्वर-प्रार्थनाओं आदि से दूर होते हैं।

"और, जैसा कि महर्षि मनु ने कहा है, ब्राह्मण सब सांसारिक वासनाओं को छोड़ देने से शुद्ध होता है।"

मिलापवाले तंबू में प्रवेश करने के पहले लेवियों को मदिरा-पान का निषेध—लैव्य व्यवस्था, अध्याय १०

"फिर यहोवह ने हारून से कहा कि जब-जब तू या तेरे पुत्र मिलापवाले तंबू में आवें, तब-तब तुम में से कोई न तो दाख-मधु पिए हो और न किसी प्रकार का मद्य, नहीं तो मर जाओगे। तुम्हारी पीढ़ी-पीढ़ी में यह विधि ठहरी रहे।

देवालय में प्रवेश करने के पहले ब्राह्मणों के लिये मदिरा का निषेध। वेद ('ब्राह्मणों' अर्थात् व्यवस्थाओं की पुस्तक से संग्रह)—

प्रायश्चित्त की बलि चढ़ाने के लिये देवालय में जगत्-स्वामी की विभूति के अभिमुख होने के पहले ऋत्विजों को मादक द्रव्यों और विषय-भोगों से निवृत्त होना चाहिए।

"मदिरा से उन्माद पैदा

इस पिछले निषेध को बाइबिल ने ग्रहण नहीं किया। पाप की शिक्षाएँ देने के अतिरिक्त यह तो नीति और अत्याचार के प्रश्नों में बहुत कम उलझती है।

वेद का यह अवतरण एक बार फिर इस बात को दिखलाता है कि इबरानी धर्म-पुस्तकें आदर्श की उच्चता और विचार की महत्ता में हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों से कितनी निकृष्ट हैं।

याजकों का विवाह—वे दोष जो याजकवर्ग से निकाल देते हैं—लैव्य व्यवस्था, अध्याय २१—

"याजक कुमारी से विवाह करे। वह विधवा से, अथवा, त्यागी हुई, अथवा भ्रष्ट अथवा वेश्या से विवाह न करे; किंतु वह अपने ही लोगों के बीच में की किसी कुआरी कन्या को ब्याहे।"

"वह अपने वर्ण के रुधिर को साधारण लोगों के रुधिर में न मिलावे; क्योंकि मैं उसको पवित्र करनेवाला यहोवह हूँ।"

"फिर यहोवह ने मूसा से कहा, हारून को मेरा यह वचन सुना कि तेरे वंश के और तेरी जाति के जिस व्यक्ति के शरीर में कोई दोष हो, वह अपने परमेश्वर को बलिदान न चढ़ावे।

पौराणिक संस्थाओं, और वेदों के अनुसार याजकों के विवाह—वेद (विधियों) से संग्रह—

ब्राह्मण विद्या की समाप्ति और समावर्तन हो चुकने के उपरांत एक निर्दोष ब्राह्मण-कुमारी से विवाह करे।

"वह विधवा से अथवा दुर्वृत्त अथवा अस्वस्थ कन्या से, या ऐसे कुल की लड़की से, जो वेदाध्ययन से विमुख हो, विवाह न करे।"

"जिसे वह अपनी पत्नी बनाने के लिये चुने, वह रुचिर और उत्तम शरीरवाली हो, उसकी गति विनीत और लज्जा-शील हो, उसका चेहरा कोमल और हँसता हुआ हो, उसके मुख का किसी ने चुंबन न किया हो; उसका कंठ-स्वर

हो, हंस और हाथी की चाल-वाली हो, जिसका शरीर सूक्ष्म लोमों से ढका हो, जिसके केश सूक्ष्म, दाँत छोटे, और अंग सुंदर और चारु हों।"

"जो कुल कर्मों (संस्कारों तथा वैदिक कर्मों) से हीन है, जिसमें नर-संतान उत्पन्न न होती हो, जिसमें वेद का अध्ययन नहीं है, जिसमें अशुद्ध करनेवाली व्याधियाँ हैं, उस कुल की कन्या से विवाह न करे।"

रामसरियर (टीकाएँ)—

"जो ब्राह्मण किसी ऐसी स्त्री से विवाह करता है, जो अक्षत नहीं है, विधवा है, या पति-परित्यक्ता है, अथवा जिसे लोग पवित्र नहीं कहते, उसे यज्ञ कराने की आज्ञा नहीं मिल सकती; क्योंकि वह अशुद्ध है और कोई भी वस्तु उसको उसके अशौच से मुक्त नहीं कर सकती।"

"महर्षि मनु कहते हैं कि न इतिहास में और न पुराण ही में यह कहीं लिखा है कि ब्राह्मण ने कभी, यहाँ तक कि बलात् भी, निचले वर्ण की कन्या से विवाह किया हो।

"वेद कहता है—ब्राह्मण ब्राह्मणी से विवाह करे।"

"इसलिये यह लिखा है कि ब्राह्मण नीच प्रभाव अथवा हीन वर्ण की स्त्री न ले।"

महर्षि मनु फिर कहते हैं—

"जो ब्राह्मण शूद्रा स्त्री से समागम करता है, वह स्वर्ग से निकाल दिया जायगा।

"जिस पुरुष के ओष्ट शूद्रा के अधरों से अपवित्र हो चुके हैं, और जिसने उसके अपवित्र श्वास को सूँघा है, धर्म उसके लिये किसी भी शुद्धि का विधान नहीं करता।"

वे दोष, जिनके कारण ब्राह्मण याजकों को यज्ञ कराने का अधिकार नहीं रहता—(रामसरियर की टीकाएँ)—

"जिस ब्राह्मण को कुष्ठ, श्लीपद, अथवा क्षयरोग आदि कोई अस्पृश्यत रोग हो, वह चढ़ावा चढ़ाने के लिये मंदिर में न जाय; क्योंकि वह अपवित्र है और परमेश्वर उसके नैवेद्य को स्वीकार नहीं करता।

"जब तक उसको रोग रहे, और उसके दस दिन उपरांत तक वह अशुद्ध रहे, और वह मंदिर के पवित्र तालाब में स्नान कर ले और शुद्धि के जल के तीन प्रोक्षणों से अपने को पवित्र करे।"

"यदि उसकी व्याधि असाध्य है, तो वह यज्ञ से सदा के लिये निकाल दिया जायगा; परंतु उसे चावल, मधु, घी, फल, और यज्ञार्थ मारे हुए पशुओं की बलि का भाग मिलेगा। क्योंकि मार्ग कंडु में कहा है कि जो ब्राह्मण असंस्कृत भोजन पर जीता है, वह अपने सभी अगले जन्मों में शापग्रस्त होता है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारत की धर्म-पुस्तकें और धर्म-संहित एक और मंदिर में केवल उन्हीं दुर्बल ब्राह्मणों को जाने से रोकते हैं, जिनको कोई इस का रोग हो, और वह भी केवल उनके नीरोग और शुद्ध हो जाने तक।

इसमें संदेह नहीं कि श्रद्धा के प्रकाश में उन विषादपूर्ण विचित्र बातों का रहस्य पाया जायगा, जो ग्रंथकार के विचार की संकीर्णता और क्षुद्र बुद्धि का इतना भारी प्रमाण प्रस्तुत करती हैं।

भिनगी आँख अथवा भद्दी नाक को धार्मिक अयोग्यता समझना कैसी विचित्र बात है!

मिसर के मूढ़ विश्वासों को सशपथ छोड़ देना और मोलोच-(Moloch) के अनुयायियों का उन्मूलन करना प्रयोजनीय था!

किंतु हमारे लिये इबरानी और हिंदू आचार-व्यवहारों के बीच की इन तुलनाओं से निवृत्त होने का यह अच्छा समय है, इसलिये नहीं कि हेतु का अभाव है, अथवा मूल वचनों से सहायता नहीं मिलती, प्रत्युत इसलिये कि इस ग्रंथ को, दूसरे आवश्यक विषयों को छोड़कर, इन बातों से लादना निरर्थक जान पड़ता है।

इसके अतिरिक्त, हमारे प्रतिपादित सिद्धांत का प्रमाण जो सामाजिक यहूदी-धर्म, वस्तुतः दूसरी सभी प्राचीन सभ्यताओं के सदृश ही, मिश्र के द्वारा पहुँचनेवाला हिंदू-उद्भव-मात्र है, हमें इतना पर्याप्त रूप से प्रतिष्ठित जान पड़ता है कि अब हम अपने कार्यक्रम के अधिक मनोरंजक भाग को हाथ में लेना ठीक समझते हैं।

इस ग्रंथ के प्रारंभिक भागों के साधारण पारायण के उपरांत, और ऐसे निर्णायक संपर्कों के होते, सारी प्राचीनता पर प्राक्कालीन पूर्वी समाजों के प्रभावों से इसलिये इनकार करना कि उन सादृश्यों का कारण केवल अंध-संयोग को ही ठहराया जाय, क्या प्रमाण से साफ़ इनकार करना नहीं?

परंतु हमारे विपक्षियों के पास इन सचाइयों और उनसे निकलनेवाले परिणामों को उलटाने के लिये केवल दो मार्ग ही रह जाते हैं।

पहला मार्ग यह है कि प्राचीन जातियों पर पड़नेवाले जिस प्रभाव का संबंध हमने भारत से ठहराया है, उसे मूसा और बाइबिल के ईश्वरीय ज्ञान से उत्पन्न हुआ बताया जाय।

दूसरा यह है कि हिंदुओं की धर्म-पुस्तकों की प्रामाणिकता में संदेह किया जाय, अथवा कम-से-कम उन्हें मूसा के पीछे की बनी हुई ठहराया जाय।

ये दोनों आपत्तियाँ, जिन्हें मैं पहले ही सुन चुका हूँ, देखने में ही भारी जान पड़ती हैं; परंतु उचित यही है कि उनकी परीक्षा की जाय। यद्यपि इस ग्रंथ के प्रारंभिक पृष्ठ उनको काटने के लिये लिखे गए थे, पर यह सिद्ध करना बाक़ी रहता है कि वे एक दार्शनिक और ऐतिहासिक काल-विसंवाद का परिणाम-मात्र हैं।

यह प्रश्न जब एक बार साफ़ हो गया, तब हिंदुओं की "सृष्टि-उत्पत्ति" के वे श्रेष्ठ ऐतिह्य और भी चमक उठेंगे, जिन पर हम पहुँचे हैं, और जिनको हम विशेष रूप से उन वाद-प्रतिवादों के अंधकार में छिपने से बचाने के उत्सुक हैं, जो केवल उनकी मनोरंजकता को ही घटाने का काम करेंगे।

आठवाँ अध्याय

प्राचीन जगत् पर बाइबिल के प्रभाव की असंभावना

कुछ कैथोलिक लेखकों ने सुगम चित्तोत्साह के साथ मूसा को प्राचीन समाजों का उपदेष्टा बनाने का यत्न किया है।

मैं समझता हूँ, विचारशील मनुष्य, जिन्होंने प्राचीनता में गहरी डुबकी लगाई है, इस मत के होंगे कि यह पक्ष इस सम्मान का पात्र नहीं कि इस पर विमर्श किया जाय; फिर भी ऐसे अभियोग से आपत्ति का आभास उत्पन्न हो सकता है।

इसलिये आओ हम देखें कि इसका मूल्य क्या है।

यह बात मेरी समझ में आ सकती है कि एक बड़ी जाति, रोमन-राज्य, विजय द्वारा अपनी व्यवस्थाओं के अधीन किए हुए लोगों पर अपना प्रभाव डाल सकती है।

यह बात मेरी समझ में आसकती है कि एक छोटी जाति, उदाहरणार्थ एथेंस के अधिवासी, साहित्यिक, दार्शनिक, नैतिक तथा औद्योगिक प्रतिभा के असाधारण विकास से, प्रगति के उस राज-पथ पर जो विज्ञ जगत् को उर्वर बनाता है, और किसी जातीयता का विचार नहीं करता, अगली पीढ़ियों के लिये आदर्श बन सकती है। पेरिक्लीस (Pericles) और ऑगस्टस (Augustus) के युग सभ्य-संसार के दृश्य से मिटाए ही जा सकते हैं।

क्या यहूदिया (Judea) इसी प्रकार के भूतकाल का दावा कर सकता है ?

उसके नाम के प्रभाव को दूर-दूर तक फैलानेवाली उसकी बड़ी-बड़ी विजय कहाँ हैं ?

इनके औद्योगिक, दार्शनिक और साहित्यिक स्मृति-स्तंभ कहाँ हैं ?

दासता की उपज, मिस्र के पतितों की संतान, इबरानी लोग चिर काल तक मरुभूमि में निष्कासितों के रूप में घूमने, और अपनी पड़ोसी जातियों द्वारा, जो न उनसे संधि करतीं और न अपने देशों में से उन्हें रास्ता ही देती थीं, निषिद्ध ठहराए जाने के उपरांत फ़िलिस्तीन (Palestine) की छोटी-छोटी उपजातियों को, क्षुधार्त नर-पशुओं के समूह के सदृश, जलाने, लूटने और मारने अंत को एक स्थान में बैठ गए ।

ये अमलक लोग (Amalekites) कौन हैं ? ये कनानी कौन हैं ? ये सिदानी कौन हैं ? ये एमोरी कौन हैं ? इत्यादि, इत्यादि ।

इनकी ऐसी विजयें !

लुटेरों की, व्यवसायशून्य चोरों की किसी पार्टी ने अपने विध्वंस के मार्ग को रुधिर से इतना कभी नहीं भरा । यह स्पष्ट है कि ये दौरात्म्य और अपहरण यहोवह के नाम से किए गए थे, जिन्हें आज भी अनेक लोग पर्याप्त हेतु समझते हैं ।......

जिनको इब्रानी गार्गन (Gorgon) ने जान बूझकर छोड़ दिया है।

सौभाग्य से संहार और दुष्टता के ये दृश्य यहूदिया की संकीर्ण सीमाओं के बाहर नहीं गए, और मिसर, असिरिया तथा बेबीलोन के प्राचीन स्वामी इन पागलों को, जो न कभी शांति से रह सकते और न अपने लूट-मार के स्वभाव को छोड़ सकते थे, दंडित करने के लिये कभी-कभी शस्त्र-ग्रहण करते रहते थे।

इसलिये प्राचीनता की जातियों के बीच दबी हुई, और अंत को रोमन-विजय में लीन हो जानेवाली, यह क्षुद्र जाति ऐसे उदाहरणों से महान् गौरव नहीं प्राप्त कर सकी।

यदि हम साहित्य, दर्शन, कला-कौशल और विज्ञान में उनकी उन्नति के परिमाण पर विचार करें, तो हमें यह स्वीकार करने को विवश होना पड़ता है (और जो हमारी भूल दिखलावेगा, उसे हम आशीर्वाद देंगे) कि हमें वहाँ अतीव घोर अंधकार और अत्यंत अगाध अविद्या के सिवा और कुछ भी नहीं मिलता।

संसार की किसी भी दूसरी जाति ने इनके समान थोड़ा काम, थोड़ा विचार और थोड़ा उत्पन्न नहीं किया।......

यद्यपि मिसर की निर्मित वस्तुएँ सौंदर्य और श्रेष्ठता में एथेंस की वस्तुओं के समान प्रशंसा की पात्र नहीं, तथापि उसके विशाल शिल्प के प्रकांड परिमाण के पीछे हम पागल-से हो रहे हैं।

समग्र पूर्व की कला की माता हिंदू-कला है, जो अपनी उच्चता और गौरव के लिये विख्यात है।

आधुनिक अन्वेषण ने बेबीलोन और ननवा की छिपी हुई पत्थर की प्रतिमाओं को खोदकर निकाला है।

यहूदिया के शिल्प-संबंधी खँडहर कौन-से हैं?

हमें इसका उत्तर मालूम है।

यहूदियों के पास कोई शिल्प-कला न थी। बाइबिल और यहोवा

को समर्पित मंदिर का वर्णन पढ़िए। यहूदियों की कोई कविता—कोई साहित्य न था। बाइबिल को पढ़िए।

यहूदियों के पास नैतिक और दार्शनिक कोई भी विद्या न थी। बाइबिल को पढ़िए।

जो कुछ है बाइबिल-ही-बाइबिल है। प्रत्येक चीज़ इसी पुस्तक में है।

अस्तु, मैं सरलता से कहता हूँ कि इससे मुझे संतोष नहीं होता, और यदि मुझे कुछ कहना आवश्यक ही है, तो मैं कहता हूँ कि अग्रजातें या व्यास के ग्रंथ के एक अत्यंत क्षुद्र पृष्ठ से, सोफोक्लीस (Sophocles) या यूरीपिडीज़ के अत्यंत सुगम करुणारस-प्रधान नाटक तथा शकुंतला के एक दृश्य से, फाईडियस (Phydias) की बनाई मूर्ति या दहुत (Dahoutx) की प्रतिमा की एक टूटी हुई भुजा से मैं कहीं अधिक शिक्षा ग्रहण कर सकता।

क्या तब हम साफ़ नहीं देखते कि इन इसरायलवंशियों को, जो दासता के कारण नर-पशु बन चुके थे, जो मरुस्थलों में अपने भ्रमणों के ऐतिह्यों को स्मरण रक्खे हुए थे, जो निष्फल और निरंकुश लेवी-धर्म द्वारा पीड़ित थे, इसके अतिरिक्त, जिनको पड़ोसी जातियाँ निरंतर दासता के बंधन में डालती रहती थीं, बड़ी-बड़ी बातों के लिये रुचि पैदा करने का विचार न था, और न उसके लिये समय था? इसलिये जब हम यहूदी सभ्यता की बात करते हैं, तब केवल एक शून्य शब्द का उच्चारण करते हैं।

सर्वशक्तिमान्, रक्षक, परम मंगलकारी, पुण्य और बल के पुंज परमेश्वर के एकत्व में विश्वास रखती थीं ; पशुओं की बलि, अन्न और रोटी के हव्य, जो यहूदी धर्म का एक बड़ा भाग हैं, वे दासों और अज्ञानियों के लिये समझती थीं।

यह सर्वथा स्पष्ट है कि इबरानियों ने केवल अपने नीच ऐतिह्यों को जारी रखने से बढ़कर और कुछ नहीं किया। उनसे प्राचीन समयों का आरंभिक भाव निकालना बड़ा ही असंगत होगा।

जिस समय ये दास मिसर से भागकर या निकाले जाकर मरु-स्थली में फिर रहे थे, उस समय क्या मिसरी और हिंदू-समाज अपनी पूर्णता को प्राप्त नहीं थे ?

वैदिक भारत चिरकाल से अपना अंतिम शब्द कह चुका था। उसकी प्रभा अभी फीकी पड़ने लगी थी।

मिसर याजकीय जुए को फेंककर अपने को राजों के चंगुल में डालने की तैयारी कर रहा था—यद्यपि वह अभी तक अपने तईं उनके चंगुल में डाल नहीं चुका था।

यहूदिया (Judea) संभवतः वे रीति-रिवाज, आचार-व्यवहार और मत दूसरों को कैसे सिखला सकता था, जिनको स्वयं उसने ठीक उस समय ग्रहण किया, जब कि इन रीति-रिवाजों, आचार-व्यवहारों और मतों को दूसरे लोग, जिनके पास ये पहले से ही थे, रूपांतरित और परिवर्तित कर रहे थे ? अपने अग्रगामियों को वह संभवतः ये कैसे सिखला सकता था ?

क्या इबरानी लोग प्राचीन जगत् में विशुद्ध ईश्वरकर्तृक शासन के बहुत ही पिछले प्रतिनिधि नहीं थे ? क्या वे अंतिम लोग नहीं थे, जिन्होंने याजकों और लेवियों के उन वर्गों को बनाए रक्खा, जो कि मिसर के पुरोहितों के नमूने पर, लोगों पर अत्यंत घोर कुसंस्कारों और रहस्यों द्वारा शासन करते थे, और उन राजों को भी गद्दी से

उतार डालने में संकोच नहीं करते थे, जिनको उनकी इच्छा का दास बनना स्वीकार न होता था ?

इस्राइल-वंशी प्राचीन जातियों में सबसे अधिक निकृष्ट थे। पड़ोसी जातियों ने उनकी नीच उत्पत्ति को कभी नहीं भुलाया, और इसलिये जब उन्हें दासों का प्रयोजन होता था तो वे जानती थीं कि यहूदिया की भूमि पर आक्रमण करके हम उन्हें प्राप्त कर सकती हैं।

इस बात को सिद्ध करने के लिये, जैसा कि हम अनेक बार कह चुके हैं कि बाइबिल कोई मौलिक पुस्तक नहीं, केवल भारतीय पारायण का प्रयोजन है। जिन रीति-रिवाजों का यह विधान करती है, उनमें से एक भी इसका अपना नहीं। वे सब मिस्र और इससे भी अधिक प्राचीन सभ्यता में पाए जाते हैं।

क्या कोई यह कह सकता है कि इस पुस्तक ने संसार में पशु-बलि, उदाहरणार्थ हव्य होम जारी किया ? इस बात को भूल जाना कि ये बलिदान, मूसा के इनका विधान करने के बहुत काल पहले, मिस्र, फारस और भारत में प्रचलित थे, इतिहास के मुँह पर झूठ बोलना होगा।

एशियावासियों में स्नान द्वारा शुद्ध करने की रीति इतनी पुरानी है, जितना कि उनका जगत् और इसके नवप्रवर्तक ढूँढना असंभव है।

किसी अपवित्र ठहराई हुई चीज़ को स्पर्श न करे; क्योंकि वह अपवित्र हो जायगा।" अपवित्र चीज़ों की, उन सब चीज़ों की जिनको अ-शौच के डर से छूने का उसे निषेध है, विशेष सूची कहाँ है?

यह बाइबिल में मौजूद नहीं। इसमें इधर-उधर पुरुष की, स्त्री की, और विशेष पशुओं की अशुचिताओं का उल्लेख है; किंतु उसका यह सारा कथन, दाएँ और बाएँ, खेदजनक पुनरुक्तियों की गड़बड़ से भरा पड़ा है, जिससे उस कल्पना को बाहर निकालना, जिसने इस नियम की आज्ञा दी, असंभव है।

इसके विपरीत हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों में हमें अशौच की सारी अवस्थाओं, उसको पैदा करनेवाले विषयों, उसके प्रायश्चित्त की रीतियों, और ऐसी व्यवस्थाओं को सुझानेवाली कल्पना की एक पूर्ण तथा विशेष सूची मिलती है।

तब इन दो में से कौन पहले का है?

क्या इन विषयों पर यह भारत का सत्ताहेतु उसका विस्तृत सिद्धांत है? क्या, इसके विपरीत, ये बाइबिल के वे खंड हैं, जो जल्दी में बिना किसी संबंध और क्रम के लिखे गए हैं, और जिनका समाधान केवल उन अधिक प्राचीन समाजों के पास लौट-कर जाने से ही हो सकता है, जो हमें उनकी कुंजी प्रदान करते हैं?

इसमें प्रश्न की कोई गुंजाइश नहीं।

क्या कोई कह सकता है कि परमात्मा के एकत्व की महान् कल्पना सबसे पहले बाइबिल ने ही प्रस्तुत की थी, इसके पहले कोई भी इसे रहस्यों और मूढ़-विश्वासों से अलग करने में समर्थ नहीं हुआ था?

इसका उत्तर हम यह देते हैं कि मूसा ने उस प्राथमिक कल्पना को, जो उसने मिस्र की देवोत्पत्ति से ली थी, केवल कुरूप बना दिया है, और उसका कोधी, रक्तप्रिय और जातियों का विध्वंसक यहोवा, उससे ऊँचा होना तो दूर रहा, प्राथमिक विश्वास का एक विपर्यय-मात्र है।

आपको शीघ्र ही मालूम हो जायगा कि जगन्नियंता परमेश्वर के विषय में भारत की ऐसी कल्पना न थी ।

मूसा के परमेश्वर की अपेक्षा मेरे मन में पुराने देवता जूपीटर के प्रति बहुत अधिक सम्मान है; क्योंकि यदि उसके दिए हुए कुछ उदाहरण विशुद्ध नीति के नहीं, तो कम-से-कम वह अपनी वेदी को नर-रक्त की धाराओं से तो मग्न नहीं करता ।

क्या यह कहा जा सकता है कि मूसा ने हमारे लिये मनुष्य की उत्पत्ति और जल-विप्लव के ऐतिह्य सुरक्षित रक्खे ?

हम यह सिद्ध करेंगे कि उसने उनको केवल हास्यजनक कल्पित कथाओं के अंधकार में ही छिपाने का काम किया है, और वास्तव में उसने जिस किसी चीज़ को छुआ है, उसे इसी प्रकार अस्तव्यस्त करने में कसर नहीं छोड़ी ।

नवाँ अध्याय

हिंदू-धर्म-ग्रंथों की मौलिकता

सब ओर से यही कहा जायगा—"यदि तुम हमसे अपनी पद्धति का स्वीकार कराना चाहते हो, तो हमारे सामने हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों की मौलिकता सिद्ध करो।"

कुछ लोग तो यह सुहितता से कहेंगे, और कई दूसरे जाल में फँसाने के लिये।

मैं व्याख्या करता हूँ।

यदि कोई योरपियन लेखक, चीनियों अथवा जापानियों को, ईवें-गलिस्टों (बाइबिल-लेखकों) की पुस्तकों से, मूसा और बाइबिल, ईसा और उसका जीवनोद्देश्य समझाने लगे, तो इन लोगों में से तार्किक यह उत्तर देने से न रुकेंगे—"यह सब बहुत अच्छा है, परंतु इन सब लोगों और उनकी कृतियों की मौलिकता हम पर सिद्ध कीजिए; क्योंकि हम यह स्वीकार करने के लिये विवश हैं कि हमने कभी उनका ज़िक्र तक नहीं सुना। यदि आप बुद्ध या कनफ़्यूशस के विषय में कहते, तो यह बिलकुल अलग बात थी।"

हमारा देश-बंधु क्या करेगा? केवल एक ही उदाहरण ले लीजिए, इसमें वह अबोध रूप से इस प्रकार अपने विचार प्रकट करेगा—

"विद्वान् जापानियो और विश्रुत चीनियो, आप लोग हमारे धर्म-नियमों की पुस्तक से सुपरिचित नहीं। इसलिये सुनिए, इसकी मौलिकता को सिद्ध करने से बढ़कर और कोई चीज़ सुगम नहीं।

यह चार भिन्न-भिन्न रचयिताओं की रची हुई है।

पहले संत मैथ्यू ने लिखा है—

"कृपया ठहर जाइए, और पहले इस मनुष्य का अस्तित्व सिद्ध कीजिए, फिर उसकी पुस्तक की ओर आइए।"

"बहुत अच्छा। संत योहन क्राइस्ट का चुना हुआ एक धीवर था।"—

"एक और का नाम! यदि आप योहन को क्राइस्ट द्वारा सिद्ध करते हैं, तो पहले क्राइस्ट को सिद्ध कीजिए; क्योंकि हमें उसके विषय में भी कुछ ज्ञान नहीं।"

"हाँ जी, महानुभाव, मैं आपकी निर्दोष बुद्धि के आगे सिर झुकाता हूँ। अब सुनिए। आगस्टस के राज्य के बयालीसवें वर्ष में, एक बालक, जिसके जन्म की भविष्यद्वाणी—"

जापानी भट बोल उठता है—"परंतु बात तो सदा यही रहती है। जिस आगस्टस की बात आप करते हैं, वह कौन है?"

"आप यह पूछना चाहते हैं कि आगस्टस कौन है? वह सीज़र का दत्तक पुत्र और उत्तराधिकारी—"

तब चीनी और जापानी क्या करेंगे ?

श्रद्धालु दल कहेगा—"आपका कथन सत्य है।"

जिन लोगों ने केवल अपना जाल फैला रक्खा है, वे अपने श्रोताओं की ओर मुँह करके कहेंगे—

"यह मनुष्य हमारे साथ केवल दिल्लगी कर रहा है। जो कुछ उसके मुख से निकल रहा है, वह सब झूठ है।"

इसलिये यह आशा न कीजिए कि मैं केवल यही कहूँगा—

"भृगुऋषि ने ही, जो पूर्व के बहुत ही पुराने युगों में हुआ है, सबसे पहले मनु के बिखरे हुए नियमों को इकट्ठा किया। मनु का पहले ही भारत में चिरकाल से भारी सम्मान चला आता था। भृगु के उपरांत नारद, जो जल-प्रलय से पहले था—" इत्यादि, इत्यादि।

अथवा इस प्रकार—

"ब्राह्मणों के अनुसार वेदों का प्रकाश कृतयुग (पहले युग), अर्थात् सृष्टि के प्रारंभ में हुआ था। इन धर्म-पुस्तकों पर पहला भाष्य भृगु के समकालीन पुण्यात्मा राजा भगीरथ के समय का है", इत्यादि, इत्यादि।

यह तो उसी जाल में फँसना होगा, जिसकी मैंने धज्जियाँ उड़ाई हैं, और इस पर विरोध मनुष्य विजय-ध्वनि करने से न रुक सकेंगे।

"छिः! छिः! तुम अपने भृगु, अपने नारद और अपने धर्मात्मा राजा भगीरथ को लेकर हमारे साथ दिल्लगी करते हो। ये लोग, जिनके नाम तुम प्रमाण के तौर पर लेते हो, कौन हैं?"

और, सारी गुप्त चालाकी प्रकट हो जायगी।

क्योंकि मैं अपने विपक्षियों की युक्तियों को मटियामेट कर देने के लिये उत्तर में, पत्र-संपादकों के ऐसे दो लेखों में, सारी प्राचीन सभ्यताओं के

इतिहास का प्रश्न (जिसके लिये अनेक पीढ़ियों के जीवन का प्रयोजन होगा) नहीं दे सकता । इसलिये, बिना इस बात को स्वीकार किए कि यदि इतने लोग प्राचीन समाजों के विषय में, जो हमसे सहस्रों वर्ष पूर्व इस धरातल पर हो गए हैं, अज्ञान में हैं, तो इसमें मेरा दोष नहीं—बिना इस बात को स्वीकार किए कि यदि मातृ-भाषा संस्कृत की ओर लौटने के बिना ही प्राकृत और वैदिक भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं, तो यह मेरा दोष नहीं—यदि प्राचीन इतिहास, मातृ इति-हास—अर्थात् सुदूर पूर्व के इतिहास के पास लौटने के बिना ही पढ़ाया जाता है, तो इसमें मेरा दोष नहीं । इस पुस्तक को दो ही की सेवा में पेश किया जायगा ।

हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों की मौलिकता के सामान्य प्रकार—अर्थात् स्पष्ट प्रमाण मैंने इस पुस्तक के पहले भाग में दे दिए हैं । जिस परीक्षा में मैं लगा हुआ हूँ इसका और कोई उद्देश्य न था । मैंने वे प्रमाण इतिहास और हिंदू-समाजों के विषय में अपनी खोजों में और उनके पीछे होनेवाली तुलनाओं में भी दिए हैं ।

न थे, जो हम फ़ारस, मिसर, यहूदिया, यूनान और रोम में इधर-उधर, दाएँ-बाएँ बिखरे हुए पाते हैं—वे रीति-रिवाज, जो अपने पूर्ण और अखंड रूप में एकमात्र भारत में ही थे।

और, यदि हम इन सबमें वह प्राक्कालीन भाषा, वह विस्मयोत्पादक भाषा और जोड़ दें, जिसने न केवल पूर्व के सारे वाक्संप्रदाय ही, प्रत्युत ग्रीक, लैटिन, स्लैव और जर्मनिक भाषाएँ भी बनाई हैं, तो हमें यह कहने का अधिकार हो जाता है कि उस मौलिकता के यहाँ प्रमाण देखिए, जिसका हम हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के लिये अभियोग करते हैं! यदि ढूँढ सकते हो तो, सारे संसार में, चाहे किसी भी विषय के क्यों न हों, इनसे बढ़कर हृदयग्राही और प्रत्यक्ष प्रमाण ढूँढ दिखाइए, विशेषतः सहस्रों राष्ट्रविप्लवों के विध्वंस-कार्य का मुक़ाबला करने, और उतने ही उत्तर-युगों के विनाश-कार्य से बच रहने के उपरांत।

दसवाँ अध्याय

डार्विन का अध्यात्मवाद

यह अध्याय छोटा है—इसमें केवल एक ही बात पर ध्यान दिया गया है—परंतु उन थोड़ी सी पंक्तियों से ही एक ग्रंथ उत्पन्न हो सकता है।

मुझे तो इस पुस्तक में एक भी विचार, एक भी पंक्ति, एक भी शब्द ऐसा नहीं, जिसमें आत्मा के अमरत्व की ओर बहुत ही हलका, बहुत ही दूर का और बहुत ही अस्पष्ट संकेत मिलता हो। मैंने इसकी प्रत्येक दृष्टि से बार-बार परीक्षा की है, परंतु फल कुछ नहीं हुआ।

लंपटता और प्रमाद के इस उन्मत्त आमोद-प्रमोद में आकाश को जानेवाली कोई भी पुकार हृदय को प्रफुल्लित नहीं करती, भावी जीवन की कोई भी आशाजनक रश्मि दिखाई नहीं देती। इसमें देवों के बलिदानों, घोर मूढ़-विश्वासों और परोपकार के नाम पर बहाई जानेवाली नर-रक्त की नदियों के सिवा और कुछ भी नहीं!

ग्यारहवाँ अध्याय

बाइबिल की नीति

एक सादा-सा उदाहरण पर्याप्त है।

गणना, अध्याय ३१—

"और मूसा सेना के प्रधान अफ़सरों, पंचायतों और योधशताधीशों से, जो लड़ाई से वापस आए थे, क्रुद्ध हो गया।

"उसने उनसे कहा, तुमने स्त्रियों और बच्चों को क्यों जीता छोड़ा?

"इसलिये बाल-बच्चों में से प्रत्येक लड़के को और सभी विवाहिता स्त्रियों को मार डालो।

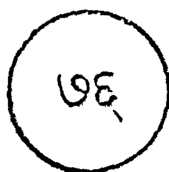
"परंतु युवती लड़कियों को, जो अभी कुमारी हैं, तुम अपने लिये रख लो।"

गंगा-पुस्तकमाला का छिहत्तरवाँ ग्रंथ

भारत में बाइबिल

[द्वितीय भाग]





भारत में बाइबिल

[द्वितीय भाग]

संपादक

श्रीहरिशंकर [illegible]

([illegible])

गंगा-पुस्तकमाला का छिहत्तरवाँ पुष्प

भारत में बाइबिल

[द्वितीय भाग]

अनुवादक
संतराम बी० ए०

हिंदू-धर्म ही यहूदी और ईसाई धर्मों
का मूल स्रोत है

प्रकाशक
गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
२६-३०, अमीनाबाद-पार्क
लखनऊ

प्रथमावृत्ति

[सजिल्द १।)] सं० १९८८ वि० [सादी १)]

प्रकाशक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

लखनऊ

मुद्रक

श्रीदुलारेलाल भार्गव

अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस

लखनऊ

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ



मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

विषय-सूची

तीसरा खंड

अध्याय	विषय	पृष्ठ

तीसरा खंड

पहला अध्याय

हिंदू-मत के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति—कुमारी देवांगी (Devanaguy) और जेज़ीउस कृष्ण (Jezeus Christna)

ज़ीउस और ब्रह्मा—विश्वोत्पत्ति-संबंधी धार्मिक विश्वास

जिन लोगों ने पहलेपहल हिंदुओं और उनके धर्म-ग्रन्थों के विषय में लेखनी चलाई है, वे उस देश की भाषा को न जानने, पहले ही से बने-बनाए विचार रखने और बुरा उपदेश मिलने के कारण, केवल मूढ़ विश्वासों और विधियों की, जो उन्हें हास्यजनक प्रतीत होती थीं, क़लई खोलने में ही लगे रहे हैं। उन्होंने इस बात पर विचार नहीं किया कि धर्म-बुद्धि को किसी हद तक अलग रखकर पूजन के रूप, लोगों के चरित्र और कल्पना के अनुसार, भिन्न भिन्न होते हैं।

rnouf), डसग्रंगस (Desgranges) और दूसरे] आए, जिन्होंने विस्मित जगत् के सामने वह प्राचीन भाषा रखकर उसे चकाचौंध कर दिया, जिससे प्राचीन और आधुनिक भाषा-पद्धतियाँ निकली हैं।

हम इस प्राचीन देश के विषय में जो गौर जाति का जन्म-स्थान था, सचाई का अनुभव करने लगे; किंतु उस समय तक हम केवल उन अनेक दार्शनिक ग्रंथों और उज्ज्वल कविताओं के खंडों का अनुवाद करने में ही लगे हुए थे, जो भारत ने हमें दिए थे; दार्शनिक विद्या और कविता की धार्मिक पुराण-कथाओं को जन्म देनेवाली प्राथमिक कल्पना को पहचानने का हमने कुछ भी यत्न नहीं किया था।

प्राचीन हिंदू-धर्म केवल एक ही परमेश्वर को मानता है, और वेद उसका लक्षण इस प्रकार करता है—"वह स्वयंभू है, और सबमें है; क्योंकि सब कुछ उसमें है।"

वेद पर टीका करते हुए मनु कहता है—

"वह स्वयं प्रकट हुआ है, उसे केवल आत्मा ही ग्रहण कर सकता है, वह इंद्रियों के ज्ञान से परे है, वह सूक्ष्म अव्यक्त, सनातन, सब भूतों का आत्मा और अचिंत्य है।"

महाभारत भी निम्न-लिखित लक्षण देता है—

"परमात्मा एक, शाश्वत, निराकार, निरवयव, अनंत, सर्वव्यापक और सर्वशक्तिमान् है; उसने अनंत शून्य से द्युलोक और पृथ्वीलोक उत्पन्न किए, और उन्हें असीम अंतरिक्ष में ढकेल दिया; वह दिव्य प्रवर्तक, उत्पन्न करनेवाला परम आत्मा, सबका निमित्त और समवायि कारण है।"

अब वेद का कथन सुनिए, जो अपनी काव्यमयी कड़क में कहता है—

"गंगा जो बहती है—यह परमात्मा है; सागर जो डकारता है—यह परमात्मा है; पवन जो चलता है—यह वही है; बादल जो गरजता

है और बिजली जो चमकती है—यह वही है। जिस प्रकार अनादि काल से यह विश्व ब्रह्मरूप आत्मा में स्थित था, उसी प्रकार आज जो कुछ है, वह उसका रूप (तद्भूत) है।"

मैं नहीं समझता कि अनेक युगों के बीत जाने पर भी, जिनमें हम लोकाचार से मानव-मन का विकास करते हैं, इन कल्पनाओं में कोई नई बात बढ़ाई जा सकी है।

हिंदू-धर्म-पंडित परमेश्वर को दो भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में मानते हैं—

पहली में वह कूटस्थ (सुप्त) अर्थात् अव्यक्त है, और उसकी शक्ति कार्योन्मुख नहीं।

इसी के विषय में पुराण पवित्र पुस्तकों पर अपनी टीकाओं में कहते हैं—

यह नारायण नाम बाइबिल के साथ शब्द-रचना के विलक्षण साम्य का एक और उदाहरण—उस पुस्तक की हिंदू-उत्पत्ति के शेष सारे प्रमाणों में जोड़ने के लिये एक और प्रमाण—उपस्थित करता है।

पहले हम इस शब्द की व्याख्या करते हैं; किंतु देखिए मनुजी (पहला अध्याय) क्या कहते हैं—

"जलों का नाम नारा है; क्योंकि वे नर (संस्कृत में दिव्य आत्मा) से उत्पन्न हुए हैं, ये जल नर के चलने (संस्कृत में अयन) का पहला स्थल थे। इसी से उस (ब्रह्म) का नाम नारायण, अर्थात् वह जो जलों पर चलता है, हुआ।"

बाइबिल, उत्पत्ति, अध्याय १—

"Terra autem erat inanis et vacua

"Et spiritus Dei ferebatur super aquas."

"पृथ्वी अनिर्मित और नंगी थी।

"और परमेश्वर की आत्मा पानियों के ऊपर चलती थी।"

नर=दिव्य आत्मा; अयन=जो अपने को (जलों पर) चलाता है; Spiritus Dei=दिव्य आत्मा; Ferabatur super aquas=पानियों के ऊपर उठाया हुआ था।

क्या यह पर्याप्त रूप से स्पष्ट और पर्याप्त रूप से प्रत्यक्ष नहीं है? क्या पुस्तक अथवा बाइबिल नक़ल करती हुई इससे अधिक स्पष्ट रीति से पकड़ी जा सकती है?

बचाव की केवल एक ही रीति रह जाती है, वह यह कि संस्कृत से इनकार किया जाय। कोई भी बात असंभव नहीं, परंतु हम देखेंगे।

दूसरी अवस्था में ज़ीउस (Zeus) ब्रह्म, अर्थात् व्यक्त, जागरित और सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर हो जाता है।

फिर देखिए, पुराण कहते हैं—

"ब्रह्म ने तुम से जागरित होकर प्रकृति को उत्पन्न नहीं किया; क्योंकि उसके गुण और सार तो सदा से उसके अमर विचार में विद्यमान थे; वह उसका विकास करने तथा प्रलय को रोकने के लिये आया।

"हे परमेश्वर, जगत्पिता, जब तेरी शक्ति कार्योन्मुख होती है, तो उस समय तेरा क्या रूप होता है, तेरी इच्छाशक्ति, तेरी उत्पादक-शक्ति के काम हमारी विषय-ग्रहण-शक्ति को आश्चर्यान्वित करते हैं; सागर में उच्च तरंगें उठती और बैठ जाती हैं, मेघ गरजता और चुप हो जाता है, पवन आर्तनाद करता और शान्त हो जाता है, मनुष्य जन्म लेता और मर जाता है, सब कहीं हम तेरे हाथ का अनुभव करते हैं, जो रचा करता और नाश करता है, परन्तु हम न उसे समझ सकते और न देख ही सकते हैं।"

ह्रास होता है, और हरएक पदार्थ प्रलय-अवस्था में लौट आता है; लोकों की एकतानता की समाप्ति हो जाती है—वायु, पृथ्वी, जल, प्रकाश एकाकार होकर नष्ट हो जाते हैं; यह प्रलय है, अर्थात् सब भूतों का विनाश है; परंतु एक बीज है, जो विश्राम द्वारा अपने आपको पवित्र करता है, यहाँ तक कि वह दिन आता है, जब ब्रह्म फिर उसका विकास करता है, उसमें जीवन अर्थात् उत्पादक शक्ति डालता है, लोकों को उत्पन्न करता है, जो थोड़ा-थोड़ा करके बनने, बढ़ने और चेष्टा करने लगते हैं, फिर उन्हें नए विद्रावण के सम्मुखीन होना पड़ता है, उसके बाद फिर वही विश्राम और वही पुनरुदय होता है।

प्रकृति अस्तित्व से मुरझा जाती और वृद्धा होकर मर जाती है। परमात्मा उसके सहज नियम का केवल उद्धार करता और उसमें जीवन डालता है।

कितनी आश्चर्यजनक सचाई है! हिंदुओं का ईश्वरीय ज्ञान ही, जो लोकों की मंद और क्रमिक रचना बताता है, सब ईश्वरीय ज्ञानों में एक ऐसा है, जिसकी कल्पनाएँ आधुनिक विज्ञान के साथ पूर्ण रूप से मिलती हैं!

यदि मूसा को मिस्र के याजकों के मेल-मिलाप से इन श्रेष्ठ ऐतिह्यों का ज्ञान था, तो हमें मानना पड़ेगा कि वह इनको इतना उच्च, और उस दास-जाति की बुद्धि की पहुँच से, जिसे उसे मार्ग दिखाना था, इतना ऊपर समझता था कि उसने उन्हें इनका ज्ञान कराना आवश्यक नहीं समझा। या शायद, जैसा कि हम पहले ही अनुमान कर चुके हैं, उसे स्वयं भी मिस्र में इनका अधूरा ही ज्ञान प्राप्त हुआ था।

लोकों के पुनर्निर्माण तथा संयोग की अवधि, वेद के अनुसार, ब्रह्मा का एक सारा दिन है, और वह दिन मनुष्यों के तेंतालीस लाख बीस सहस्र वर्षों के बराबर होता है।

प्रलय ब्रह्मा की एक पूरी रात तक रहता है, और यह रात भी मनुष्यों के इतने ही वर्षों के बराबर होती है, जितने के बराबर ब्रह्मा का एक दिन।

लोकों के विनाश तथा पुनर्निर्माण पर पवित्र पुस्तकों के सिद्धांतों ने अनेक दार्शनिक पद्धतियों को जन्म दिया है; पर इस समय इनके अध्ययन के लिये न हमारे पास अवकाश है और न रुचि ही। हम इन दो सिद्धांतों का वर्णन करना ही पर्याप्त समझते हैं, जिनके कारण इस विषय पर भारत के धर्म-पंडितों का सदा मतभेद रहा है।

एक सिद्धांत तो यह मानता है कि प्रकृतिकर्त्ता ईश्वर जब उस सृष्टि को एक बार [illegible] बना देता है, तब फिर रूपांतर का कार्य, परमेश्वर के प्रत्यक्ष रूप से भाग लेने के बिना ही, उसके बनाए हुए सनातन और अविकार्य नियमों के अनुसार, अपने-आप होता रहता है।

अपना विकाश करती है, मूल-तत्त्व बनते हैं, अस्तित्व के सारे विकार संपन्न होते हैं; प्रकृति और लोकों का भी इसी प्रकार अंत और ब्रह्मा की रात्रि में लोप हो जाता है।

परंतु, उनके अनुसार, परमात्मा इन सब विकारों का परम नियम है, और उस नियम में उसका भाव है। इन सब रूपांतरों का वही अधिष्ठाता है। यदि वह कभी एक क्षण के लिये भी अपने आदेशों को रोक ले, अपने आश्रय को उठा ले, तो इन सब विकारों की गति एकदम बंद हो जायगी।

ब्राह्मण याजकों को तब तक दीक्षा नहीं मिल सकती, जब तक वे पहले अपने को इस शेषोक्त पद्धति का, जो पहली की अपेक्षा बहुत अधिक धार्मिक भाववाली समझी जाती है, पक्षपाती न प्रकट करें।

मूसा की पुस्तक, जो केवल स्थूल वृत्त से ही भरी पड़ी है, पूर्वी धर्म-विद्या की आधार-भूत इन कल्पनाओं पर कुछ भी ध्यान नहीं देती। आधुनिक धर्मों ने उन्हें अपने रहस्यों की सूची में स्थान दिया है।

दूसरा अध्याय

ब्रह्मा का जागना—देवताओं की रचना—उनका विद्रोह—

पराजित देवता राक्षस नाम से नरक में [illegible]

हम कह चुके हैं कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन, सभी धर्मों की आधारभूत सभी धार्मिक पुराण-कथाएँ [illegible] द्वारा भारत से निकली थीं। और, वेद की यह कथा, जिसको ईसाई-धर्म ने ज्यों-का-त्यों ले लिया है और यह नहीं बतलाया कि इसे किस स्रोत से लिया है, निस्संदेह पाठकों के लिये दिलचस्पी से खाली न होगी।

जब ब्रह्मा की रात समाप्त हो गई, तो संसार को पैदा करने और उसको पेड़ों और पशुओं से ढकने के पहले, सब प्राणियों के स्वामी ने आकाश में दो टुकड़े करके उनमें उन प्राणियों को रखने का निश्चय किया, जो स्वयं उनमें से निकले थे, और जिनको वह अपने [illegible] और अपनी शक्ति का कुछ अंश दे सकता था।

अपना विकाश करती है, मूल-तत्त्व बनते हैं, अस्तित्व के सारे विकार संपन्न होते हैं; प्रकृति और लोकों का भी इसी प्रकार अंत और ब्रह्मा की रात्रि में लोप हो जाता है।

परंतु, उनके अनुसार, परमात्मा इन सब विकारों का परम नियम है, और उस नियम में उसका भाव है। इन सब रूपांतरों का वही अधिष्ठाता है। यदि वह कभी एक क्षण के लिये भी अपने आदेशों को रोक ले, अपने आश्रय को उठा ले, तो इन सब विकारों की गति एकदम बंद हो जायगी।

ब्राह्मण याजकों को तब तक दीक्षा नहीं मिल सकती, जब तक वे पहले अपने को इस शेषोक्त पद्धति का, जो पहली की अपेक्षा बहुत अधिक धार्मिक भाववाली समझी जाती है, पक्षपाती न प्रकट करें।

मूसा की पुस्तक, जो केवल स्थूल वृत्त से ही भरी पड़ी है, पूर्वी धर्म-विद्या की आधार-भूत इन कल्पनाओं पर कुछ भी ध्यान नहीं देती। आधुनिक धर्मों ने उन्हें अपने रहस्यों की सूची में स्थान दिया है।



दूसरा अध्याय

ब्रह्मा का जागना—देवतों की रचना—उनका विद्रोह—
पराजित देवता राक्षस नाम से नरक में डाले गए हैं

हम कह चुके हैं कि क्या प्राचीन और क्या अर्वाचीन, सभी धर्मों की आधारभूत सभी धार्मिक पुराण-कथाएँ स्वदेश-त्यागियों द्वारा भारत से निकली थीं। और, वेद की यह कथा, जिसको ईसाई-धर्म ने ज्यों-का-त्यों ले लिया है और यह नहीं बताया कि इसे किस स्रोत से लिया है, निस्संदेह पाठकों के लिये दिलचस्पी से ख़ाली न होगी।

जब ब्रह्मा की रात समाप्त हो गई, तो संसार की सृष्टि करने और इसको पेड़ों और पशुओं से ढकने के पहले, सब भूतों के स्वामी ने आकाश के दो टुकड़े करके उनमें उन प्राणियों को बसाने का निश्चय किया, जो स्वयं उसमें से निकले थे, और जिनको वह अपने कुछ गुण और अपनी शक्ति का कुछ अंश दे सकता था।

और परमेश्वर ने ज्यों ही कहा—"मेरी इच्छा है कि आकाशों में गौण आत्माएँ बसें, जो मेरी आज्ञाओं का पालन और मेरी महिमा को सिद्ध करेंगी, त्यों ही उसके विचार से देवता उत्पन्न हो गए, और शीघ्रता से उसके सिंहासन के गिर्द इकट्ठे हो गए।"

ये आत्माएँ शक्ति और पूर्णता के धर्मसत्ता-संबंधी क्रम में उत्पन्न की गई थीं, इसलिये परमेश्वर ने प्रत्येक के लिये निवास-स्थान नियत करने में भी उसी नियम का अनुकरण किया; उसने सबसे पूर्ण देवतों को अपने निकटतम स्वर्गों में और दूसरों को अधिक दूर के स्वर्गों में रक्खा।

परंतु परमेश्वर के आज्ञा देते ही स्वर्ग में एक प्रचंड झगड़ा उत्पन्न

हो गया। गौण आत्माओं ने, जिन्हें अतीव दूरस्थ स्वर्गों में स्थान मिले थे, जाने से इनकार कर दिया, और वासुकि को, जिसने उनको सबसे पहले विद्रोह के लिये उत्तेजित किया था, अपना नेता बनाकर, उन्होंने अधिक संपन्न देवतों पर, उनको मिला हुआ दाय छीनने के लिये, आक्रमण किया।

देवतों ने इंद्र के झंडे के नीचे जमा होकर बड़ी वीरता से इस आघात को सहन किया, और ब्रह्मा के सामने युद्ध आरंभ हुआ; पर उसने इसको रोकने का कुछ भी यत्न नहीं किया।

वासुकि के इंद्र द्वारा पराजित होने पर उसके सारे साथी भयभीत होकर उसको छोड़ गए, और सबने कहा कि हम ब्रह्मा की इच्छा के अधीन होने के लिये तैयार हैं; परंतु उसने, उनके आज्ञाभंग से चिढ़कर, उनका पीछा करके उन्हें स्वर्ग से निकाल दिया, और उनके लिये पृथ्वी और दूसरे लोकों का समान रूप से निषेध करके केवल नरक को ही उनके लिये रहने का स्थान ठहराया। उसने उनका नाम राक्षस अर्थात् आक्रोशित रक्खा।

तब से ये सारे निशाचर उत्पन्न हुए, जो राक्षस, नाग, सर्प, पिशाच और असुर के नाम से हिंदू-कविता में कार्य करते हैं। इस कविता से प्रकट होता है कि ये मनुष्यों के यज्ञों और तपों में सदा विघ्न डालते रहते हैं, जिससे मनुष्यों को अपनी सहायता के लिये देवतों और पुण्यात्माओं को बुलाना पड़ता है।

बस, देवदूताधिष्ठाता मेकाईल की कल्पित कथा भी यहीं से निकली है! भारत में इस उपाख्यान को देखकर मुझे कुछ भी आश्चर्य नहीं हुआ।

इस प्रकार के उपदेवतों की सृष्टि करना, जिन्होंने शून्य से बाहर आते ही दिव्य अधिकार का विरोध आरंभ कर दिया, और जो परमेश्वर के सामने ही गर्व तथा उसकी शक्ति की बराबरी करने की

आकांक्षा द्वारा प्रोत्साहित होकर युद्ध में प्रवृत्त हो गए, मैं चिरकाल से परम सत्ता के लिये अयोग्य समझता था।

भारत और उससे प्राप्त की हुई पुराण-कथाओं को, जिनसे शेष सब निकली हैं, समझने के पहले मुझे मालूम था कि सर्वप्राचीन देवमालाओं ने पहले रचे हुए भूतों के स्रष्टा के विरुद्ध इस विद्रोह को स्वीकार किया है, और पृथ्वी पर पाप के भाव के आने का कारण उन्होंने इसी प्रकार सिद्ध किया है।

पाप और पुण्य की उत्पत्ति और प्रकृति पर इन दोनों नियमों के प्रभाव की व्याख्या करने के सिवा यूनान के ओलिंपस में, जूपीटर के विरुद्ध टाईटनों (Titans) के युद्ध करने का और कोई भी तात्पर्य न था।

केवल यूनानी देवमाला ही, जो एशिया के द्वारा भारत से ली गई थी—और इस कारण प्राक्कालीन विश्वासों और वेदों से अनभिज्ञ थी, काव्यमय उपाख्यानों की, जिन्होंने प्राचीन कविता को अत्यंत छोटे-छोटे भागों में बाँट दिया था, प्रवृत्ति-मात्र थी। इसके विपरीत ईसाई धर्म ने पूर्वीय कल्पना-शक्ति द्वारा गढ़ी हुई अत्युक्तियों से शून्य प्राथमिक ऐतिह्य को मिस्र में उपलब्ध किया।

परंतु, भारत की उपेक्षा करके भी, हम कह सकते हैं कि इबरानी और ईसाई धर्म-पुस्तकों में किसी भी सचाई का प्रकाश नहीं किया गया; वास्तव में इसका क्या अर्थ है, चाहे आप ईश्वर के विरुद्ध विद्रोह करनेवालों को टाईटन कह दें, चाहे फ़रिश्ते? इससे केवल शब्दों के विषय में ही विवाद खड़ा हो सकता है, नियम और कल्पना एक ही है।

अपने में पाप का अस्तित्व देखकर, जो दुर्भाग्यवश बहुत अधिक-बार पुण्य पर विजय लाभ करता था, प्राथमिक मनुष्यों ने इसकी व्याख्या करने की भी चेष्टा की होगी। और, इसका संबंध परमेश्वर से जोड़ने में असमर्थ होकर, क्योंकि वह पुण्यमय माना गया है,

वे इसकी उत्पत्ति का कारण उसकी भद्रता द्वारा रचे हुए पहले भूत के स्वयं ईश्वर के विरुद्ध युद्ध करने को ही ठहरा सके होंगे।

चाहे कुछ हो, केवल भारत से ही वह प्राचीन ऐतिह्य आया था, जिसको हम ज़रदुश्त के नुस्कों (Nosks) में ज्यों-का-त्यों पाते हैं, और यह संसार को विभक्त करनेवाले पुण्य और पाप-रूपी दो नियमों के समाधान के लिये केवल गढ़ा हुआ जान पड़ता है।

स्वतंत्र विचार, अपने विश्वास को सरल और शुद्ध करने के लिये, इस पुराण-कथा को, परमेश्वर के माहात्म्य, उसके भविष्यद्ज्ञान और उसकी प्रधान शक्ति के असंगत होने के कारण, अवश्य त्याग देगा।

कल्पना और कविता का जितना अधिक रूप अस्वीकार करेंगे, स्रष्टा के विषय में हमारी बुद्धि उतनी ही अधिक उसके योग्य होती जायगी।

पाप का मूल हमें मनुष्य-प्रकृति की निर्बलता के सिवा और कहीं नहीं ढूँढना चाहिए। यहीं रहस्य का आरंभ होता है, यहीं हम परमेश्वर के प्रयोजनों को समझने में असमर्थ हैं। परंतु असंगत कहानियों द्वारा उनका समाधान करने, अथवा विपरीत अत्युक्ति द्वारा उनका खंडन करने की जगह हमें चाहिए कि इससे निवृत्त हो जायँ और उस जगदीश्वर की अक्षय भद्रता पर भरोसा रक्खें, जिसने अपनी कल्पनाओं में हमें दीक्षित करना उचित नहीं समझा।

उसने हमें जो प्रकाश दिया है, यदि वह निर्बल है, तो विवेक को निधड़क होकर उसका अनुगमन करने दो! इन उपदेवतों और भविष्यद्वक्ताओं ने हमें कोई भी चीज़ ऐसी नहीं दी, कोई भी बात ऐसी नहीं सिखाई, जो उस प्रकाश ने पहले न दी या न सिखाई हो। यदि उनका हम पर कोई ऋण है, तो वह यह कि उन्होंने तथा उनके उत्तराधिकारियों ने स्वाधीन इच्छा और विवेक के मुख्य सिद्धांतों को बुझाने का यत्न किया है।

तीसरा अध्याय

हिंदुओं की त्रिमूर्ति—उसका निर्दिष्ट कार्य—पृथ्वी की रचना

जब प्रलय की अवधि समाप्त हो गई, तब, मनु के वचनों में, ब्रह्म अपनी पवित्रता की कीर्ति से प्रकाशमान, अपनी प्रभा को बखेरता हुआ प्रकट हुआ। उसने अँधेरे को हटाया और निज ध्यान में अपने शरीर से भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवों को रचने की इच्छा करते हुए प्रकृति को विकसित किया।

भगवद्गीता कहती है—

"जब घोर रात्रि, जिसमें सब भूतों का बीज ब्रह्म के हृदय में अपने को पुनः उत्पन्न कर रहा था, दूर हो गई, तब अनंत शून्य में असीम प्रकाश फैल गया, और दिव्य-आत्मा अपनी विभूति के पूर्ण बल और शक्ति में प्रकट हुई। उसको देखते ही प्रलय एक ऐसे फल-दायक गर्भ में परिवर्तित हो गया, जो लोकों, प्रकाशमान नक्षत्रों, जलों, वनस्पतियों, जीवधारियों और मनुष्यों को जन्म देनेवाला था।"

जिस समय अव्यक्त और सुप्त (जिसकी रचना-शक्ति कार्योन्मुख नहीं) ज़ीउस (Zeus) ब्रह्म अर्थात् कार्य करनेवाला और उत्पन्न करनेवाला परमेश्वर बन जाता है, उस समय उसके काम में सहायता देने के लिये, उसके एकत्व पर किसी प्रकार का प्रभाव न डालते हुए, उसमें तीन व्यक्ति अपने को प्रकट करते हैं। ब्राह्मण और पवित्र पुस्तकें कहती हैं कि यह दिव्य त्रिमूर्ति तत्त्व में अविभाज्य है, और कर्म में अविभाज्य है। कैसा दुर्ज्ञेय रहस्य है! उसको मनुष्य तभी समझ सकेगा, जब उसकी आत्मा को ब्रह्मात्मा के साथ युक्त होने, ईश्वर की गोद में चले जाने की आज्ञा मिल जाती है।

यह त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं।

ब्रह्मा निर्मायक गुण है, और संस्कृत में इसे पिता की संज्ञा दी गई है।

विष्णु रक्षक और पालनकर्ता है। वह परमेश्वर का पुत्र है, उस कृष्ण के रूप में देवभूत शब्द है, जो पृथ्वी पर मनुष्य-मात्र के परित्राण के लिये, भविष्यद्वक्ता और गड़रिये (?) के रूप में आया, और कार्य संपन्न हो जाने पर एक आकस्मिक और अकीर्तिकर (?) मृत्यु से मर गया।

अंत को शिव अथवा वर अर्थात् दिव्य आत्मा वह गुण हैं, जो विनाश और पुनर्निर्माण का, प्रकृति की प्रतिमा का अधिष्ठाता है। इसमें उर्वरता और जीवन के, विद्रावण और मृत्यु के गुण संयुक्त हैं। एक शब्द में, यह वह आत्मा है जो अस्तित्व और प्रलय की उस सनातन गति को नियम में रखता है, जो सब भूतों की व्यवस्था है।

इस त्रिमूर्ति का कार्य सृष्टि के पहले काम के साथ आरंभ होता है—ब्रह्मा उत्पन्न करता है, विष्णु रक्षण अथवा पालन करता है, और शिव रूपांतर करता है।

परमात्मा अपने इन तीन गुणों के साथ तब तक कार्य करता रहता है, जब तक कि प्रकृति का नया प्रलय नहीं होता, वह उस दिन तक कार्य को जारी रखता है जब कि सारे अस्तित्व का अंत हो जाता है, और सब कुछ पुनः भूत प्रलय की अवस्था को प्राप्त हो जाता है।

वेद के ईश्वरीय ज्ञान के अनुसार, प्रकृति केवल एक ही नियम के अधीन है, जो सब शरीरों, सब वनस्पतियों और सब जीवों में समान कार्य करता है।

इस प्रकार भूमि में एक बीज डाला जाता है, उससे एक अंकुर विकसित होता है, और वह बढ़कर एक पौदा अथवा वृक्ष बन जाता है। इस पौदे अथवा वृक्ष का उत्कर्ष, अपकर्ष, मृत्यु और पतन

होता है। परंतु इस पौदे अथवा वृक्ष ने एक बीज पैदा कर दिया है। यह बीज अपनी बारी पर उस मौलिक नमूने को दुबारा उत्पन्न करता है, जो लोप हो गया है। यही हालत पशुओं और सारे भूतों की है।

इसी प्रकार प्रकृति, परमात्मा द्वारा उर्वर किए हुए बीज से उत्पन्न होकर, निश्चित नियमों द्वारा अपना विकास करती है, और पौदों, वृक्षों तथा प्राणधारियों के सदृश विद्रावण में इसका अंत हो जाता है। परंतु एक बीज रह जाता है, जो पुनः जन्म-ग्रहण करता, परम शक्ति की महान् आत्मा के हृदय में नए सिरे से अंकुरित होता और विश्व को एक बार फिर जन्म देता है।

इस अवधि में त्रिमूर्ति का एकत्व में लोप हो जाता है, मानो उसका कोई अस्तित्व नहीं; क्योंकि कर्म में वह अव्यक्त रहती है।

इस हिंदू-विश्वास में जो बात मुझे लुभाती है, वह यह कि यह सबको पीछे से एकता में लीन कर देता और सारे न्याय-संगत कार्यों को स्वीकार करता है। अहो, प्रकृति का यह महान् नियम अपनी सरलता की दृष्टि से कितना उच्च है!

मैं समझता हूँ, हम चाहे सारे धर्मों सारे दार्शनिक पद्धतियों को छान डालें, हमें ऐसे युक्तिसंगत विचार, जो प्रकृति के नियमों और जगदीश्वर की महिमा के इतने अनुरूप हों, कहीं न मिलेंगे।

अब हम ब्रह्म की प्रधान आज्ञा के अधीन इस त्रिमूर्ति के कार्य की परीक्षा करते हैं।

प्रकृति से ब्रह्म ने पहले आकाश, वायु, पृथ्वी और जल उत्पन्न किया।

तब उसने महान् आत्मा से जीवन अर्थात् मनस् निकाला, जो पौदों, जीवों और मनुष्यों, सबमें है। फिर अहंकार, अर्थात् व्यष्टि मन और उसकी सारी शक्तियाँ। केवल मनुष्य के लिये ही विशेष रूप से ये निकाली गईं।

तब अहंकार के कार्य को पहचानने के लिये उसने न्याय और अन्याय की प्रतिष्ठा की, और इस व्यष्टि मन को, जिसे उन विवेकशील भूतों पर शासन करता था, जिनको परमेश्वर अभी अपने शरीर से उत्पन्न करने ही वाला था, विचार-शक्ति दी।

उसके पश्चात्, परमेश्वर ने पौदे, वृक्ष, और प्राणधारी उत्पन्न किए। और, जब, पवित्र पुस्तकों के अनुसार, सारी सृष्टि प्रेम तथा कृतज्ञता का एक सुहावना गीत थी तब ब्रह्म ने अपने विशुद्धतम अंश से पुरुष और स्त्री को बनाया। इतना कर चुकने पर उसने विश्राम किया और अपने कार्य की प्रशंसा की।

संक्षिप्त मनुस्मृति में, जिसे ब्राह्मणों ने अपनी नव-प्रतिष्ठित पद्धति के अनुकूल बनाने के लिये बिगाड़ दिया है, वेद की-सी स्पष्टता और उदारता नहीं। फिर भी हम कह सकते हैं कि इन विषयों पर निम्न-लिखित वचन, अधूरे और भक्तिहीन होने पर भी, प्राक्कालीन सिद्धांत की प्रतिध्वनि-मात्र अवश्य हैं—

"जब वह देव जागता है, तब यह जगत् चेष्टा करने लगता है—जब वह शांतात्मा होकर सो जाता है, तब सारा विश्व विलीन हो जाता है।

"जब वह प्रशांत निद्रा में सो जाता है, तब वे जीवधारी, जिनकी प्रकृति काम करने की है, अपने कर्मों से निवृत्त होते हैं, और मन स्थिलि को प्राप्त होता है।

"और जब वे एक साथ उस महान् आत्मा में प्रलीन होते हैं, तब यह सब भूतों का आत्मा शांत होकर सुख से सोता है।

"प्राथमिक अंधकार में प्रवेश करने के उपरांत यह (जीव) चिरकाल तक इंद्रियों सहित रहता है, और अपना काम नहीं करता, फिर शरीर को छोड़ता है।

"जब सूक्ष्म मात्राओंवाला होकर (सूक्ष्म शरीर से) युक्त हुआ

चर अचर बीज में प्रवेश करता है, तब नवीन शरीर को धारण करता है।

"इस प्रकार वह अविनाशी सोने और जागने से इस सब चर और अचर को लगातार जिलाता और मारता है।"

रक्षक होने से विष्णु दृश्य रूप धारण करता है, अवतार लेता है, और जब-जब मनुष्य आदि धर्म को छोड़ देते हैं, तब वह उन्हें उसकी ओर लाने के लिये पृथ्वी पर प्रकट होता है।

ईश्वरीय अवतार में हिंदुओं के इस विश्वास का, कम-से-कम, कई दूसरों से बढ़कर, यह तर्कसंगत पक्ष तो है कि इसमें यह कल्पना कर ली जाती है कि परमेश्वर पृथ्वी पर उस समय प्रकट होता है, जब मनुष्यों के दोष और प्रमाद उसकी उपस्थिति को आवश्यक कर देते हैं।

एकत्व में त्रिमूर्ति, जिसको मूसा ने अस्वीकार कर दिया था, पीछे से ईसाई धर्म का आधार बन गई। यह निर्विवाद है कि उसे इसने भारत से प्राप्त किया था। उचित स्थल पर हमारे दिए हुए उपयुक्त प्रमाण इस मत की प्रतिष्ठा करेंगे।



चौथा अध्याय

मनुष्य की रचना—आदिम (संस्कृत में, प्रथम पुरुष)—हेवा (संस्कृत में, वह, जो जीवन को पूर्ण बनाती है)—लंका-द्वीप उनका निवास-स्थान ठहराया गया है—आदिम का किया मौलिक अपराध—उसके प्रेम के कारण उसकी स्त्री उसका अनुकरण करती है—आदिम की निराशा—हेवा उसे समाश्वास देती है, और परमेश्वर से प्रार्थना करती है—ब्रह्मा की क्षमा—एक परित्राता की प्रतिज्ञा

दक्षिण-भारत और लंका-द्वीप में घूमिए; जहाँ ऐतिह्य अपने विशुद्ध रूप में सुरक्षित है, टूटी-फूटी तृण-कुटी में जाकर हिंदू से अथवा मंदिर में जाकर ब्राह्मण से पूछिए; सभी आपको मनुष्य की रचना की वही कथा सुनावेंगे, जो अब हम आपको वेद से सुनाते हैं। भगवद्गीता में कृष्ण यही कथा थोड़े-से शब्दों में अपने शिष्य और सच्चे सहाय अर्जुन को सुनाते हैं, और प्रायः उसी तरह से सुनाते हैं जिस प्रकार कि यह पवित्र पुस्तकों में है।

उलटाए हुए अल्पविराम-चिह्नों (एन्वर्टेड कामा) के बीच के वचन मूल-वचनों का अनुवाद-मात्र हैं।

पृथ्वी पुष्पों से ढक रही थी, पेड़ फलों से झुक रहे थे, मैदानों पर और पवन में सहस्रों जीव कलोलें करते फिर रहे थे, भीमकाय वनों की छाया के नीचे सफ़ेद हाथी सुख-पूर्वक विचरते थे, तब ब्रह्मा ने देखा कि मनुष्य को रचने का, इस घर को बसाने का समय आ गया है।

उसने महान् आत्मा से, पवित्र तत्त्व से जीवन का एक बीज निकाला,

और उसके साथ उन दो व्यक्तियों को सजीव किया, जिनको उसने पौदों और पशुओं के सदृश, संतानोत्पत्ति के लिये, स्त्री और पुरुष बनाया था; उसने उनको अहंकार और वाणी दी, जिससे वे उस समय तक उसके रचे हुए सारे भूतों से श्रेष्ठ, परंतु देवतों और परमेश्वर से निकृष्ट बन गए।

उसने पुरुष को बल, रूप और गौरव दिया, और उसका नाम आदिम (संस्कृत में, प्रथम पुरुष) रक्खा।

स्त्री को सुचारुता, सौम्यता और सुंदरता मिली, और उसका नाम हेवा (Hera) [संस्कृत में, जो जीवन को पूर्ण बनाती है] रक्खा गया।

इसलिये, आदिम को एक साथी देकर, परमात्मा ने उसे प्रदान किए हुए जीवन को पूर्ण बना दिया, और इस प्रकार उन अवस्थाओं को स्थापित करके, जिनमें मनुष्य-समाज का जन्म होनेवाला था, उसने पृथ्वी और आकाश में स्त्री और पुरुष की समानता की घोषणा की।

यह वह दिव्य नियम है, जिसे प्राचीन और अर्वाचीन व्यवस्थापनों ने थोड़ा-बहुत अन्यथा ग्रहण किया था, और जिसका केवल भारत ने, पुरोहितों के विनाशक प्रभाव के नीचे, पौराणिक क्रांति पर, परित्याग किया था।

तब परमेश्वर ने आदिम और उसकी स्त्री हेवा को प्राचीनों का प्राक्तन तपोवन, लंका द्वीप, रहने के लिये दिया। यह अपने जलवायु, अपनी उपज और अपने उज्ज्वल तरु-गुल्मादि के कारण ऐहिक स्वर्ग, मनुष्य-जाति का जन्म-स्थान, बनने के भली भाँति उपयुक्त था।

अब तक यह भारतीय समुद्रों का सबसे प्यारा मोती है।

उसने कहा—"जाओ, संगम करके ऐसे प्राणी उत्पन्न करो, जो

तुम्हारे मेरे पास लौट आने के उपरांत युगयुगांतर तक पृथ्वी पर तुम्हारी सजीव प्रतिमाएँ रहेंगी। मुझ सर्वेश्वर ने तुमको इसलिये उत्पन्न किया है कि तुम जीवन-भर मेरा पूजन करते रहो। जिनकी मुझमें भक्ति होगी, वे सब भूतों का अंत हो जाने पर मेरे आनंद के भागी बनेंगे। अपनी संतानों को शिक्षा दो कि वे मुझे न भूलें; क्योंकि जब तक वे मेरा नाम लेते रहेंगे, मैं उनके साथ रहूँगा।"

तब उसने आदिम और हेवा के लिये लंका-परित्याग का निषेध किया, और इन शब्दों में कहा—

"तुम्हारे जीवन का उद्देश्य केवल यही है कि तुम इस समृद्धिशाली द्वीप को, जहाँ मैंने तुम्हारे सुख और आराम की सारी सामग्री इकट्ठी कर दी है, बसाओ, और भावी संतान के हृदयों में मेरी पूजा का भाव उत्पन्न करो। ... पृथ्वी का शेष भाग अभी वासयोग्य नहीं; यदि बाद को तुम्हारी संतान की संख्या इतनी बढ़ जाय कि इस बस्ती में न समा सके, तो उन्हें चाहिए कि यज्ञ करके मुझसे पूछें, मैं उन्हें अपनी इच्छा बता दूँगा।"

इतना कहकर वह अंतर्द्धान हो गया।

"आदिम ने तब अपनी युवती स्त्री को संबोधन किया ... ... जो उसके सम्मुख सीधी खड़ी अलबेलेपन से मुसकिरा रही थी *।

* * *

"उसका आलिंगन करके उसने मुँह में हौले-हौले हेवा का नाम लेते हुए उसका प्रथम बार प्रेम-पूर्वक मुख-चुंबन किया ... ... मुख का चूमा जाना था कि स्त्री ने हौले से कहा—आदिम!... ...

"रात हो गई थी। वृक्षों पर पक्षी चुपचाप थे। परमेश्वर संतुष्ट था; क्योंकि स्त्री-पुरुष के समागम के पहले प्रेम की उत्पत्ति हो चुकी थी।

---

* यहाँ कुछ एक वाक्य ऐसे हैं, जिनका छोड़ देना ही अच्छा है, यद्यपि वे बाइबिल के अनेक वाक्यों की अपेक्षा बहुत कम आपत्तिजनक हैं।

"इस प्रकार ब्रह्म का यह संकल्प था कि अपने भूतों को यह शिक्षा दे कि प्रेम के बिना स्त्री और पुरुष का समागम व्यभिचार-मात्र, और उसके नियम तथा प्रकृति के विपरीत है।

"कुछ समय तक आदिम और हेवा पूर्ण सुख से रहते रहे—उनकी शांति को भंग करने के लिये कोई भी व्यथा प्रकट नहीं हुई; उन्हें केवल हाथ बढ़ाकर अपने इर्द-गिर्द के पेड़ों से अतीव स्वादिष्ट फल तोड़ने और तनिक झुककर अत्युत्तम प्रकार का चावल इकट्ठा करने की ही आवश्यकता थी।

"परंतु एक दिन उन पर एक अनिश्चित-सी अशांति छाने लगी—उनके सुख और ब्रह्म के कार्य की मत्सरता से राक्षसों के राजा ने उनमें व्यग्रता-जनक लालसाएँ उत्पन्न कर दीं। आदिम ने अपनी स्त्री से कहा—'आओ, हम इस द्वीप में घूमें और देखें कि इससे बढ़कर सुंदर कोई और स्थान मिलता है या नहीं।'

"हेवा पति के पीछे-पीछे चली; निर्मल झरनों के किनारे और सूर्य की किरणों से उनकी रक्षा करनेवाले भीमकाय बड़ के पेड़ों के नीचे विश्राम करते हुए वे दिनों और महीनों चलते रहे। ... ... परंतु ज्यों ही वे आगे बढ़े, स्त्री को विचित्र डर और अव्याख्येय त्रास ने आ घेरा। वह बोली—'आदिम! बस अब आगे न चलिए। ऐसा जान पड़ता है, हम परमेश्वर की आज्ञा का उल्लंघन कर रहे हैं। जो जगह उसने हमारे निवास के लिये नियत की थी, क्या हम उसे छोड़ तो नहीं आए हैं?'

"आदिम ने कहा—'डरो मत, यह वह भयानक और वास के लिये अयोग्य देश नहीं, जिसके विषय में उसने हमसे कहा था।' और वे चलते गए।

"अंत को वे द्वीप की सीमा पर पहुँचे। यहाँ उन्होंने समुद्र की एक स्निग्ध और संकीर्ण शाखा देखी, जिसके परे उन्हें एक विस्तीर्ण

तथा व्यक्त रूप से असीम देश देख पड़ा। यह समुद्र की छाती से उठनेवाले संकीर्ण तथा प्रस्तरमय मार्ग द्वारा उनके द्वीप के साथ संयुक्त था।

"दोनों पर्यटक चकित रह गए; उनके सामने का प्रदेश विशाल वृक्षों से आच्छादित था, और सहस्रों वर्णों के पक्षी उनके पत्तों में उड़ते फिरते थे।

"आदिम बोला—'देखो, वे कैसी सुंदर वस्तुएँ हैं! उन पेड़ों में कैसे उत्तम फल लगते होंगे! चलो, उन्हें खाकर देखें, और यदि वह देश इससे अच्छा हो, तो हम वहीं बस जायँगे।'

"काँपती हुई हेवा ने आदिम से प्रार्थना की कि 'देखना, कोई ऐसी बात न कर बैठना, जो परमेश्वर को रुष्ट करनेवाली हो। क्या हम यहाँ आराम में नहीं? क्या यहाँ हमें निर्मल जल और स्वादिष्ठ फल प्राप्त नहीं? तो फिर और चीज़ें क्यों ढूँढते हो?'

"आदिम ने उत्तर दिया—'तुम्हारा कथन सत्य है, परंतु हम वापस आ जायँगे; यह जो अज्ञात देश सामने दिखाई दे रहा है, इसका अवलोकन कर लेने से क्या हानि हो सकती है?'

"चट्टानों पर पहुँचकर हेवा काँपती हुई पीछे चली।

"तब स्त्री को कंधों पर बिठाकर वह उस स्थल को पार करने लगा, जो उसे उसकी इच्छित वस्तु से अलग कर रहा था।

"परंतु ज्यों ही उन्होंने समुद्र-तट को स्पर्श किया, वृक्ष, पुष्प, फल, पक्षी इत्यादि सब पदार्थ, जो उन्होंने सामने के किनारे से देखे थे, एक क्षण में भीषण महारव के साथ अंतर्द्धान हो गए; जिन चट्टानों के द्वारा उन्होंने समुद्र पार किया था, वे जल-मग्न हो गईं, और ईश्वरीय रोष द्वारा विनष्ट हुए सेतु के स्थान को दिखलाने के लिये केवल थोड़ी-सी नोकदार चोटियाँ ही उपरिस्थल पर रह गईं।"

वे चट्टानें जो भारत-सागर में लंका और भारत के पूर्वीय सिरे के

बीच हैं, अभी तक 'पुलम् आदिम', अर्थात् आदम का पुल, नाम से प्रसिद्ध है। चीन और भारत को जानेवाले जहाज़ मालद्वीप को नाँघने पर भारतीय तट की जो नोक सबसे पहले देखते हैं, वह एक श्यामल शिखर है, जो प्रायः मेघों से ढका रहता है, और सागर की छाती से निकलकर बहुत ऊँचा उठा हुआ है। ऐतिह्य के अनुसार, इस पर्वत के चरण से ही पहले मनुष्य ने महाद्वीप के तट के लिये प्रस्थान किया था।

बहुत प्राचीन समय से इस चोटी का नाम आदिम की चोटी चला आया है, और आधुनिक भूगोल अब भी इसका वर्णन इसी नाम से करता है।

अब हम इस निक्षिप्त वाक्य को समाप्त कर अपने मूल-वचन को लेते हैं।

"जो तरु-गुल्मादि उन्होंने दूर पर से देखे थे, वह केवल मायिक मरीचिका थी, जिसे राक्षसों के राजा ने उनसे आज्ञा-भंग कराने के लिये प्रलोभन बनाया था।

"आदिम रोता हुआ नंगी बालू पर गिर पड़ा; परंतु हेवा ने उसका आलिंगन करके कहा—'निराश मत हूजिए; चलो जगत् के रचयिता से क्षमा-याचना करें।'

"और ज्यों ही उसके मुख से ये शब्द निकले, यह आकाश-वाणी हुई—'हे स्त्री, तूने केवल पति-प्रेम के कारण ही पाप किया है। मैंने ही तुझे उससे प्रेम करने की आज्ञा दी थी। तू मुझसे निराश नहीं हुई। मैं तुझे और तेरे निमित्त उसे भी क्षमा करता हूँ! परंतु तुम्हारे आनंद के लिये जो सौख्य-धाम मैंने बनाया था, वहाँ तुम अब वापस नहीं जा सकते। तुम्हारे द्वारा मेरी आज्ञाओं का पालन न होने से पाप की आत्मा ने पृथ्वी पर अधिकार प्राप्त कर लिया है। तुम्हारे अपराध के कारण तुम्हारी संतान को परिश्रम करना और दुःख

झेलना पड़ेगा। वह भ्रष्ट होकर मुझे भूल जायगी। परंतु मैं विष्णु को भेजूँगा, जो स्त्री के गर्भ से अवतार लेगा, और लोगों के दुःखों को हलका करने के लिये मुझसे प्रार्थना करके सबके लिये दूसरे जन्म में आशा और निष्कृति के उपाय लावेगा।'

"वे समाश्वासन पाकर उठ बैठे; परंतु बाद को पृथ्वी से अपनी उपजीविका प्राप्त करने के लिये उन्हें सदा क्लेशदायक परिश्रम करना पड़ा।" (रामसरियर, वेदों के मूल-वचन तथा भाष्य)

आहा! यह हिंदू उपाख्यान कैसा उज्ज्वल, कैसा तर्क-संगत, कैसा सरल और कैसा सुंदर है!

परित्राता कृष्ण हेवा को पुरस्कार देने के लिये स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होगा; क्योंकि हेवा ने परमेश्वर की आशा नहीं छोड़ी थी, और न उसमें अपराध की प्रथम बुद्धि ही थी। वह तो उस पुरुष के प्रति प्रेम रखने के कारण, जिस पर प्रेम करने की परमेश्वर ने उसे आज्ञा दी थी, एक सहाय-मात्र थी।

यह सुंदर और आश्वासन-दायक है।

यहाँ सच्ची हेवा का दर्शन होता है, और हम समझते हैं कि बाद को उसकी पुत्रियों में से कोई एक परित्राता की जननी बन सकती है।

इबरानी "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक का अनाड़ी रचयिता किस कारण इस पाठ को ज्यों-का-त्यों लिख नहीं सका?

क्या मूसा ने स्त्री के सिर पर मूल-पाप का भार भूल से थोपा है या जान-बूझकर?

हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं कि इबरानी व्यवस्थापक ने पूर्व के प्राचीन ऐतिह्य को जान-बूझकर, और उस समय के लोकाचार के डर से इस प्रकार झुठलाया है। अगले अध्याय में हमारे इस सिद्धांत का पक्षपोषण मिलेगा।

(किंतु हम उपाख्यान को क्या समझें ?)

चाहे यह कितना ही प्रलोभक क्यों न प्रतीत हो, परंतु युक्ति, क्या हिंदू और क्या ईसाई, दोनों धर्मों में समान रूप से इसका खंडन करती है।

हम परमेश्वर में ऐसी निर्बलता नहीं मान सकते कि उसने हमारे आदि माता-पिता के एक साधारण-से दोष के लिये सारी निरपराध मनुष्य-जाति को पाप और दुःख से दंडित किया।

यह ऐतिह्य किसी प्रयोजन के लिये गढ़ा गया था—

मनुष्यों की आद्य जातियों ने उन सब विपत्तियों का अनुभव करके जो उन्हें सहन करनी पड़ती थीं, अपनी निर्बलता को जानकर, अपनी प्रकृति को अच्छे और बुरे सहज ज्ञानों का बना हुआ देखकर, अपने बनानेवाले परमेश्वर को शाप देने के स्थान में अपनी दुःखी अवस्था का कारण प्राक्कालीन अपराध को मानना अच्छा समझा। जो मूल-पाप हम इस मर्त्यलोक की सभी जातियों के, यहाँ तक कि आफ्रिका और ओशीनिया की असभ्य जातियों के भी, सभी धर्म-विश्वासों में पाते हैं, उसका कारण यही है।

और भी हो सकता है कि यह शायद भूतल के प्राचीन अधिवासियों के उस युग के शांत और सुखी जीवन का अभिज्ञान-मात्र हो, जब कि पृथ्वी, जन-संख्या कम होने के कारण, निर्वाह के लिये सभी प्रयोजनीय पदार्थ, विना परिश्रम के, प्रचुर परिमाण में प्रदान किया करती थी।



पाँचवाँ अध्याय

किस कारण मूसा स्त्री को आदिम पाप का आरंभक ठहराता है?—
वेदों की स्त्री तथा बाइबिल की स्त्रियाँ

वैदिक काल में भारत में स्त्री का सम्मान प्रायः पूजा की सीमा तक पहुँचा हुआ था, यह एक ऐसी सचाई है जिसकी योरप में, जब हम अंतिम पूर्व पर स्त्री के माहात्म्य का अस्वीकार करने और उसे केवल विषयभोग और चुपचाप वश्यता का साधन बना रखने का दोष लगाते हैं, तब हमें बहुत कम शंका होती है।

जो बात प्राचीन जातियों के विषय में सत्य थी, वह प्राचीन भारत के विषय में सत्य न थी, और ईसा के श्रेष्ठ उद्योग में स्त्री को केवल वही खोई हुई सामाजिक प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त हो सकी, जिसका वह मनुष्य-समाज के आद्यतम युगों में उपभोग कर चुकी थी।

यह बात भली भाँति समझ लेनी चाहिए कि याजकीय प्रभाव और पौराणिक अवसाद ने ही, पूर्व की प्राक्कालीन अवस्था को परिवर्तित करके, स्त्री को अधीनता की दशा में गिरा दिया था, और यह वश-वर्तिता अभी तक हमारी सामाजिक पद्धति से पूर्ण रीति से दूर नहीं हुई—

भारत की पवित्र पुस्तकों से दैवयोग से लिए हुए इन सूत्रों का पाठ कीजिए—

"पुरुष ओज है—स्त्री कांति है; पुरुष शासन करनेवाला विवेक है, परंतु स्त्री संयम में रखनेवाली बुद्धि है; इनमें से एक दूसरे के बिना नहीं रह सकता, इसीलिये परमेश्वर ने इन दोनों को एक ही प्रयोजन के लिये उत्पन्न किया है।

"पुरुष स्त्री के बिना अधूरा है, और जो पुरुष पूर्ण युवावस्था को प्राप्त होकर भी विवाह नहीं करता, उसके माथे पर कलंक का टीका लगना चाहिए।

"जो स्त्रियों से घृणा करता है, वह अपनी माता से घृणा करता है।

"जिसे स्त्री शाप देती है, उसे परमेश्वर शाप देता है।

"स्त्री के आँसू उन पर आकाश की अग्नि गिराते हैं, जिनके दुःख से वे अश्रु गिरते हैं।

"जो पुरुष स्त्री के दुःखों पर हँसता है, वह विपद्ग्रस्त होता है, परमेश्वर उसकी प्रार्थना पर हँसता है।

"स्त्रियों के गीत परमेश्वर के कानों को मधुर प्रतीत होते हैं; पुरुष यदि चाहते हैं कि उनकी प्रार्थनाएँ सुनी जायँ, तो उन्हें स्त्रियों के बिना परमेश्वर का कीर्तन न करना चाहिए।

"पुरोहित जब फलों के लिये, फूलों के लिये, परिवारवर्ग के लिये और जगत् के लिये यज्ञ करे, तो स्त्रियों को वेदी पर धूप जलाने की आज्ञा दे।

"जो लोग दीर्घायु के अभिलाषी हैं, उन्हें चाहिए कि अनुग्रह-पूर्वक स्त्रियों की रक्षा करें और उपहारों से उन्हें संतुष्ट रक्खें।

"स्त्री की प्रार्थना पर ही जगत्-रचयिता ने पुरुष को क्षमा किया था; जो पुरुष इस बात को भूल जाता है, वह आक्रोशित ठहरता है।

"सती स्त्री को शुद्धि का प्रयोजन नहीं; क्योंकि वह कभी, यहाँ तक कि अपवित्र वस्तु के स्पर्श से भी, अपवित्र नहीं होती।

"जो पुरुष उस दुःख को भूल जाता है, जो उसकी उत्पत्ति के समय उसकी माता को सहन करना पड़ा था, वह अगले तीन जन्मों में लगातार उल्लू की योनि में जाता है।

"स्त्रियों को दुःख देने और उनकी निर्बलता से लाभ उठाकर

उनके पैतृक धन को छीन लेने से बढ़कर कुत्सित अपराध और कोई नहीं।

"बहन को उसका भाग देते समय प्रत्येक भाई को चाहिए कि अपने भाग में से उसमें कुछ और डाल दे, और उसे अपने रेवड़ की सर्वोत्तम बछिया, अपनी उपज का सर्वविशुद्ध कुंकुम और अपनी डिबिया की सबसे सुंदर मणि दे।

"स्त्री घर की निगरानी करती है, और गृह-देवता उसकी उपस्थिति में प्रसन्न रहते हैं। खेत में उससे कभी काम न कराना चाहिए।

"स्त्री पुरुष के लिये विपत्ति में समाश्वासन देनेवाली और उसकी क्लांति को दूर करनेवाली हो।"

इन उदाहरणों में प्रकट किए हुए भाव अलग-अलग पड़े हुए नहीं, या केवल एक ही पुस्तक में नहीं पाए जाते; सभी प्राचीन पुस्तकें स्त्री के प्रति वैसे ही स्नेह और वैसे ही सम्मान से भरी पड़ी हैं। मनु का संक्षेप, जो ब्राह्मणों ने प्रभुता के अपने निज के विचारों के समर्थन के लिये बनाया है, यद्यपि स्त्री को अधिक अधीन और अधिक अस्पष्ट स्थिति में रखता है, फिर भी अनेक अवस्थाओं में अपने को उन प्राचीन नियमों की प्रतिध्वनि बनाने से नहीं बच सका, जो इतनी जल्दी भूल न गए होंगे।

वास्तव में हम पहले ही इस पुस्तक से एक वचन उद्धृत कर चुके हैं। हम समझते हैं, उसी का यहाँ दुबारा लिखना अनुचित न होगा—

"जो पिता, भाई, पति और देवर अपना कल्याण चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि स्त्रियों का मान करें और उन्हें भूषित करें।

"जहाँ कुलीन स्त्रियाँ शोक में रहती हैं, वह कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, और जहाँ उनसे प्रेम होता है, उनका सम्मान

होता है और उनसे कोमल व्यवहार किया जाता है, वहाँ परिवार हर प्रकार से बढ़ता है।

"जहाँ स्त्रियों का मान होता है, वहाँ देवता आनंद मनाते हैं, और जहाँ इनका मान नहीं होता, वहाँ सब कर्म निष्फल हो जाते हैं।

"अनादर पाई हुई स्त्रियाँ जिन घरों को शाप देती हैं, वे जादू से नष्ट हुए की तरह बिलकुल नष्ट हो जाते हैं।

"जिस कुल में स्त्री से भर्त्ता और भर्त्ता से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है, वहाँ कल्याण अटल है।"

इसी पुस्तक में यह भी लिखा है—

"जो संबंधी, किसी चालाकी से, स्त्री की संपत्ति, उसकी गाड़ियों और उसके आभूषणों को अपने अधिकार में कर लेते हैं, वे ऐसे पापी नरक में जाते हैं।

"यदि स्त्री सुखी नहीं, और उचित प्रकार से वस्त्राभूषणों से अलंकृत नहीं, तो उसके पति का हृदय हर्ष से नहीं भरता, और यदि पति आनंदित नहीं, तो संतान नहीं हो सकती।

"स्त्री के प्रसन्न होने से सारा कुल प्रसन्न होता है।

"सती-साध्वी स्त्री के लिये केवल एक ही पति है, वैसे ही धर्मात्मा पुरुष के लिये केवल एक ही पत्नी है।"

वेदों के अनुसार, विवाह-संबंध अटूट है, यहाँ तक कि यदि दोनों के समागम से संतान उत्पन्न हो चुकी हो, तो मृत्यु भी पति-पत्नी को एक दूसरे से अलग नहीं कर सकती। इनमें से एक पृथ्वी पर निर्वासित रहकर दूसरे को स्मरण करता हुआ तब तक शोक में जीवन व्यतीत करे, जब तक कि मृत्यु उसके अर्द्धांग के साथ, उसके खोए हुए पवित्र प्रेम के साथ ब्रह्म के हृदय में उसका दुबारा मिलाप न करा दे।

प्रथम युगों की इस सभ्यता के कर्तव्य और सम्मान की कल्पना नैतिक भाव में कितनी उज्ज्वल थी। इस सभ्यता ने, मनुष्य-जाति के बाल-काल के बहुत समीप होने के कारण, अभी उन विषैली आकांक्षाओं की उत्पत्ति न देखी थी, जिन्होंने पृथ्वी का बँटवारा करके और पृथ्वी पर खँडहर-ही-खँडहर फैलाकर, मनुष्य से उसकी स्वर्गीय उत्पत्ति और उसके प्रथम अस्तित्व की पवित्र शुचिता भुला दी है।

यह बात स्पष्ट है कि यहूदी धर्म के साथ इतने कुसंस्कारों, इतने व्यभिचारों और इतने अत्याचारों के रहते हम इसे प्राक्कालीन ईश्वरीय ज्ञान का रक्षक और आधुनिक ज्ञान का प्रोत्साहक नहीं स्वीकार कर सकते। फ़ारस और मिसर की तरह यहूदिया भी पौराणिक ब्राह्मण-धर्म की, और हिंदू-ह्रास की उपज है। उसने मातृभूमि के कुछ थोड़े-से ही उज्ज्वल ऐतिह्यों को इकट्ठा करके उनमें अपने युग के आचार-व्यवहार के अनुसार काट-छाँट और फेर-फार किया है।

भारत में पुरोहितवर्ग के अवसादकर प्राधान्य का पहला परिणाम यह हुआ कि जो स्त्री वैदिक काल में इतने सम्मान और आदर की दृष्टि से देखी जाती थी, उसका अपकर्ष और नैतिक मानभंग हो गया।

मिसर की याजकश्रेणी ने ब्राह्मणों के प्रत्यादेश का अनुकरण किया, और उस अधिकार में कुछ भी परिवर्तन न होने दिया।

यदि आप दासों के शरीरों पर, पशु-तुल्य मूर्खों पर शासन करना चाहते हैं, तो इन गर्हणीय युगों का इतिहास आपको एक बहुत ही आसान रीति बताता है—स्त्री को पदभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट कर दीजिए, फिर आप पुरुष को शीघ्र ही ऐसा भ्रष्ट हुआ देखेंगे कि उसमें घोरतम स्वेच्छाचारिता के विरुद्ध भी युद्ध करने की शक्ति न रह जायगी; क्योंकि वेद के सुंदर शब्दों में "स्त्री मनुष्य-जाति का प्राण है!"

भारत के धर्म-ग्रंथों के अज्ञात और गुह्य रचयिता ने कैसी पूर्ण रीति से इस बात को समझा था कि स्त्री —भगिनी, भार्या और

माता—हृदय के अत्यंत पवित्र बंधनों से कुल को सँभाले रखती है, और परिवार में नम्र और पवित्र गुणों का संचार करके समाज को नीति की शिक्षा देती है।

परंतु उन दुष्ट याजकों ने भी, जो अधिकार के भूखे थे, इस बात को कैसी उत्तम रीति से समझा था कि यहाँ एक ऐसा जोड़ है, एक ऐसी गाँठ है, जिसको खोल देने से हमारी प्रभुता और भी दृढ़ हो सकती है!

क्या मूसा इस अवस्था को बदलने और स्त्री को उसकी वह सच्ची पदवी दिलाने आया था, जो उसे पूर्व के प्राथमिक युगों में प्राप्त थी? नहीं। क्या उसने अपने युग के उस आचार-व्यवहार के सामने सिर झुकाया था, जिसके विरुद्ध वह युद्ध करने में असमर्थ था? संभवतः—परंतु तब हमें ईश्वरीय ज्ञान के विषय में और अधिक बातचीत न करने के लिये केवल एक और कारण मिल गया!

शोक! यहोवह के पक्षपातियो, आप परमेश्वर के विषय में हमें कैसी क्षुद्र कल्पना देते हैं, और कैसे विचित्र ऐतिह्यों पर अपने विश्वासों को अवलंबित रखते हैं!

यह देखो, यह सभ्यता है। यह तुम्हारी सभ्यता से पुरानी है, इससे तुम इनकार नहीं कर सकते। यह स्त्री को पुरुष के समान पदवी देती है, यह परिवार और समाज में दोनों का स्थान बराबर मानती है। ह्रास का आगमन होता है, और वह इन सिद्धांतों को उलट देता है। तुम आते हो, और साभिमान अपने को "परमेश्वर की जाति" कहते हो, यद्यपि तुम हिंदू-विद्रावण की सड़ी-गली उपज-मात्र हो, जिनमें प्राक्काल के पवित्र सिद्धांतों को पुनः प्राप्त करने अथवा अपनी माताओं को उनसे छिने हुए अधिकार दिलाने की सामर्थ्य नहीं!

चले जाओ, ऐ इसरायल-वंशियो—ऐ पतितों की संतान, अब हमें अपनी दिव्य उत्पत्ति का उपदेश देना बंद करो—तुम्हारा शासन केवल

अत्याचार और रक्तपात का शासन था; तुम स्त्री को समझने में असमर्थ थे; पर वही तुम्हारा पुनरुद्धार कर सकती थी।

यह सत्य है कि तुम्हारे पास रूत है, जिसके कार्यों की हृदयग्राही और विमल कविता पर तुम गर्व करते हो। पर हम उसका मूल्य ख़ूब जानते हैं। हमें यह भी ज्ञात है कि उसने किस प्रकार अपनी माता के उपदेश से बोअज से व्यभिचार किया ताकि वह उससे विवाह कर ले।

आप उत्तर देंगे कि ऐसा उस समय का रवाज था, और मैं भी तो तुम पर, जो अपने को ईश्वरीय ज्ञान की संतान कहते हैं, यही दूषण लगाता हूँ।

किसलिये तुमने इन रवाजों को नहीं बदला? तुम लूट-ताराज आग और तलवार द्वारा विजय-संहिता बनाना जानते थे; परंतु तुम पवित्रता, समीचीनता और सामाजिक नीति के लिये व्यवस्था करने में अशक्त थे।

लूत की बेटियों के अपने पिता के साथ व्यभिचार करने, इबराहीम के अपनी दासियों से उत्पन्न हुई संतान को फेकने और तामर के अपने को अपने सुसर के हाथ समर्पण कर देने का स्मरण रखिए।

उस याजक को, एफ्राइम के उस लेवी को याद करो, जिसने कुछ मद्यपी पुरुषों के महावेग को शांत करने और उनके अत्याचार से बचने के लिये, उनकी संतुष्टि के निमित्त अपनी भार्या को निकाल दिया, और बलात्कार के लिये सारी रात उसे छोड़े रक्खा!

अब समय है कि इन सब बातों की उनके वास्तविक मूल्य के अनुसार क़दर की जाय!

यदि तुम ईश्वरीय प्रत्यादेश को माननेवाले नहीं, तो मैं तुम्हारा हेतुवाद स्वीकार करता हूँ, और तुम्हारे साथ इस बात में सहमत हो सकता हूँ कि ये नीच अपवाद समय की रीतियाँ थीं।

यदि तुम ईश्वरीय प्रत्यादेश के माननेवाले हो, तो मैं तुम्हें छोड़ता हूँ, और तुमसे कहता हूँ कि तुम्हारा ईश्वरीय ज्ञान पापमय है !

ओह ! क्या तुम मुझसे यह मनवाना चाहते हो कि परमेश्वर ने क्रमिक और अपूर्ण नीति बनाई थी, और एक पुरानी व्यवस्था तो व्यभिचार को सहन करती और नई व्यवस्था उसका बहिष्कार करती है !

बहुत अच्छा ! उत्तर में मैं कहता हूँ कि ईश्वर ने मनुष्य-जाति के जन्म-स्थान पर केवल एक ही धर्म-नियम का विधान किया था, और जिन जातियों ने उसकी उपेक्षा की है, उन सबने ईश्वरीय नियम को तोड़ा है ।

जिस व्यापार को देखकर मुझे सदा आश्चर्य होता है, वह यह है कि आधुनिक प्रोटेस्टेंट धर्म की, उस स्वतंत्र विचार के धर्म की, शाखाएँ अपने धर्म-सम्मेलनों से उन लोगों को निकाल देती हैं, जो विवेक के प्रकाश में ईश्वरीय प्रत्यादेश को नहीं मानते ।

एक मनुष्य, जो एक सिंहासन को तहस-नहस कर डालने के कारण विश्रुत कहलाता है, और जो अन्य अनेकों को भी पादाक्रांत करना चाहता है, परंतु अयोग्य ठहरानेवाली अपात्रता के कारण थोड़ी देर के लिये निर्व्यापार है, बहुत देर से पुस्तकों में प्रचार करने लगा है ।

वह कैथोलिक नहीं है; क्योंकि उसमें वह व्यग्र धार्मिक श्रद्धा नहीं, जो उसके कैथोलिक धर्म (Catholicism) का हेतु हो सके ।

वह यहूदी नहीं; क्योंकि वह प्राचीन धर्म को भूत काल के लिये मानता और वर्तमान के लिये उसका अस्वीकार करता है ।

फिर वह है क्या ?

वह एक ऐसा मनुष्य था, जो मनुष्यों से घृणा करता था; एक ऐसा राजक था, जो राजकों से द्वेष करता था; एक ऐसा प्रतिनिधि था, जो

नियोजकों का तिरस्कार करता था; और एक ऐसी प्रजा था, जो अपने राजा का अवमान करती थी। सारांश यह कि वह एक ऐसा मनुष्य है, जो सबसे खुल्लमखुल्ला घृणा करने के उपरांत, अब वही वस्तु प्राप्त करने लगा है, जो उसने इतनी प्रचुरता से दूसरों को दी थी।

ठीक! इस मनुष्य ने, जिसने अपनी पुस्तक में धर्म-प्रचार करना आरंभ कर दिया है, अपने तईं इब्रानी ईश्वरीय ज्ञान का रक्षक बना लिया है।

वह इस बात को मानता है; क्योंकि यह उसके अनुकूल है। वह उस बात को नहीं मानता; क्योंकि वह उसे अच्छी नहीं लगती। वह समाहारक (Eclectic) है; परंतु उसका समाहार-धर्म (Eclecticism) उसका अपना ही है। वह स्वतंत्र विचारक है; पर अपने ही स्वतंत्र विचारों का। उनमें वह किसी दूसरे को नहीं मिलाता।

इस अंतिम क्रिया के लिये उसे कौन-सी बात विवश करती है ?

अपने नाम को चरम कीर्ति से परिवृत करने की लालसा।

आइए, श्रीगुईज़ोजी (M. Guizot), जिस प्रकार आपने याजकता को छोड़ दिया है, वैसे ही अपनी लेखनी को भी तिलांजलि दे दीजिए। युवक विचारकों की ओर से जो कुछ मैं आपसे कह सकता हूँ, वह यही कि आप आस्तिकों और नास्तिकों, दोनों को निरुत्साह करते हैं।

जो व्यक्ति किसी कल्पना अथवा आदर्श-पताका की रक्षा करता है, उसका हम सम्मान कर सकते हैं; परंतु उन लोगों का कभी नहीं कर सकते, जिनकी, उनके अपने आपके सिवा, न कोई कल्पना है और न कोई पताका।

मैंने अभी इस स्वादिष्ट पाठ को दुबारा पढ़ा है, परंतु शायद मुझे अपने पृष्ठों को इसके साथ ख़राब न करना चाहिए। क्या

मुझे इसे मिटा देना चाहिए? नहीं! मेरी लेखनी ने शायद सार्व-जनिक विवेक के प्रयोजन को पूरा किया हो।

यह नाम इबरानी ईश्वरीय ज्ञान के अनेक पक्षपोषकों में दिखाई दिया था, और केवल इसी ने मुझे आकृष्ट किया था; क्योंकि यही एक ऐसी हृदयग्राही रीति से अहंकार की, और स्वयं मूर्तिमान् सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक अहम्मन्यता की सूचना देता था।

हम इस सबको एक निक्षिप्त वाक्य मानकर अपने मूल-विषय की ओर लौटते हैं।

मैंने इस ईश्वरीय ज्ञान के विषय में कहा है कि यह ईश्वरीय ज्ञान नहीं है; क्योंकि यह स्त्री को उसकी खोई हुई पदवी दिलाने के लिये नहीं बना; क्योंकि यह प्राचीन भारत वैदिक काल के भारत के ऐतिह्यों को छोड़कर केवल पौराणिक काल के ऐतिह्यों को जारी रखता है।

वेदों की स्त्री पवित्र और पूजनीय है—बाइबिल की स्त्री एक दासी-मात्र, और किसी-किसी समय तो एक वेश्या-मात्र है।

वेदों की स्त्री न पुरुष की सहचरी है, और घर के चूल्हे का सम्मान है।

बाइबिल की स्त्री एक रखेली-मात्र है।

हिंदू केवल एक ही पत्नी रख सकते थे।

इसरायल-वंशी अपने लिये कुमारी कन्याएँ प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने पड़ोस के देशों में अभियान किया करते थे, और अच्छा मूल्य मिलने पर अपनी पुत्रियों को बेचने में भी संकोच न करते थे।

जिन प्रयोजनों से विवश होकर मूसा ने हिंदुओं की सृष्टि-उत्पत्ति की कथा की—जो उसने मिसर में याजकों की पवित्र पुस्तकों से नक़ल की थी—काट-छाँट और उसके अंगों में फेर-फार किया था, उनको

इबरानी आचार-व्यवहार की भ्रष्टता के सिवा और कहीं ढूँढने की आवश्यकता नहीं ।

इबरानी व्यवस्थापक उस अन्याय-युग में सुंदर और हृदयंगम मूर्ति—अपनी संतान तथा पति के हृदयों पर शासन करनेवाली स्वतंत्र, पवित्र और भक्तिमयी स्त्री—को उत्पन्न नहीं कर सका । इससे भी बढ़कर, हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि यदि उसमें इस-के लिये यत्न करने का साहस भी होता, तो भी उसकी जाति उस-को न समझ सकती, और वह अवश्य ही एक व्यापक विद्रोह के नीचे दब जाता ।

सारे पूर्व में स्त्री स्वामी की एक दासी बन गई थी, और उस समय तक किसी को भी उसके उद्धार का, उसे उसका खोया हुआ स्थान पुनः दिलाने का स्वप्न भी न हुआ था; मूसा को भी दूसरों से बढ़-कर प्राचीन ऐतिह्यों को पुनर्जीवित करने का विचार न था ।

इसलिये वह ऐसी अवस्थाओं में श्रेष्ठ और शुद्ध हिंदू-उपाख्यान की ज्यों-की-त्यों नक़ल नहीं उतार सका ।

पुरुष को मूल-पाप का रचयिता बना देने से स्वेच्छाचारी राजा का अधिकार घट जाता तथा उसके गर्व को धक्का लगता, और स्त्री यह समझने लगती कि ईश्वर के नाम से अभाग्यपूर्वक उसके अधिकार छीने गए हैं ।

परंतु केवल इसी में मूसा ने भारत को नहीं भुलाया; बाइबिल की "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक में यहोवह आदम और हेवा से, उन-के अपराध के उपरांत, कहता है कि तुम्हारा कोई भी परित्राता न होगा । और, मुझे यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि ईसाई कल्पना इस बात का प्रतिपादन करने के लिये कि परमेश्वर ने हमारे प्रथम माता-पिता पर मसीहा (जगत्त्राता) की घोषणा की थी, मूसा का आश्रय लेती है ।

देखिए, आदम के स्वर्ग से निकाले जाने पर बाइबिल की "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक क्या कहती है—

"और उस (यहोवह) ने कहा, सोचने की बात है कि आदम भले-बुरे का ज्ञान पाकर हममें से एक के समान हो गया है (मुझे ऐसा जान पड़ता है कि यहोवह को इस बात का पूर्ण निश्चय न था कि एक-मात्र वही परमेश्वर है), सो अब उसे निकाल देना चाहिए, ताकि कहीं ऐसा न हो कि वह हाथ बढ़ाकर जीवन के वृक्ष का फल भी तोड़के खावे और सदा जीता रहे।

"तब परमेश्वर ने उसको प्रमोद-वाटिका से निकाल दिया, जिससे वह उस भूमि पर खेती करे, जिसमें से वह बनाया गया था।

"उनको निकालने के उपरांत उसने दिव्य दूतों को ज्वालामयी तलवारें देकर जीवन के वृक्ष की रक्षा के लिये स्वर्ग की वाटिका के सामने ठहरा दिया।"

मैंने न केवल इसी पुस्तक के, परंतु मूसा से संबंध रखनेवाली चार पुस्तकों के भी प्रत्येक वाक्य और प्रत्येक वचन की व्यर्थ ही परीक्षा की है, और मुझे किसी भी ऐसी बात का मालूम करना संभव नहीं जान पड़ा, जो व्यक्त रूप से अथवा अव्यक्त रूप से, स्पष्ट रीति से अथवा अलंकार की रीति से, संभवतः एक परित्राता पर लागू हो सकती हो।

इस ऐतिह्य को, जो भारत ने सब जातियों को दिया था, और जिसे हम संसार की सभी धर्म-पुस्तकों में पाते हैं, भविष्यद्वक्ताओं ने पीछे से प्राप्त किया था।

यह बता देना भी अच्छा होगा कि सृष्टि-उत्पत्ति और फ़रिश्तों के विद्रोह के विषय में मूसा एक भी शब्द नहीं कहता। इसको भी हम पूर्व के ऐतिह्यों में से उत्तर काल में ग्रहण किया हुआ समझते हैं।

इस प्रकार यह इबरानी धर्म, थोड़ा-थोड़ा करके, सारी प्राचीन पुराण-कथाओं में से इधर-उधर से इकट्ठे किए हुए और एक ऐसे ईश्वरीय ज्ञान की संरक्षकता में रक्खे हुए टुकड़ों और अंशों से बना है, जो परीक्षा को सहन नहीं कर सकते।

इस सबका यह परिणाम निकलता है कि भारत और मिसर की धर्म-पुस्तकों के विषय में मूसा को लेवियों और भविष्यद्वक्ताओं की अपेक्षा, जिन्होंने पीछे से उसके कार्य को पूर्ण किया, बहुत थोड़ा ज्ञान था।

छठा अध्याय

महाभारत और पुराणों के अनुसार जल-प्रलय

हमारे पास इस विषय के इतने वृत्तांत हैं कि हमें पता नहीं लगता, उनमें से किसको चुनें; प्राचीन भारत का कोई भी ऐसा इतिहास, धर्म-विद्या की कोई भी ऐसी पुस्तक अथवा कविता नहीं, जिसमें इस जल-प्रलय का, जिसका ऐतिह्य कि सभी जातियों में मौजूद है, विशेष वर्णन न हो।

एक संक्षिप्त वैदिक पाठ इस घटना का इस प्रकार वर्णन करता है—"परमेश्वर के भविष्य कथन के अनुसार पृथ्वी बस गई, और आदिम तथा हेवा (Heva) के पुत्र इतने बढ़ गए और इतने दुष्ट हो गए कि वे आपस में ही सहमत न हो सके।

"उन्होंने परमेश्वर और उसकी प्रतिज्ञाओं को भुला दिया, और अंत को अपने रक्ताक्त कलहों के महारव से उसको तंग कर डाला।

"एक दिन राजा दैतेय (Daytha ?) की धृष्टता यहाँ तक बढ़ गई कि उसने आकाश की गर्जना को आक्रोशित करना आरंभ कर दिया, और उसे चुप रहने की आज्ञा दी। साथ ही यह धमकी दी कि यदि मेरी आज्ञा का पालन न होगा, तो मैं अपने योद्धाओं को लेकर स्वर्ग को जीत लूँगा।

"परमेश्वर ने अपने जीवों को ऐसा भीषण दंड देने का निश्चय किया, जो अवशिष्टों और उनके वंशजों के लिये चेतावनी का काम दे।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि ब्रह्मा ने बाइबिल के यहोवह की भाँति, अपने भविष्यद्ज्ञान से असंगत जगत् को उत्पन्न करने पर पश्चात्ताप करने की निर्बलता नहीं दिखाई।

ब्रह्मा ने सारे संसार पर दृष्टिपात किया, ताकि किसी ऐसे पुरुष का पता लगावे, जो मनुष्य-जाति को निरंतर बनाए रखने के लिये, बाक़ी सबकी अपेक्षा, रक्षा किए जाने का पात्र हो। तब उसने उसके सद्गुणों के कारण वैवस्वत को चुना। हमें यहाँ पता लगता है कि उसने किस प्रकार अपनी इच्छा को प्रकट किया, और क्या परिणाम हुआ।

वैवस्वत उसकी आयु को पहुँच चुका था, जब परमेश्वर के भक्तों को परिवार तथा मित्रों का परित्याग करके वनों और जंगलों में चला जाना चाहिए, तथा आयु के शेष दिन तपस्या और निरंतर ईश्वर-चिंतन में बिताने चाहिए।

एक दिन जब वह पवित्र वीरिणी (Viriny ?) के तट पर स्नान करने के लिये आया, तब एक अत्यंत मनोहर रंगवाली मछली पानी से निकलकर रेत पर आ पड़ी, और उस पवित्रात्मा से कहने लगी—"मेरी रक्षा कीजिए। यदि आप मेरी प्रार्थना पर ध्यान नहीं देंगे, तो इसी नदी में रहनेवाली बड़ी मछलियाँ मुझे अवश्य निगल जायँगी।"

वैवस्वत को उस पर दया आई; उसने उसे अपने पीतल के लोटे में, जिससे वह स्नान कर रहा था, रख लिया, और उठाकर घर ले आया। यहाँ आकर वह इतना बढ़ गई कि एक बड़ा बर्तन भी उसे रखने के लिये अपर्याप्त सिद्ध हुआ। तब वैवस्वत ने उसे एक तालाब में डाल दिया। वहाँ भी वह उसी वेग से बढ़ती रही। तब उसने अपने रक्षक से उसे गंगा में ले जाने की प्रार्थना की।

पवित्र ऋषि ने उत्तर दिया—"यह तो मेरी सामर्थ्य से बाहर है। इस समय जहाँ तुम हो, वहाँ से तुम्हें ब्रह्मा के सिवा और दूसरा नहीं निकाल सकता।"

मछली बोली—"कम-से-कम यत्न करके तो देखिए।"

वैवस्वत ने इसे पकड़कर बड़ी सुगमता से उठा लिया, और गंगा

में ले गया। वह भीमकाय मछली न केवल तिनके के सदृश हलकी ही हो गई, वरन् इसमें से चारों ओर मीठी सुगंध की लपटें भी निकलने लगीं।

वैवस्वत ने अनुभव किया कि मैं परमेश्वर की इच्छा को पूरा कर रहा हूँ। वह आश्चर्यजनक घटनाओं की प्रत्याशा करने लगा।

मछली ने उसे शीघ्र ही फिर बुलाया और कहा—"मुझे यहाँ से निकालकर समुद्र में ले जाइए।" इस आज्ञा का चटपट पालन कर दिया गया।

तब वह अपने पालनेवाले से कहने लगी—

"हे बुद्धिमान् और परोपकारी मनुष्य, सुनो, यह पृथ्वी अभी जल में लीन होनेवाली है, और इस पर बसनेवाले सभी लोग विनष्ट हो जायँगे; क्योंकि देखो, परमेश्वर का कोप बादलों और समुद्रों को, इस भ्रष्ट और दुष्ट जाति को, जिसने अपनी उत्पत्ति तथा ईश्वरीय धर्म को भुला दिया है, दंडित करने की आज्ञा देगा। मेरे साथी मनुष्य अपने गर्व को सँभाल नहीं सकते, यहाँ तक कि वे अपने स्रष्टा की अवज्ञा करने का साहस करते हैं परंतु उनके अपराध ब्रह्मा के सिंहासन के पाँव तक पहुँच गए हैं, और ब्रह्मा अपनी शक्ति दिखलानेवाला है।

"इसलिये जल्दी से एक नौका बनाओ, जिसमें तुम और तुम्हारा सारा परिवार बैठे।

"तुम प्रत्येक पेड़ के बीज और जीवों की प्रत्येक जाति का एक-एक जोड़ा ले लो—जिनका जन्म भापों और मवाद से हुआ है, उन सबको छोड़ दो; क्योंकि उनके जीवन का मूलतत्त्व परमात्मा से नहीं निकला।

"तुम विश्वास-पूर्वक प्रतीक्षा करो।"

वैवस्वत ने शीघ्र ही इन आदेशों का पालन करना आरंभ कर

दिया। पोत बनाकर वह अपने परिवार-सहित उसमें बैठ गया। साथ ही उसने पेड़ों के बीज और सारे जीवों का एक-एक जोड़ा उसमें रख लिया।

जब जल-वृष्टि होने लगी और समुद्र उमड़ आए, तो एक विशाल सींगवाली विकट मछली आई, और जहाज़ के सिर के साथ आ लगी। वैवस्वत ने सींग के साथ एक रस्से से जहाज़ को बाँध दिया। अब मछली उस उच्छृंखल तत्त्वसमुच्चय में से पोत को खींचती हुई तीर की तरह दौड़ने लगी।

पोतारोहियों ने देखा, परमेश्वर का हाथ उनकी रक्षा कर रहा है; क्योंकि झंझा-वात का महावेग और तरंगों का प्राबल्य उन्हें कुछ भी हानि नहीं पहुँचाता था। यह अवस्था कई दिन, कई मास और कई वर्ष तक जारी रही, जब तक कि विनाश का कार्य पूर्ण रूप से समाप्त न हो गया। तत्त्वसमुच्चय के शांत हो जाने पर ये नाविक, जिनको सदा उनका गुह्य नायक मार्ग दिखाता रहा था, हिमालय के शिखर पर उतरने में समर्थ हुए।

उनको छोड़ने पर मछली ने कहा—"विष्णु ने मृत्यु से तुम्हारी रक्षा की है। उसी की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने मनुष्य-जाति को क्षमा-दान दिया है। जाओ, अब जाकर पृथ्वी को दुबारा बसाओ, और परमेश्वर के कार्य को संपूर्ण करो॥।"

ऐतिह्य के अनुसार, ब्रह्मा को उसके इस वचन का स्मरण कराने से ही कि वह मनुष्यों को उनके पुरातन धर्म पर लाने और उनके अपराधों के निस्तार के लिये उसे पृथ्वी पर भेजेगा, विष्णु ने वैवस्वत को मरने से बचाया, ताकि परमेश्वर का वचन उसके बाद पूर्ण हो।

हम समझते हैं, इस उपाख्यान पर किसी टीका-टिप्पणी की

॥ मैक्समूलर इस आख्यान को मनु के नाम के साथ जोड़ता हुआ प्रतीत होता है।

आवश्यकता नहीं। पाठक सारे आनुपंगिक अनुमानों को सुगमता से समझ लेंगे।

कुछ एक का मत है कि वैवस्वत, अपनी संतति के द्वारा, समग्र नवीन जातियों का जनक था।

फिर कुछ दूसरे कहते हैं कि उसने पानी के छोड़े हुए कीचड़ में पत्थर के टुकड़े फेककर ही स्वेच्छानुसार बहुत-से मनुष्य उत्पन्न कर लिए थे।

एक ओर तो यह पुराण-कथा है, जिसे यहूदी-धर्म और ईसाई मत ने ग्रहण और पुनः लाभ किया था।

दूसरी ओर यह ड्यूकेलियन (Deucation) और पाईरा (Pyrrha) का ऐतिह्य है, जो स्वदेश-त्यागियों के काव्यमय गीतों द्वारा यूनान में पहुँचा था।



सातवाँ अध्याय

कुलपति अजीगर्त का उपाख्यान

यह बात स्पष्ट है कि यहाँ हम वैवस्वत का इतिहास नहीं दे सकते, और न हिंदुओं के वे सब उपाख्यान ही सुना सकते हैं, जिनमें जलप्लावन के बाद के कुलपति-जीवन का वर्णन है। हम केवल अजीगर्त का जीवन-वृत्तांत ही लिखते हैं। इसका बाइबिल के इबराहीम के जीवन से बड़ा आश्चर्यजनक सादृश्य है। इसलिये यह संपूर्णतः हमारे इस सिद्धांत की पुष्टि करता है कि मूसा ने अपनी "उत्पत्ति"-नामक पुस्तक के ऐतिह्य, क्या कुलपतियों-संबंधी और क्या दूसरे, मिसर की धर्म-पुस्तकों से लिए थे, और ये पुस्तकें स्वयं वेदों और भारत के धार्मिक विश्वासों का शासनपत्र-मात्र हैं। यह एक ऐसा अनुमान है, जिससे बचने का सिवा इसके और कोई उपाय नहीं कि इबरानी व्यवस्थापक की असंगत कथाओं द्वारा उस कालगणना की सहायता से, जिसको आधुनिक विज्ञान ने असंभव ठहराया है, उन पुरातन युगों की आग्रह-पूर्वक परीक्षा की जाय।

इस कालगणना की परीक्षा करते हुए, वास्तव में, यह बड़ी विचित्र बात दिखाई देती है कि मूसा बड़े ही निश्चय से अपना संबंध आदम के साथ जोड़ता है। मुझे संदेह है कि संसार में व्यवहार-ज्ञान के अतीव साधारण नियमों के लिये इससे बढ़कर किसी दूसरी बीभत्स बात का ढूँढना संभव हो सकता है।

बाइबिल के अनुसार—

मूसा चिरकाल तक लेवी का समकालीन था।

लेवी इकतीस वर्ष तक इसहाक के साथ रहा।

इसहाक पचास वर्ष तक शेम के साथ रहा।

शेम छियानवे वर्ष मतूसेलम के साथ रहा।

मतूसेलम तेंतालीस वर्ष आदम के साथ रहा।

इस प्रकार मूसा सृष्टि की उत्पत्ति से केवल चार पीढ़ी, और जल-प्लावन से केवल दो पीढ़ी पीछे हुआ!

यह बात ध्यान देने योग्य है कि आदम और मूसा के बीच के चार मनुष्य, बाइबिल की कालगणना के अनुसार, दो सहस्र चार सौ तेंतीस वर्ष तक जीते रहे, अथवा उनमें से प्रत्येक के जीवन के लिये छः सौ वर्ष ठहरे *।

यह प्रगल्भ परिहास, जिस पर गंभीरता-पूर्वक विचार नहीं किया जा सकता, फिर भी जेज़ूइट डा कॅरियर (Jesuit de Carriere) के मन में निम्न-लिखित विचार उत्पन्न करता है—

"यहाँ तक कि सृष्टि की उत्पत्ति और वे सब बातें, जो बाइबिल की उत्पत्ति-नामक पुस्तक में लिखी हुई हैं, मूसा को अपने पितरों के मुख से सुनकर ज्ञात हो गई होंगी। शायद इसरायल-वंशियों में अभी तक स्मृति भी मौजूद थी, और उन्हीं स्मरणों से उसने कुल-पतियों के जन्मों और मरणों की तिथियाँ, उनकी संतान तथा उनके परिवार की संख्या और उन भिन्न-भिन्न देशों के नाम लिखे होंगे, जिनमें उनमें से प्रत्येक उस पवित्र आत्मा के आदेश से जा बसा, जिसे हमें सदा धर्म-पुस्तकों का प्रधान रचयिता समझना चाहिए।"

मेरे सम्मान के योग्य पादरी महाशय! हमें एक दूसरे की बात को अवश्य समझना चाहिए।

मूसा को त्रिमूर्त्ति का कुछ भी ज्ञान न था। मैं ललकारकर कहता हूँ कि मेरे इस कथन के खंडन में उसकी पुस्तक से एक भी पंक्ति

निकाल दिखलाइए। फिर यहोवह का स्थान पवित्र आत्मा को किसलिये देते हो ? आप तो नहीं कहते, पर मैं समझता हूँ, इन संयोगों की सहायता से ही, आवश्यकता पड़ने पर जिनकी आपको कुछ कमी नहीं, आप बाइबिल की व्याख्या करते और उसमें से वे बातें निकालते हैं, जिनका उसमें अस्तित्व भी नहीं।

पवित्रात्मा को प्रविष्ट किए बिना इन मनुष्यों की मतूसलेम के सदृश पाँच, छः, सात, नौ सौ वर्षों की आयु बताना काफ़ी बुरी बात थी। इस पवित्रात्मा का यदि सम्मान किया जाय, तो उसका इन लज्जाजनक ऐतिह्यों के साथ कुछ भी संबंध न होना चाहिए।

परंतु इस बात को स्वीकार करना पड़ता है कि हमारा इतिहास सुगमता से संतुष्ट हो जाता है; क्योंकि विज्ञान के बीसों बार इब्रानी कालगणना का ख़ूब खंडन कर देने पर भी इतिहास अभी तक इसे साग्रह ग्रहण किए हुए है।

हिंदू-कालगणना के अनुसार, जल-प्लावन द्वापर युग के अंत में, हमारे संवत् से चार सहस्र से भी अधिक वर्ष पहले, हुआ था, और उसके बाद आनेवाले युग में वैवस्वत का पोता अजीगर्त हुआ।

यह कुलपति मूसा से ढाई सहस्र वर्ष पहले हुआ था। निस्संदेह इसी से मूसा को इबराहीम का आख्यान सूझा था। इसके विषय में निम्न-लिखित उपाख्यान है—

"गंगा के देश में अजीगर्त नाम का एक महात्मा रहता था। वह सायं और प्रातः यज्ञ करने के लिये वन में, अथवा नदियों के तटों पर, जिनके जल स्वभावतः ही शुद्ध हैं, जाया करता था।

"जब यज्ञ समाप्त हो चुका, और उसका मुख दिव्य आहार द्वारा पवित्र हो गया, तब ओ३म् के गुह्य शब्द का, जो परमेश्वर के आगे प्रार्थना है, हौले-हौले उच्चारण करने के पश्चात्, उसने सावित्री के पवित्र मंत्र का गान किया—

भूर्भुवः स्वः !

(पृथ्वी, ईथर, आकाश)

"हे लोकों और सर्वभूतों के स्वामी, मेरी दीन प्रार्थना को स्वीकार कीजिए, अपनी अमर शक्ति के चिंतन को छोड़िए! आपकी एक ही दृष्टि मेरे आत्मा को पवित्र कर देगी।

"मेरे समीप आइए जिससे मैं आपकी वाणी को पत्तों की सरसराहट में, पवित्र नदी के जल की बड़बड़ाहट में और अवसथ्य (पवित्र अग्नि) की उज्ज्वल शिखा में सुन सकूँ।

"मेरी आत्मा परमात्मा से निकलनेवाले पवन में श्वास लेने के लिये तरस रही है; मेरी दीन प्रार्थना पर कर्णपात कीजिए। सारे सचराचर जगत् के स्वामी!

"भूर्भुवः स्वः!"

(पृथ्वी, ईथर, आकाश)

"मेरी प्यासी आत्मा के लिये तेरी वाणी, मरुस्थलों के लिये ओस की बूँदों से, और स्तनंधय बच्चे के लिये स्नेहमयी युवती माता के शब्द से बढ़कर मधुर है।

"ऐ तू, जो वसुंधरा को पुष्पवती करता है, जो फ़सलों को पकाता है, जो सारे अंकुरों को विकसित करता है, जिसके द्वारा आकाश द्युतिमान् होते, माताएँ संतान उत्पन्न करतीं और ऋषिगण सद्गुण सीखते हैं, मेरे पास आ।

"मेरी आत्मा तुझे जानने के लिये व्याकुल हो रही है, और इस नश्वर कोश से छूटकर परमानंद को भोगने के लिये तेरे तेज में लीन हो जाने के लिये लालायित है।

"भूर्भुवः स्वः"

(पृथ्वी ! ईथर ! आकाश !)

(सामवेद से संगृहीत)

"परमेश्वर से यह प्रार्थना करने के पश्चात् अजीगर्त ऋषि ने सूर्य की ओर मुख किया, और, ब्रह्मा की अतीव समृद्धिशालिनी रचना होने के कारण, उसके लिये यह स्तोत्र कहा—

"हे देदीप्यमान और तेजोमय सूर्य, तेरे सदा तरुण और सदा उत्कृष्ट गुणों का यह जो मैं पूजन करता हूँ, उसे स्वीकार कीजिए।

"मेरी इस प्रार्थना को मानने की कृपा कीजिए कि तेरी किरणें मेरी भूखी आत्मा पर उसी प्रकार पड़ें, जिस प्रकार तरुण प्रेमी अपनी प्रियतमा का प्रथम चुंबन करने के लिये शीघ्रता करता है।

"हे सूर्य! पृथ्वी और समुद्र दोनों को उर्वर और आनंदित करने-वाले तेजोमय मंडल! मुझको प्रकाशित कीजिए❀!

"पवित्र और प्रकाशमान सूर्य, हम तेरी उत्कृष्ट ज्योति पर विचार करते हैं, ताकि यह हमारी बुद्धि को उज्ज्वल करे और सन्मार्ग पर चलावे।

"हे प्रकाशमान सूर्य, याजक लोग यज्ञों और पवित्र मंत्रों द्वारा तेरी प्रतिष्ठा करते हैं; क्योंकि उनकी बुद्धि तुझमें परमेश्वर का अत्यंत सुंदर कार्य देखती है।

"हे श्रेष्ठ और तेजोमय सूर्य! दिव्य भोजन का भूखा मैं अपनी दीन प्रार्थनाओं द्वारा तेरे स्वर्गीय और बहुमूल्य दानों की याचना करता हूँ।"

(ऋग्वेद से संगृहीत)

❀ यह सुंदर सूक्त Metastasis's "Inns a venere" का प्राय मूल माना जा सकता है।

"Scendi propiyia col tuo splendore,
"O bella venere, madre d' Amore;

× × ×

"Tu colle becide, pupille chiare,
"Fai lieta, e fertile, la terra e'l mare."

"इन प्रार्थनाओं और निर्दिष्ट स्नानों के उपरांत भी महात्मा अजीगर्त अपना बहुत-सा समय पावक (पवित्र)-नामक एक धार्मिक पुरुष से वेदों के गूढ़ और गंभीर अर्थों के सीखने में व्यतीत करने लगे। पावक उस समय उस आयु (सत्तर वर्ष) से बहुत दूर न था, जब कि ईश्वर के सच्चे भक्त को एकांत में जीवन व्यतीत करने के लिये संसार से विरक्त हो जाना चाहिए।"

"अध्ययन और उपासना में अपने दिन बिताते हुए जब अजीगर्त की आयु पैंतालीस वर्ष की हो गई, तो एक दिन उसके गुरु ने, यज्ञ की समाप्ति पर, उसे एक पुष्पों से सुसज्जित और दोषरहित बछिया देकर कहा—

"इस उपायन को देख, जो परमेश्वर ने उन लोगों के लिये, जिन्होंने वेदाध्ययन समाप्त कर लिया है, नियत किया है। हे अजीगर्त, तुझे अब मेरी शिक्षा का प्रयोजन नहीं; अब अपने लिये एक पुत्र प्राप्त करने का विचार कर, जो तेरी मृत्यु पर तेरे ब्रह्म-धाम में प्रवेश के निमित्त अंत्येष्टि-क्रिया करावे।

"अजीगर्त ने उत्तर दिया—'पिता, मैं आपकी बात सुन रहा हूँ, और आवश्यकता को समझता हूँ; परंतु मैं किसी स्त्री को नहीं जानता, और यदि मेरे हृदय में प्रेम की इच्छा उत्पन्न हो, तो मुझे मालूम नहीं कि किसके पास प्रार्थना करूँ।'

"पावक बोला—'मैंने तुम्हें ज्ञानमय जीवन दिया है, अब मैं तुम्हें सुख और प्रेम का जीवन दूँगा।'

"मेरी पुत्री पार्वती सौंदर्य और चातुर्य में संसार की सब कुमारियों से बढ़कर है; उसके जन्म से ही मैंने उसे तुम्हारी भार्या बनाने का निश्चय किया है। उसने अभी किसी भी पुरुष के दर्शन नहीं किए, न किसी पुरुष ने उसके प्रसन्न कुन्तलों को देखा है।'

"इन शब्दों को सुनकर अजीगर्त प्रसन्नता से गद्गद हुआ।

"विवाहोत्सव मनाया गया, और द्विजों की रीति से विवाह-संस्कार हुआ।

"अजीगर्त और सुंदरी पार्वती बरसों तक बड़े आनंद से रहते रहे; उनके पास सबसे अधिक और सबसे उत्तम गौएँ थीं; उनके धानों की, छोटे नाजों की और कुंकुम की फ़सलें सदा सबसे सुंदर होती थीं।

"परंतु उनके सुख में एक बात की कमी थी; यद्यपि ईश्वर के नियम के अनुसार अजीगर्त ऋतुकाल में सदा पार्वती का सहवास करता था; परंतु उनके कोई संतान न हुई थी, और पार्वती वंध्या जान पड़ती थी।

"उसने पवित्र गंगा की यात्रा भी की; उसने असंख्य व्रत और प्रार्थनाएँ भी कीं; पर कुछ भी फल न हुआ—उसे गर्भ-स्थिति न हुई।

"उसकी वंध्यता का आठवाँ वर्ष आ पहुँचा, जब कि पुत्र न उत्पन्न करने के कारण नियम के अनुसार पार्वती का परित्याग होना था। यह उन दोनों के लिये बड़ी ही विषण्णता का विषय बन रहा था।

"एक दिन अजीगर्त अपने यूथ की सर्वोत्तम लाल बकरी को लेकर परमेश्वर को बलि देने के लिये एक निर्जन पर्वत पर गया, और अविरल अश्रु-धारा बहाते हुए प्रार्थना करने लगा—'भगवन्, जिनको आपने मिलाया है, उन्हें अब अलग न कीजिए'। परंतु सिसकियों से उसका कंठ भर गया, और वह कुछ अधिक न कह सका।

"जिस समय वह रोता और परमेश्वर से यांचा करता हुआ पृथ्वी पर औंधा पड़ा था, उसे यह आकाश-वाणी सुनाई दी—'अजीगर्त, अपने घर को लौट जा। परमेश्वर ने तेरी प्रार्थना को सुन लिया है, और तुझ पर दया दिखाई है।'

"जब वह घर की ओर वापस आ रहा था, तब उसकी भार्या, हर्ष से भरी हुई, उसके स्वागत के लिये दौड़ी हुई आई। उसने चिरकाल से उसे इस प्रकार प्रसन्न नहीं देखा था, इसलिये उसने उसके असाधारण परितोष का कारण पूछा।

"पार्वती बोली—'तुम्हारी अनुपस्थिति में एक मनुष्य, जो थकान से चूर दिखाई देता था, हमारे बरांडे के नीचे विश्राम करने आया था। मैंने उसे शुद्ध जल, भात और घी दिया, जैसा हम अतिथियों को दिया करते हैं। खा चुकने पर जब वह चलने लगा, तो उसने मुझसे कहा—तेरा हृदय खिन्न और तेरे नेत्र अश्रुओं से मलिन हैं। तू आनंद मना; क्योंकि तू शीघ्र ही गर्भवती होकर एक पुत्र को जन्म देगी। उसका नाम तू भिक्षाशिन् या भिक्षा का पुरस्कार (Viashagagana) रखना। वह तेरे पति का प्रेम तुझसे बनाए रक्खेगा, और अपने वंश की शोभा होगा।'

"फिर अजीगर्त ने अपने साथ जो घटना घटी थी, वह कह सुनाई। इस पर वे मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए; क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया कि हमारे दुखों का अंत हो गया है, और हम एक दूसरे से जुदा होने को विवश न होंगे।

"जब रात हुई, अजीगर्त अपने आपको सुवासित करके, और अपने अंगों में कुंकुम लगाकर पार्वती के पास गया; क्योंकि वह उस समय अनुकूल ऋतु में थी। उसके गर्भ ठहर गया।

"बालक के जन्म पर संबंधियों, मित्रों और सेवकों, सबने मिल-कर आनंद मनाया।

"केवल पावक ही एक ऐसा था, जिसने इसमें सहायता न दी; क्योंकि वह संसार के लिये मर चुका था, केवल ईश्वर-चिंतन में ही जीता था।

"बालक का नाम, जैसा कि कहा गया था, भिक्षाकांक्षिन् (Viasha-gagana) अथवा भिक्षाशिन् रक्खा गया।

"पीछे से पार्वती के अनेक कन्याएँ उत्पन्न हुईं। वे अपने सौंदर्य के कारण घर की शोभा थीं। पर परमेश्वर ने उसे और पुत्र नहीं दिया।

"जब बालक ने बारहवें वर्ष में प्रवेश किया, और रूप तथा बल में सबसे बढ़ गया, तब उसके पिता ने उसे अपने साथ ले जाकर उसी पर्वत पर स्मारक यज्ञ करने का निश्चय किया, जहाँ परमेश्वर ने पहले उसकी प्रार्थना को स्वीकार किया था।

"पहले की भाँति, अपने रेला से एक निर्दोष और लाल बालों-वाली जवान बकरी चुनकर अजीगर्त, पुत्र को साथ ले, चल पड़ा।

"जब वे एक घने जंगल को नाँघ रहे थे, उन्हें घोंसले से गिर-कर पृथ्वी पर पड़ा हुआ फ़ाख़्ता का एक पंखहीन बच्चा मिला। इसे खाने के लिये एक सर्प दौड़ा आ रहा था।

"भिक्षाशिन् साँप पर झपटा, और डंडे से उसे मारकर उसने फ़ाख़्ता के बच्चे को घोसले में रख दिया। बच्चे की मा उसके सिर के गिर्द चक्कर लगाती हुई अपनी हर्ष-भरी ध्वनि से उसको धन्यवाद देने लगी।

"अपने पुत्र को शूर-वीर और धार्मिक देखकर अजीगर्त बड़ा प्रसन्न हुआ।

"पर्वत पर पहुँचकर वे यज्ञ के लिये समिधाएँ इकट्ठी करने लगे। उधर वह बकरी, जिसे उन्होंने एक पेड़ से बाँध दिया था, रस्सी तुड़ाकर भाग गई।

"तब अजीगर्त बोला—'देखो, समिधाएँ तो हैं, पर बलि नहीं रही।' अब वे सोचने लगे कि क्या करें; क्योंकि वे बस्ती से बहुत दूर थे। परंतु फिर भी वह अपने व्रत को पूरा किए बिना नहीं लौटना चाहता था।

"वह अपने पुत्र से बोला—'जिस जगह तुमने घोसले में फ़ाख़्ता का बच्चा रक्खा था, वहाँ जाकर उस बच्चे को उठा लाओ; बकरी की जगह हम उसी की बलि देंगे।'

"भिज्ञाशिन् अपने पिता की आज्ञा का पालन करने ही वाला था कि इतने में ब्रह्मा का सकोप शब्द सुनाई दिया—'तू अपने पुत्र को उस फ़ाख़्ता की तलाश में, जिसको उसने बचाया था, उसे अपनी छोड़ी हुई बकरी के स्थान में बलिदान करने के लिये, क्यों भेजता है? क्या तूने उस समय उसे साँप से इसीलिये बचाया था कि तू आप उसके दुष्कर्म का अनुकरण करे? ऐसा बलिदान मुझे पसंद नहीं।

'जो अपने किए हुए पुण्य को नष्ट करता है, वह इस योग्य नहीं रह जाता कि मेरी उपासना कर सके।

'हे अजीगर्त, अपने किए हुए पहले अपराध को देख। इसको मिटाने के लिये तू इस यज्ञ में मेरे दिए हुए पुत्र की बलि दे—यही मेरी इच्छा है।'

"इन शब्दों को सुनते ही अजीगर्त के मन को घोर परिताप ने घेर लिया। वह रेत पर बैठ गया, उसके नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी।

"वह रोकर कहने लगा—'हे पार्वती, जब तू मुझे अकेला घर आते देखेगी, तब क्या कहेगी, और जब तू मुझसे अपना जेठा पुत्र माँगेगी, तब मैं क्या उत्तर दे सकूँगा?'

"इस प्रकार वह सायंकाल तक विलाप करता रहा, और उस दुःसह यज्ञ को संपन्न करने का निश्चय न कर सका। फिर भी उसे परमेश्वर की आज्ञा से मुँह मोड़ने का स्वप्न तक न हुआ। भिज्ञाशिन् छोटी आयु का होते हुए भी दृढ़ था, और अपने पिता को ईश्वरीय आज्ञा का पालन करने के लिये प्रोत्साहित कर रहा था।

काटने ही को था कि फ़ाख़्ता के रूप में विष्णु आया, और बालक के सिर पर बैठ गया।

"वह बोला—'हे अजीगर्त, बलि के बंधन काट डाल, और चुनी हुई समिधाओं को फेंक दे। परमेश्वर तेरे आज्ञापालन से संतुष्ट है। उसने तेरे पुत्र की निर्भीकता के कारण उस पर अनुग्रह किया है। वह दीर्घायु होगा; क्योंकि उसी के यहाँ वह कुमारी जन्म लेगी, जिसे दिव्य बीज से गर्भ रहेगा।'

"अजीगर्त और उसके पुत्र ने परमेश्वर को कोटि-कोटि धन्यवाद दिए। तब वे, रात हो जाने के कारण, घर की ओर वापस चल पड़े। मार्ग में वे इन अद्भुत घटनाओं पर बातचीत करते आते थे, और उनके हृदय में परमेश्वर की भद्रता पर पूर्ण विश्वास था ❀।"

(रामसरियर-कृत भविष्य-कथन)

ब्रह्मा और सूर्य के दो सूक्त उपाख्यान में नहीं पाए जाते। उसमें केवल पर्वत पर अजीगर्त की प्रार्थना का ही वर्णन है। परंतु मैंने इस अनुवाद के उन दोनों सूक्तों को ऋग्वेद और सामवेद से ले लिया है, और आशा है, पाठक मेरे इस कार्य को पसंद करेंगे।

अजीगर्त के यज्ञ का ऐसा ही पुरातन वृत्तांत है। जब मुझे पहले-पहल इसका परिचय मिला, तो मैं गंभीर आश्चर्य-सागर में डूब गया।

इसके अस्तित्व का पहलेपहल पता लगाने के लिये मैं विलियम जोंस-नामक प्राग्देशीय भाषा पंडित का आभारी हूँ। एक दिन जब मैं उनका किया हुआ मनु का अनुवाद पढ़ रहा था, एक टिप्पणी के कारण मुझे कुलूक भट्ट की टीका देखनी पड़ी। उसमें मुझे पिता द्वारा पुत्र के इस बलिदान और परमेश्वर के इसके लिये स्वयं ही आज्ञा देने

❀ मालूम होता है पूर्वीय भाषाओं के दूसरे पंडितों ने इस अतीव मनोरंजक उपाख्यान के न सौंदर्य को समझा है और न आशय ही को।

के अनंतर फिर उसे रोक देने का संकेत मिला। तब से ही मैंने इस घटना के मूल-वृत्तांत को हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के दुस्तर पृष्ठों में से निकालने का दृढ़ निश्चय कर लिया। परंतु इस कार्य में मुझे सफलता होना असंभव था, यदि एक ब्राह्मण की कृपा न होती। उससे मैं संस्कृत पढ़ा करता था। उसने मेरी प्रार्थना पर अपने देवालय के पुस्तकालय से रामस्वरियर-नामक धर्म-पंडित के ग्रंथ मुझे ला दिए। उनसे इस ग्रंथ की तैयारी में मुझे बहुत बड़ी सहायता मिली है।

जब ऐसे प्रमाण सविस्तर समष्टि से एकमत हैं, तो क्या इस अनुमान को रोकना कि सारे पुरातन ऐतिह्यों का मूल एक ही था और उनकी आधार-रचना को सुदूर पूर्व की पुराण-कथाओं में ढूँढ़ना चाहिए, साक्षी के विरुद्ध न होगा?

मैं इस बात को जितनी बार कहूँ, उतना ही थोड़ा है कि यदि यह कहना सत्य और युक्तिसंगत है कि सभी आधुनिक जातियों ने दार्शनिक और धार्मिक प्रकाश के एक ही स्रोत से ज्ञानामृत पान किया है, तो यह समझना कैसे अयुक्तिसिद्ध ठहर सकता है कि प्राचीन काल की सभी जातियों ने कुछ परिवर्तनों के अनंतर, अपने अग्रगामियों के ही विश्वासों को ग्रहण किया था? कुलपति अजीगर्त का यह उपाख्यान मूसा के हाथ में पड़कर इबराहीम का आख्यान बन गया।

आठवाँ अध्याय

अवतार—कृष्ण के आगमन की भविष्यद्वाणियाँ

मेरा यह कहना कि अवतारवाद, अर्थात् अपने जीवों के उद्धार के लिये परमेश्वर का पृथ्वी पर आना, हिंदू-धर्म का आधार है, संभवतः किसी के लिये भी नई बात न होगा। जिन लोगों ने भारत पर कोई भी पुस्तक कभी पढ़ी है, उन सबको यह बात यथेष्ट रूप से ज्ञात है। इससे मुझे इस धर्म-विश्वास में उस देश की पूर्वता का समर्थन करना पूर्ण रूप से सुगम हो जाता है।

परंतु यदि इस सचाई को साधारणतः सब कोई स्वीकार करते मालूम होते हैं, यदि इस बात से कोई इनकार नहीं करता कि भारत के अपने अवतार हैं, तो इसका कारण इन ऐतिह्यों पर हँसी उड़ाने और मनुष्यों में ब्रह्म के विविध अवतारों को केवल अनर्थक कुसंस्कार प्रकट करने की प्रवृत्ति के सिवा और कुछ नहीं।

इन मतों के स्रोत को मालूम करना हमारे लिये सुगम है। ये मत पक्षपात-शून्य नहीं हो सकते; क्योंकि वे उन सब प्रकार की पूजन-विधियों के ईसाई प्रचारकों से निकले हैं, जिनको भारत में उसी प्रकार के विश्वासों का मुक़ाबला करना पड़ा, जिनका वे प्रचार करने आए थे।

इस काम के लिये उन्होंने ठीक उन्हीं साधनों से काम लिया, जिनका मैं वर्णन करता हूँ। हिंदुओं के धार्मिक सिद्धांतों का उनके धर्म की विशेष पुस्तक से अध्ययन करने की जगह, जहाँ वे युद्ध नहीं, वरन् उच्च शिक्षाएँ देखते, वे काव्य, कथा और वीर-इतिहास में लग गए, ताकि बड़े आराम से ब्रह्म, उसके अवतारों और त्रिमूर्तियों की हँसी उड़ा सकें।

एक हिंदू प्रचारक यदि योरप में आकर बाइबिल के आचरण और खीष्ट की उच्च शिक्षाओं को छोड़कर हमारे धर्म का अध्ययन, जान-बूझकर और आग्रहपूर्वक, मध्य काल के धार्मिक नाटकों और प्रहसनों से ही करे, जिनमें पिता परमेश्वर रंगमंच पर आकर शैतान का गला पकड़ता है, जिनमें कुमारी मरियम के साथ, ईसा के साथ, प्रेरितों के साथ और संतों के साथ अतीव अधर्म, प्रत्युत अनेक बार अश्लील असंगतियाँ लगाई गई हैं, तो वह भी ठीक इन पादरियों का-सा ही काम कर सकता है।

पूर्व में, जो कल्पना और कविता का प्रदेश है, धर्म का अध्ययन कल्पित कथाओं की पुस्तकों से नहीं करना चाहिए; क्योंकि यह कल्पना फ़रिश्तों, दिव्य दूतों, संतों और पिशाचों की संख्या को बढ़ाकर अनंत बना देती है, और मनुष्यों तथा ईश्वर के कार्यों में उन्हें सदा घुसेड़ती रहती है।

हमें ब्राह्मणों, पुरोहितों से पढ़ना चाहिए, उनकी धर्म-पुस्तकों का अध्ययन करना चाहिए और उन सब कुसंस्कारों पर, जिनका संबंध योरप भारत के साथ बताता है, तथा कुछ स्वार्थी मनुष्यों के स्वार्थी आवेदन पर हँस देना चाहिए।

हिंदुओं के विश्वासानुसार, अब तक पृथ्वी पर परमेश्वर के नौ अवतार हो चुके हैं। पहले आठ तो परमात्मा के केवल क्षुद्र आभास थे, जो आदम और हेवा (Hera) के साथ, उनके पतन के बाद, की हुई परित्राता की प्रतिज्ञा को पुनः प्रारंभ करने के लिये आए थे। केवल नवाँ ही अवतार है, अर्थात् ब्रह्म की भविष्यद्वाणी की सिद्धि है।

रामसरियर ने अथर्व, वेदांग और वेदांत से संग्रह किए हैं, नीचे दिए जाते हैं।

इन विचित्र धार्मिक कविताओं की, जो रूप और विषय में प्रायः एक दूसरे से मिलती हैं, हम केवल थोड़ी-सी संख्या ही देते हैं।

अथर्व के अवतरण—

"उसके सिर पर प्रकाश का मुकुट होगा, वह परमात्मा से निकला हुआ विशुद्ध रस, सब भूतों का सार होगा; गंगा का जल अपने स्रोत से लेकर समुद्र तक थरथराने लगेगा, जिस प्रकार कि गर्भवती स्त्री पेट में बच्चे की पहली उछल-कूद का अनुभव करती है।

"उसके आगमन पर पृथ्वी और आकाश आनंद मनावेंगे, उसके तेज के सामने तारे फीके पड़ जायँगे, सूर्य की किरणें उसके प्रकाश के सामने मंद पड़ जायँगी। उसकी असीम दृष्टि के लिये पृथ्वी बहुत संकीर्ण होगी, और इतनी छोटी होगी कि वह उसमें समा न सकेगा।

"क्योंकि वह अनंत है, वह शक्ति है, वह प्रज्ञा है, वह सौंदर्य है, वह सब कुछ है, और सबमें है।

"जब वह आवेगा, तब सभी जीव, सभी पुष्प, सभी पेड़, सभी वृक्ष, स्त्रियाँ, पुरुष, बालक, दास, मस्त हाथी, सिंह, चीता, सफ़ेद पंखोंवाला हंस, सारे पक्षी, सारे कृमि, सभी मछलियाँ, जल में स्थल में, और आकाश में, मिलकर हर्ष का गीत गावेंगी; क्योंकि वह सब प्राणियों और सारे चराचर जगत् का स्वामी है।

"जब वह आवेगा, तब निंद्य राक्षस गहरे नरक में जाकर शरण लेंगे।

"उसके आगमन से घृणित पिशाच शव की हड्डियों को चबाना छोड़ देंगे।

"उसके आने से सभी अपवित्र जीव भयभीत हो जायँगे; अपशकुन-

सूचक गिद्ध और मलिन गीदड़ अपने पोषण के लिये कहीं सड़ी-गली वस्तुएँ न पावेंगे, न उन्हें छिपने के लिये निर्जन स्थान मिलेंगे।

"उसके आने से जीवन मृत्यु को धमकावेगा और प्रलय-काल अपने कुटिल कार्यों को स्थगित कर देगा। वह सभी प्राणियों में नव जीवन का संचार करेगा, सभी देहधारियों का पुनरुद्धार और सभी आत्माओं का सुधार करेगा।

"वह मधु और अमृत से भी बढ़कर मधुर, दोष-रहित मेमने और कुमारी के अधरों से बढ़कर पवित्र होगा। सभी हृदय प्रेम में बह जायँगे। वह गर्भ धन्य है, जो उसे धारण करेगा! वे कान धन्य हैं, जो उसके मुख से निकले हुए पहले शब्दों को सुनेंगे! वह भूमि धन्य, जिस पर उसके पैर पड़ेंगे! वे स्तन धन्य हैं, जिनसे उसका दिव्य मुख दुग्धपान करेगा! उन्हीं के दुग्ध के प्रताप से सभी मनुष्य पवित्र होंगे।

"उत्तर से दक्षिण तक, सूर्योदय से अस्त तक, वह दिन उल्लास का दिन होगा; क्योंकि परमेश्वर अपनी महिमा को प्रकट करेगा, अपनी शक्ति को प्रसिद्ध करेगा, और अपने जीवों के साथ मेल-मिलाप करेगा।"

मैंने केवल नक़ल कर दिया है—टीका-टिप्पणी करने से भविष्य-द्वक्ता के प्रोत्साहित शब्द केवल बलहीन हो जावेंगे, और इस कारण, इन पृष्ठों पर पीछे से क्या-क्या विचार उठेंगे?

इस बात को समझने, मिलान करने और जाँचने में पाठक हमारे समान ही समर्थ हैं।

वेदांग से उद्धरण—

"स्त्री के गर्भ में ही दिव्य तेज की किरण मनुष्य-रूप धारण करेगी, और वह किसी भी अपवित्र संसर्ग से दूषित न होने के कारण कुमारी रहते हुए भी संतान को जन्म देगी।"

पुरुरव (Pourourava) का उद्धरण—

"मेमना, भेड़ और मेंढे से, लेला बकरी और बकरे से और बच्चा स्त्री और पुरुष से उत्पन्न होता है; परंतु दिव्य परम आत्मा एक कुमारी के यहाँ जन्म लेगा, जिसको विष्णु के विचार से गर्भ रहेगा।"

नारद का अवतरण—

"यक्ष, राक्षस और नाग काँप रहे हैं; क्योंकि वह दिन आ रहा है, जब वह पुरुष जन्म लेगा, जो पृथ्वी पर से उनके शासन की समाप्ति कर डालेगा।"

पौलस्त्य का अवतरण—

"आकाश में, पवन में और पृथ्वी पर विचित्र और भीषण शब्द होंगे; गुह्य स्वर वनों में बैठे पवित्र ऋषियों को चेतावनी देंगे; गंधर्व अपने ध्रुव पद गावेंगे; सागर के जल अपनी गहरी खाड़ियों में हर्ष के साथ उछलेंगे; समीर कुसुम-सुगंध से लद जायगा; दिव्य शिशु की प्रथम चिल्लाहट पर सारा जगत् अपने स्वामी को पहचान लेगा।"

वेदांत से अवतरण—

"कलियुग (जगत् की वास्तविक आयु। संसार, हिंदुओं के अनुसार ईसाई संवत् से साढ़े तीन सहस्र वर्ष पहले आरंभ हुआ था) के आरंभ में कुमारी का पुत्र उत्पन्न होगा।"

परंतु मैं अपनी इच्छा के विरुद्ध इस हिंदू परित्राता के आगमन की सूचना देनेवाली भविष्यद्वाणियों के ये थोड़े-से अवतरण देकर ही चुप हो जाता हूँ। इसका कारण यह नहीं कि मैं और अवतरण देने में असमर्थ हूँ; क्योंकि धर्म-पुस्तकें इस विषय के प्रमाणों से भरी पड़ी हैं। परंतु बात यह है कि इस ग्रंथ की कल्पना मुझे कौतुक-मात्र को पूर्ण रूप से शांत करने की आज्ञा नहीं देती।

इसके अतिरिक्त, जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, जिन अवतरणों को मैं दूँगा, उनमें से बहुत-से एक दूसरे से इतना मिलते-जुलते हैं कि

उनकी संख्या की वृद्धि मनोरंजकता को बढ़ाने के स्थान में उसे नष्ट कर डालेगी।

वेदांत बताता है कि कृष्णावतार कलियुग, अर्थात् जगत् की यथार्थ आयु, के आद्य समयों में होना चाहिए। मैं समझता हूँ कि इस वाक्य की व्याख्या का प्रयोजन है।

हिंदू लोग जगत् की संस्थिति के काल को चार युगों में बाँटते हैं। ये चार युग महाप्रलय के पहले चार-चार बार आते हैं।

इनमें से पहले का नाम कृतयुग है। इसकी संस्थिति तीन सौ साठ दिनों के सत्रह लाख और अठाईस सहस्र मानव-वर्षों की है।

दूसरे का नाम त्रेता-युग है। इसकी संस्थिति बारह लाख छियानवे हज़ार मानव वर्षों की है।

तीसरे का नाम द्वापर-युग है। इसकी संस्थिति आठ लाख और चौंसठ हज़ार मानव-वर्षों की है।

चौथा कलि-युग चार लाख और बत्तीस हज़ार मानव-वर्षों का है।

इस अंतिम युग के, जो संसार की वास्तविक आयु है, प्रायः साढ़े चार हज़ार वर्ष बीत चुके हैं।

सर विलियम जोंस अपने 'एशियाई अध्ययन' में इसमें संदेह नहीं करता कि ग्रीक और रोमन लोगों ने जो समय को चार कालों—स्वर्ण-काल, रजत-काल, पित्तल-काल और लोह-काल—में बाँटा है, यह हिंदू ऐतिह्य का अभिज्ञान-मात्र है, और यह उन जातियों के मूल के विषय में मेरे विचारों का एक और पक्ष-पोषक प्रमाण है।

नवाँ अध्याय

भगवद्गीता और पुराणों के अनुसार कुमारी देवांगी (Devanaguy) की उत्पत्ति

अब हम इस अद्भुत हिंदू-अवतार पर आ पहुँचे हैं। यह हमारी पृथ्वी के धार्मिक अवतारों में सबसे पहला है। इसी ने सबसे पहले मनुष्यों में उन सनातन सच्चाइयों का फिर से प्रचार किया था, जो परमेश्वर ने मानव-मन पर अंकित की हैं, और जो निरंकुशता और असहिष्णुता के झगड़ों से बहुत बार अंधकार में ढक जाती हैं।

हम इस समय अत्यंत निर्विवाद हिंदू-प्रमाणों के अनुसार कुमारी देवांगी और उसके दिव्य पुत्र का केवल वर्णन ही करेंगे। सब प्रकार की टीका-टिप्पणी और तुलना को किसी दूसरे समय के लिये रख छोड़ेंगे।

राजा की बहन, अर्थात् बच्चे की माता को प्रसूति से कुछ दिन पहले एक स्वप्न हुआ, जिसमें उसे विष्णु का सोलहों कलाओं से पूर्ण रूप दिखाई दिया। उसने उस पर उसके भावी बच्चे के भविष्य-भाग्य का प्रकाश किया।

विष्णु ने माता से कहा—"लड़की का नाम देवांगी (संस्कृत में, परमेश्वर की या परमेश्वर के लिये बनाई हुई) रखना; क्योंकि उसी के द्वारा परमेश्वर की कल्पनाएँ संपन्न होंगी। उसे मांस कभी न खिलाना—केवल चावल, मधु, और दूध ही से उसे पालना। सबसे बढ़कर बात यह है कि विवाह द्वारा उसका किसी पुरुष से मिलाप न कराना। वह पुरुष, और विवाह में उसे सहायता देनेवाले

सभी लोग, विवाह-संस्कार के संपन्न होने के पूर्व ही मर जायँगे।"

छोटी लड़की के जन्म लेने पर, विष्णु के आज्ञानुसार, उसका नाम देवांगी रक्खा गया; उसकी माता, इस डर से कि मैं अपने भाई के राजप्रासाद में रहते हुए परमेश्वर के आदेशों का पालन न कर सकूँगी, क्योंकि वह एक दुष्टात्मा है, लड़की को नंद-नामक अपने एक संबंधी के घर ले गई। नंद गंगा-तीरवर्ती एक छोटे-से गाँव का स्वामी था, और अपने सद्गुणों के लिये प्रसिद्ध था। देवांगी ने अपने भाई से कहा कि मैं गंगा की यात्रा के लिये जा रही हूँ। भाई ने लोगों की कुड़कुड़ाहट और शिकायत के डर से उसके संकल्पों का विरोध करने का साहस न किया।

फिर भी उसने अपना असंतोष प्रकट करने के लिये बहन के साथ बहुत ही सामान्य अर्दली दिए, अर्थात् केवल दो हाथी भेजे, जो एक नीच कुलोत्पन्न स्त्री के लिये भी मुश्किल से पर्याप्त थे।

सायंकाल लक्ष्मी (Lakmy) ने अभी अपनी यात्रा आरंभ ही की थी कि उसकी रक्षा के लिये एक जुलूस उसकी अर्दली में आ मिला। इस जुलूस में सुनहली झूलों से सजे हुए एक सौ से अधिक हाथी थे, जिनको बहुमूल्य वस्त्रधारी मनुष्य हाँक रहे थे। इस समय रात हो जाने के कारण उनके पथप्रदर्शन के लिये वायु में अग्नि का एक स्तंभ प्रकट हुआ, और एक गुप्त संगीत का शब्द आकाश से आता प्रतीत होने लगा।

जिन लोगों ने इस आश्चर्य प्रस्थान में साहाय्य दिया था, वे सब समझ गए कि यह कोई साधारण प्रस्थान नहीं, बच्चे और उसकी माता की परमेश्वर रक्षा कर रहा है।

मदुरा (Madura) के राजा को बहुत भय हुआ। उसने राक्षसों के राजा के बारे में, जो विष्णु के उद्देश्यों को निष्फल

करना चाहता था, एक बग़ल के रास्ते से सशस्त्र सेना भेजी, ताकि वह उस जुलूस को तितर-वितर कर दे, और उसकी बहन को राज-भवन में वापस ले आवे।

वह उससे यह कहना चाहता था—"देखिए, मार्ग सुरक्षित नहीं है, और तुम डर में पड़े बिना इतनी लंबी यात्रा नहीं कर सकतीं; अपने बदले में किसी ऋषि को भेज दो, वह तुम्हारे व्रत को पूरा कर आवेगा।"

परंतु उसके भेजे हुए सैनिक अभी लक्ष्मी (Lakmy?) के जुलूस के सामने पहुँचे ही थे कि ईश्वरीय भाव से ज्ञानवान् होकर वे उसी के साथ मिल गए, और रास्ते में माता तथा बच्चे की रक्षा करने लगे।

अपने दुष्कर्म की विफलता का समाचार सुन राजा क्रोध से झुँझला उठा। उसी रात उसे स्वप्न हुआ कि देवांगी के यहाँ एक पुत्र उत्पन्न होगा, जो मुझे सिंहासन से उतारकर मेरे सारे अपराधों का दंड देगा।

तब उसने अपने पापमय संकल्पों को अपने हृदय में छिपा रखने की सोची, और अपने को विश्वास दिलाया कि यदि मेरी बहन न भी आई, तो मैं अपनी भानजी को तो फुसलाकर सुगमता से ही अपने यहाँ बुला लूँगा। फिर उसको मार डालना और अपनी मृत्यु से बच जाना मेरे लिये असंभव न होगा।

अपने संकल्प को और भी उत्तम रीति से छिपाने के लिये उसने अनेक दूत उपहारों से लादकर लक्ष्मी के पास भेजे, ताकि वह उन्हें अपने संबंधी नंद की भेंट करे।

लक्ष्मी की गंगा-यात्रा एक विजयसूचक यात्रा थी; जनता सब ओर से उसके मार्ग पर एकत्र होकर आपस में कहती थी—"ऐसे तेजोमय जुलूसवाली यह कौन रानी है ? यह अवश्य ही किसी

चक्रवर्ती राजा की पत्नी है। और लोग सब प्रांतों से उसके मार्ग में बिखेरने के लिये फूल, और फल बहुमूल्य उपहार लाते थे।

"परंतु जो चीज़ लोगों को सबसे अधिक आश्चर्य में डालती थी, वह नन्ही-सी देवांगी का सौंदर्य था। देवांगी का मुख-मंडल, उसके कुछ दिन की नन्ही-सी बच्ची होने पर भी, एक स्त्री के समान गंभीर था, और ऐसा जान पड़ता था कि जो घटनाएँ उसके इर्द-गिर्द हो रही हैं, वह उनको और उस प्रशंसा को, जो उसकी हो रही है, समझ रही है।

"यह यात्रा साठ दिन तक जारी रही। इस काल में अग्नि-स्तंभ प्रति दिन सूर्य के साथ अंतर्द्धान होकर रात्रि को फिर प्रकट हो जाता था। जब तक यह जुलूस पहुँच न गया, यह बराबर उसे मार्ग दिखाता रहा। और, सबसे विस्मयोत्पादक बात यह थी कि बाघ, चीते और जंगली हाथी, सामान्यतः मनुष्य के आगमन से डरकर भाग जाने की जगह लक्ष्मी के जुलूस को देखने के लिये हौले-हौले पास आ जाते थे, और उनकी चिंघाड़ें बुलबुल के गीतों के सदृश कोमल हो जाती थीं, ताकि बच्चा कहीं डर न जाय।

"विष्णु के एक दूत ने नंद को उसके संबंधी के आने का समाचार पहले ही दे दिया था, इसलिये वह अपने गाँव से चलकर दो दिन के रास्ते पर उसे लेने आया। उसके साथ उसके सभी नौकर-चाकर भी थे। देवांगी को देखते ही उसने उसे माता कहकर प्रणाम किया। जो लोग इस शब्द को सुनकर आश्चर्यान्वित हो गए थे, उन सबसे उसने कहा— यह हम सबकी माता होगी; क्योंकि इसके गर्भ से वह आत्मा जन्म लेगी, जो हम सबको पुनर्जीवित करेगी।"

दसवाँ अध्याय

देवांगी की बाल्यावस्था—उसकी माता का देहांत—मथुरा (Madura) में उसका प्रत्यागमन

नंद के घर में देवांगी के पहले वर्ष बड़े आराम से बीते। मथुरा के प्रजापीड़क राजा ने उसे फुसलाने का कुछ भी यत्न न किया। इसके विपरीत वह प्रत्येक अवसर पर उसे उपहार भेजता, और लक्ष्मी (लकमी) और उसकी पुत्री को आतिथ्य-दान देने के लिये नंद का धन्यवाद करता। इससे सभी लोग यह समझने लगे कि ईश्वर की ज्योति उसे छू गई है, और वह पुण्यात्मा बन गया है।

इसी बीच में बालिका कुमारी अपनी सखियों में खेलती हुई बड़ी हो गई, और सौंदर्य तथा चातुर्य में उन सबसे बढ़ गई। यद्यपि वह अभी केवल छः ही वर्ष की थी, परंतु उससे बढ़कर कोई भी दूसरा गृह-कार्यों को चलाना, रुई और ऊन कातना और सारे परिवार को सुखी और समृद्ध रखना न जानता था।

वह एकांत ही पसंद करती थी—ईश्वर के ध्यान में मग्न रहना ही उसे भाता था। परमेश्वर भी उस पर सुखों की वर्षा करते और उसके साथ भविष्य में घटनेवाली घटनाओं का उसे दिव्य ज्ञान कराते रहते थे।

एक दिन वह बहुत-सी स्त्रियों के साथ गंगा में स्नान कर रही थी कि एक भीमकाय पक्षी उस पर मँडलाता हुआ आया, और उसने हौले से उतरकर उसके सिर पर कमल-फूलों का मुकुट रख दिया।

यह देख सभी लोग विस्मित रह गए, और उन्होंने समझ लिया कि परमेश्वर ने इस बच्चे को महान् कार्य कराने के लिये बनाया है।

इसी बीच में थोड़ी-सी बीमारी के उपरांत लक्ष्मी का शरीर छूट गया, और देवांगी को स्वप्न हुआ कि मेरी माता को ब्रह्म-धाम में स्थान मिल गया है; क्योंकि उसका जीवन सदा शुद्ध और पवित्र रहा है, और उसका क्रिया-कर्म कराने की कोई आवश्यकता नहीं।

देवांगी (Devanaguy), जिसका शरीर पृथ्वी पर परंतु विचार आकाश में थे, बिलकुल न रोई, और न लोकाचार की रीति से ही उसने शोक किया; क्योंकि, जैसा धर्म-ग्रंथों में बताया गया है, वह मृत्यु को नवीन जीवन में जन्म समझती थी।

अपनी भानजी की विपत्ति का समाचार सुनकर मथुरा के प्रजा-पीड़क राजा ने इसे अपने विश्वास-घातक संकल्पों को पूरा करने का अच्छा मौक़ा समझा। उसने दूतों के द्वारा नंद के पास बहुत-से उपहार भेजकर प्रार्थना की कि आप छोटी देवांगी को मुझे दे दीजिए; क्योंकि उसकी माता के मर जाने से अब मैं ही उसका निकटतम संबंधी हूँ।

नंद इस प्रतिज्ञा से बहुत दुःखित हुआ; क्योंकि वह बालिका पर अपनी संतान के सदृश प्रेम करता था, और उन भविष्य-कथनों को अपने मन से नहीं निकाल सकता था, जो देवांगी के भविष्य को उसके मामा के राजप्रासाद में घोर तमसावृत बताते थे।

परंतु प्रार्थना न्यायसंगत थी। इसलिये उसने इसे स्वीकार अथवा अस्वीकार करना सब उस बालिका पर छोड़ दिया।

देवांगी जानती थी कि मुझे भाग्य ही मथुरा में बुला रहा है। इसलिये वह नंद के परिवार को कोटि-कोटि आशिस् दे अपने मामा के भेजे हुए दूतों के साथ चल पड़ी।

नंद ने कहा—स्मरण रखना, यदि विपत्ति के कारण तुम्हें यहाँ आना पड़े, तो निःसंकोच होकर चली आना। हमें तुम्हारे आने से बड़ी प्रसन्नता होगी।

देवांगी के रक्षक के भविष्य-कथन झूठे न थे। वह अपने मामा

के हाथ में पड़ी ही थी कि उसने अपना बनावटी वेष उतारकर, उसे एक कोट में क़ैद करके उसके द्वार को ईंटों की दीवार से बंद कर दिया, ताकि उसके भाग जाने की कोई संभावना ही न रहे।

परंतु कुमारी को इससे दुःख नहीं हुआ। उसे परमेश्वर की ओर से पहले ही इस बात का ज्ञान हो चुका था कि मेरे साथ क्या कुछ होनेवाला है। वह पूर्ण विश्वास के साथ उस घड़ी की प्रतीक्षा करने लगी, जो परमेश्वर ने अपने स्वर्गीय संकल्पों को पूरा करने के लिये स्थिर कर रक्खी थी।

मथुरा का प्रजापीड़क राजा भी शांत न था; एक भीषण दुर्भिक्ष ने उसके राज्य को जनशून्य कर दिया। मृत्यु ने एक-एक करके उसके बच्चे उससे छीन लिए, और वह अत्यंत घोर आपदा से निरंतर भयभीत रहने लगा।

बहुत दिन पहले उसे एक स्वप्न में मालूम हुआ था कि देवांगी से उत्पन्न होनेवाला पुत्र उसे राजसिंहासन से उतार देगा। अब उसने अपने किए हुए अनेक पापों पर, जिनके लिये परमेश्वर उसे घोर दंड भी दे चुका था, पश्चात्ताप करने के स्थान में अपनी भानजी को मारकर इस विषय में सर्वथा निश्चिंत हो जाने का निश्चय किया। इस उद्देश्य से उसने जल और भोजन में विष—अत्यंत विषमय पौदों का रस—मिलाकर देवांगी के लिये कारागार में भेजा था; परंतु वह यह असाधारण बात देखकर चौंक उठा कि न केवल वह बालिका मरी ही नहीं, वरन् उसे विष मालूम तक नहीं हुआ।

तब उसने उसे भोजन भेजना बंद कर दिया कि शायद भूख विष से भी अधिक बलवान् सिद्ध हो।

परंतु इसका कुछ फल न हुआ। देवांगी का स्वास्थ्य पुष्ट बना रहा, और बहुत बड़ी सावधानता के रखने पर भी यह जानना असंभव था

कि उसे किसी गुप्त रीति से भोजन मिलता है, अथवा केवल परमेश्वर की आत्मा ही उसके पोषण के लिये पर्याप्त है।

यह देखकर मथुरा के प्रजापीड़क राजा ने उसे मार डालने का विचार छोड़ दिया, और उसके कारागार के गिर्द एक मज़बूत पहरा बिठलाकर सिपाहियों को कड़ी ताकीद कर दी कि यदि देवांगी तुम्हारे पहरे से बचकर निकल गई, तो तुम्हें अतीव भीषण दंड दिया जायगा।

परंतु यह सब व्यर्थ हुआ; ये सब पूर्वोपाय पौलस्त्य की भविष्द्वाणी के पूरा होने में बाधा न दे सके।

"विष्णु की दिव्य आत्मा दीवारों में से लाँघकर अपनी परम प्रिया के साथ जा मिली।"

ग्यारहवाँ अध्याय

ईश्वर की प्रतिज्ञा पूर्ण हुई—कृष्ण का जन्म—मथुरा के प्रजापीड़क राजा का उपद्रव—कृष्ण-जन्म की रात को उत्पन्न होनेवाले सभी लड़कों की हत्या।

(भगवद्गीता तथा पुराणों के अनुसार)

एक दिन सायंकाल कुमारी उपासना में लगी हुई थी कि सहसा उसे स्वर्गीय गीत सुनाई पड़ा, उसका कारावास जगमगा उठा, और विष्णु ने अपने विराट् रूप में उसे दर्शन दिए। देवांगी को गंभीर आनंदोन्माद ने घेर लिया और ईश्वर की आत्मा द्वारा आच्छादित होकर उसे गर्भ हो गया।

गर्भ-धारण का समय उसके लिये निरंतर सम्मोहन का समय था; दिव्य शिशु अपनी माता को अनंत आनंद देता था, जिससे वह पृथ्वी, अपने कारावास, वरन् अपने अस्तित्व को भी भूल जाती थी।

जब देवांगी की प्रसूति की रात आई, और नव-जात शिशु पहली बार चिल्लाया, तब एक प्रचंड वायु ने कारागार की भित्तियों में से एक रास्ता खोल दिया, और विष्णु का एक दूत कुमारी तथा उसके पुत्र को नंद के एक बाड़े में ले गया। यह बाड़ा मथुरा-प्रांत के अंतर्गत था।

नव-जात का नाम कृष्ण (संस्कृत में, पवित्र) रक्खा गया। ग्वालों को जब अपने भरोसे छोड़ी हुई चीज़ का पता लगा, तो उन्होंने बालक के सामने साष्टांग प्रणाम करने के उपरांत उसे अलंकृत किया।

परमेश्वर ने उसी रात नंद को स्वप्न में इस सारी घटना का ज्ञान

करा दिया। इस पर वह अपने नौकरों तथा अनेक अन्य धर्मात्माओं को साथ ले देवांगी और उसके पुत्र को ढूँढ़ने और उन्हें मथुरा के प्रजापीड़क राजा की कूट युक्तियों से निकालने के लिये चल पड़ा।

राजा ने जब अपनी भानजी की प्रसूति और उसके अद्भुत रीति से भाग जाने का समाचार सुना, तब मारे क्रोध के वह आपे से बाहर हो गया। यह समझने कि परमेश्वर के विरुद्ध चेष्टा करने से कुछ न बनेगा, और उससे क्षमा-प्रार्थना करने की जगह उसने देवांगी के पुत्र का, जैसे भी बन सके, पीछा करने और उसकी प्राणहानि कर डालने का निश्चय किया, और वह यह आशा करने लगा कि इस प्रकार मैं उस मृत्यु से बच जाऊँगा, जिसकी मुझे धमकी दी गई है।

अब उसे और एक स्वप्न हुआ। इसमें उसे मिलनेवाले दंड के विषय में ठीक-ठीक चेतावनी दी गई। इस चेतावनी को पा उसने अपने राज्य के अंदर कृष्ण-जन्म की रात को उत्पन्न होनेवाले सभी लड़कों को मार डालने की आज्ञा दे दी; और उसे अपने मन में यह निश्चय हो गया कि इस प्रकार वह लड़का अवश्य मारा जायगा, जिसके विषय में मुझे यह खटका लग रहा है कि वह मुझे राजसिंहासन से उतार देगा।

राक्षस लोग बड़े उपायज्ञ थे, और विष्णु की कल्पनाओं का विरोध करना चाहते थे। उनके परामर्श से राजा ने सिपाहियों की एक सेना नंद के बाड़े को भेजी। जब यह सेना वहाँ पहुँची, तो नंद वहाँ उपस्थित न था। सेना को देख उसके नौकर देवांगी और उसके पुत्र की रक्षा के लिये शस्त्र बाँधने ही लगे थे कि अकस्मात् एक अद्भुत दृश्य दिखाई दिया! बालक, जो माता का स्तन-पान कर रहा था, लम्बा होने लगा, कुछ ही क्षण में वह दस वर्ष के बालक के समान हो गया और भेड़ों के रेवड़ में जाकर खेलने लगा।

सिपाही लोग उसके पास से लौट गए, और उन्हें उस पर कुछ

भी संदेह न हुआ। जब बाड़े में उनको उस आयु का कोई बालक न मिला, जिसको वे ढूँढ़ रहे थे, तब वे अपनी विफलता पर अपने भेजनेवाले के कोप से डरते हुए नगर को लौट आए।

इसके कुछ ही समय पीछे नंद अपनी सेना को लिए आ पहुँचा। उसने आते ही सबसे पहले अपने साथी धार्मिक लोगों सहित कुमारी तथा उसके दिव्य पुत्र के सामने साष्टांग प्रणाम किया। उनको इस स्थान में सुरक्षित न समझ वह उन्हें गंगा-तट पर ले गया। इस प्रकार देवांगी एक बार फिर अपने बाल्यकाल का निवास देखने में समर्थ हुई।

हम यहाँ कृष्ण के बाल-काल में होनेवाली अनेक घटनाओं का उल्लेख नहीं करेंगे। उसका बचपन उन लोगों के खड़े किए हुए असंख्य उत्पातों में व्यतीत हुआ, जिनकी उसकी मृत्यु से स्वार्थ-सिद्धि होती थी; परंतु वह इन सब युद्धों में, क्या मनुष्यों के साथ और क्या राक्षसों के साथ, विजयी हुआ।

जिन कवियों ने इन सब बातों पर अपनी कल्पना को दौड़ाया है, उन्होंने इनको अद्भुत घटनाओं और लोकोत्तर कर्मों से ऐसा परिवेष्टित कर दिया है कि उनका वर्णन करने के लिये एक दर्जन पुस्तकें भी पर्याप्त न होंगी।

फिर भी ईश्वर के मानवावतार के विषय में एक ऐसी घटना है, जिस पर हम चुप नहीं रह सकते; क्योंकि भारत में जेजूइटों (Jesuits) ने इस बात का प्रतिपादन करने के लिये कि कृष्ण दुराचारी था और उसके व्यभिचार के अनेक दृष्टांत मिलते हैं, इस घटना का उपयोग किया है।

एक दिन गंगा-तट पर घूमते हुए कृष्ण ने देखा कि कोई पचास युवती कन्याएँ स्नानार्थ दिगंबर दशा में खड़ी आपस में हँस और खेल रही हैं, और उनको इस बात का कुछ भी विचार नहीं कि किसी आने-जानेवाले की दृष्टि उन पर पड़ेगी।

बालक ने उनसे आपत्तिपूर्वक कहा कि तुम्हारा यह व्यापार अनुचित है। इस पर वे खिलखिलाकर हँसने और बालक के मुख पर जल फेंकने लगीं।

यह देख कृष्ण ने उनके रेत पर बिखरे हुए कपड़ों को संकेत से इकट्ठा कराकर एक इमली के पेड़ के शिखर पर भेज दिया, जिससे जल से बाहर निकलने पर उनके लिये वस्त्र-धारण करना असंभव हो गया। तब अपने अपराध को जानकर युवती कन्याओं ने क्षमा-प्रार्थना की। कृष्ण ने उन्हें क्षमा तो कर दिया, पर उनसे यह प्रतिज्ञा ले ली कि इसके बाद वे गंगा में कभी परदे के बिना, नंगी, स्नान न किया करेंगी।

जेज़ूइट लोगों ने इस कथा को लेकर इसका अपने ढंग से वर्णन किया है, और यह प्रकट किया है कि कृष्ण ने युवती कन्याओं के वस्त्र उनको नग्नावस्था में दिल खोलकर देखने के उद्देश्य से ही हटाए थे।

यह कथन उनके कार्यक्रम के अनुकूल ही है, और हमें इस पर आश्चर्य न होना चाहिए। कृष्ण को स्वीकार करने की अनुमति न होने से वे अपने सामान्य शस्त्रों के साथ उसका सामना करते हैं। हम जानते हैं कि पाठ को बदलने में, और उस चीज़ को देख लेने में, जिसे कि दूसरा कोई व्यक्ति कभी नहीं ढूँढ सका, वे कितने चतुर हैं।

क्या हमने उनको आधुनिक इतिहास के कई एक अध्यायों को बिगाड़ते नहीं देखा? यदि उनके पूर्वीय प्रचार में भी यही भाव प्रधान हो, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

बारहवाँ अध्याय

कृष्ण नवीन धर्म का प्रचार आरंभ करता है—उसके शिष्य—उसका अतीव व्यग्र सहाय अर्जुन—सरवस्त का मतांतर-स्वीकार

कृष्ण अभी मुश्किल से सोलह ही वर्ष का हुआ था कि वह अपनी माता तथा नंद को छोड़ नवीन सिद्धांत के प्रचार के उद्देश्य से भारत का पर्यटन करने लगा।

उसके जीवन की इस दूसरी अवस्था में हिंदू-कविता उसे क्या प्रजा और क्या राजा, दोनों के दुष्ट भाव के विरुद्ध निरंतर युद्ध करते प्रकट करती है। वह असाधारण उत्पातों को दबाता है, उसे मार डालने के लिये भेजी हुई पूरी सेनाओं के विरुद्ध एकाकी युद्ध करता है, अपने मार्ग में लोकोत्तर कर्म बिखेरता है, मृतों को जिलाता है, कोढ़ियों को चंगा करता है, बहरों को कान और अंधों को आँख देता है, सब कहीं बलवानों से निर्बलों की और अत्याचारियों से दीनों की रक्षा करता है, और सबके आगे उच्च स्वर से विघोषित करता है कि मैं त्रिमूर्ति का दूसरा व्यक्ति विष्णु हूँ, और मनुष्यों को मूल-अपराध से मुक्ति दिलाने, पाप के भाव को निकाल देने और पुण्य का राज्य स्थापित करने के लिये पृथ्वी पर आया हूँ।

उसकी उच्च शिक्षाओं को सुनने के लिये लोगों के झुंड-के-झुंड उसके मार्ग पर एकत्र होते और उसका ईश्वर के समान पूजन करते हुए कहते थे—"वस्तुतः यही वह परित्राता है, जिसका वचन हमारे पूर्वजों के साथ हुआ था!"

हम इस सुधारक के जीवन की लोकोत्तर घटनाओं को एक ओर रख देते हैं। वे अद्भुत घटनाएँ, भिन्न-भिन्न युगों में पृथ्वी पर प्रादु-

भेंट होनेवाले विविध भविष्यद्वक्ताओं के नामों के साथ लगाए हुए सारे कर्मों के सदृश, हमें केवल उपाख्यान से ही संबंध रखनेवाली प्रतीत होती है।

जिस प्रकार मेरा दूसरे अवतारों, अथवा परमात्मा के दूसरे दूतों में विश्वास नहीं, जो अपने को बुद्ध या ज़रदुश्त, मनु या मूसा, ख़ीष्ट या मुहम्मद कहते हैं, वैसे ही मैं लोकोत्तर कर्म करनेवाले तथा परमेश्वर कृष्ण को भी नहीं मानता। किंतु मैं कृष्ण को दार्शनिक और नीति-उपदेशक मानता हूँ। मैं उसकी शिक्षाओं की प्रशंसा करता हूँ। वे इतनी उच्च और पवित्र हैं कि पीछे से योरप में ईसाई धर्म के प्रवर्तक को उनका अनुकरण करना ही सबसे अच्छा जान पड़ा।

कुछ समय तक प्रचार करने के उपरांत हिंदू-सुधारक ने इस बात की आवश्यकता का अनुभव किया कि मैं अपने गिर्द ऐसे उत्साही और निर्भय शिष्य एकत्र करूँ, जिनको अपने सिद्धांतों की शिक्षा देने के पश्चात् मैं अपने कार्य को जारी रखने का भार सौंप सकूँ।

जिन लोगों ने कुछ समय तक उसके देशाटनों में अतीव उद्योगपूर्वक उसका साथ दिया था, उनमें से उसने अर्जुन को अलग चुन लिया। अर्जुन मथुरा के अन्यतम प्रधान कुल का एक युवक था, और अपना सर्वस्व छोड़कर उससे आ मिला था। कृष्ण ने उसे अपनी सारी गुप्त कल्पनाएँ बता दीं, और उसने भी अपना सारा जीवन उसकी सेवा में और उसके विचारों के फैलाने में व्यतीत करने की प्रतिज्ञा की।

की साम्यकारिणी व्यवस्थाओं, उसके अपने आदर्श और उसके जीवन की पवित्रता ने लोगों को उनके आलस्य से जगा दिया था, समस्त भारत-मंडल में पुनर्जीवित करनेवाली जीवनी-शक्ति की एक चिनगारी घूमने लगी थी, और अतीत के पक्षपाती अन्य राजा लोग, मथुरा के प्रजापीड़क राजा के विवश करने से, उनको अपने जालों में फँसाने और उन्हें दुःख देने का निरंतर यत्न कर रहे थे; क्योंकि वे उठती हुई लोकप्रिय लहर के सामने अपने राजसिंहासनों तथा अपने अधिकार को काँपता हुआ अनुभव करते थे।

परंतु उन्हें किसी बात में भी सफलता न हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी ऐसी शक्ति ने, जो उन सबसे प्रबल है, उनके संकल्पों को विफल करने और उन बहिष्कृत लोगों की रक्षा करने का निश्चय कर रक्खा है।

कई बार ऐसा होता था कि सारे-के-सारे गाँव कृष्ण और उसके शिष्यों को पकड़ लाने के लिये भेजे हुए सैनिकों के विरुद्ध उठकर उनको खदेड़ देते, और कई बार सैनिक स्वयं ही, भविष्यद्वक्ता के दिव्य शब्द से प्रोत्साहित होकर, अपने शस्त्रादि छोड़ उससे क्षमा-याचना करते थे।

एक दिन यहाँ तक हुआ कि इस सुधारक के विरुद्ध भेजी हुई सेना के एक सरदार ने, जिसने डर और प्रलोभन, दोनों में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की थी, कृष्ण को एक एकांत स्थान में अचानक जा घेरा। वहाँ वह उसकी उत्तुंग वृत्ति को देखकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने, अपने अधिकार के सारे चिह्नों को फेककर, उससे प्रार्थना की कि मुझे अपने भक्तों की मंडली में प्रविष्ट कर लिया जाय। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई, और उस दिन से इस नवीन मत का व्यग्र शिष्य और रक्षक उससे बढ़कर और कोई न था।

उसका नाम सरवस्त (Sarawasta) था।

प्रायः कृष्ण अपने भक्तों में से, अत्यंत संकट के समयों में उनकी परीक्षा करने के लिये, उन्हें अकेले छोड़कर, अंतर्द्धान हो जाता, और फिर उनके बैठते हुए हृदयों को खड़ा करने और उन्हें भय से बाहर निकालने के लिये सहसा उनके बीच पुनः प्रकट हो जाता था।

उसकी अनुपस्थिति में इस छोटे-से समाज का शासन अर्जुन करता था। वही यज्ञ और प्रार्थना में गुरु का स्थान ग्रहण करता था, और सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे।

परंतु, जैसे हम पहले कह चुके हैं, हमारे लिये कृष्ण के जीवन के कार्य इतने आवश्यक नहीं, जितना कि उनकी व्यवस्थाओं और उसके कर्तव्यानुराग का ज्ञान है।

वह किसी नवीन धर्म की प्रतिष्ठा के लिये नहीं आया था; क्योंकि परमेश्वर उस बात को नष्ट नहीं कर सकता था, जिसको वह एक बार सदा के लिये अच्छा कह चुका और जिसका वह प्रकाश कर चुका था। उसका उद्देश्य केवल पुराने को उन सारी दुष्टताओं और सारी अशुचिताओं से साफ़ कर देना था, जिनको मनुष्यों की प्रतारणाओं ने कई युगों से शनैः-शनैः घुसेड़ दिया था, और अतीत के पक्षपातियों की सारी घृणा और सारे विरोध के होते भी उसने सफलता प्राप्त की।

उसकी मृत्यु के समय सारे भारत ने उसके मत और उसके सिद्धांतों को ग्रहण कर लिया था; एक उज्ज्वल, सरल और अपने परिणामों में सफल धर्म सारी श्रेणियों में फैल गया था, उनका आचरण शुद्ध हो गया था, और पाप की पराजित आत्मा अपने तमसावृत निवास की शरण लेने पर विवश हो चुकी थी—जिस पुनरुद्धार का मसीहा ने वचन दिया था, वह संपन्न हो चुका था।

की साम्यकारिणी व्यवस्थाओं, उसके अपने आदर्श और उसके जीवन की पवित्रता ने लोगों को उनके आलस्य से जगा दिया था, समस्त भारत-मंडल में पुनर्जीवित करनेवाली जीवनी-शक्ति की एक चिनगारी घूमने लगी थी, और अतीत के पक्षपाती अन्य राजा लोग, मथुरा के प्रजापीड़क राजा के विवश करने से, उनको अपने जालों में फँसाने और उन्हें दुःख देने का निरंतर यत्न कर रहे थे; क्योंकि वे उठती हुई लोकप्रिय लहर के सामने अपने राजसिंहासनों तथा अपने अधिकार को काँपता हुआ अनुभव करते थे।

परंतु उन्हें किसी बात में भी सफलता न हुई। ऐसा जान पड़ता था, मानो किसी ऐसी शक्ति ने, जो उन सबसे प्रबल है, उनके संकल्पों को विफल करने और उन बहिष्कृत लोगों की रक्षा करने का निश्चय कर रक्खा है।

कई बार ऐसा होता था कि सारे-के-सारे गाँव कृष्ण और उसके शिष्यों को पकड़ लाने के लिये भेजे हुए सैनिकों के विरुद्ध उठकर उनको खदेड़ देते, और कई बार सैनिक स्वयं ही, भविष्यद्वक्ता के दिव्य शब्द से प्रोत्साहित होकर, अपने शस्त्रादि छोड़ उससे क्षमा-याचना करते थे।

एक दिन यहाँ तक हुआ कि इस सुधारक के विरुद्ध भेजी हुई सेना के एक सरदार ने, जिसने डर और प्रलोभन, दोनों में दृढ़ रहने की प्रतिज्ञा की थी, कृष्ण को एक एकांत स्थान में अचानक जा घेरा। वहाँ वह उसकी उत्तुंग वृत्ति को देखकर इतना प्रभावित हुआ कि उसने, अपने अधिकार के सारे चिह्नों का फेंककर, उससे प्रार्थना की कि मुझे अपने भक्तों की मंडली में प्रविष्ट कर लिया जाय। उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई, और उस दिन से इस नवीन मत का व्यग्र शिष्य और रक्षक उससे बढ़कर और कोई न था।

उसका नाम सरवस्त (Sarawasta) था।

प्रायः कृष्ण अपने भक्तों में से, अत्यंत संकट के समयों में उनकी परीक्षा करने के लिये, उन्हें अकेले छोड़कर, अंतर्द्धान हो जाता, और फिर उनके बैठते हुए हृदयों को खड़ा करने और उन्हें भय से बाहर निकालने के लिये सहसा उनके बीच पुनः प्रकट हो जाता था।

उसकी अनुपस्थिति में इस छोटे-से समाज का शासन अर्जुन करता था। वही यज्ञ और प्रार्थना में गुरु का स्थान ग्रहण करता था, और सभी लोग प्रसन्नतापूर्वक उसकी आज्ञाओं का पालन करते थे।

परंतु, जैसे हम पहले कह चुके हैं, हमारे लिये कृष्ण के जीवन के कार्य इतने आवश्यक नहीं, जितना कि उसकी व्यवस्थाओं और उसके कर्तव्यानुराग का ज्ञान है।

वह किसी नवीन धर्म की प्रतिष्ठा के लिये नहीं आया था; क्योंकि परमेश्वर उस बात को नष्ट नहीं कर सकता था, जिसको वह एक बार सदा के लिये अच्छा कह चुका और जिसका वह प्रकाश कर चुका था। उसका उद्देश्य केवल पुराने को उन सारी दुष्टताओं और सारी अशुचिताओं से साफ़ कर देना था, जिनको मनुष्यों की प्रतारणाओं ने कई युगों से शनैः-शनैः घुसेड़ दिया था, और प्राचीन के पक्षपातियों की सारी घृणा और सारे विरोध के होते भी उसने सफलता प्राप्त की।

उसकी मृत्यु के समय सारे भारत ने उसके मत और उसके सिद्धांतों को ग्रहण कर लिया था; एक उज्ज्वल, सरल और अपने परिणामों में सफल धर्म सारी श्रेणियों में फैल गया था, उनका आचरण शुद्ध हो गया था, और पाप की पराजित आत्मा अपने तमसावृत निवास की शरण लेने पर विवश हो चुकी थी—जिस पुनरुद्धार का ब्रह्मा ने वचन दिया था, वह संपन्न हो चुका था।

सर्वसाधारण को संबोधन करते समय कृष्ण की शिक्षा सरल और प्राकृत होती थी; परंतु अपने शिष्यों से संभाषण करते समय वह बड़ी ही उच्च और दार्शनिक हो जाती थी। इसी दुहरी दृष्टि से अब मैं कृष्ण पर विचार करनेवाला हूँ।

तेरहवाँ अध्याय

जनता के प्रति कृष्ण की शिक्षाएँ—धीवर का दृष्टांत—विचार तथा प्रचार

इस हिंदू-परित्राता की सुपरिचित शिक्षा में दृष्टांत एक बहुत बड़ा काम करता है। सर्वसाधारण से संभाषण करते समय कृष्ण इस सांकेतिक रूप को अच्छा समझता था; क्योंकि वे आत्मा के अमरत्व और भावी जीवन पर उसके दार्शनिक उपदेशों को उतनी सुगमता से नहीं समझ सकते थे।

बुद्धि को स्पर्श करने और इसी उद्देश्य के लिये बीच में लाए हुए विशेष व्यक्तियों के कर्म से नैतिक आदर्श निकालने की यह रीति पूर्वी स्वभाव के सदृश ही है, और हम जानते हैं कि आख्यान और अलंकार एशियाई साहित्य की उपज है।

हम समझते हैं कि कृष्ण के लोकप्रिय उपदेशों को, उसके अत्यंत विख्यात दृष्टांतों में से एक, अर्थात् धीवर के दृष्टांत, को उद्धृत कर देने से बढ़कर और कोई चीज़ समझने योग्य न बनावेगी। इस दृष्टांत का भारत में इतना सम्मान और प्रतिष्ठा है कि यह बच्चों को बहुत छोटी आयु में ही स्मरण करा दिया जाता है।

धीवर का दृष्टांत—

"गंगा-तट पर, उस स्थान से ऊपर, जहाँ इसका पवित्र प्रवाह सहस्रों शाखाओं में बँट जाता है, दुर्गा नाम का एक दीन धीवर रहता था।

"सवेरा होते ही वह धर्म-पुस्तकों के आदेशानुसार पवित्र नदी में स्नान करने जाता और हाथ में कुश का ताज़ा तिनका रख 'भूर्भुवः स्वः' से आरंभ होनेवाली पवित्र सावित्री का श्रद्धापूर्वक जप करता था। तब आत्मा और शरीर को इस प्रकार पवित्र करने के उपरांत वह अपने बड़े परिवार का पेट पालने के निमित्त साहसपूर्वक काम करने जाता।

"उसका विवाह एक रूपवती कन्या से उस समय हुआ था, जब कि वह बारह वर्ष की थी। परमेश्वर ने उसे उससे छः पुत्र और चार पुत्रियाँ दी थीं। बच्चों को देख उसे बड़ा आनंद प्राप्त होता था; क्योंकि वे उसी के सदृश धर्मात्मा और सुशील थे।

"उसका सबसे बड़ा लड़का अभी से नौका चलाने और जल फेकने में उसकी सहायता करने लगा था, और उसकी पुत्रियाँ, अंतःपुर में बैठकर वस्त्र बनाने के लिये बकरी के लंबे और कोमल बाल काता करतीं, और उनके भोजन के लिये, अदरक, धनिया और केसर कूट, उनमें लाल मिर्च का रस मिला, मछली पकाने के लिये मसाला तैयार करतीं।

"निरंतर परिश्रम करने पर भी परिवार निर्धन ही था; क्योंकि दुर्गा की भद्रता और उसके सद्गुणों से ईर्ष्या रखने के कारण दूसरे कैवर्तों ने उसके विरुद्ध एक जत्था बना रक्खा था, और सदा अपने दुर्व्यवहार से उसे दुःख देने का यत्न करते रहते थे।

"कभी वे उसके जालों को उलझा देते, और रात में उसकी नौका को खींचकर रेत में फसा देते, ताकि उसका सारा दिन उसे निकालने में ही लग जाय।

"जब वह मछलियाँ लेकर नगर में बेचने के लिये जाता, तब रास्ते में वे बलात् उससे मछलियाँ छीन लेते, या उन्हें मिट्टी में फेंक देते, ताकि उनको इस प्रकार मैली देखकर कोई भी मोल न ले।

"बहुत बार दुर्गा उदास होकर अपनी झोपड़ी में लौट आता, और सोचता कि न मालूम मैं अपने कुटुंब की आवश्यकताओं को पूरा करने में कब समर्थ हूँगा। इस पर भी, जो भी अच्छी-से-अच्छी मछली वह पकड़ता, उसे सदा साधु-महात्माओं की भेंट करता, जो भी भूखा-प्यासा उसके द्वार पर आता, उसे अपने यहाँ विश्राम देता और जो भी थोड़ा-बहुत भोजन उसके पास होता, उसे उसके साथ बाँट खाता। उसके रूखे-सूखे खाने पर उसके शत्रु सदा ठट्ठा किया करते, और जो कोई भी भिखमंगा उन्हें मिलता, उसे यह कहकर उसके पास भेज देते—जाओ, दुर्गा को ढूँढ लो, वह भेस बदले हुए एक राजा है, और केवल मनोलोलता के लिये ही मछली पकड़ता है।

"इस प्रकार वह अपनी ही उत्पन्न की हुई दीनता पर हँसी उड़ाते।

"परंतु सारे संसार पर भारी संकट आया। एक भीषण दुर्भिक्ष ने समस्त देश को नष्ट कर दिया; क्योंकि धान और अन्य छोटे नाज पिछली फ़सल में बिलकुल मारे गए थे। दुर्गा के शत्रु बैंकर भी शीघ्र ही उसके समान ही दुखी हो गए, और अपनी भारी विपत्ति में उन्हें उसे दुःख देने का सारा विचार बिलकुल भूल गया।

"एक दिन सायंकाल वह दीन मनुष्य, कोई मछली न मिलने के कारण, गंगा से ख़ाली हाथ लौट रहा था। उसे घोर चिंता हो रही थी कि झोपड़ी में आज खाने के लिये कुछ भी नहीं। मार्ग में उसे इमली के वृक्ष के नीचे रो-रोकर माँ को पुकारता हुआ एक बच्चा पड़ा मिला। दुर्गा ने उससे पूछा—तू कहाँ से आया है, और तुझे यहाँ कौन अकेला छोड़ गया है?

"बच्चे ने उत्तर दिया—मेरी मा मुझे यह कहकर यहाँ छोड़ गई है कि मैं तेरे खाने के लिये कुछ ढूँढ लाऊँ।

"दुर्गा को उस दीन बालक पर दया आई। वह उसे उठाकर घर ले आया। उसकी भार्या बड़ी सुशीला और दयावती थी। वह कहने लगी, आपने इस बालक को भूखों मरने से बचाकर बड़ा उत्तम काम किया है।

"परंतु घर में न चावल ही थे और न भूनी हुई मछली ही। उस दिन युवती कन्याओं के हाथों ने खाद्य द्रव्य को पीसते हुए सिल-बट्टे से सुरीली आवाज़ नहीं निकाली थी।

"आकाश में चंद्रमा चुपचाप चमक रहा था; सारा कुटुंब सायं-काल की प्रार्थना के लिये एकत्र हुआ।

"अकस्मात् वह बालक गाने लगा—

"जिस प्रकार शटक (Cataca)-फल जल को शुद्ध कर देता है, वैसे ही सुकर्म आत्मा को पवित्र करते हैं। दुर्गा, अपने जाल ले; तेरी नाव गंगा में तैर रही है, और मछलियाँ तेरी राह देख रही हैं।

"आज चंद्रमा की तेरहवीं रात्रि है, हाथी की छाया पूर्व की ओर पड़ती है; पितर मधु, घृत, और भात माँग रहे हैं; उनकी भेंट अवश्य देनी चाहिए। हे दुर्गा, अपने जाल ले, तेरी नाव गंगा में है, और मछलियाँ उपस्थित हैं।

"तू दीनों को एक भोज देना; वहाँ अमृत पवित्र गंगा के जल के सदृश प्रचुरता से बहेगा। तू रुद्रों और मृत पितरों (Adytias) को लाल बालोंवाली बकरी का पिंड दे; क्योंकि परीक्षा के दिन पूरे हो चुके हैं। हे दुर्गा, अपने जालों को लेकर तेरह बार डाल; तेरी नौका गंगा पर तैर रही है, और मछलियाँ तेरी प्रतीक्षा कर रही हैं।

"दुर्गा चकित रह गया; उसने इसे ऊपर से आई हुई अपने लिये एक सूचना समझा। वह जाल लेकर अपने सबसे बलवान् पुत्र के साथ उतरकर पानी के किनारे पर पहुँचा।

"बालक भी उनके पीछे-पीछे हो लिया, वह भी उनके साथ नाव में जा बैठा, और चप्पू लेकर तरणी को चलाने लगा।

"तेरह बार जल में जाल फेंके गए, और प्रत्येक बार नाव, मछलियों के बोझ से झुककर, किनारे पर लौट आने और मछलियों को वहाँ उतार जाने के लिये विवश हुई। अंतिम बार बालक अंतर्द्धान हो गया।

"दुर्गा हर्ष से फूला नहीं समाता था। वह चटपट अपने बच्चों की भूख मिटाने के लिये घर दौड़ा गया; फिर जब उसे स्मरण आया कि और भी अनेक दुखिया ऐसे हैं, जिनको सहायता की आवश्यकता है, तो वह अपने साथ किए हुए उनके सारे अपकारों को भुलाकर चटपट अपने पड़ोसी केवटों के पास दौड़ा हुआ गया, ताकि अपने अधिक सामान को उनके साथ बाँट खाय।

"उनको दुर्गा की ऐसी उदारता में विश्वास करने का साहस नहीं होता था; परंतु वे झुंड-के-झुंड एकत्र हो गए, और दुर्गा ने अद्भुत रीति से पकड़ी हुई मछलियों के अवशिष्ट भाग को उसी समय उनमें बाँट दिया।

"जितने समय दुर्भिक्ष रहा, दुर्गा न केवल अपने बंधुओं को ही, प्रत्युत जो भी दीन-दुखी उसके द्वार पर आते, उन सबको भोजन देता रहा। जितनी मछलियों की उसे इच्छा होती, उतनी उसके गंगा में जाल डालते ही तत्क्षण उसमें आ फँसतीं।

"दुर्भिक्ष समाप्त हो गया; पर परमेश्वर का हाथ वैसे ही उसकी रक्षा करता रहा। अंत को वह इतना धनाढ्य हो गया कि उसके खर्चे से ही ग्राम का एक ऐसा दर्शनीय और महिमाशाली मंदिर

बनवाया कि भूमंडल के सभी भागों से यात्रियों के दल-के-दल उसे देखने और उपासना करने के लिये वहाँ आने लगे।

"हे मथुरानिवासियो, तुम्हें भी इसी प्रकार निर्बलों को बचाना, एक दूसरे की सहायता करना और शत्रु की विपत्ति में उसके अपराधों को कभी न याद करना चाहिए।"

उसके बहुसंख्यक प्रवादों में से, जो उसकी लौकिक शिक्षाओं में बिखरे पड़े हैं, थोड़े से, दैवयोग से, यहाँ इकट्ठे किए हैं—

"जिन मनुष्यों में आत्म-संयम नहीं, वे अपने कर्तव्यों को पूरा करने में असमर्थ हैं।"

"जिस सुख और ऐश्वर्य की अंतरात्मा अनुमति न दे, उसका परित्याग कर देना चाहिए।"

"हम अपने पड़ोसियों के जो अपकार करते हैं, वे छाया की तरह हमारे पीछे-पीछे लगे फिरते हैं।"

"जो मनुष्य अपने कर्मों का कारण ईश्वर को ठहराना नहीं जानता, उसके सारे सर्वोत्तम कर्म अलीक और उसका ज्ञान असार है।"

"न्यायपरायण मनुष्य के सभी कामों में लोक-हित का भाव होना चाहिए; क्योंकि जगदीश्वर की दृष्टि में इसी का सबसे अधिक महत्त्व है।"

"जिसके हृदय और आत्मा में नम्रता है, उससे परमेश्वर प्रेम करता है; उसे और किसी वस्तु का प्रयोजन नहीं।"

"जिस प्रकार शरीर मांस से पुष्ट होता है, उसी प्रकार आत्मा धर्म से बलवान् होती है।"

"अपने पड़ोसी की स्त्री की कामना करनेवाले से बढ़कर और कोई पापी नहीं।"

हम आगे दिए प्रवादों की ओर ध्यान दिलाते हैं, जिनको बहुत-से लोग अभी कल के ही समझते हैं—

"जिस प्रकार पृथ्वी उन लोगों का पोषण करती है, जो उसे अपने पाँव तले रौंदते और उसकी छाती को हल से चीरते हैं, उसी प्रकार हमें भी बुराई का बदला भलाई में देना चाहिए।"

"यदि तुम भले लोगों की संगति में रहते हो, तो तुम्हारा उदाहरण व्यर्थ है। बुरों के सुधार के लिये उनमें रहने से मत डरो।"

"यदि एक निवासी सारे ग्राम के विनाश का कारण हो सकता है, तो उसे निकाल देना चाहिए; यदि एक ग्राम सारे प्रांत का नाश कर सकता है, तो उसे नष्ट कर डालना चाहिए; परंतु यदि प्रांत आत्मा की हानि करे, तो उसका परित्याग कर देना चाहिए।"

"दुष्टात्माओं की चाहे हम कितनी ही सेवा करें, उनसे की हुई भलाई उन जल पर लिखे अक्षरों के सदृश है, जो लिखते ही मिट जाते हैं। परंतु भलाई को भलाई के लिये ही करना चाहिए, और उसके बदले की प्रत्याशा पृथ्वी पर नहीं करनी चाहिए।"

"जब हम मर जाते हैं, तब हमारा धन वहीं रह जाता है; हमारे संबंधी और मित्र भी केवल मरघट तक ही हमारे साथ जाते हैं; परंतु हमारे पुण्य और पाप, हमारे अच्छे और बुरे कर्म दूसरे जन्म में भी हमारे साथ जाते हैं।"

"धर्मात्मा पुरुष एक विशाल वट-वृक्ष के सदृश है, जिसकी हित-कारिणी छाया उसको घेरनेवाले पौदों को तेज और जीवन प्रदान करती है।"

(आप धर्माधर्म-विवेकी और उक्तियों के योजक महाशयों के मत में तो 'परिणाम से ही साधन के उचित या अनुचित होने का निर्णय होता है !')

"केवल अनंत और असीम ही अनंत और असीम को जान सकता है, केवल परमात्मा ही परमात्मा को जान सकता है।"

"साधु पुरुष को दुष्टात्मा की चोटों के सामने गिर पड़ना चाहिए, जैसे लकड़हारे की चोट से गिरा हुआ चंदन का पेड़ उसको आहत करनेवाले कुल्हाड़े को सुगंधित कर देता है।"

अब साधु पुरुष के प्रति, जो अपने को परमेश्वर पर छोड़ देता और सनातन पुरस्कार का भागी बनता है, कृष्ण के उपदेश सुनिए—

"वह प्रतिदिन ईश्वर-भक्ति और उपासनादि सारे धर्मकृत्य करे, और अपने शरीर को अतीव श्लाघ्य कठिनताओं में डाले।"

"वह सांसारिक यश और प्रतिष्ठा को विष से भी भयानक समझे, और संसार के ऐश्वर्य के प्रति केवल तिरस्कार का भाव रक्खे।"

"उसे जानना चाहिए कि आत्म-सम्मान और जनता-प्रेम से बढ़कर और कोई चीज़ नहीं।"

"वह कभी क्रोध न करे, और किसी से भी, यहाँ तक कि पशुओं से भी, दुर्व्यवहार न करे, प्रत्युत हमें पशुओं का, उनकी उस अपूर्णता के कारण, जिसमें जगदीश्वर ने उन्हें रक्खा है, सम्मान करना चाहिए*।"

---

* ईसाई-धर्म की अत्यंत महत्त्वपूर्ण सेवाओं में से एक यह थी कि हमारे हितैषी प्रेम को बहुत उद्दीप्त करने के अतिरिक्त उसने विनोद या केवल अवसर के विषय के तौर पर मानव-जीवन के नाश करने को निश्चित और सिद्धांत रूप से पाप ठहराया, और इस प्रकार एक नया आदर्श बनाया, जिससे ऊँचा पहले संसार में कभी न हुआ था। Lecky, History of European Morals, vol, ii, p 21—2.

"उसे ईर्ष्या, विषयासक्ति और लोभ को मारकर भगा देना चाहिए।"

"वह नाचने, गाने, बजाने, मदिरा और जुए को छोड़ दे।"

"वह कभी किसी की निंदा-चुगली और कपट-छल न करे।"

"वह स्त्रियों पर कभी काम-दृष्टि न डाले, और न उनका आलिंगन ही करे।"

"वह कभी किसी से कलह न करे।"

"उसका घर, उसका भोजन और उसके कपड़े सादे और सुथरे हों।"

"उसका दायाँ हाथ दीन-दुखियों के लिये सदा खुला रहे, और वह अपने किए उपकार की कभी शेखी न मारे।"

"जब कोई दरिद्र उसके द्वार पर आवे, तब वह उसका स्वागत करे, पाँव धोने के लिये उसे जल दे, उसे आप भोजन लाकर खिलावे, और जो बच रहे उसे आप खावे; क्योंकि दरिद्र लोग ईश्वर के प्यारे होते हैं।"

"परंतु, जीवन पर्यंत वह, किसी रीति से भी दूसरों को पीड़ा न दे; अपने मानव-बंधुओं की रक्षा, सहायता और उनसे प्रेम करे, इन्हीं से ही वे सद्गुण निकलते हैं, जो परमेश्वर को सबसे अधिक भाते हैं।"

इस रीति से कृष्ण ने इस जाति में पवित्र आचरण के निर्दोष सिद्धांतों का प्रचार किया, इस प्रकार उसने अपने श्रोताओं को भूतानुकंपा, आत्मनिग्रह और आत्मसम्मान के महान् सिद्धांतों की ऐसे समय में दीक्षा दी, जब कि पश्चिम के निर्जन देशों पर अभी जंगल के असभ्य समूहों का ही अधिकार था।

अब कहिए, हमारी सभ्यता ने, जो अपनी प्रगति और अपने विज्ञप्रबोध पर इतना अभिमान करती है, इन श्रेष्ठ शिक्षाओं में क्या वृद्धि की है?

चौदहवाँ अध्याय

कृष्ण की दार्शनिक शिक्षा

इस बात को जानने के लिये जो चित्तप्रबोध हम तक प्रतिफलित हुआ है, वह पूर्व में बहुत पहले विद्यमान था, कृष्ण के उसके शिष्यों के साथ, विशेषतः अर्जुन के साथ, श्रेष्ठ संवादों को पढ़ने की आवश्यकता है। जो मूल-संस्कृत में, विशेषतः भगवद्गीता में हैं।

अत्यंत उच्च तत्त्वज्ञान की समस्याएँ, अत्यंत पवित्र आचरण, आत्मा का अमरत्व, परमेश्वर के नियम के अनुसार जीवन व्यतीत करनेवाले मनुष्य का भावी अदृष्ट, इन सब बातों का इन श्रेष्ठ एकांत कथनों में वर्णन है। इनमें श्रोता का काम केवल उत्तर देना ही है, जिससे शिक्षक को नए अध्याय आरंभ करने का अवसर मिलता है।

स्थानाभाव से हम यहाँ इन महान् विषयों का यथोचित विस्तार के साथ वर्णन करने में असमर्थ हैं, इसलिये हम आत्मा के अमरत्व पर कृष्ण का एक ही संवाद यहाँ उद्धृत करते हैं। इसी से दूसरों का भी निर्णय हो जायगा।

अर्जुन—

"हे कृष्ण, क्या तू यह नहीं बता सकता कि वह निर्मल रस क्या है, जो हमें परमेश्वर से प्राप्त हुआ है, और जो फिर उसी में वापस लौट जायगा?"

कृष्ण —

"आत्मा जीवन का मूलतत्त्व है, जिसका ज्ञानस्वरूप परमात्मा ने देहों को सजीव करने के लिये प्रयोग किया है। प्रकृति जड़ और नश्वर है; आत्मा सोचता और काम करता है, और अविनाशी है।

विचार से इच्छा और इच्छा से कर्म उत्पन्न हुआ है, इसी से ऐहिक प्राणियों में मनुष्य सबसे अधिक पूर्ण है; क्योंकि वह सच को झूठ से, न्याय को अन्याय से और पुण्य को पाप से पहचानता है, और इसी जानने के कारण मानसिक सृष्टि में कर्म करने में स्वतंत्र है।

"यह अंतर्वर्ती ज्ञान, यह इच्छा, जो अपने को उस चीज़ की ओर, जिसे यह पसंद करती है, विचार द्वारा ले जाती है, और जिसको यह नापसंद करती है, उससे अपने को हटा लेती है, और आत्मा को उसके कर्मों का और उसके विकल्प का उत्तरदाता बना देती है, और इसी कारण परमेश्वर ने पुरस्कारों और दंडों की व्यवस्था की है।

"जब आत्मा इसको मार्ग दिखानेवाली सनातन और पवित्र ज्योति का अनुगमन करती है, तो स्वभावतः ही यह पुण्य की ओर झुक जाती है।

"इसके विपरीत, जब यह अपने मूल को भूल कर अपने को बाह्य प्रभावों के अधीन कर देती है, तो पाप का प्राधान्य हो जाता है।

"जीवात्मा अमर है, और इसका उस परमात्मा में वापस लौट आना आवश्यक है, जिसमें से यह निकली थी; परंतु यह मनुष्य को निर्मल और पवित्र दी गई थी, इसलिये यह उस समय तक पुनः ब्रह्मधाम में नहीं पहुँच सकता, जब तक कि इसके उन सब अपराधों और दोषों की शुद्धि न हो जाय, जो इसने प्रकृति के संयोग से किए हैं।"

इसकी सबसे बड़ी आकांक्षा यह होती है कि मैं अपने आदि-स्रोत में लौटकर सर्वभूतांतरात्मा में विलीन हो जाऊँ।"

अर्जुन—

"जीवात्मा तो परमात्मा का एक अंश है, फिर उसमें न्यूनता कहाँ से आ जाती है?"

कृष्ण—

"अपने विशुद्ध भाव में जीवात्मा अपूर्ण नहीं है; इस श्रेष्ठ अहंकार की ज्योति का अंधकार इसका अपना नहीं; यदि जीवात्मा के स्वभाव में न्यूनता अथवा दोष का बीज होता, तो कोई भी चीज़ उसे नष्ट न कर सकती, और इस बीज के विकसित हो जाने से आत्मा शरीर के सदृश अनित्य और नश्वर हो जाती। प्रकृति के साथ इसका संयोग होने से ही आत्मा में दोष आ जाता है। परंतु उस दोष का इसके तत्त्व पर कुछ परिणाम नहीं होता; क्योंकि यह उसके कारण में, जो परमेश्वर है, नहीं।"

इच्छा न रहते भी हमें इस अवतरण को यहाँ रोकना पड़ता है। इसमें आगे चलकर कृष्ण अध्यात्म विद्या की अतीव सूक्ष्म बातें कहते हैं। हम समझते हैं कि उनका तर्क सिवा उन लोगों के, जिन्होंने अपना जीवन इस विद्या के अध्ययन में तथा दर्शनशास्त्र की गहराइयों को खोजने में लगाया है, पूर्ण रूप से और किसी की समझ में न आवेगा।

इसके अतिरिक्त इस हिंदू-सुधारक की पुस्तक से जो सिद्धांत निकालने की हम प्रतिज्ञा करते हैं, उनको पूर्ण रूप से प्रकट करने के लिये यह सरल दृष्टिपात ही पर्याप्त है।

उनका सार यह है —

कृष्ण भारत में आत्मा की अमरता, स्वतंत्र इच्छा अर्थात् विचार की स्वतंत्रता, शरीर की स्वाधीनता, पुण्य तथा पाप में, और भावी

जीवन में मिलनेवाले पुरस्कार तथा दंड में विश्वास का प्रचार करने आया था।

वह लोगों को भूत-दया, परस्पर प्रेम, आत्म-सम्मान, निष्काम पुण्य और जगत्-स्रष्टा की अक्षय सदिच्छा में विश्वास की शिक्षा देने आया था।

उसने प्रतिहिंसा का निषेध किया, बुराई के बदले भलाई करने की आज्ञा दी, दुर्बलों को समाश्वासन दिया, दुखियों और पीड़ितों का पालन और रक्षण किया और अत्याचार को दबाया।

वह दरिद्रता का जीवन व्यतीत करता था, और दरिद्रों से प्रेम करता था। वह आप सदाचारी और सदाचार की शिक्षा देता था।

हमें यह कहने में कुछ भी संकोच नहीं होता कि वह प्राचीन काल का सबसे महान् व्यक्ति था, और उसी के पुनरुद्धार के कार्य से, अपर काल में, ईसा ने उसी प्रकार प्रत्यादेश ग्रहण किया था, जैसा कि मूसा ने मेनस और मनु के कार्यों से ग्रहण किया था।

अब दो-चार पंक्तियों में ही शायद, बहुत संक्षेप से, इस परित्राता का वर्णन समाप्त कर हम भारत में उनके उत्तराधिकारियों के कार्यों का उल्लेख करेंगे। इन लोगों ने अपने गुरु के श्रेष्ठ नैतिक उपदेशों को शनैः शनैः भुलाकर जनता को अपनी प्रभुता के हितार्थ, नैतिक अपकर्ष और अभिभव में डुबा दिया, जिससे प्राचीन पुरोहिताधिपतियों के निरंकुश और दर्प कर जानेवाले शासन, जो, जैसा कि हम दिखला चुके हैं, पौराणिक हिंदू-धर्म की उपज हैं, संभव हो गए।

पंद्रहवाँ अध्याय

कृष्ण का रूपांतर—उसके शिष्य उसका नाम जेज़्यूस (Jezeus) शुद्ध तत्त्व रखते हैं

एक दिन, जब मथुरा के अत्याचारी राजा ने कृष्ण और उसके शिष्यों के विरुद्ध एक बड़ी सेना भेजी, शिष्यों ने, भयभीत होकर, उस भय से बचने के लिये, जो उन्हें डरा रहा था, भागने की सोची।

स्वयं अर्जुन की भक्ति भी लड़खड़ाती हुई दिखाई देती थी; कृष्ण, जो उनके निकट ही ईश्वर-प्रार्थना में मग्न था, उनकी शिकायतों को सुनकर, उनके बीच जा खड़ा हुआ, और बोला—

"तुम्हारी आत्माओं पर अनर्थक भय क्यों छा गया है? क्या तुम्हें अभी तक यह मालूम नहीं हुआ कि तुम्हारे साथ कौन है?"

और, तब वह अपने भौतिक शरीर को छोड़कर उनके नेत्रों के सम्मुख पूर्ण दिव्य विभूति में प्रकट हुआ: उसके माथे पर एक ऐसा दीप्ति-मंडल था कि अर्जुन और उसके साथी उसको सहन करने में असमर्थ होकर मुँह के बल पृथ्वी पर लेट गए और अपने अयोग्य दोष को क्षमा कर देने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करने लगे।

फिर कृष्ण, अपना पहला रूप धारण कर, कहने लगा—"क्या तुम्हारी अब मुझमें भक्ति नहीं है? स्मरण रक्खो, मैं, चाहे उपस्थित हूँ चाहे अनुपस्थित, सदा तुम्हारी रक्षा के लिये तुम्हारे साथ रहूँगा।"

और, उन्होंने, जो कुछ देखा था, उस पर विश्वास करके, इसके पश्चात् कभी उसकी शक्ति में संदेह न करने की प्रतिज्ञा की; उन्होंने उसका नाम जेज़ूस रख दिया, जिसका अर्थ विशुद्ध ईश्वरीय तत्त्व की संतान है ।

(भगवद्गीता)



सोलहवाँ अध्याय

कृष्ण और निचदली (Nichdali) और सरस्वती नाम की दो धर्मात्मा स्त्रियाँ

कृष्ण अपने शिष्यों के साथ मथुरा के परोस में फिरता था। उसके दर्शनों के लिये उत्सुक होकर बहुत-से लोग पीछे-पीछे यह कहते दौड़ते थे—

"चलो, उसके दर्शन करें, जिसने हमें दुःख देनेवाले अत्याचारी कंस से छुड़ाया है।" कंस अपने अपराधों का दंड भोग चुका था, और कृष्ण ने उसे मथुरा से निकाल दिया था।

लोग यह भी कहते थे—"उसके दर्शन करो, जो मृतकों को जिलाता, लँगड़ों, बहरों और अंधों को चंगा करता है।"

तब बहुत ही नीच कुल की दो स्त्रियाँ कृष्ण के पास आईं। उनके पास एक पीतल के पात्र में सुगंधित द्रव्य था। उन्होंने उसको कृष्ण के सिर पर छिड़ककर उसका पूजन किया।

लोग उनकी धृष्टता की चर्चा करने लगे; पर कृष्ण ने उनसे कहा—"हे स्त्रियो! मैं तुम्हारी भेंट स्वीकार करता हूँ, हृदय से दी हुई थोड़ी-सी चीज़ भी दिखलावे से दिए हुए सारे ख़ज़ाने से बढ़कर है। जो इच्छा हो, मुझसे माँगो।"

उन्होंने उत्तर दिया—"प्रभो! हमारे पतियों के मुख चिंता से मुरझा रहे हैं, हमारे घरों में सुख वास नहीं करता; क्योंकि जगदीश्वर ने हमें माता बनने का सौभाग्य नहीं दिया।"

कृष्ण ने उनको अपने पाँव पर से उठाकर कहा—"तुमने मुझमें विश्वास किया है, इसलिये तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी, और सुख तुम्हारे घर में पुनः वास करेगा।"

इसके कुछ काल उपरांत निचदली (Nichdali) और सरस्वती-नामक इन दोनों स्त्रियों के एक-एक पुत्र उत्पन्न हुआ, और ये दोनों लड़के पीछे से महात्मा बन गए। हिंदू लोग अब तक भी इनका सुदामा और सुदास नाम से पूजन करते हैं।

(भगवद्गीता)



सत्रहवाँ अध्याय

कृष्ण गंगा-स्नान के लिये जाता है—उसकी मृत्यु

उद्धार का कार्य संपन्न हो गया; सारा भारत अपनी नाड़ियों में तरुण रक्त की गति का अनुभव करने लगा; सब कहीं प्रार्थना से परिश्रम पवित्र होने लगा; आशा और श्रद्धा ने सभी हृदयों को गरम कर दिया।

कृष्ण ने समझ लिया कि मेरे लिये अब भूतल को छोड़कर अपने भेजनेवाले की गोद में लौट जाने का समय आ गया।

अपने शिष्यों को साथ आने से रोककर एक दिन वह गंगा-स्नान के लिये चल दिया, ताकि अपने पांचभौतिक कोश के उन सारे धब्बों को धो डाले, जिनका अतीत काल के पक्षपातियों के विरुद्ध नाना प्रकार के युद्धों के करने से उस पर लग जाना अनिवार्य था।

भगवती गंगा के तट पर पहुँचकर उसने उसमें तीन डुबकियाँ लगाईं, फिर, झुककर और आकाश की ओर टक-टकी बाँधकर, उसने प्रार्थना की, और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा।

इस स्थिति में उसे उन लोगों में से एक का चलाया हुआ बाण आकर लगा, जिनके अन्यायों को उसने खोलकर रख दिया था, और जो, उसकी गंगा-यात्रा का समाचार पा, एक बड़ी सेना के साथ, उसकी हत्या के संकल्प से उसके पीछे आए थे।

इस मनुष्य का नाम अंगद था। साधारण लोगों का विश्वास है कि अपने इस पाप के लिये उसे इस पृथ्वी पर सदा जीते रहने का शाप मिला है। वह गंगा-तट पर घूमता रहता है, और दूसरा कोई भोजन न मिलने के कारण सदा गीदड़ तथा अन्य अपवित्र जंतुओं के सहवास में शव खाकर ही पेट भरता है।

कृष्ण के शव को उसके मारनेवाले ने वृक्षों की शाखाओं में लटका दिया, ताकि उसे चील और गिद्ध खा जायँ।

मृत्यु का समाचार फैल जाने पर कृष्ण का प्रिय शिष्य अर्जुन बहुत-से लोगों को लेकर उसके पवित्र शव को लेने आया। परंतु परित्राता का नश्वर शरीर अंतर्धान हो चुका था—निस्संदेह वह ब्रह्म-धाम में पहुँच गया था।...

और, जिस वृक्ष पर वह लटकाया हुआ था वह सहसा बड़े-बड़े लाल फूलों से भर गया था, और चारों ओर मीठी-मीठी सुगंधि छोड़ रहा था।

इस प्रकार कृष्ण की मृत्यु उन दुष्टों के हाथों हुई, जो उसके नियम को मानना नहीं चाहते थे, और जो अपने दुराचार और दंभ के कारण जनता में से बाहर निकाल दिए गए थे।

(भगवद्गीता और पुराण)

सत्रहवाँ अध्याय

कृष्ण गंगा-स्नान के लिये जाता है—उसकी मृत्यु

उद्धार का कार्य संपन्न हो गया; सारा भारत अपनी नाड़ियों में तरुण रक्त की गति का अनुभव करने लगा; सब कहीं प्रार्थना से परिश्रम पवित्र होने लगा; आशा और श्रद्धा ने सभी हृदयों को गरम कर दिया।

कृष्ण ने समझ लिया कि मेरे लिये अब भूतल को छोड़कर अपने भेजनेवाले की गोद में लौट जाने का समय आ गया।

अपने शिष्यों को साथ आने से रोककर एक दिन वह गंगा-स्नान के लिये चल दिया, ताकि अपने पांचभौतिक कोश के उन सारे धब्बों को धो डाले, जिनका अतीत काल के पक्षपातियों के विरुद्ध नाना प्रकार के युद्धों के करने से उस पर लग जाना अनिवार्य था।

भगवती गंगा के तट पर पहुँचकर उसने उसमें तीन डुबकियाँ लगाईं, फिर, झुककर और आकाश की ओर टक-टकी बाँधकर, उसने प्रार्थना की, और मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगा।

इस स्थिति में उसे उन लोगों में से एक का चलाया हुआ बाण आकर लगा, जिनके अन्यायों को उसने खोलकर रख दिया था, और जो, उसकी गंगा-यात्रा का समाचार पा, एक बड़ी सेना के साथ, उसकी हत्या के संकल्प से उसके पीछे आए थे।

इस मनुष्य का नाम अंगद था। साधारण लोगों का विश्वास है कि अपने इस पाप के लिये उसे इस पृथ्वी पर सदा जीते रहने का शाप मिला है। वह गंगा-तट पर घूमता रहता है, और दूसरा कोई भोजन न मिलने के कारण सदा गीदड़ तथा अन्य अपवित्र जंतुओं के सहवास में शव खाकर ही पेट भरता है।

कृष्ण के शव को उसके मारनेवाले ने वृक्षों की शाखाओं में लटका दिया, ताकि उसे चील और गिद्ध खा जायँ।

मृत्यु का समाचार फैल जाने पर कृष्ण का प्रिय शिष्य अर्जुन बहुत-से लोगों को लेकर उसके पवित्र शव को लेने आया। परंतु परित्राता का नश्वर शरीर अंतर्धान हो चुका था—निस्संदेह वह महा-धाम में पहुँच गया था।...

और, जिस वृक्ष पर वह लटकाया हुआ था वह सहसा बड़े-बड़े लाल फूलों से भर गया था, और चारों ओर भीनी-भीनी सुगंधि छोड़ रहा था।

इस प्रकार कृष्ण की मृत्यु उन दुष्टों के हाथों हुई, जो उसके सिद्धांत को मानना नहीं चाहते थे, और जो अपने दुराचार और दंभ के कारण जनता में से बाहर निकाल दिए गए थे।

(भगवद्गीता और पुराण)

अठारहवाँ अध्याय

समाधान के कुछ शब्द

जो कुछ मैंने कुमारी देवांगी और उसके पुत्र कृष्ण के विषय में कहा है, मैं नहीं समझता, कोई भी विचारशील प्राग्देशीय भाषा पंडित ऐसा निकलेगा, जो उसका थोड़ा-सा खंडन करने का भी साहस कर सके। निस्संदेह उन्होंने चिरकाल से यह समझ लिया है कि हिंदू-धर्म और कविता की आधुनिक पुराण-कथाओं, उस ह्रास और उन कुसंस्कारों का फल हैं, जिनको ब्राह्मणों ने अपने प्रभुत्व के लाभार्थ जनता की आत्माओं पर अंकित किया था। इसलिये यदि मैंने वीरता और साहस के उन सारे कार्यों को छोड़ दिया है, जिनका संबंध हिंदू-कवि कृष्ण से बताते हैं, तो इसका कारण यह है कि वे उस पूर्वीय कल्पना-शक्ति की पीछे की सृष्टि हैं, जो विचित्र बातों को गढ़ते समय किसी भी सीमा में नहीं रहती।

कृष्ण पर जो सबसे प्रसिद्ध और सबसे पुराना काव्य है, वह महाभारत है। यह हमारे संवत् के कोई दो सौ वर्ष पहले, अर्थात् इस हिंदू-सुधारक की मृत्यु के तीन सहस्र से भी अधिक वर्ष उपरांत लिखा गया था। इन काव्यों के मूल में यह कल्पना है कि ईश्वर सदा मानव-युद्धों और मानव-कार्यों को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने में और इस पृथ्वी पर भी धर्मियों को पुरस्कार और पापियों को दंड देने में लगा रहता है।

यही कल्पना प्राचीन मिसरी, यूनानी, और इबरानी सभ्यताओं में फैली हुई है। ये सभ्यताएँ, जैसा कि हम दिखला चुके हैं, उस युग की संतान हैं, जिसमें भारत ने, वेदों और कृष्ण के पवित्र ऐतिह्यों को भूलकर, अपने को संतों, वीरों और उपदेवताओं के हाथों में डाल दिया था।

कृष्ण के गुणागुण का ज्ञान प्राप्त करने के लिये हिंदू-काव्य का सर्वथा परित्याग करके विशुद्ध ब्रह्मज्ञान की पुस्तकों, ब्राह्मणों की शिक्षाओं और उनके देवालयों में सुरक्षित ऐतिह्यों को पढ़ने की परम आवश्यकता है। इसका निदर्शन करने के लिये मुझे अपने आधुनिक समयों से एक उदाहरण लेने की अनुमति दीजिए।

सोलहवीं शताब्दि में हमारे अंदर यह यत्न किया गया था कि काव्यों में मार्स (मंगल), (जूपीटर), (बृहस्पति) जूनो, वीनस (शुक्र), और मिनर्वा (सरस्वती) के स्थान में ईसा, प्रेरितों, देवदूतों और साधुओं को रख दिया जाय। टैसो (Tasso) का जेरूसलम डीलिवर्ड (Jerusalem delivered) हमारे सामने नमूना था।

यदि ऐसी रीति का प्रचार हो जाता (और इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि पूर्व में इसे अवश्य सफलता होती), तो क्या, दो या तीन सहस्र वर्ष के उपरांत, अतीत काल को खोदने की चेष्टा करनेवाले अन्वेषक, विशेषतः यदि पश्चिमी सभ्यताएँ नष्ट अथवा रूपांतरित हो चुकी होतीं या ईसाई धर्म का लोप हो चुका होता, तो ईसा, उसके प्रेरितों और उनके सिद्धांतों के विषय में कोई गंभीर मत बनाने के लिये, काव्य और उपाख्यान का पूर्ण परित्याग करने पर विवश न होते? क्या उन्हें इन श्रेष्ठ व्यक्तियों को हमारे सारे नागरिक और धार्मिक युद्धों में मिश्रित देखकर दुःख न होता, और क्या वे इन्हें कुसंस्कारों की सृष्टि समझ इनका अस्वीकार करने पर बाध्य न होते?

मेरे व्यवहार की रीति इससे भिन्न नहीं रही, और मैंने कृष्ण का अध्ययन केवल उसके दार्शनिक और नैतिक परिवर्तन से किया है। इसके अतिरिक्त विद्वान् ग्राउस जी, जो अब तक भारत में इनके ग्रंथों की नीति तथा धार्मिक सच्चाइयों के अध्ययन में लगे रहे हैं, इस पर केवल इसी दृष्टि से विचार करते हैं।

उन्नीसवाँ अध्याय

कृष्ण के उत्तराधिकारी—पौराणिक धर्म का उत्कर्ष और ह्रास

कृष्ण के आसन्न उत्तराधिकारी पुण्य कार्यों और आत्म-त्याग द्वारा अपने को पवित्र बनाते थे, और केवल भावी जीवन में ही आशा रखते हुए दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते थे। वे सदा तन और मन से उसी स्वर्गीय उद्देश्य में लगे रहते थे, जो उनका गुरु उनके लिये छोड़ गया था।

भारत के प्राचीन काल के उन ब्राह्मण-पुरोहितों की मूर्ति कितनी उज्ज्वल थी! उनकी उपासना कितनी पवित्र, कितनी उत्तुंग और जिस परमेश्वर की वे सेवा करते थे, उसके कितनी योग्य थी!

मैं दिखाऊँगा कि मानव-धर्म-शास्त्र और पौराणिक धर्म के अनुसार, अपने कर्तव्य कर्मों का करनेवाला पुरोहित कैसे अमरत्व प्राप्त कर सकता है; उसे किन-किन नैतिक सिद्धांतों का पालन करना चाहिए; उसके आचरण के अलंघनीय नियम कौन-कौन-से हैं। सारांश यह कि पुरातन-काल का पुरोहित क्या होता था। इस पुरोहित का बाद को प्रकृत ब्राह्मण के साथ मिलान करना मनोरंजन से शून्य न होगा।

कर्म के प्रयोजनों पर प्रश्न करते हुए, मनु स्वार्थ को बहुत कम प्रशंसाई बताकर रोकता है; परंतु फिर भी इस संसार में वह किसी को इससे रहित नहीं पाता।

वह कहता है—"संभाव्य लाभ की आशा से ही उद्यम की शक्ति उत्पन्न होती है; बड़े-से-बड़े त्यागों का उद्देश्य भी किसी वस्तु की प्राप्ति ही होता है; घोर तप और सारे सुकर्म पुरस्कार की आशा से ही उत्पन्न होते हैं।"

परंतु साथ ही वह यह भी कहता है—

"जिस व्यक्ति ने केवल ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये ही अपने सारे धर्मों का पालन किया है, और भविष्य के पारितोषिक की कोई प्रत्याशा नहीं रक्खी, उसे अनंत सुख की अवश्य प्राप्ति होगी।"

"सब धर्मों में मुख्य धर्म पहले वेदों का अध्ययन है, जो मनुष्यों पर प्रकाशित ब्रह्मा और कृष्ण के शब्द हैं।"

"श्रुति (ईश्वरीय ज्ञान) को सर्वोपरि प्रमाण मानना चाहिए। जो ब्राह्मण-पुरोहित परलोक में परमानंद का अभिलाषी है, वह उसे केवल इसी प्रकार प्राप्त कर सकता है कि परमेश्वर की आज्ञाओं में जो उसे अव्याख्येय जान पड़े, उसके सामने भी, उसे समझने का यत्न करने अथवा उस पर टिप्पणी किए बिना, सिर झुका दे।"

"जहाँ व्यवस्था चुप हो, वहाँ स्मृति के सामने भी सिर झुकावे जैसे यदि साधारण लोगों के लिये स्वार्थ और पुरस्कार की आशा से कर्म करने की आज्ञा है, तो पुरोहित (ब्राह्मण) के कर्मों का निमित्त सिवा ईश्वर के और कुछ न होना चाहिए। वह ईश्वरीय वाणी को, जो इस पर ईश्वर की इच्छा को प्रकट करती है, और जहाँ वेद चुप हो, वहाँ स्मृति को, आजन्म करना पथ-प्रदर्शक बनावे।"

स्वतंत्र विचारक (नास्तिक) इसके समय से पहले ही उन सुधारों का प्रचार करने लगे थे, जो पीछे से भारत में बुद्ध के द्वारा संपन्न हुए। मनु इन नास्तिकों की भर्त्सना करता हुआ उन्हें इस प्रकार अभिशाप देता है—

"जो लोग ईश्वरीय धर्म के शत्रुओं के तार्किक विचारों को ग्रहण करते हैं, जो श्रुति और स्मृति को प्रमाण नहीं मानते, उन्हें नास्तिक और वेद-निंदक होने के कारण निकाल देना चाहिए।"

उपरांत ब्राह्मण को ब्रह्मचर्य-व्रत धारण करना चाहिए, इसे इसि

उन्नीसवाँ अध्याय

कृष्ण के उत्तराधिकारी—पौराणिक धर्म का उत्कर्ष और ह्रास

कृष्ण के आसन्न उत्तराधिकारी पुण्य कार्यों और आत्म-त्याग द्वारा अपने को पवित्र बनाते थे, और केवल भावी जीवन में ही आशा रखते हुए दरिद्रता का जीवन व्यतीत करते थे। वे सदा तन और मन से उसी स्वर्गीय उद्देश्य में लगे रहते थे, जो उनका गुरु उनके लिये छोड़ गया था।

भारत के प्राचीन काल के उन ब्राह्मण-पुरोहितों की मूर्ति कितनी उज्ज्वल थी! उनकी उपासना कितनी पवित्र, कितनी उत्तुंग और जिस परमेश्वर की वे सेवा करते थे, उसके कितनी योग्य थी!

मैं दिखाऊँगा कि मानव-धर्म-शास्त्र और पौराणिक धर्म के अनुसार, अपने कर्तव्य कर्मों का करनेवाला पुरोहित कैसे अमरत्व प्राप्त कर सकता है; उसे किन-किन नैतिक सिद्धांतों का पालन करना चाहिए; उसके आचरण के अलंघनीय नियम कौन-कौन-से हैं। सारांश यह कि पुरातन-काल का पुरोहित क्या होता था। इस पुरोहित का बाद को प्रकृत ब्राह्मण के साथ मिलान करना मनोरंजन से शून्य न होगा।

कर्म के प्रयोजनों पर प्रश्न करते हुए, मनु स्वार्थ को बहुत कम प्रशंसाई बताकर रोकता है; परंतु फिर भी इस संसार में वह किसी को इससे रहित नहीं पाता।

वह कहता है—"संभाव्य लाभ की आशा से ही उद्यम की शक्ति उत्पन्न होती है; बड़े-से-बड़े त्यागों का उद्देश्य भी किसी वस्तु की प्राप्ति ही होता है; घोर तप और सारे सुकर्म पुरस्कार की आशा से ही उत्पन्न होते हैं।"

परंतु साथ ही वह यह भी कहता है—

"जिस व्यक्ति ने केवल ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये ही अपने सारे धर्मों का पालन किया है, और भविष्य के पारितोषिक की कोई प्रत्याशा नहीं रक्खी, उसे अनंत सुख की अवश्य प्राप्ति होगी।"

"सब धर्मों में मुख्य धर्म पहले वेदों का अध्ययन है, जो मनुष्यों पर प्रकाशित ब्रह्मा और कृष्ण के शब्द हैं।"

"श्रुति (ईश्वरीय ज्ञान) को सर्वोपरि प्रमाण मानना चाहिए। जो ब्राह्मण-पुरोहित परलोक में परमानंद का अभिलाषी है, वह उसे केवल इसी प्रकार प्राप्त कर सकता है कि परमेश्वर की आज्ञाओं में जो उसे अव्याख्येय जान पड़े, उसके सामने भी, उसे समझने का यत्न करने अथवा उस पर टिप्पणी किए बिना, सिर झुका दे।"

"जहाँ व्यवस्था चुप हो, वहाँ स्मृति के मानने की रीति सुधारो। जैसे यदि साधारण लोगों के लिये स्वार्थ और पुरस्कार की इच्छा से कर्म करने की आज्ञा है, तो पुरोहित (ब्राह्मण) के कर्मों का निमित्त सिवा ईश्वर के और कुछ न होना चाहिए। वह ईश्वरीय वाणी को, जो उस पर ईश्वर की इच्छा को प्रकट करती है, और जहाँ वेद चुप हो, वहाँ स्मृति को, आजन्म अपना पथ-प्रदर्शक बनावे।"

स्वतंत्र विचारक (नास्तिक) उसके समय में पहले ही उन सुधारों का यत्न करने लगे थे, जो पीछे से भारत में स्वयं बुद्ध के द्वारा संपन्न हुए। मनु इन नास्तिकों की भर्त्सना करता हुआ उन्हें इस प्रकार अभिशाप देता है—

दिन मन और शरीर को शुद्ध करके यजन करना चाहिए, और वेदी के पाँव में साष्टांग लेटकर वेदों का पाठ करना चाहिए।

उसके जीवन का प्रथम भाग, कोई सत्तर वर्ष की आयु तक, संग्रामशील हो। वह अपने साथियों को शिक्षा देकर उन्हें ईश्वर-परायण बनावे। इस काल में वह अपने आपका नहीं होता; वह सब दीन-दुखियों को सांत्वना दे; बच्चों, दरिद्रों, और अशरणों का पालन-पोषण करे।

हम उसका उसके जन्म-काल से विचार करते हैं; क्योंकि हम प्रायः कह सकते हैं कि उसी क्षण से उसके कर्तव्य कर्मों का आरंभ हो जाता है।

कृष्ण के पृथ्वी पर प्रादुर्भाव से यद्यपि मूल अपराध का प्रायश्चित्त हो गया, परंतु इससे सारा दोष नहीं मिटा; इसलिये प्रत्येक आस्तिक बच्चे की उसके जन्म पर पवित्र गंगा-जल द्वारा, यदि गंगा-जल न हो, तो शुद्धि के जल से, या देवालय में पुरोहित के मंत्र-पूत जल से शुद्धि और उद्धार करना चाहिए।

जिस ब्राह्मण को गुरु बनना हो, उसके लिये शुद्धि की यह प्रक्रिया पर्याप्त नहीं; उसके लिये इसके अतिरिक्त उपनयन और तीन वर्ष की आयु से लेकर मरण-पर्यंत साग्रह मुंडन कराते रहने का विधान है।

फिर ब्राह्मण को डुबकी देते समय, तथा संस्कार में मंत्र पढ़ते समय, उसके होंठों पर घृत और मधु मलना चाहिए। मुंडन का संस्कार और प्रक्रिया जन्म के उपरांत छठे वर्ष में होनी चाहिए। सोलह वर्ष की आयु में सभी ईश्वर-परायण लोगों को अपनी शुद्धि को पवित्र तैल के अभिषेक से दृढ़ करने के लिये देवालय में जाना पड़ता है; क्योंकि उस आयु में वे वयस्क हो जाते हैं।

मनु कहता है, इस अवधि के उपरांत जिन लोगों का यथो-

चित रीति से अभिषेक-संस्कार नहीं हुआ होता, वे दीक्षा के अयोग्य ठहराए जाकर समाजच्युत कर दिए जाते हैं।

[संस्कृत शब्द 'व्रात्य' का अनुवाद हमारी भाषा में, समाजच्युत (Ex-communication) के सिवा और कुछ करना असंभव है।]

जब ब्राह्मण का बालक धर्म को समझने लगे, तब उसे सायं और प्रातः स्थिर और बद्धांजलि हो ईश्वरोपासना करनी चाहिए। प्रातःकाल की उपासना से उसके उन छोटे-छोटे पापों का प्रायश्चित्त हो जाता है, जो उससे अनजान में रात में हो गए हों। दिन में अनजान से किए हुए दोष सायंकाल की उपासना से धुल जाते हैं। उसके बाद को जाकर ही सोलह वर्ष की आयु के पश्चात्, वेद की आज्ञा के अनुसार यज्ञ करने की अनुमति मिल सकती है।

परंतु धर्म-विश्वासियों का पुरोहित और उपदेष्टा बनने के पहले ब्राह्मण को ब्रह्मविद्या और दर्शनों के विद्यालयों में बहुत-से वर्ष व्यतीत करने पड़ते हैं। यहाँ वह जीवन-विद्या और ब्रह्मविद्या, जिनका उपदेश उसे दूसरों को देना होता है, सीखता है। यह उसका विद्याध्ययन-काल है।

और अंततः, जो पुरोहित के लिये सबसे बढ़कर आवश्यक समझे जाते हैं, अर्थात् वेद और उनके गहन तथा अस्पष्ट वाक्यों की व्याख्या।

मनु कहता है, यदि पुत्र के लिये अपने माता-पिता पर प्रेम और उनका सम्मान उनसे भौतिक जीवन पाने के कारण करना योग्य है, तो आध्यात्मिक जीवन प्रदान करनेवाले आध्यात्मिक पिता अर्थात् गुरु का उसे कितना अधिक सम्मान करना चाहिए ?

विद्याध्ययन-काल समाप्त हो जाने पर ब्राह्मण ईश्वर के सेवकों में से एक संस्कृत सेवक, अर्थात् आगे दिए आचरण के नियमों का पालन करनेवाला पुरोहित, बन जाता है—

"वह दान पर, अर्थात् भक्तों के देवालय में चढ़ाए हुए चढ़ावे पर, निर्वाह करे; क्योंकि उसके पास कुछ भी संपत्ति न होनी चाहिए। वह उपवास करे और संयम से रहे, लोगों के सामने सभी सद्गुणों का उदाहरण उपस्थित करे, और अपने समय को उपासना और शिक्षा में बाँट दे, और जैसे उसने अपने गुरु से शिक्षा पाई थी, वैसे ही अब आप नए शिष्यों को शिक्षा दे।

"जब ब्राह्मण इस प्रकार जिज्ञासु से पुरोहित और फिर गुरु बन जाता है, जब वह अपने मार्ग को सुकर्मों से ढाँप देता है, और जीवन का बड़ा भाग परमेश्वर तथा अपने पड़ोसियों की सेवा में अर्पण कर देता है, तब ब्रह्म में लीन हो जाने के पहले उसके लिये एक अंतिम परीक्षा रह जाती है।"

अच्छा, अब सुनिए कि वेद उसके लिये कैसे आचरण का उपदेश करता है—"वह सब साथियों को छोड़कर अकेला रहे, और उसे इस बात का स्वप्न तक भी न हो कि सारे संसार ने उसका परित्याग कर दिया है, अथवा उसने सबका परित्याग कर दिया है।

"वह घर-बार कुछ न रक्खे; यदि उसे भूख सतावे, तो वह अपने

आहार को ईश्वर के भरोसे छोड़ दे—उसके खाने के लिये उसके पैरों में शाक उगेंगे।

"यह न जीवन की इच्छा और न मृत्यु की कामना ही करे, और जिस प्रकार फ़सल काटनेवाला मज़दूर शाम को अपने स्वामी से शांति-पूर्वक पुरस्कार की प्रतीक्षा करता है, वैसे ही वह भी तब तक प्रतीक्षा करे, जब तक कि उसका समय न आ पहुँचे।

"अपने सारे कर्मों को ईश्वर के अर्पण करके पवित्र करे।

"कटु वचनों को धैर्य के साथ सहन करे; किसी का तिरस्कार न करे, और सबसे बढ़कर इस दुर्बल तथा नश्वर शरीर के लिये किसी से घृणा न करे।

यदि उसको पीटनेवाले के हाथ की छड़ी गिर पड़े, तो वह उसे चुप-चाप उठाकर फिर उसके हाथ में दे दे।

(क्या यही बाइबिल के नए धर्म-नियम का आधार नहीं?)

"यह स्वप्नों और उत्पातों की व्याख्या द्वारा कभी भी द्रव्यो-पार्जन न करे।

"सबसे बढ़कर, वह वेद के गूढ़ भाव को छिपाकर उससे सांसारिक स्वार्थों और विकारों के पक्ष में कुतर्क के सूत्र न निकाले।

(पी० लारोकाजी, आप क्या कहते हैं? यह शिक्षा बहुत दूर से आई है।)

दूसरे समयों के ब्रह्मा के पुरोहित ऐसे ही थे; उनकी जीवन-क्रिया यह थी—पहले, ईश्वरोपासना और शिक्षा; दूसरे पवित्र वेद, परमात्मा की महिमा और सनातन सचाइयों का चिंतन।

पहले वे पुरोहित होते थे, फिर उसके पश्चात् परिव्राट् बन जाते थे। इसलिये यह संसार उनके लिये एक निर्वासन और प्रायश्चित्त का स्थान था, जो उन्हें किसी दूसरे जन्म में परमानंद की प्राप्ति कराता था।

एक सज्जन, जिसके जीवन के तीस वर्ष भारत में व्यतीत हुए थे, और जिस पर ऐसे विषयों में पक्षपात का संदेह भी नहीं हो सकता, गंभीर न्याय-भाव रखने के कारण, पुरातन ब्राह्मणों के विषय में हमारे-जैसे ही विचार प्रकट करने से नहीं रुक सका।

सुनिए, पादरी डूबाइस (Dubois) अपनी Moeurs des Indes-नामक पुस्तक में उनके विषय में क्या कहते हैं—

'न्याय, करुणा, श्रद्धा, अनुकंपा, निःस्वार्थता आदि सभी सद्-गुण वास्तव में उनमें पाए जाते थे, और वे दूसरों को भी उपदेश और उदाहरण द्वारा उनकी शिक्षा देते थे। इसी कारण हिंदू लोग, कम-से-कम विचारों में, उन्हीं नैतिक नियमों को मानते हैं, जिनको हम मानते हैं; और यदि वे एक दूसरे के प्रति मनुष्यों के सारे पारस्परिक कर्तव्यों का पालन नहीं करते, तो उसका कारण यह नहीं कि वे उनसे अनभिज्ञ हैं।"

ये शब्द हैं, जिनको क्राइस्ट (ईसा) का पुरोहित कृष्ण के पुरोहित के विषय में कहने से नहीं डरा। फिर भी उसे ब्रह्म-विद्या, दर्शन-शास्त्र और नीति के उन बहु-संख्यक ग्रंथों का पता नहीं, जो पूर्व-युग हमें दे गए हैं, और जिनको खोजने में अब हम संस्कृत के अध्ययन की सहायता से समर्थ हुए हैं।

उसके सिद्धांत, उसका धार्मिक-विश्वास निस्संदेह उसको इस

हिंदुओं को पुरोहित-वर्ग ने धर्मभ्रष्ट किया था; परंतु वह आप भी नैतिक अपकर्ष से न बच सका; और जिन शास्त्रों का प्रयोग उसने किया था, वही उसके विरुद्ध काम में लाए गए।

आजकल के ब्राह्मण-पुरोहित अपना आभास-मात्र हैं। वे अपनी दरिद्रता, अपनी निर्बलता, अपनी बुराइयों और अपनी यथार्थ जीर्णावस्था में, भूत काल की स्मृति के नीचे, कुचले गए हैं। उनमें से कुछ एक को छोड़कर शेष सबमें असीम अभिमान भरा पड़ा है, जो खेद से कहना पड़ता है, उनके अपकर्ष और निष्प्रयोजनता के साथ एकताल है।

इन लोगों में अब न आत्मसम्मान है, और न माहात्म्य। जनता की अवहेलना से यह ब्राह्मण-वर्ण अब तक चिरकाल का मिट गया होता, यदि भारत विशेष रूप से स्थिरता का (लकीर का फ़क़ीर) देश न होता।

यद्यपि सर्वसाधारण पर उनका अधिकार अब तक भी बड़ा है, परंतु उच्च वर्णों के समझदार लोग, इसको स्वीकार न करके, इनको एक व्यवसाय-शून्य श्रेणी से बढ़कर और कुछ नहीं समझते, जिनका भरण-पोषण और रक्षण करने के लिये वे पूर्व-संस्कार द्वारा विवश हैं।

किसी दिन सायंकाल घूमते-घूमते किसी नगर या गाँव में निकल जाइए। जहाँ से आपको ढोलक और नरसिंघे के बजने का शब्द आता सुनाई दे, वहाँ पहुँच जाइए। वहाँ बालक की उत्पत्ति, विवाह या लड़की के युवा होने का उत्सव मनाया जा रहा होगा। घर के बरांडे के नीचे और सीढ़ियों के ऊपर दृष्टिपात कीजिए। वे दरिद्र भिखारी, जो अपने आपमें पेचोताब खाते हुए उच्च स्वर से चिल्ला रहे हैं, वे ब्राह्मण हैं, जो इस संस्कार के उपलक्ष्य में पकाए हुए भात को खाने के लिये आए हैं।

यह राजस्व उनका देय है, और वे इसे समाज की सभी श्रेणियों पर लगा देते हैं। इसके बिना न कोई पारिवारिक त्योहार और न कोई सार्वजनिक उत्सव हो सकता है। और, उनमें यह रीति प्रचलित है कि जिन थालियों में उन्हें भोजन दिया जाता है, उन्हें वे घर ले जाते हैं।

प्रायः ये थालियाँ लोहे या पीतल आदि किसी निकृष्ट धातु की होती हैं; परंतु कभी-कभी ऐसा भी होता है कि अभिमान और दिखलावे से प्रेरित होकर कोई-कोई राजा ब्राह्मणों को सोने और चाँदी के थालों में भोजन परोसते हैं, और इस प्रयोजन के लिये लाखों रुपए खर्च डालते हैं। ब्राह्मण इस पर संतुष्ट होकर उदार राजा की प्रशंसा में पूर्वीय अत्युक्तियों के ढेर लगा देते हैं; परंतु बहुत कम ऐसा होता है, जब उन्हें पीछे से अलग-अलग न करना पड़ता हो; क्योंकि धन को बाँटते समय उनमें झगड़ा हो जाता है, और [illegible] लगता है।

दुर्बलता और हीनता का कारण हमारी बद्ध जड़ता और जाति-पाँति की बाँट ही है। वे दासता के जुए को उतार फेकने के लिये बड़े व्यग्र हो रहे हैं। इसलिये वे अपने देश-बंधुओं की नाड़ियों में बहने-वाले उत्साहहीन रक्त को पुनर्जीवित करने और उनको सामान्य शत्रु के विरुद्ध मिलाने का यत्न कर रहे हैं।

ये सब अशक्त प्रयत्न हैं। इनका फल शायद भविष्य में कुछ निकले; वर्तमान काल में तो इनके कारण इनके करनेवालों पर सारी जाति उँगली उठा रही है, वे अपने परिवारों से निकाले जा रहे हैं, और उनकी संतान तक उनसे अपना संबंध तोड़ रही है।

ब्राह्मणों के साथ-साथ क्रमशः एक और वर्ण भी उठ रहा है। यह पहले ही दक्षिण-भारत के एक बड़े भाग पर फैला हुआ है। किसी दिन लौकिक आधिपत्य में ब्राह्मणों से बढ़ जाने की इसकी महत्वा-कांक्षा बड़ी सावधानी से छिपाई होने पर भी प्रकट है। उसका नाम कोमुती (Commouty) जाति है। यह धर्मोन्मत्त लोगों का एक समूह है, जो अपने स्वार्थ के लिये देश में पौराणिक हिंदू-धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहा है। इसने वास्तविक प्रभाव डालना आरंभ कर दिया है।

केवल शाक-भात पर निर्वाह करने और अपने कठिन आचार के दिखलावे से जनता को ठगने से इस जाति के लोगों का धन-बल सभी देशों में जल्दी ही बहुत बढ़ जायगा।

सारा वाणिज्य उन्हीं के हाथ में है ; वे बड़ी-बड़ी सभाओं द्वारा एक दूसरे को सहारा देते हैं, पूँजी इकट्ठी करते और व्यवसाय को एकतंत्री करते हैं। निश्चय ही वे एक भयंकर शक्ति बन जाएँ, यदि अँगरेज़ कर के बहाने उनको मूँड़ते न रहें; क्योंकि इनका उद्देश्य भारत में फिर पूर्ण रूप से वही पुरोहितशाही स्थापित करना है, जो इस देश को इतनी प्यारी है।

ब्राह्मण-पुरोहितों ने इस अभागे देश को ऐसा पशु बना दिया है कि यहाँ की जनता, यदि इसे अपने आप पर छोड़ दिया जाय, अपनी सारी शक्ति किसी ऐसे आंदोलन में लगा देगी, जो इसे फिर ब्राह्मण-शाही के अधीन कर देगा—यदि यह दशा न होती तो आज इंग्लैंड का कठोर हाथ इस पर शासन न करता, और न भविष्य में ही इसके भाग्य में रूस द्वारा—जो एक शताब्दि से भी अधिक काल से हिमालय के ऊपर से भारत के उर्वर मैदानों को ईर्ष्या-पूर्ण दृष्टि से देख रहा है, और उनको लेने के लिये अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है—शासित होना लिखा जाता।

मैं इस अध्याय में उन घोर धर्म-भ्रष्टता का अधिक वर्णन नहीं करूँगा, जिनसे याजकीय वर्गों ने, धर्म-बुद्धि का दुरुपयोग करके, भारत को पंगु किया है। इस विषय की अधिक बातें मैं पुरातन पूजा को निकालकर उसका स्थान छीन लेनेवाले संस्कारों और पर्वों का वर्णन करते समय करूँगा।

दुर्बलता और हीनता का कारण हमारी वृद्ध जड़ता और जाति-पाँति की बाँट ही है। वे दासता के जुए को उतार फेकने के लिये बड़े व्यग्र हो रहे हैं। इसलिये वे अपने देश-बंधुओं की नाड़ियों में बहने-वाले उत्साहहीन रक्त को पुनर्जीवित करने और उनको सामान्य शत्रु के विरुद्ध मिलाने का यत्न कर रहे हैं।

ये सब अशक्त प्रयत्न हैं। इनका फल शायद भविष्य में कुछ निकले; वर्तमान काल में तो इनके कारण इनके करनेवालों पर सारी जाति उँगली उठा रही है, वे अपने परिवारों से निकाले जा रहे हैं, और उनकी संतान तक उनसे अपना संबंध तोड़ रही है।

ब्राह्मणों के साथ-साथ क्रमशः एक और वर्ण भी उठ रहा है। यह पहले ही दक्षिण-भारत के एक बड़े भाग पर फैला हुआ है। किसी दिन लौकिक आधिपत्य में ब्राह्मणों से बढ़ जाने की इसकी महत्त्वा-कांक्षा बड़ी सावधानी से छिपाई होने पर भी प्रकट है। उसका नाम कोमुती (Commouty) जाति है। यह धर्मोन्मत्त लोगों का एक समूह है, जो अपने स्वार्थ के लिये देश में पौराणिक हिंदू-धर्म को पुनः प्रतिष्ठित करने का स्वप्न देख रहा है। इसने वास्तविक प्रभाव डालना आरंभ कर दिया है।

केवल शाक-भात पर निर्वाह करने और अपने कठिन आचार के दिखलावे से जनता को ठगने से इस जाति के लोगों का धन-बल सभी देशों में जल्दी ही बहुत बढ़ जायगा।

सारा वाणिज्य उन्हीं के हाथ में है ; वे बड़ी-बड़ी सभाओं द्वारा एक दूसरे को सहारा देते हैं, पूँजी इकट्ठी करते और व्यवसाय को एकतंत्री करते हैं। निश्चय ही वे एक भयंकर शक्ति बन जायँ, यदि अँगरेज़ कर के बहाने उनको मूँड़ते न रहें; क्योंकि उनका उद्देश्य भारत में फिर पूर्ण रूप से वही पुरोहितशाही स्थापित करना है, जो उस देश को इतनी प्यारी है।

ब्राह्मण-पुरोहितों ने इस अभागे देश को ऐसा पशु बना दिया है कि यहाँ की जनता, यदि इसे अपने आप पर छोड़ दिया जाय, अपनी सारी शक्ति किसी ऐसे आंदोलन में लगा देगी, जो इसे फिर ब्राह्मण-शाही के अधीन कर देगा—यदि यह दशा न होती तो आज इंगलैंड का कठोर हाथ इस पर शासन न करता, और न भविष्य में ही इसके भाग्य में रूस द्वारा—जो एक शताब्दि से भी अधिक काल से हिमालय के ऊपर से भारत के उर्वर मैदानों को ईर्ष्या-पूर्ण दृष्टि से देख रहा है, और इनको लेने के लिये अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है—शासित होना लिखा जाता।

मैं इस अध्याय में उस घोर धर्म-भ्रष्टता का अधिक वर्णन नहीं करूँगा, जिसमें ब्राह्मणीय वर्गों ने, धर्म-ग्रन्थ का दुरुपयोग करके, भारत को फँसा लिया है। इस विषय की अधिक बातें आगे मैं पुरातन पूजा को निकालकर उसका स्थान आप लेनेवाले संस्कारों और पर्वों का वर्णन करते समय करूँगा।



बीसवाँ अध्याय

प्राचीन पौराणिक धर्म के यज्ञ और संस्कार

आधुनिक धर्मों की तरह, प्राचीन धर्म में भी पूजा की दो रीतियाँ थीं—

एक रीति से, यज्ञों और विधियों के नाम से परमेश्वर के आगे मनुष्य प्रार्थना और व्रत करते थे।

दूसरी रीति से, महायज्ञों के नाम से, आस्तिक लोगों को विशेष कर्म, विशेष प्रायश्चित्त या शुद्धियाँ करनी पड़ती हैं। सारांश यह कि इससे उनका आध्यात्मिक जीवन, उनका परमेश्वर के साथ संबंध, सुव्यवस्थित होता है।

मैं अभी यह दिखलाऊँगा कि पुरातन पौराणिक हिंदू-धर्म में कृष्ण के उत्तराधिकारियों ने कौन-कौन-से यज्ञों और संस्कारों की व्यवस्था की थी।

इस पुस्तक के प्रथम खंड में मैंने इस प्रकार लिखा है—

सर्वमेध-यज्ञ

वेदों के कथनानुसार, ब्रह्मा ने अपने को सृष्टि के लिये बलिदान कर दिया। परमेश्वर ने हमारे पुनरुद्धार के लिये और हमें हमारे दिव्य-स्रोत की ओर ले जाने के लिये न केवल अवतार ही धारण किया, और कष्ट ही सहन किए, वरन् उसने हमें अस्तित्व में लाने के लिये अपने आपका बलिदान भी कर दिया। हंबोल्ट (M. de Humboldt) महाशय कहते हैं—"यह कितना श्रेष्ठ विचार है *, जिसे हम सभी प्राचीन धर्मपुस्तकों में वर्णित पाते हैं।"

* मनुष्य की अभिमान से तनी हुई मूर्खता, अविद्या और वृथाडंबर को परितुष्ट करने के लिये ईश्वर की आत्महत्या की फिर यह विकट कल्पना?

इसलिये पवित्र पुस्तकें कहती हैं—

"ब्रह्मा आप ही यजमान और आप ही बलि है, इसलिये जो ब्राह्मण प्रतिदिन प्रातःकाल सर्वमेध यज्ञ (सार्वत्रिक यज्ञ, सृष्टि का सांकेतिक) करता है, वह परमेश्वर को नैवेद्य देने के कारण के दिव्य यजमान, अर्थात् ब्रह्मा, के साथ मिला देता है; प्रभु अपने पुत्र कृष्ण के रूप में जो हमारी मुक्ति के लिये, पृथ्वी पर आया था, बलि बनकर स्वयं ब्रह्मा ही इस संसार यज्ञ को संपन्न करता है।"

इस प्रकार इस सर्वमेध यज्ञ में ब्राह्मण वेदी पर शरीर के और कृष्णावतार के सम्मान ईश्वर को नैवेद्य चढ़ाता और प्रार्थना करता है।

हम यहाँ ही रोमन कैथोलिक ईसाई कल्पना को पाते (पृ० [illegible]) के यज्ञ के साथ यही सांकेतिक अर्थ लगाते हुए पाते हैं।

ब्राह्मणों के धर्म में यह प्रक्रिया सबसे अधिक महत्व रखती है। जब तक ब्राह्मण प्रतिदिन अपने दोषों की पूरी स्वीकृति और विधि-पूर्वक उनकी शुद्धि न कर ले, वह आगे नहीं बढ़ सकता।

दूसरे यज्ञ सब गौण हैं; वे कभी तो स्वर्ग के उपदेवताओं पितरों के सम्मान के लिये, और कभी फसलों और पशुओं की रक्षा के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करने के लिये किए जाते हैं।

यज्ञ की सामग्री यह होती है—संस्कृत घी, सुगंधित जल, धूप और कुछ अन्य सुगंधियाँ, जो सोने की तिपाई पर रखकर वेदी पर चढ़ाई जाती हैं।

बीसवाँ अध्याय

प्राचीन पौराणिक धर्म के यज्ञ और संस्कार

आधुनिक धर्मों की तरह, प्राचीन धर्म में भी पूजा की दो रीतियाँ थीं—

एक रीति से, यज्ञों और विधियों के नाम से परमेश्वर के आगे मनुष्य प्रार्थना और व्रत करते थे।

दूसरी रीति से, महायज्ञों के नाम से, आस्तिक लोगों को विशेष कर्म, विशेष प्रायश्चित्त या शुद्धियाँ करनी पड़ती हैं। सारांश यह कि इससे उनका आध्यात्मिक जीवन, उनका परमेश्वर के साथ संबंध, सुव्यवस्थित होता है।

मैं अभी यह दिखलाऊँगा कि पुरातन पौराणिक हिंदू-धर्म में कृष्ण के उत्तराधिकारियों ने कौन-कौन-से यज्ञों और संस्कारों की व्यवस्था की थी।

इस पुस्तक के प्रथम खंड में मैंने इस प्रकार लिखा है—

सर्वमेध-यज्ञ

वेदों के कथनानुसार, ब्रह्मा ने अपने को सृष्टि के लिये बलिदान कर दिया। परमेश्वर ने हमारे पुनरुद्धार के लिये और हमें हमारे दिव्य-स्रोत की ओर ले जाने के लिये न केवल अवतार ही धारण किया, और कष्ट ही सहन किए, वरन् उसने हमें अस्तित्व में लाने के लिये अपने आपका बलिदान भी कर दिया। हंबोल्ट (M. de Humboldt) महाशय कहते हैं—"यह कितना श्रेष्ठ विचार है *, जिसे हम सभी प्राचीन धर्मपुस्तकों में वर्णित पाते हैं।"

---

* मनुष्य की अभिमान से तनी हुई मूर्खता, अविद्या और वृथाडंबर को परितुष्ट करने के लिये ईश्वर की आत्महत्या की फिर यह विकट कल्पना ?

इसलिये पवित्र पुस्तकें कहती हैं—

"ब्रह्मा आप ही यजमान और आप ही बलि हैं, इसलिये जो याजक प्रतिदिन प्रातःकाल सर्वमेध यज्ञ (सार्वत्रिक यज्ञ, सृष्टि का सांकेतिक) कराता है, वह परमेश्वर को नैवेद्य देने से अपने को दिव्य यजमान, अर्थात् ब्रह्मा, के साथ मिला देता है; प्रत्युत अपने पुत्र कृष्ण के रूप में जो हमारी मुक्ति के लिये, पृथ्वी पर मरने आया था, बलि बनकर स्वयं ब्रह्मा ही इस गंभीर यज्ञ को संपन्न करता है।"

इस प्रकार इस सर्वमेध यज्ञ में याजक वेदी पर सृष्टि के और कृष्णावतार के सम्मान ईश्वर को नैवेद्य चढ़ाता और प्रार्थना करता है।

हम शीघ्र ही रोमन कैथोलिक ईसाई कल्पना को मास (Mass) के यज्ञ के साथ यही सांकेतिक अर्थ लगाते हुए पावेंगे।

ब्राह्मणों के धर्म में यह प्रक्रिया सबसे अधिक महत्त्व रखती है। जब तक याजक प्रतिदिन अपने दोषों की पूरी परीक्षा और विधि-पूर्वक उनकी शुद्धि न कर ले, वह आगे नहीं चल सकता।

दूसरे यज्ञ सब गौण हैं; वे कभी तो स्वर्ग में जानेवाले धर्मियों के सम्मान के लिये, और कभी फ़सलों और फलों की रक्षा के निमित्त ईश्वर से प्रार्थना करने के लिये किए जाते हैं।

यज्ञ की सामग्री यह होती है—मंत्रपूत तैल, शोधित जल, धूप और कुछ अन्य सुगंधियाँ, जो सोने की तिपाई पर रखकर वेदी पर जलाई जाती हैं।

नैवेद्य घृत से चुपड़ी हुई चावल के आटे की रोटी होती है, जिसे ब्राह्मण (याजक) ईश्वर को चढ़ाता और मंत्रों द्वारा पवित्र करने के पश्चात् खा लेता है। बाद को जब पौराणिक धर्म ने विशुद्ध सिद्धांतों और सरल वचनों को केवल दीक्षितों और पारदर्शियों के

लिये ही परिरचित कर दिया, और जनता वर्णों में विभक्त कर दी गई, तब नीच लोग पशुओं के बलिदान द्वारा ईश्वर-पूजा करने लगे। यज्ञ में मारे हुए ये पशु, संस्कार के उपरांत, सहायकों में बाँट दिए जाते थे, और इस भोजन से उनके छोटे-छोटे और अज्ञान-पूर्वक किए हुए पाप दूर हो जाते थे।

इस दूसरे काल से ही मिसर ने शिक्षा पाई थी, और मूसा ने पूजा की विधियाँ सीखी थीं। हम इन सब बातों का पहले ही पर्याप्त वर्णन कर चुके हैं, इसलिये अब दुबारा उनका उल्लेख न करेंगे।

संस्कार

जल से नवजात बालक की शुद्धि

जन्म के उपरांत तीन दिन के अंदर-अंदर बालक पर जल छिड़कना, अर्थात् उसे पवित्र गंगा-जल द्वारा, अथवा यदि गंगा-जल पास न हो, तो देवालय में ब्राह्मणों द्वारा संस्कृत शुद्धि के जल से शुद्ध करना चाहिए।

यह धार्मिक रीति भारत में बहुत पुरानी है; यह वैदिक काल से चली आ रही है। स्वयं कृष्ण ने अपनी मृत्यु के पहले गंगा-स्नान के लिये जाकर इसकी प्रतिष्ठा की थी। अभी तक हिंदुओं में इसका मान है, वे इसे ठीक प्राचीन ढंग से मनाते हैं।

भारत के धर्म-ग्रंथ उच्च स्वर से कह रहे हैं कि बालक पर जल छिड़कने का तात्पर्य मूल-अपराध के धब्बे को धो डालना है।

जो भी हो, यदि हम इसे एक सादा स्नान समझें—यह व्यवस्था धर्म की ठहराई हुई है, और ब्राह्मण द्वारा संपन्न होती है—तो इतनी ही बात इसे संस्कारों में गिनने के लिये पर्याप्त है।

इसके अतिरिक्त यह धार्मिक रीति जुदा नहीं; संस्कार का जल, जिसने बच्चे को पवित्र किया है, उसके सारे जीवन में, जब कभी इसका प्रयोग किया जाता है, सदा उसे शुद्ध करता रहता है।

निस्संदेह इसी से सारे पूर्वी धर्मों ने प्रक्षालन की पद्धति ग्रहण की है।

उपनयन-संस्कार

इस विषय पर कोई टिप्पणी न करते हुए हम यहाँ दो उद्धरण ही देते हैं, एक वेद से और दूसरा मनु से—

अथर्ववेद—

"सोलह वर्ष की आयु के पहले, पवित्र तेल के विलेपन, यज्ञोपवीत और सावित्री-मंत्र द्वारा जो अपनी शुद्धि को दृढ़ नहीं करता, उसे वेद-निंदक समझकर जाति से निकाल देना चाहिए।"

जनता के वर्णों में विभाग और प्राचीन सिद्धांतों के विपर्यय के होते भी ब्राह्मणों ने इस संस्कार को सुरक्षित रक्खा, और इसका अधिकार शूद्रों, दासों और पतितों के सिवा और सब श्रेणियों को दिया।

मनुस्मृति, जो उनकी स्वार्थ-सिद्धि के लिये संक्षिप्त और विकृत की गई है, इस प्रकार कहती है (अध्याय २, श्लोक ३८-३९)—

"सोलह वर्ष पर्यंत ब्राह्मण की, बाईस वर्ष तक क्षत्रिय की और चौबीस वर्ष तक वैश्य की सावित्री द्वारा पवित्र किए हुए उपनयन को ग्रहण करने की अवधि है।"

"इन अवधियों के उपरांत इन तीनों वर्णों के युवक उपनयन-संस्कार न होने से दीक्षा के अयोग्य हो जाते हैं, और बहिष्कृत (व्रात्य) होकर शिष्टों द्वारा निंदित ठहरते हैं।"

इन दो पाठों को मिलाने से हमें मालूम होता है कि यह उपनयन संस्कार बच्चे के जन्म पर किए जानेवाले पहले संस्कार, का अर्थात् जन्म के अनंतर तीन दिन के अंदर-अंदर जल द्वारा शुद्धि के ही करण, का सातत्य था।

शुद्धि और स्नान— पापप्रक्षालन—

पौराणिक हिंदू-धर्म के अनुसार, पृथ्वी पर रहने से मनुष्य में कई

प्रकार के दोष—कुछ तो आत्मा में, और कुछ शरीर में—आ जाते हैं।

शरीर के दूषण, अपनी घोरता के अनुसार, कुछ तो सादे पानी से, कुछ शुद्धि के जल से और कुछ संयम तथा निवृत्ति से दूर हो जाते हैं।

इस विषय पर हम यह कह देना चाहते हैं कि उन यातनाओं की कल्पना करना बड़ा कठिन है, जो तपस्वियों ने अपने लिये नियत की थीं, और जिनको उनके उत्तराधिकारी फ़क़ीर भारत में अभी तक अपने लिये कर्तव्य ठहराते हैं।

आत्मा के मैल प्रार्थना से, प्रायश्चित्त से, गंगा की तथा उन स्थानों की यात्रा से, जो कृष्ण के जन्म तथा मृत्यु द्वारा पवित्र हो चुके हैं, धुल जाते हैं।

यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि इस चूस लेनेवाले धर्म के राज्य में, जिसने अंत का अपने पारदर्शियों के आत्मा और शरीर, दोनों पर ऐसा अधिकार प्राप्त कर लिया कि उनके दैनिक जीवन के अतीव क्षुद्र व्यवहारों को नियमबद्ध कर दिया, मनुष्य को अपने दोषों का विचार करने की उससे बढ़कर आज्ञा न थी, जितनी कि उसे वेद पर शंका करने की थी।

क्योंकि मनु (अध्याय पहला) कहता है—

"ब्राह्मण का जन्म न्याय का सनातन अवतार है; ब्राह्मण का जन्म न्याय की व्यवस्था के लिये होता है; क्योंकि अपने विचारों में वह अपने को ईश्वर से मिला देता है।"

"यह ब्राह्मण, संसार में आने से, पृथ्वी की उच्चतम पंक्ति में स्थान पाता है; वह सब प्राणियों का सर्वोपरि स्वामी है। नागरिक और धार्मिक नियमों के भांडारों की रक्षा का ध्यान रखना उसी का काम है।"

धर्म का निर्णेता होने से ब्राह्मण सभी के पापों और सारे अपराधों को जानता था, और अपराधी को बताता था कि प्रायश्चित्त किस प्रकार करने चाहिए।

प्रति दिन प्रातःकाल, यज्ञ के उपरांत, जो लोग अपने को दूपणार्ह अनुभव करते, वे देवालय में पवित्र सरोवर के निकट इकट्ठे हो जाते, और वहाँ ब्राह्मणों की पंचायत में सबसे बूढ़े ब्राह्मण के सामने अपने अपराधों का अंगीकार करके अपने लिये दंडाज्ञा प्राप्त करते।

अपने पापों का वर्णन करने के उपरांत पाप-प्रकाशन का सूत्र इस प्रकार होता था—

"पवित्र ब्राह्मणो, ईश्वरीय श्रुति के रक्षको, आप प्रायश्चित्त के संस्कार जानते हैं। मुझे बताइए कि मैं क्या करूँ।"

प्रधान ब्राह्मण इस प्रकार कहता था—

"परमात्मा द्वारा प्रबुद्ध होकर हमने निश्चय किया है, और तुम्हें इस-इस प्रकार करना चाहिए ...।"

तब, अपराध की घोरता के अनुसार, यह धर्म-सभा स्नान, उपवास, संयम, अर्थदंड, ईश्वर के लिये नैवेद्य, ईश्वर-प्रर्थना या तीर्थ-यात्रा का दंड देती थी।

जो पाप किसी भी प्रायश्चित्त से दूर न हो सकते थे (देखिए प्रथम खंड का पाँचवाँ अध्याय), उनके लिये जाति से आंशिक अथवा पूर्ण बहिष्कार का दंड मिलता था। जाति से निकाले हुए लोग (ब्रात्य) ही पतित होकर अस्पृश्य बने।

ऊपर दिए सूत्र के 'संस्कार' शब्द की व्याख्या मनु के टीकाकार, प्राच्यदेशीय-भाषा-पंडित लायसेलोर डसलान चंप्स (Loiseleur Deslonchamps) की टीका से बढ़कर और कहीं न मिलेगी। वह कहता है—

"संस्कार विशेष रूप से पहले तीन वर्णों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य—के लिये पावन प्रक्रियाएँ होती हैं। विवाह अंतिम संस्कार है।"

इसलिये हम प्रकट रूप से अपने पापों का स्वीकार करने के उपरांत ब्राह्मण-पुरोहित द्वारा हिंदुओं के पापमोचन को संस्कार के नाम से पुकारने में सचाई पर हैं।

हम आपको शीघ्र ही आरंभिक काल के ईसाइयों को यह रवाज ग्रहण करते दिखावेंगे। निस्संदेह उनके पहले उपदेष्टाओं ने मिसर और पूर्व में भारत के अनेक ऐतिह्यों का अध्ययन किया था।

पौराणिक धर्म में विवाह भी एक संस्कार माना जाता था; वेद का नीचे दिया वाक्य इसकी इस प्रकार प्रतिष्ठा करता है—

"ब्रह्मा ने मनुष्य-जाति की उत्पत्ति के लिये पुरुष और स्त्री को बनाकर विवाह को उत्पन्न किया; दूसरे, ईश्वरीय कार्य की स्मृति में स्त्री-पुरुष के संयोग को न्याय ठहराने के लिये भी, ब्राह्मण के मंत्रों द्वारा इसका पवित्र किया जाना आवश्यक है।"

लायसीलीउर डसलान चंपस (Loiseleur Deslonchamps) की ऊपर उद्धृत टीका के अनुसार, जिसको हम ठीक मानते हैं, विवाह अंतिम संस्कार है; क्योंकि यह बात बड़ी विचित्र है कि मनुष्य की मरणासन्न* अवस्था में हिंदू ब्राह्मण प्रत्यक्ष रूप से बीच-बचाव नहीं करता। ऐसी दशाओं में पौराणिक धर्म-कार्य करने का अधिकार, रोगी के सबसे बड़े पुत्र या निकटतम संबंधी को दे देता था, और धर्म-पुस्तकों के अनुसार अंत्येष्टि-कर्म का संपन्न करना उसका कर्तव्य ठहराया जाता था।

"मृत्यु के समय पुत्र की प्रार्थना ही पिता के लिये स्वर्ग का द्वार

---

* ईसाई याजक ब्राह्मण-याजकों से चालाक निकले। उन्होंने मरणासन्न के बिछौने को अपने परिश्रम के लिये अतीव उपजाऊ क्षेत्र पाया।

खोलती है ।" संक्षेप से कहें, तो पौराणिक धर्म के संस्कारों की संख्या पाँच है—

पहला—परमेश्वर के सभी सेवकों में से संस्कृत सेवक, पुरोहित के तेल मलना। पुरातन धर्म में ब्राह्मण को किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती थी, इसका अध्ययन करते समय हम देख चुके हैं कि यह संस्कार किसी प्रकार संपन्न किया जाता था ।

दूसरा—नवजात का गंगा-जल अथवा शुद्धि के जल से स्नान ।

तीसरा—ब्राह्मण का सोलह वर्ष, क्षत्रिय का बाईस वर्ष और वैश्य का चौबीस वर्ष की आयु में उपनयन, अर्थात् नवजात के जन्म पर जो शुद्धि की गई थी, उसका दृढ़ीकरण ।

चौथा—प्रकट रूप से पापों का अंगीकार करने से पापमोचन ।

पाँचवाँ—विवाह ।

इस अंतिम संस्कार के विषय में मैंने बहुत कम कहा है । इसका कारण स्पष्ट है ।

यह बात निर्विवाद है; क्योंकि यह एक ऐसी मोटी सचाई है, जिसको सिद्ध करने की कोई आवश्यकता नहीं कि सभी प्राचीन समाज विवाह को एक धार्मिक बंधन समझते थे ।

इक्कीसवाँ अध्याय

आधुनिक समय के पौराणिक उत्सव और यज्ञ

आजकल के हिंदुओं को अपने प्राचीन धर्म का केवल हलका-सा संस्कार है। ब्राह्मण लोग, श्रेष्ठतम और पवित्रतम सिद्धांतों को स्वेच्छानुसार बिगाड़ने के उपरांत, स्वयं भी अपनी बारी से उस नैतिक अपकर्ष में डूब गए हैं, जिसको उन्होंने अपने अधिकार की रक्षा के लिये तैयार किया था *। जब बाहर के आक्रमणों ने उनकी राजनीतिक शक्ति को नष्ट कर डाला, तब उन्होंने अपने मंदिरों की शरण ली, अपने उत्सवों और यज्ञों की संख्या को बढ़ाया, और अपने धार्मिक अधिकार को बनाए रखने के लिये आडंबर और शोभा में एक दूसरे से स्पर्धा करने लगे।

हिंदू-उत्सव के वर्णन से यह मालूम करना दिलचस्पी से ख़ाली न होगा कि ब्राह्मणों ने, अपनी प्रभुता के दिनों में सारी नागरिक और धार्मिक स्वतंत्रता का बहिष्कार करके, जनता को कहाँ तक दासता के गहरे गर्त में गिरा दिया था, और वह भी ईश्वर के नाम पर, जो

---

* पौराणिक धर्म की भ्रष्टता चाहे कितनी ही क्यों न हो, परंतु इस दयालु और अतिपातकी सिद्धांत का गढ़ना मानव-भ्रष्टशीलता-रूपी खेती के परिश्रमी किसानों के लिये ही बाक़ी रह गया था कि अतीव घोर पापी ("चाहे तुम्हारा पाप इतना घोर हो, इत्यादि-इत्यादि।") यदि अंत में पश्चात्ताप कर ले (जैसा कि अदम्य अंतःकरण के कोड़े खाकर बूढ़े पापी सदा ही करने लगते हैं), तो वह उस निश्छल, ओछे और प्रायः तिरस्कार के योग्य "धर्मात्मा से जिसे पश्चात्ताप का प्रयोजन नहीं", निन्नानवे बार अधिक ईश्वर को प्यारा है।

एशिया की तरह योरप में भी, सभी याजक-वर्गों का भारी बहाना बना रहा है।

इसी स्वतंत्रता का हमारे यहाँ से भी बहिष्कार कर दीजिए, और फिर देखिए कि यदि हम ठीक पूर्वी अपकर्ष के-से अतलतल में नहीं गिरते, तो इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि हम मध्य-कालीन दासता, राजा और प्रजा की धार्मिक पराधीनता, पाखंड शासन-सभा के प्रधान टार्क्यूमेडा (Torquemada) और हाथ में सूली का चित्र लेकर यातना पहुँचानेवाले उसके जल्लादों के हाथ में तो अवश्य पड़ जायँगे।

हिंदू-धर्म के उत्सवों की अतीव सरल और नाम-मात्र सूची देना भी मेरे लिये सर्वथा असंभव है। परंतु वे सब एक दूसरे से मिलते-जुलते हैं, और जिस मंदिर में वे मनाए जाते हैं, उसके ऐश्वर्य, और भक्तों की चढ़ाई हुई भेंट के अनुसार उनके साथ थोड़ा या बहुत आडंबर और गंभीरता होती है।

देवी-देवतों और वीरों की संख्या इतनी बढ़ा दी गई है कि यदि उनके जत्थे बनाकर भी, जितनों का एक दिन में गुज़ारना संभव है, उतने प्रतिदिन गुज़ार दिए जायँ, तो भी वर्ष के तीन सौ पैंसठ दिन उन सबकी पूजा के लिये अपर्याप्त हैं।

पौराणिक हिंदू-धर्म ईश्वर की कल्पना को प्रायः पूर्ण रूप से खो बैठा है, और उसकी पूजा के स्थान में उसने देवतों और ऋषियों की पूजा जारी कर दी है। जो धर्म तर्क की कसौटी पर चढ़ने से डरते हैं, उनका ऐसा ही अंत होना अनिवार्य है।

हम उदाहरण की रीति से दक्षिण-भारत के अंतर्गत चलंब्रम (चिदाम्बर ?) के उत्सव को लेते हैं, जो वर्तमान कुसंस्कारों के बीच में भी अभी तक उच्चता का रूप रक्खे हुए हैं।

यह उत्सव मई मास की अमावास्या के पाँच दिन पूर्व आरंभ हो-कर उसके पाँच दिन उपरांत समाप्त होता है। इस सारी अवधि में

भारत के सभी भागों से सहायता के लिये आए हुए यात्रियों तथा भक्तों के अनंत समूह को एक भी मिनट के लिये विश्राम और शांति नहीं मिलती।

पहले आठ दिन मंदिर के भीतरी भाग में बिताए जाते हैं। मंदिर के भीतर केवल उच्च वर्ण के हिंदुओं को ही जाने की आज्ञा होती है। साधारण जनता मंदिर के आँगन में पड़ी दूर से ही संगीत और पवित्र मंत्रों का उच्चारण सुनकर संतुष्ट रहती है।

पहला दिन शिव के अर्पण है, और सृष्टि पर उसके उपकारों को मनाने में ही लगाया जाता है। उसी के प्रताप से प्रलय से वह अंकुर निकलता है, जो मनुष्य के लिये उपयोगी चावल, सुगंधित पुष्प और अपने पल्लवों से पृथ्वी की शोभा बढ़ानेवाले विशाल वृक्ष उत्पन्न करता है।

रात-भर वे प्रकृति और परमेश्वर के गुह्य संयोग के गीत गाते और महात्मा कार्त्तिकेय (Cartignay) के स्तोत्र से बाल-रवि को प्रणाम करते हैं। इस महात्मा की प्रार्थना से ही पृथ्वी का कायमोंग असुर (Kayamongasaura) [तारकासुर ?] से छुटकारा हुआ था; क्योंकि यह हाथी के सिरवाले दैत्य के रूप में मनुष्य-जाति को सताने आया था।

दूसरा दिन पूर्वजों की आत्माओं के लिये प्रार्थना करने में लगाया जाता है। रात को उन्हें भात, मधु, घृत और फल भेंट किए जाते हैं। एक बार पितरों को देने से इन भोज्यों में सब मलिनताओं को दूर कर देने का गुण आ जाता है।

वे सब पदार्थ सहायकों में बाँट दिए जाते हैं। उनको, इन्हें खाने के उपरांत, चट-पट जाकर पवित्र सरोवर में डुबकी लगानी पड़ती है। यह सरोवर मंदिर के ही एक पार्श्व में होता है।

तीसरा दिन पोलियारों (Paulears) अर्थात् ग्रामों

और खेतों के रक्षक देवतों के लिये, जो एक प्रकार के गृह-देवता होते हैं, यात्रा में व्यतीत होता है। रात को भक्तों द्वारा लाई हुई इन देवतों की प्रतिमाओं की स्तुति की जाती है। फिर भक्तजन उनको उठाकर अपने घरों में या अपने खेतों की सीमाओं पर रख देते हैं, ताकि वे उनकी रक्षा करते रहें।

चौथा दिन और उसकी रात कृष्णा (Tir cangy ?) नदी के कीर्तन के लिये रक्खे जाते हैं। जो लोग दरिद्रता या दुर्बलता के कारण अपने जीवन में कम-से-कम एक बार भी गंगा की यात्रा करने में असमर्थ हैं, उनके लिये कृष्णा का जल गंगा-जल का-सा ही पावन गुण रखता है।

पाँचवाँ दिन चढ़ावा चढ़ाने का है। उत्सुक भक्त जत्थे-के-जत्थे बाँधे चावल, तेल, और चंदन लेकर डेवढ़ी में आ घुसते हैं। इस चंदन का बुरादा बनाकर सोने की तिपाइयों और बहुमूल्य पात्रों में जलाया जाता है।

धनाढ्य हिंदुओं में इस बात की स्पर्द्धा उत्पन्न करने की विद्या में कि वे उत्तमोत्तम उपहार देने में एक दूसरे से बढ़ने का यत्न करें, ब्राह्मण लोग बहुत निपुण हैं।

छठे दिन वे प्रार्थना करते हैं कि जिन लोगों ने दान करने में विशेष नाम पाया है, उनके कार्यों में कोई पिशाच विघ्न-बाधा न उपस्थित करे। और, अगले दिन, सूर्योदय के साथ ही, एक ब्राह्मण इस बात की घोषणा करता है कि इस वर्ष के कौन-कौन-से दिन शुभ और कौन-कौन-से अशुभ हैं।

सातवाँ दिन, जो विशेष रूप से उन स्त्रियों के लिये है, जो अभी तक गर्भवती नहीं हुईं, उन्हें सुन्दर संतान देने के लिये शिव से प्रार्थना करने में व्यतीत किया जाता है। जो स्त्रियाँ अपने दाम्पत्य की समाप्ति की विशेष रूप से अभिलाषिणी होती हैं, उन्हें सारी रात, ईश्वर की रक्षा में, मंदिर में बितानी पड़ती है!

धारा बहने लगती है, और अपने प्राणों को उसी जोखिम में डाल-कर भक्त लोग कपड़े का टुकड़ा ले उस नर-रक्त में भिगोने के लिये दौड़ते हैं, और उसको एक बहुमूल्य वस्तु समझकर बड़ी सावधानी से सुरक्षित रखते हैं।

जब रथ मंदिर के गिर्द घूम चुकता है, तो उस दिन की प्रक्रिया समाप्त हो जाती है, और दूसरे दिन की रात के महान् उत्सव की तैयारी के लिये कुछ विश्राम की आवश्यकता होती है।

साधुओं और संन्यासियों के दर्शनार्थ मंदिरों के आँगनों और हातों में प्रवेश करने का परदेसी के लिये यही समय है।

संन्यासी भिखारी यात्री होते हैं, जिन्होंने अपने एक-से-एक विचित्र व्रतों को पूरा करने के लिये गंगा की यात्रा की होती है।

किसी ने तो अपने शरीर के साथ दूरी को मापने के लिये गंगा की यात्रा की होती है। किसी ने अपने हाथों और घुटनों के बल चल-कर इस यात्रा को समाप्त किया होता है। फिर कई ऐसे भी होते हैं, जो अपने दोनों पैरों को इकट्ठा बाँधकर उछलते-उछलते ही वहाँ तक पहुँचे हैं, या जो यात्रा में केवल हर तीसरे दिन ही खाते और सोते रहे हैं। याद रहे कि चलंब्रम से गंगा की निकटतम धारा कोई छः सौ कोस है।

परंतु यह तो तुच्छ है, साधुओं का धर्मोन्माद इन सब लोगों की मूर्खता से भी बहुत बढ़ा हुआ है। ये साधु अगम्य रूप से ऐसे अत्यंत भीषण वेदनाओं और अतीव भयानक यातनाओं के बीच हँसते रहते हैं। उस पहिए पर दृष्टिपात कीजिए, जो बड़े वेग से घूम रहा है, और जिसके साथ लगे हुए पाँच-छः मनुष्य अपने रक्त से पृथ्वी को लाल करते जा रहे हैं। ये साधु हैं, जिन्होंने अपनी जंघा, अपने नितंब, अथवा अपने कंधे में से लोहे के काँटे गुज़ारकर अपने को लट-काया हुआ है।

मैं इस दृश्य की आश्चर्य-जनक और विषम विलक्षणता का विस्तारपूर्वक वर्णन नहीं कर सका। यह लाखों हाथों से चलाई गई नाना रंगों की बंगाली अग्निक्रीड़ा के बीच सहसा ऐसे फूट पड़ता है, मानो इंद्रजाल की शक्ति से बनाया गया हो।

सुनहरी तिपाइयों से उठनेवाले धुँए से वायुमंडल अंधकारमय हो जाता है। इन तिपाइयों पर धूप की गोलियाँ निरंतर जलती हुई अपने गिर्द घूमती रहती हैं, जिससे रात में आग का एक चक्कर बन जाता है। चौंधियाया हुआ जन-समूह इन कामों को देख पागल होकर ईश्वर के सम्मान में कूदने और चिल्लाने लगता है। कभी-कभी कुछ पल के लिये बंगाली आतशबाज़ी चलने से बंद हो जाती है। उस समय पूर्ण अंधकार छा जाता है। देवता की विशाल मूर्ति ही, जो ख़ूब जगमगा रही होती है, पानी के ऊपर चुपचाप बहती रहती है। उसके पाँवों में नर्तकियाँ अतीव मनोहर भाव से लेटी रहती हैं। तब अतीव उज्ज्वल अग्नि भभक उठती है, और उसके साथ ही उन्मत्त जय-जयकार होने लगता है।

जब सातवीं परिक्रमा समाप्त होने लगती है, तो गीत चिल्लाहट में बदल जाते हैं। यह प्रलाप अपनी परा काष्ठा को पहुँच जाता है। स्त्री, पुरुष और बच्चे सब अपने को उस जल से पवित्र करने के लिये, जिसको अभी शिव ने पार किया है, तालाब में कूद पड़ते हैं।

उस अछूत पर शोक है, जिसने मंदिर के द्वार में प्रवेश करने का साहस किया है। यदि ऐसे अवसर पर वह पहचाना जायगा, तो अवश्य ही उसकी बोटी-बोटी नोच डाली जायगी।

जोश इतना बढ़ा हुआ होता है कि यदि मंदिर का ब्राह्मण पुजारी ईश्वर के नाम पर इस प्रक्रिया में सहायता देनेवाले योरपियनों को भी बुरा बताकर जन-समूह को भड़का दे, तो उस प्राचीर में से एक भी योरपियन जीता बाहर न निकले।

प्रातःकाल कोई चार बजे शिव को फिर बड़े आडंबर के साथ मंदिर के गुह्य अभ्यंतर में ले जाकर आगामी वर्ष निकालने के लिये रख दिया जाता है। जलती हुई आग हौले-हौले बुझ जाती है, पवित्र नरसिंघों और तुरहियों के शब्द के साथ जन-समूह क्रमशः बिखर जाता है, परदेसी वापस आ जाता है, और अपने मन में उत्पन्न होनेवाले चित्तक्षोभों का निवारण करने में वह पहले-पहल असमर्थ होता है।

उत्तर-भारत, अर्थात् बंगाल, के सबसे बड़े रौनक़दार उत्सव दक्षिण के उत्सवों के सामने कुछ भी नहीं।

दक्षिण में, जहाँ मुसलमानी आक्रमण के पैर कम दृढ़ता से जमे हैं, जहाँ उमर और मुहम्मदअली की सांप्रदायिक असहिष्णुता ने मंदिर नहीं गिराए और तलवार और अर्द्धचंद्र के नियम के सामने आत्माओं को नहीं झुकाया गया, आप देखेंगे कि ब्राह्मण-प्रभुत्व ने अभी तक पुराने गौरव को कुछ-न-कुछ सुरक्षित रक्खा है।

यहाँ कुछ विद्वान् ब्राह्मणों के हृदय में धार्मिक ऐतिह्यों को शरण मिली है। ये लोग आनेवाले पुनरुदय की आशा में इन बहुमूल्य न्यासों की रक्षा कर रहे हैं।

वहाँ बड़े-बड़े स्मृतिस्तंभ हैं, विशाल भग्नावशेष हैं, पचास फ़ीट ऊँचे संगमरमर में खुदा हुआ एक महान् परमेश्वर है। वहाँ वस्तुतः उस प्राचीन पौराणिक सभ्यता के भग्नावशेष हैं, जिसने सारे एशिया, यूनान, मिसर, यहूदिया और रोम में जीवन का संचार किया था।

वहीं हम बार-बार कहते हैं, वहीं हमारे अध्ययन और अन्वेषण का क्षेत्र है।

जो भी थोड़े से योरपियन पंडित भारत में गए हैं, वे सब-के-सब कलकत्ते और बंगाल में ही जा बैठे हैं, जहाँ हिंदू योरपियन लोगों के संसर्ग से दूकानें खोलकर चावल तथा नील के व्यापारी बन गए हैं।

वे इस बात को नहीं देख सके कि उत्तर-भारत पर से हिंदूपन की छाप मिट चुकी है, वहाँ मंदिरों का स्थान मसजिदों ने और राजों के राज-भवनों की जगह अँगरेज़ी कोठियों ने ले ली है, और वे उन सारे आक्रमणों के रण-क्षेत्र को देख रहे हैं, जिन्होंने भारत को खंड-खंड कर डाला है, और जिनके स्थान पर अब योरपियन हथकंडे अपना काम कर रहे हैं।

बंगाल के उत्सवों में लोगों का वैसा असंख्य समूह एकत्र नहीं होता, जैसा कि हिंदोस्तान के पूर्वी सिरे पर, उदाहरणार्थ कर्णाटक या मलयालय में, देखा जाता है।

प्रत्येक परिवार का अपना-अपना अलग और अपने निराले ढंग का उत्सव होता है। इस भिन्नता में वृथा गर्व का बड़ा हाथ है।

उच्च वर्णों के लोग नीच वर्णों के लोगों के साथ और धनाढ्य लोग निर्धनों के साथ किसी प्रकार का भी मेल-जोल नहीं रखते। लोग जब स्वर्ण और मणि-मुक्ताओं से अलंकृत प्रतिमा के जुलूस को देखें, जिसके पीछे रेशमी और काशमीरी कपड़ों से सुसज्जित जन-समूह जा रहा हो, तब वे यह अवश्य कहें कि "यह अमुक बाबू की पूजा है।" यदि हम दिखलावा करें, तो लोगों को यह अवश्य पता लगना चाहिए कि इसके लिये किसने रुपया ख़र्च किया है।

यह किसी क़दर योरपियन गर्व का हिंदू-अभिमान पर पैवंद है। उच्च वर्णों के अनेक लोग सार्वजनिक जुलूस में अपने को दिखलाना भी बुरा समझते हैं, वे अपने नाम पर मूर्ति के साथ जाने के लिये पुरस्कार देकर अपने प्रतिनिधि भेज देते हैं।

बंगाल का एक-मात्र उत्सव, जिसमें कुछ ठाट-बाट और भक्तों की भीड़ होती है, सितंबर की पूजा अर्थात् ब्रह्मा और प्रकृति का पर्व है, परंतु इसमें वस्तुतः कोई भी अपूर्व बात नहीं; यह घृणोत्पादक और लज्जा-जनक परिहास का एक जाल-मात्र है।

यह मानना पड़ता है कि बंगालियों की देवता-पूजन की विधि विलक्षण है; वे इस अवसर पर स्त्रियों और बच्चों का कुछ भी विचार न करके, अतीव गर्ह्य और अश्लील मूर्तियाँ निकालते हैं, और अपने नाटकों में परले दर्जे के गंदे दृश्य दिखलाते हैं। एक बार मैंने गंगा-तीरवर्ती हुगली ग्राम में यह उत्सव इस प्रकार मनाया जाता देखा था—एक स्त्री और एक पुरुष, जो प्रकृति और ब्रह्म के प्रतिनिधि ठहराए गए थे, एक सार्वजनिक चबूतरे पर जान-बूझकर संतानोत्पत्ति के कर्म को पूरा कर रहे थे, और मुझे निश्चय-पूर्वक बताया गया कि यह उस गर्भ का पूजन है, जो ईश्वर से सृष्टि में हुआ था।

ऐसी सामाजिक पाशविकता में डूबे हुए लोगों से क्या आशा की जा सकती है ? और यह बात भली भाँति समझ रखनी चाहिए कि यह दशा धर्म-बुद्धि के दुरुपयोग और ब्राह्मणों के प्रभुत्व से उत्पन्न हुई है।

विवेक और बुद्धि के शासन से कभी ऐसे भैरवी-चक्र उत्पन्न नहीं हो सकते थे—आत्म-सम्मान और निर्दोष सिद्धांतों की ऐसी विस्मृति नहीं हो सकती थी।

हमें यह निश्चय नहीं कर लेना चाहिए कि हमारी प्रबुद्ध योरपियन सभ्यताएँ ऐसी जीर्णावस्था उत्पन्न नहीं कर सकतीं। उन्हीं कारणों को वहाँ भी काम करने दीजिए, फिर आप वहाँ भी वही परिणाम देखेंगे।

हमें उन रहस्यों को भूल नहीं जाना चाहिए, जो मध्य-काल में "क्राइस्ट की मृत्यु" के सहकारियों (The brothers of the Passion) और धर्मानुशासन-सभा के धर्म-पाठकों (Deres of the basoche) ने मंदिरों के पुस्तकालयों तक में संपन्न किए थे, और जो अंत को अपनी अश्लीलताओं के कारण निषिद्ध ठहराए गए थे। और, दुःख से कहना पड़ता है कि ये निषेध राजकीय व्यवस्थाओं से हुए थे, न कि धार्मिक लोगों के इन्हें बुरा बतलाने से।

वे इस बात को नहीं देख सके कि उत्तर-भारत पर से हिंदूपन की छाप मिट चुकी है, वहाँ मंदिरों का स्थान मसजिदों ने और राजों के राज-भवनों की जगह अँगरेज़ी कोठियों ने ले ली है, और वे उन सारे आक्रमणों के रण-क्षेत्र को देख रहे हैं, जिन्होंने भारत को खंड-खंड कर डाला है, और जिनके स्थान पर अब योरपियन हथकंडे अपना काम कर रहे हैं।

बंगाल के उत्सवों में लोगों का वैसा असंख्य समूह एकत्र नहीं होता, जैसा कि हिंदोस्तान के पूर्वी सिरे पर, उदाहरणार्थ कर्णाटक या मलयालय में, देखा जाता है।

प्रत्येक परिवार का अपना-अपना अलग और अपने निराले ढंग का उत्सव होता है। इस भिन्नता में वृथा गर्व का बड़ा हाथ है।

उच्च वर्णों के लोग नीच वर्णों के लोगों के साथ और धनाढ्य लोग निर्धनों के साथ किसी प्रकार का भी मेल-जोल नहीं रखते। लोग जब स्वर्ण और मणि-मुक्ताओं से अलंकृत प्रतिमा के जुलूस को देखें, जिसके पीछे रेशमी और काश्मीरी कपड़ों से सुसज्जित जन-समूह जा रहा हो, तब वे यह अवश्य कहें कि "यह अमुक बाबू की पूजा है।" यदि हम दिखलावा करें, तो लोगों को यह अवश्य पता लगना चाहिए कि इसके लिये किसने रुपया ख़र्च किया है।

यह किसी क़दर योरपियन गर्व का हिंदू-अभिमान पर पैबंद है। उच्च वर्णों के अनेक लोग सार्वजनिक जुलूस में अपने को दिखलाना भी बुरा समझते हैं, वे अपने नाम पर मूर्ति के साथ जाने के लिये पुरस्कार देकर अपने प्रतिनिधि भेज देते हैं।

बंगाल का एक-मात्र उत्सव, जिसमें कुछ ठाट-बाट और भक्तों की भीड़ होती है, सितंबर की पूजा अर्थात् ब्रह्मा और प्रकृति का पर्व है, परंतु इसमें वस्तुतः कोई भी अपूर्व बात नहीं; यह घृणोत्पादक और लज्जा-जनक परिहास का एक जाल-मात्र है।

यह मानना पड़ता है कि बंगालियों की देवता-पूजन की विधि विलक्षण है; वे इस अवसर पर स्त्रियों और बच्चों का कुछ भी विचार न करके, अतीव गर्ह्य और अश्लील मूर्तियाँ निकालते हैं, और अपने नाटकों में परले दर्जे के गंदे दृश्य दिखलाते हैं। एक बार मैंने गंगा-तीरवर्ती हुगली ग्राम में यह उत्सव इस प्रकार मनाया जाता देखा था—एक स्त्री और एक पुरुष, जो प्रकृति और ब्रह्मा के प्रतिनिधि ठहराए गए थे, एक सार्वजनिक चबूतरे पर जान-बूझकर संतानोत्पत्ति के कर्म को पूरा कर रहे थे, और मुझे निश्चय-पूर्वक बताया गया कि यह उस गर्भ का पूजन है, जो ईश्वर से सृष्टि में हुआ था।

ऐसी सामाजिक पाशविकता में डूबे हुए लोगों से क्या आशा की जा सकती है? और यह बात भली भाँति समझ रखनी चाहिए कि यह दशा धर्म-बुद्धि के दुरुपयोग और ब्राह्मणों के प्रभुत्व से उत्पन्न हुई है।

विवेक और बुद्धि के शासन से कभी ऐसे भैरवी-चक्र उत्पन्न नहीं हो सकते थे—आत्म-सम्मान और निर्दोष सिद्धांतों की ऐसी विस्मृति नहीं हो सकती थी।

हमें यह निश्चय नहीं कर लेना चाहिए कि हमारी प्रबुद्ध योरपियन सभ्यताएँ ऐसी जीर्णावस्था उत्पन्न नहीं कर सकतीं। उन्हीं कारणों को यहाँ भी काम करने दीजिए, फिर आप यहाँ भी वही परिणाम देखेंगे।

हमें उन रहस्यों को भूल नहीं जाना चाहिए, जो मध्य-काल में "क्राइष्ट की मृत्यु" के सहकारियों (The brothers of the Passion) और धर्मानुशासन-सभा के धर्म-पाठकों (Deres of the basoche) ने मंदिरों के पुण्यालयों तक में संपन्न किए थे, और जो अंत को अपनी अश्लीलताओं के कारण निषिद्ध ठहराए गए थे। और, दुःख से कहना पड़ता है कि वे निषेध राजकीय व्यवस्थाओं से हुए थे, न कि धार्मिक लोगों के इन्हें बुरा बतलाने से।

यदि स्वतंत्र विवेक अपने को प्रतिष्ठित करने में सफलीभूत न हुआ होता, यदि हम बाइबिल-वाक्य के लिये यातना देना और जलाना जारी रक्खे होते, यदि राजों ने, भारत के राजों के सदृश, बिना किसी शिकायत और रुकावट के, अभिभावुकता को स्वीकार कर लिया होता, तो हम कहाँ होते ? उत्तर दीजिए, हम कहाँ होते ?

आप कहेंगे कि हम उस युग को पीछे छोड़ आए हैं, और जिन लोगों ने नागरिक और धार्मिक स्वतंत्रता को जीतकर प्राप्त किया है, वे अब पीछे पग नहीं रक्खेंगे !

कौन जानता है ? *

क्या भारत में भी स्वतंत्र विचार, स्वतंत्र विमर्श और स्वाधीनता का युग नहीं था ? याजक-वर्ग ने निरंतर यत्न किया। धैर्य के साथ यह अपने काम पर लगा रहा—युगयुगांतर के परिश्रम से भी यह न थका, और अंत को इसे सफलता हुई।

स्वतंत्रता और धार्मिक स्वेच्छाचारिता के बीच फिर युद्ध छिड़ने की आशंका हो रही है। मैं क्या कह रहा हूँ ? यह पहले ही सब कहीं छिड़ गया है, सन् ८६ के सिद्धांतों के विरुद्ध रोम में थोड़े ही मास में इस युग का सबसे अधिक आडंबरयुक्त आविष्कार होने को है।

आओ, हम इसे देखें—और उससे अपनी रक्षा की तैयारी करें।

---

* कौन जानता है ? जब कि हमारी अतीव सम्मानान्वित न्याय-सभाओं में वेदी की सजावट के परदों और मोमबत्तियों पर स्वर के साथ गाने और घुटनों के बल बैठने पर आदरपूर्वक और यथाविधि विचार किया जाता है।

बाईसवाँ अध्याय

हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों के अनुसार पृथ्वी पर परमेश्वर का अंतिम अवतार

पौराणिक विश्वास के अनुसार महाप्रलय अर्थात् पृथ्वी के अंत पर आगे लिखी विचित्र घटना होगी—

धर्म-ग्रंथों के टीकाकार रामसरियर के शब्दों में ही सुनिए—

"...सकल सृष्टि के महाप्रलय के कुछ समय पूर्व पृथ्वी पर पुण्य और पाप के बीच अवश्य ही दुबारा युद्ध आरंभ होगा, और पापात्माएँ, जिन्होंने अपने जन्म के समय स्वर्ग में ब्रह्मा के अधिकार के विरुद्ध विद्रोह किया था, परमेश्वर से उसकी शक्ति छीन लेने और अपनी स्वतंत्रता को पुनः प्राप्त करने के उद्देश्य से अंतिम युद्ध के लिये अपने को उपस्थित करेंगी।

"तब कृष्ण राक्षसों के राजा को, जो एक घोड़े के रूप में, सारी पापात्माओं की सहायता से, समस्त भूमंडल को विध्वंस और संहार से आच्छादित कर देगा, पराजित करने के लिये फिर पृथ्वी पर आवेगा।"

यह विश्वास भारत में बहुत फैला हुआ है। कोई भी हिंदू ऐसा नहीं, चाहे वह किसी भी वर्ण का क्यों न हो, कोई भी ब्राह्मण ऐसा नहीं, जिसकी इस पर श्रद्धा नहीं। यहाँ तक कि याजकों ने तो कुमारी देवांगी के पुत्र की भावी विजय के लिये एक यज्ञ, अश्वमेध, अर्थात् घोड़े का बलिदान, अनुमतिदित किया है।

मैं बिना किसी टीका-टिप्पणी के सब घटना का वर्णन और उल्लेख करता हूँ।

तेईसवाँ अध्याय

नारद मुनि का एक वाक्य

"इस युक्ति का कभी आश्रय न लो; 'मुझे इसका पता नहीं, इसलिये यह झूठ है।'

"हमें जानने के लिये अध्ययन करना, ग्रहण करने के लिये जानना, और निर्णय करने के लिये ग्रहण करना चाहिए।"*

भारत के धर्म-ग्रंथों और धार्मिक विश्वासों के इस अध्ययन को बंद करते हुए मैं भी सभी विपक्षियों से यही कहता हूँ।

मेरा विचार करने के पहले, पूर्व की प्राचीन सभ्यताओं का अध्ययन कर लो, मुझे न किसी विवाद से, और न किसी प्रकाश ही से संकोच है।



* 'ऐसे विचार कभी नहीं सुने !' यह वह रूप है, जिसमें हमारे समय के यूरोप श्रद्धालु सरलता से अपनी अज्ञता की घोषणा करते हैं।

उपसंहार

भारत में ईसाई पादरियों की दुर्बलता और निरर्थकता

यदि, जैसा कि पादरी डूबाइस (Rev. Father Dubois) ने कहा है, न्याय, दयालुता, श्रद्धा, करुणा, निःस्वार्थता, वस्तुतः, सभी सद्गुण प्राचीन ब्राह्मणों में पाए जाते थे।

यदि, समान रूप से उसके साथ यह कहना भी सत्य है कि हिंदू भी उन्हीं नैतिक सिद्धांतों को स्वीकार करते हैं, जिनको हम मानते हैं, तो हमें भारत में अपने पादरियों की पूर्ण विफलता की चाभी मिल जाती है। इस असिद्धि को उनमें से भी बहुत-से ऐसे मनुष्य स्वीकार करते हैं, जो इसका कारण बताने की या तो परवा नहीं करते, या उनमें इसके लिये साहस नहीं है।

एक दिन एक ब्राह्मण के साथ मैं इन विषयों पर विचार कर रहा था। उसने मुझसे कहा—"मैं अपना धर्म क्यों बदलूँ?

"हमारा धर्म यदि तुम्हारे धर्म से बढ़िया नहीं, तो उसके समान तो है ही। तुम अपने धर्म को केवल अठारह सौ वर्ष का बताते हो, परंतु हमारा धर्म सृष्टि के आदि से निरंतर चला आ रहा है।

"तुम्हारे मतानुसार ईश्वर को तुम्हें धर्म देने के लिये कई प्रयत्न करने पड़ते हैं, और इस प्रकार तुम उसे घटा देते हो। हमारे विश्वासानुसार, उसने हमें उत्पन्न करते ही अपने धर्म का प्रकाश कर दिया।

"जब कभी मनुष्य-समाज सच्चे मार्ग से विचलित हो जाता है, तब उसे पुरातन धर्म पर वापस लाने के लिये वह अपने को प्रकट करता है।

"उसका अंतिम अवतार कृष्ण-रूप में हुआ था। वह संसार को

नवीन धर्मों की शिक्षा देने नहीं, प्रत्युत मूल-पाप को मिटाने और आचरणों को शुद्ध करने आया था।

"जिस प्रकार तुमने आदिम और हेवा की उत्पत्ति के हमारे ऐतिह्य को ग्रहण किया है, वैसे ही तुमने इस अवतार को भी ग्रहण कर लिया है।

"संसार की समाप्ति के पहले, हम अभी एक और अवतार के आने की प्रत्याशा कर रहे हैं। यह कृष्ण का अवतार होगा, और राक्षसों के राजा को, जो घोड़े का रूप धारण किए होगा, मारने के लिये आवेगा। जो कुछ तुमने मुझे अभी अपने अपोकलिपस (Apocalypse) के विषय में बताया है, उससे मैं समझता हूँ कि तुमने यह भविष्यद्वाणी हमसे ली है।

"तुम्हारा धर्म हमारे धर्म की तलछट, उसका अभिज्ञान-मात्र है; फिर मुझे इसे ग्रहण करने को क्यों कहते हो ?

"यदि तुम सफल होना चाहते हो, तो मुझे वे सिद्धांत न सिखलाओ, जो हमारे सभी धर्म-ग्रंथों में पाए जाते हैं, और मुझे उस आचरण की शिक्षा न दो, जो हमारे भारत में उस समय से है, जब कि योरप ने अभी सभ्यता के प्रकाश से आँखें भी नहीं खोली थीं।"

उसका यह सारा कथन ठोस सचाई थी, और इसमें उत्तर के लिये कोई गुंजायश ही न थी।

तब आप इन लोगों को क्या देंगे ? क्या पूजा का एक प्रकार ? क्या बाह्य शिष्टाचार ? वे तो केवल दृश्य अभिव्यक्तियाँ हैं, धर्म का मूलाधार नहीं हैं, और जब मूल एक ही हो, तब फिर क्या करना होगा ?

इसमें संदेह नहीं कि हिंदू अपने पुरातन धर्म को भूल गए हैं, और कृष्ण के आचरण की पवित्रता उनके कार्यों में नहीं मिलती; परंतु उनकी धर्म-भ्रष्टता अज्ञान का परिणाम नहीं; उन्हें अपने मतों और आत्मा के सारे महान् सिद्धांतों का पूर्ण ज्ञान है।

योरप को अपने झगड़ों और अपनी सब प्रकार की आकांक्षाओं के होते पत्थर फेकने के लिये इतना तैयार न हो जाना चाहिए। उसके लिये नीति-शिक्षक बन बैठना बहुत बुरा होगा॥।

निस्संदेह वर्तमान काल के हिंदुओं ने ईश्वर-पूजा का स्थान अतीव कुसंस्कारात्मक अनुष्ठानों को दे रक्खा है। फिर बाक़ी क्या रह गया? उनके पूर्वजों को धन्यवाद है, जिन्होंने ईश्वर को छोड़कर लोकोत्तर कर्मों के करनेवालों, देवों, ऋषियों, मुनियों, और देवदूतों का पूजन आरंभ कर दिया है।

और तब क्या? क्या हमारे यहाँ सेलट (Salette) और अन्य स्थानों के लोकोत्तर कर्म और ऐसे सिद्ध नहीं, जो लँगड़ों, बहरों, अंधों को, गंडमाला और बिवाई को चंगा कर देते हैं?........फिर हिंदू अपने क्यों न रक्खें?

एक दिन मुझे त्रिचनापली (जो भारत के पूर्वी किनारे पर एक बड़ा नगर है) के निकट एक छोटे-से गाँव में जाने का अवसर मिला। वहाँ एक नवागत पादरी ईसाई बनाने के लिये मनुष्य ढूँढ रहा था। ऐसी अवस्थाओं में जैसा कि रवाज है, एक ब्राह्मण धर्म-पंडित उसके पास आकर कहने लगा कि जिस भी धर्म-विषय पर आपकी इच्छा हो, जनता के सामने मुझ से वाद-प्रतिवाद कर लीजिए।

पादरी तामिल-भाषा अच्छी तरह समझता था। उसने स्वीकार कर लिया। यदि वह अस्वीकार करता, तो लोकमत में वह गिर जाता, और जिस भी हिंदू के साथ वह धर्म-विषय पर बात करता,

वह उसे अमोघ रूप से यह उत्तर देता—"तुम हमारे ब्राह्मण के साथ विवाद करने से क्यों डरते हो ?"

शास्त्रार्थ के लिये आगामी रविवार नियत किया गया। हिंदू लोग इन विवादों को, इन वाक्-युद्धों को बहुत पसंद करते हैं; स्त्री, पुरुष, बच्चे सभी इकट्ठे होकर बड़े अनुराग से सुनते हैं, विवाद से उत्तेजित हो जाते हैं, और आप कठिनता से ही विश्वास करेंगे, परास्त मनुष्य के पीछे बड़ी निर्दयता से हू-हू करते हैं। इस विषय में वे ब्राह्मण और पादरी, किसी का भी पक्षपात नहीं करते।

इस पर आपको उस समय कम आश्चर्य होगा, जब आपको यह पता लगेगा कि कोई भी हिंदू ऐसा नहीं, चाहे उसका वर्ण या पद कुछ ही क्यों न हो, जो वेदों के सिद्धांतों को न जानता हो, और जिसे पूर्ण रीति से लिखना और पढ़ना न आता हो।

एक हिंदू कहावत है कि वह मनुष्य ही नहीं, जो अपने विचार को अल्ले (लिखने के लिये ताड़ का पत्र) पर लिख नहीं सकता।

रविवार आया, सारा गाँव एक विशाल बर्गद की सुहावनी छाया के नीचे एकत्र हो गया *। यह वृक्ष मानो एक प्राकृतिक व्याख्यान-भवन था। मैं दोनों विपक्षियों से कुछ पग के अंतर पर बैठ गया, और विवाद आरंभ हुआ।

जो परिणाम अवश्यंभावी था, वह मैं उनके पहले ही प्रश्नोत्तर से समझ गया।

ब्राह्मण ने तीक्ष्ण और चतुर बुद्धि से तत्काल ही बड़ी निपुणता के साथ विवाद को आरंभ किया, और उनमें इस प्रकार विचित्र कथनोपकथन हुआ—

* यहाँ से लेकर इस परिच्छेद के अंत तक का सारा भाग अँगरेज़ी अनुवाद में नहीं है—संतराम

ब्राह्मण—आप क्या हैं? कहाँ से आए हैं? आपको किस बात का प्रयोजन है?

पादरी—मैं पादरी (पुरोहित) हूँ। मैं समुद्रों के पार से तुम्हें सच्चा परमेश्वर बताने आया हूँ।

ब्राह्मण—आपने इतनी दूर से यहाँ आने का कष्ट उठाया है, इसलिये आपको हमारे लिये बहुत उत्तम पदार्थ लाने चाहिए थे। पर आप सच्चा परमेश्वर क्यों कहते हैं? क्या, आप अनेक परमेश्वर मानते हैं? मैं तो सभी लोकों और सभी जातियों के लिये केवल एक ही मानता हूँ।

पादरी—मैं भी एक ही मानता हूँ। उसी के नाम से मैं बोलता हूँ और कुसंस्कार से उत्पन्न हुए झूठे ईश्वरों के साथ युद्ध करने लगा हूँ।

ब्राह्मण—आप हमारे अंदर प्रचार करने आए हैं; क्या आप समझते हैं कि जिस ईश्वर की हम उपासना करते हैं, वह सच्चा ईश्वर नहीं?

पादरी—आपने सच्ची बात कह दी।

ब्राह्मण—किंतु तब आपका कौन-सा परमेश्वर है? मनु भगवान् हमारे परमेश्वर का इस प्रकार लक्षण करते हैं—"जो अनादि काल से है, जिसे किसी ने उत्पन्न नहीं किया, जो ज्ञान (मन) द्वारा ग्रहण किया जाता है, जो इंद्रिय-ग्राह्य नहीं, जिसके अवयव नहीं, जिसके इंद्रियाँ नहीं, जो अनंत है, सर्वशक्तिमान् है, सचराचर जगत् का स्रष्टा है। और जिसका रहस्यमय एकत्व ब्रह्मा, विष्णु, और शिव के तीन व्यक्तियों का बना है," वह हमारा परमेश्वर नहीं, मेरा उसे अपना कहना ठीक नहीं; परमेश्वर किसी एक मनुष्य, एक जाति, अथवा एक समाज का नहीं। वह सभी भूतों का परमेश्वर है। क्या आप मेरी इन बातों को कुसंस्कारों का परिणाम कहते हैं?

पादरी—नहीं ; यदि आप एक और अद्वितीय परमेश्वर, ब्रह्मांड के स्वामी को मानते हैं, तो हम आपके साथ सहमत होने के लिये सर्वथा उद्यत हैं। केवल इतनी बात है कि परमेश्वर के विषय में आपने जो कल्पना बनाई है, मेरी पूरे तौर पर वैसी नहीं। आप अनवरत रूप से ईश्वर के एकत्व का वर्णन करते हैं, और फिर उसी को अशेषतः बाँटते हैं। आपके धर्म-ग्रंथों के अनुसार आपका ईश्वर कर्म नहीं करता; वह अपनी शक्ति को, दाहने और बाएँ नियुक्त करता है, पहले उसे देवों को देता है, इन देवों के फिर अपने प्रतिनिधि हैं। इनका नाम महर्षि अत्रि, अंगिरस्, पौलस्त्य, पुलह, क्रतु, प्रचेतस्, वशिष्ट, भृगु और नारद हैं। सारांश यह कि तुम्हारी ब्रह्म-विद्या ईश्वर के एकत्व को पीछे से केवल तहस-नहस कर डालने के लिये ही स्वीकार करती प्रतीत होती है।

ब्राह्मण—मैं समझता हूँ, आप जो कुछ कह रहे हैं, शुद्ध भाव से कह रहे हैं। परंतु आप भारी भूल में हैं। क्या कभी धार्मिक विश्वासों का आधार काव्यमय परिकथाओं को बनाया जा सकता है ? क्या आप समझते हैं, जो लोग अपने प्राचीन काल के महात्माओं का सम्मान करते हैं, वे उन्हें ईश्वर के तुल्य बना देते हैं ?

ब्रह्म के उपासक उसके सिवा और किसी को नहीं मानते, वे केवल उसी का पूजन करते हैं। इसमें बात ही क्या है, यदि उसने सत्ताएँ उत्पन्न की हैं, और अपने देवज्ञों के विशेष-विशेष कार्य सिपुर्द किए हैं; क्योंकि हमारे मतानुसार तो प्रत्येक वस्तु उसकी शक्ति का ही अवतार है।

आपकी युक्तियाँ आपके ही विरुद्ध जाती हैं; क्या आपके धर्म में फ़रिश्ते, पैग़ंबर, और महात्मा नहीं हैं ?

आप हमारे धर्म-ग्रंथों के विस्तार में क्यों जाते हैं ? वे तो प्रायः ऐसे रूपक हैं, जिनको आप समझ नहीं सकते।

आप हमारे ऐतिह्यों को, जो उतने ही पुराने हैं, जितना कि यह संसार पुराना है, उनका अध्ययन तथा अनुशीलन किए बिना ही, तहस-नहस कर डालने का क्यों यत्न कर रहे हैं? देखिए, मैं आपके दृष्टांत का अनुकरण नहीं करता। यद्यपि मेरा आपसे धर्म-भेद है, पर मैं आपके धार्मिक विश्वासों पर चोट नहीं करता।

पादरी—इसका लाभ आपको नीति-शास्त्र में मालूम होगा।

ब्राह्मण—क्या आपका तत्त्वज्ञान कोई ऐसी बात बताता है, जो हमारे तत्त्वज्ञान में नहीं? क्या आपने कृष्ण-अर्जुन-संवाद और देवयानी के दिव्य पुत्र की श्रेष्ठ शिक्षाएँ पढ़ी हैं?

क्या आपको विश्वास है कि हमें अच्छे और बुरे की पहचान नहीं, और आपका हमें वे बातें बताने के लिये समुद्र पार करके आना आवश्यक था, जिनको हम वैसी ही अच्छी तरह से जानते हैं, जिस प्रकार आप? क्या हमारा धर्म एक-दूसरे को सहायता देना नहीं सिखलाता? क्या हम दीन-दुखियों से घृणा करते हैं? हमारी सड़कों पर जगह-जगह सराएँ बनी हुई हैं। वहाँ पथिक और रोगी लोग विश्राम कर सकते और अपने सुख की प्रयोजनीय सामग्री पा सकते हैं।

क्या हम आपसे भी अधिक उत्तम रीति से अपने माता-पिता तथा पूर्वजों के पैर नहीं पूजते? हम उनके लिये सदा शोक करते हैं, और प्रति वर्ष हम इस लोक में उनका जन्म तथा मरण, जो दूसरे जीवन में उनका जन्म है, मनाते हैं।

इन शब्दों पर सारा जन-समुदाय 'ठीक है, ठीक है' बोल उठा। ब्राह्मण का हाथ पादरी से ऊपर होने लगा।

पादरी (बड़े आवेग से)—आप सब यह दिखला रहे हैं कि हमारे पास बाइबिल-जैसा पवित्र तत्त्वज्ञान है, फिर आप इसके अनुसार कर्म क्यों नहीं करते? परमेश्वर ने जो दिन तुम्हें दिए हैं, उन्हें

अतीव निर्लज्ज विकारों को तृप्त करने में, अपने आपको अत्यंत भ्रष्ट विषयासक्ति में लिप्त रखने में क्यों बिताते हो? अपने बच्चों को बहुत छोटी आयु से ही चोरी, झूठ और व्यभिचार में क्यों पड़ने देते हो? क्या तुम प्रत्याशा करते हो कि इस प्रकार लोग ईश्वर के नियम के अनुकूल बनेंगे?

तुमने अपनी स्त्रियों को क्या बना रक्खा है? विलास की सामग्री, पशु, भक्ति और प्रीति में अक्षम, दासियाँ, जिनको तुम गाय-भैंसों की तरह ख़रीदकर बंद कर रखते हो।

तुम जो प्रभु के भेजे हुए प्रकाश को हटाते हो। मैं तुमसे कहता हूँ कि तुम अपने अपराधों के कारण दुःख पाओगे। जब अंतिम दिन आवेगा, तुम्हारे अच्छे और बुरे कर्म तौले जायँगे, तब परमेश्वर तुमसे मुख मोड़ लेगा, और तुम अभियुक्तों में ठेल दिए जाओगे।

पादरी इसी विषय को लेकर बड़ी देर तक बोलता रहा; जोश से वह घबरा-सा गया, और अपने मूल-विषय को भूल गया। तब उसने विवाद बंद कर दिया। वह इस प्रकार उपदेश करने लगा, मानो किसी रोमन कैथोलिक गिरजे में खड़ा हो। श्रोतागण उसके शब्दों का कुछ भी अर्थ न समझ सकते थे।

इसलिये जब ब्राह्मण ने बोलना आरंभ किया, तो मैं समझा कि पादरी अपना स्थान छोड़कर जाने लगा है।

ब्राह्मण—आपके अन्याय-संगत आक्रमणों से आपकी पोल खुल रही है। आपका हमारे यहाँ आने का उद्देश वह नहीं, जो आपने पहले बताया था। परमेश्वर के सेवक को क्रोध नहीं करना चाहिए। पवित्र शब्द मधु की तरह मीठे निकलने चाहिए, जिनसे सुननेवाले विष्णु के प्रिय कमल की-सी मधुर सुगंधि से सुगंधयुक्त हो जायँ।

जिन विषय-भोगों की आप बात करते हैं, और हम पर दोषारोपण करते हैं, क्या आप कभी उनमें सम्मिलित हुए हैं? क्या आप कभी

हमारे घरों के भीतर गए हैं? क्या आप जानते हैं कि वहाँ गार्हस्थ्य अग्नि के रक्षक महर्षियों की मूर्तियों के नीचे क्या होता है? आप हमारी स्त्रियों की तुलना दासियों के एक दल से करते हैं। उनके लिये बनाया हुआ महर्षि मनु का नियम पढ़िए, तब बोध हो जाने के कारण आपकी राय अधिक न्याय-संगत हो जायगी।

आपको न हमारे नियमों का पता है, और न हमारे रीति रवाजों का ही, इस पर भी आप हमें फटकारते हैं! आपकी बातें यहाँ लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकतीं। जाइए, बंबई, मदरास, और कलकत्ते में अपने लोगों को उपदेश दीजिए। हमारी अपेक्षा उन्हें इसकी अधिक आवश्यकता है। आप उन्हें प्रतिज्ञा-भंग करते, अपने को धनाढ्य बनाने के लिये हिंदुओं को धोखा देते, और हमसे लूटे हुए धन के साथ अपने विषय-भोग के लिये हमारी युवती कन्याएँ ख़रीदते पावेंगे। यदि आप भारत की कुछ सेवा करना चाहते हैं, तो उन्हें जाकर कहिए कि वे हमारे सामने ऐसे दृष्टांत उपस्थित न करें। हम उस धर्म को बुरा समझते हैं, जो ऐसे भ्रष्ट लोगों को न रोकना जानता है और न दंड देना ही।

इतना कहकर ब्राह्मण उठ खड़ा हुआ। श्रोताओं ने प्रशंसा-सूचक ध्वनि की, और बड़े ही आदर और सम्मान के साथ वे उसे उसके घर लिवा ले गए।

मैंने ऐसे विवाद सदा इसी प्रकार ही समाप्त होते देखे हैं।

यह बहुत ठीक है कि भारत शताब्दियों से अपभ्रंश से छिन्न रहा है, और इस समय स्त्रियाँ केवल विषय-भोग का साधन हैं; परंतु भूतकाल में उनका बड़ा सम्मान और आदर था। धर्म को रीति-रवाजों ने परास्त कर दिया है; पर अभी तक वह वैसा-का-वैसा विद्यमान है, और ब्राह्मण लोग धर्म (क़ानून) की शरण लेते हैं। हिंदुओं के नैतिक सिद्धांत वही हैं, जो हमारे हैं। फिर सिद्धांतों के

आधार पर उन्हें नीचा दिखाने का यत्न क्यों ? दुर्भाग्य से यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि सत्य घटनाओं पर विवाद करते हुए यदि कोई परख और विचार से काम लेना आरंभ कर दे, तो भी ब्राह्मण के पास प्रबल शस्त्र हैं; क्योंकि यह बात सर्वथा सत्य है कि योरपियन लोग भारतीय प्रजा के सामने आचार और शुद्ध व्यवहार के बड़े ही खेदजनक उदाहरण उपस्थित करते हैं।

मुट्ठी-भर ईसाइयों के बीच भी, जिनका पाँच-छठा भाग पेरिया (पतित) लोगों का है, जो बीस करोड़ से भी अधिक हिंदुओं में बिखरे पड़े हैं, एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलता, जो सच्चे हृदय से नवीन धर्म का माननेवाला हो। उनको ईसाई बनाने के लिये पादरियों को विवश होकर क्या-क्या यत्न करने पड़ते हैं ? एक को वे रुपया या दो रुपया मासिक की वृत्ति देते हैं, तो दूसरे को उदरपूर्ति के लिये पर्याप्त चावल, और ज्यों ही वे वृत्ति और चावल देना बंद करते हैं, ईसाई अंतर्द्धान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त, वे अपनी जाति के सभी रीति-रवाज और जन्म, विवाह, मृत्यु तथा पूर्वजों की पूजा के सभी ग़ैर-ईसाई संस्कार बराबर करते रहते हैं। इनसे उन्हें रोका नहीं जा सकता। दूसरे विवश होकर अछूत लोगों को 'वर्ण'वाले लोगों के पास जाने से रोकना और उन्हें गिरजों में बंद रखना पड़ता है, नहीं तो सभी नए ईसाई तत्काल भाग जायँगे।

यहाँ तक कि कई गिरजे उच्च वर्णों के हिंदुओं ने इस शर्त पर बनाए हैं कि इन दीन अपांक्तेयों को उनमें प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी जायगी, और पादरियों (मिशनरियों) ने न केवल इस शर्त को स्वीकार ही किया है, वरन् इसका पूरा-पूरा पालन भी किया है।

एक दिन पांडिचेरी से कुछ मील के अंतर पर पुरियनकूपम्

(Ariancoupam)-नामक गाँव के एक छोटे-से गिरजे में मैंने प्रवेश किया। मेरे साथ मेरा एक अछूत नौकर भी अंदर गया। उसको देखते ही सारे हिंदू रुष्ट होकर उठ खड़े हुए; प्रक्रिया बंद कर दी गई; जो पादरी कार्य करा रहा था, वह मेरे पास आकर कहने लगा कि यह गिरजा वर्णवाले लोगों का है, आपके अछूत नौकर को यहाँ आने का अधिकार नहीं।

इस नवीन सिद्धांत के ईसाई प्रचारकों के इस भाव पर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ, और मैं शीघ्र ही वहाँ से चला आया।

क्या वे वस्तुतः ईसा के, हाँ, उसके, जो पीड़ितों की उन्नति और निर्बलों की रक्षा के लिये आया था, प्रतिनिधि हैं, जो ऐसे नीच छल करते हैं?

मैं यह विना किसी पक्षपात के सच-सच कह रहा हूँ। मैं ललकार-कर कहता हूँ कि जो मनुष्य भारत में निवास कर चुके हैं, उनमें से कोई भी मेरे कथन की सत्यता का खंडन करके दिखावे।

परंतु जिस बात से मुझे और भी अधिक दुःख होता है, वह कर्नाटक के ईसाई जुलूसों में ईसा, मरियम और महात्माओं का दृश्य है, जहाँ वे, मूर्तियों के किसी आंतरिक यंत्र-व्यापार के द्वारा, ग़ैर ईसाई मूर्तियों के नीच स्वाँगों की नक़ल करते हुए हाथ-पैर हिलाते और एक प्रहसन का अभिनय करते हैं।

जब मैंने एक पादरी से कहा कि ऐसे कुसंस्कारों से आपके धर्म को कुछ भी लाभ न होगा, तब उसने यह उत्तर दिया—

"हिंदू एक बालकों की जाति है। ब्राह्मणों के अनुयायियों के वैभव के साथ मुक़ाबला करने के लिये हम उन्हें स्वाँग द्वारा फुसलाने पर विवश हैं। इन लोगों के जुलूसों का लोगों पर बड़ा प्रभाव पड़ता है; इनके देवताओं की मूर्तियाँ गुप्त कमानियों द्वारा कार्य करती हुई अपने आसनों पर जीती-जागती प्रतीत होती हैं। अपने संस्कारों में हमें भी ऐसा ही करना पड़ता है। इसके बिना हम ब्राह्मणों से हीन

समझे जायँगे, और इस देश में, जहाँ कल्पना बहुत बड़ा कार्य करती है, यह एक भारी आशंका होगी।"

मैंने साहस करके पूछा—"पादरीजी, क्या ये ठीक वही मालाबारी अनुष्ठान नहीं, जिनकी रोम में ऐसी घोर निंदा की जाती थी?"

उसने मेरी ओर से पीठ फेर ली।

निस्संदेह पाठक इस विषय का कुछ-न-कुछ समाधान अवश्य चाहते होंगे।

भारत में बाइबिल का प्रचार करने के लिये सबसे पहले जेज़ूइट (Jesuits) संप्रदाय के पादरी आए थे। उन्होंने आते ही देखा कि साधारण साधनों से यहाँ कुछ भी सफलता न हो सकेगी; यहाँ उनके सामने कोई भोंदू और असभ्य लोग नहीं, वरन् एक सर्वथा सभ्य जाति थी, जो अपने धर्म, अपनी रीति-नीति को सब वस्तुओं से उत्तम समझती थी।

तब इन जेज़ूइटों ने हिंदुओं-जैसे वस्त्र धारण किए, और लोगों को यह बताना आरंभ किया कि हम ब्राह्मण हैं, और लोगों को उनके प्राचीन धर्म की भूली हुई बातें फिर से स्मरण कराने के लिये पश्चिम से आए हैं। ये पादरी जाति-पाँति, संस्कारों, मूढ़ विश्वासों और पक्षपातों का न केवल सम्मान ही करने लगे, वरन् उन्होंने इन्हें ग्रहण कर लिया, अपना लिया, और अपने को हिंदुओं के साथ ऐसी अच्छी तरह से मिला दिया कि उन्हें लोगों को अपना पक्षावलंबी बनाने में सफलता प्राप्त हो गई।

उनकी इस सफलता पर कई प्रतियोगी ईसाई संप्रदायों ने रोम के न्यायालय में उन पर आक्षेप किया कि उन्होंने अपने धर्म को ऐसे कामों में लगाकर, जिनसे उसके सिद्धांतों की पवित्रता दूषित हो गई है, भ्रष्ट कर दिया है।

पोप ने जेज़ूइटों की गंभीरता-पूर्वक निंदा की, और मालाबारी

अनुष्ठानों के नाम से उनकी व्यवहार-रीति के बहिष्कार की घोषणा की, और देश की व्यवहृत और स्वभावों के लिये जो स्वीकृति इन जेज़ुइटों ने लोगों को दे रक्खी थी, उसे रोमन कैथोलिक सिद्धांतों के विपरीत बताकर रद कर दिया।

उनकी जगह नए ईसाई प्रचारक भेजे गए। उन्हें आज्ञा दी गई कि अपने अग्रगामियों के सभी कामों को उलटा दो, और ईसाई हिंदुओं को बाइबिल के धर्म में लाओ।

ईसाई प्रचारक, जिन्होंने अपने लाभ के लिये जेज़ुइटों के अधिकार की जड़ काटी थी, ख़ूब जानते थे कि जब तक गिरजों को बंद कर देने और मुट्ठी-भर नए ईसाइयों को हाथ से खो देने ही की इच्छा न हो, तब तक जिस तरह जेज़ुइटों ने किया था, उसके विपरीत और किसी रीति का अवलंब करना संभव नहीं। वे तो केवल जेज़ुइटों को ही मात करना चाहते थे। जब उन्हें इसमें सफलता हो गई, तो उन्होंने झट वही मालाबारी अनुष्ठान ग्रहण कर लिये और और भी अधिक खुली स्वीकृति दे दी।

इसी प्रकार देश की रीतियों के लिये उन्होंने जो वेष ग्रहण किया था, वह प्रायः सर्वथा हिंदू वेष है; और संस्कारों में जो तिकोना-टोपी (Bonnet) वे पहनते हैं, वह ब्राह्मण पुरोहितों की टोपी के साथ बिलकुल मिलती है।

हाँ, मैं कह रहा था, वे अछूतों को अलग बंद रखते थे, और केवल इतने पर ही संतुष्ट न होकर उच्च वर्णों के लोगों के साथ बात-चीत करते समय यह भी दंभ करते थे कि हम इन दीन निम्न-स्थितों को गंदे जीव समझते हैं।

क्या कोई इस पर विश्वास करेगा? वे उन कुसंस्कारों को छोड़कर पीछे नहीं हटते, जो पौराणिक हिंदू-धर्म का सार हैं; वे प्रकट रूप से कभी गो-मांस न खाते थे।

समझे जायँगे, और इस देश में, जहाँ कल्पना बहुत बड़ा कार्य करती है, यह एक भारी आशंका होगी।"

मैंने साहस करके पूछा—"पादरीजी, क्या ये ठीक वही मालाबारी अनुष्ठान नहीं, जिनकी रोम में ऐसी घोर निंदा की जाती थी?"

उसने मेरी ओर से पीठ फेर ली।

निस्संदेह पाठक इस विषय का कुछ-न-कुछ समाधान अवश्य चाहते होंगे।

भारत में बाइबिल का प्रचार करने के लिये सबसे पहले जेज़ूइट (Jesuits) संप्रदाय के पादरी आए थे। उन्होंने आते ही देखा कि साधारण साधनों से यहाँ कुछ भी सफलता न हो सकेगी; यहाँ उनके सामने कोई भोंदू और असभ्य लोग नहीं, वरन् एक सर्वथा सभ्य जाति थी, जो अपने धर्म, अपनी रीति-नीति को सब वस्तुओं से उत्तम समझती थी।

तब इन जेज़ूइटों ने हिंदुओं-जैसे वस्त्र धारण किए, और लोगों को यह बताना आरंभ किया कि हम ब्राह्मण हैं, और लोगों को उनके प्राचीन धर्म की भूली हुई बातें फिर से स्मरण कराने के लिये पश्चिम से आए हैं। ये पादरी जाति-पाँति, संस्कारों, मूढ़ विश्वासों और पक्षपातों का न केवल सम्मान ही करने लगे, वरन् उन्होंने इन्हें ग्रहण कर लिया, अपना लिया, और अपने को हिंदुओं के साथ ऐसी अच्छी तरह से मिला दिया कि उन्हें लोगों को अपना पक्षावलंबी बनाने में सफलता प्राप्त हो गई।

उनकी इस सफलता पर कई प्रतियोगी ईसाई संप्रदायों ने रोम के न्यायालय में उन पर आक्षेप किया कि उन्होंने अपने धर्म को ऐसे कामों में लगाकर, जिनसे उसके सिद्धांतों की पवित्रता दूषित हो गई है, भ्रष्ट कर दिया है।

पोप ने जेज़ूइटों की गंभीरता-पूर्वक निंदा की, और मालाबारी

अनुष्ठानों के नाम से उनकी व्यवहार-रीति के बहिष्कार की घोषणा की, और देश की व्यवहृत और स्वभावों के लिये जो स्वीकृति इन जेज़ूइटों ने लोगों को दे रक्खी थी, उसे रोमन कैथोलिक सिद्धांतों के विपरीत बताकर रद कर दिया।

उनकी जगह नए ईसाई प्रचारक भेजे गए। उन्हें आज्ञा दी गई कि अपने अग्रगामियों के सभी कामों को उलटा दो, और ईसाई हिंदुओं को बाइबिल के धर्म में लाओ।

ईसाई प्रचारक, जिन्होंने अपने लाभ के लिये जेज़ूइटों के अधिकार की जड़ काटी थी, खूब जानते थे कि जब तक गिरजों को बंद कर देने और मुट्ठी-भर नए ईसाइयों को हाथ से खो देने ही की इच्छा न हो, तब तक जिस तरह जेज़ूइटों ने किया था, उसके विपरीत और किसी रीति का अवलंब करना संभव नहीं। वे तो केवल जेज़ूइटों को ही मात करना चाहते थे। जब उन्हें इसमें सफलता हो गई, तो उन्होंने झट वही मालाबारी अनुष्ठान ग्रहण कर लिये और और भी अधिक खुली स्वीकृति दे दी।

इसी प्रकार देश की रीतियों के लिये उन्होंने जो वेष ग्रहण किया था, वह प्रायः सर्वथा हिंदू वेष है ; और संस्कारों में जो विधिविधान-टोपी (Bonnet) वे पहनते हैं, वह ब्राह्मण पुरोहितों की टोपी के साथ बिलकुल मिलती है।

हाँ, मैं कह रहा था, वे अछूतों को अलग बंद रखते थे, और केवल इतने पर ही संतुष्ट न होकर उच्च वर्णों के लोगों के साथ बात-चीत करते समय यह भी दंभ करते थे कि हम उन दीन निम्न-जातियों को नहीं जीव समझते हैं।

क्या कोई इस पर विश्वास करेगा ? वे उन कुसंस्कारों को छोड़कर पीछे नहीं पलटे, जो पौराणिक हिंदू-धर्म का सार है ; वे प्रकट रूप से कभी गो-मांस न खाते थे।

आप जानते हैं, हिंदू लोग इस जंतु का पूजन करते हैं, और उनके प्राचीन नियम गउओं का वध करनेवालों के लिये कठोर दंड की आज्ञा देते हैं।

इससे भी अधिक, यदि वे किसी ऐसे ज़िले में रहते थे, जहाँ के लोग कभी किसी प्रकार का भी मांस नहीं खाते, तो वे उनकी नक़ल करते थे, और उनके सदृश चावल और वनस्पति पर ही निर्वाह करते थे।

उनमें से एक ने एक बार मुझे बताया कि जब हम अकेले होते हैं तब कभी-कभी मुर्ग़ी मार लेते हैं, परंतु बहुत कम। यदि हमें कोई देख ले, तो हमारे ईसाई हमसे अलग हो जायँ।

उसके इस कथन में झूठ का लेश-मात्र भी नहीं। आपको एक भी ऐसा ईसाई प्रचारक न मिलेगा, जो भारत में निवास कर चुका हो, और फिर हमारे शब्दों का खंडन करने का साहस कर सके।

अभी तक और भी ऐसे प्रश्न हैं, जिनको मैं उठा सकता हूँ, परंतु वे ऐसी सूक्ष्म बातों का वर्णन करते हैं, जिनका उल्लेख यहाँ नहीं किया जा सकता।...

मैं नहीं जानता कि भारत के लिये भविष्य के गर्भ में क्या कुछ है, परंतु जिस बात का मुझे निश्चय है, वह यह है कि इस रीति से आप उसका पुनरुद्धार नहीं कर सकते।


चौथा खंड

ईसाई कल्पना का हिंदू-मूल

यदि मैं ईसाइयों के कैथोलिक मत का माननेवाला हूँ, तो मुझे यहूदी
बनकर आरंभ करना चाहिए, और यदि मैं यहूदी हूँ, तो
शीघ्र ही पौराणिक हिंदू-धर्म को ग्रहण करना चाहिए

पाठक के प्रति

धर्म अपने सिद्धांत लोगों पर डालते हैं, अपने नियमों के नीचे आत्मा को झुकाते हैं, अपने आश्रितों के लिये विचार और निर्णय की स्वतंत्रता का निषेध करते हैं, और परमेश्वर के नाम पर उस सारे विचार का, जिस पर उनका अधिकार नहीं, और सिर नवाने और विश्वास करने की स्वाधीनता के सिवा शेष सारी स्वाधीनता का बहिष्कार करते हैं।

समान रूप से, परमेश्वर के नाम पर, विवेक दूसरे सिद्धांतों का प्रतिपादन करता है, जैसा कि विचार और कर्म में व्यक्ति की स्वतंत्रता पुण्य और न्याय के मार्गों पर परीक्षा और विचार द्वारा मनुष्य-समाज की प्रगति; क्योंकि यही भविष्य को भूत के कुसंस्कारों और अवरोधों से छुड़ा सकती है।

भौतिक विज्ञान जब तक धार्मिक कल्पना के ठहराए हुए सिद्धांत के पीछे चलता रहा, तब तक बराबर उससे भूलें होती रहीं। नीति-शास्त्र ने भी यदि अपना संबंध रहस्य और ईश्वरीय ज्ञान से न तोड़ लिया, तो इसकी भी इससे कुछ अच्छी दशा न होगी।

तब हम परमात्मा और उसकी पूजा को मानवीय दोष के उन सब क्लेशों, उन सब निर्बलताओं से अलग कर देंगे, जिनके साथ मनुष्य छः सहस्र से अधिक वर्षों से ईश्वर का संबंध जोड़े चला आ रहा है।

सभी स्वतंत्र बुद्धिवालों का ऐसा ही उद्देश्य होना चाहिए।



पहला अध्याय

सरल स्पष्टीकरण

हम सारे प्राचीन समाजों पर प्राचीन भारत का प्रभाव सुस्पष्ट रीति से दिखला चुके; ईरान, मिस्र, यहूदिया, यूनान, और रोम के नैतिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक और धार्मिक ऐतिह्यों को उस महान् पुरातन स्रोत से निकला हुआ सिद्ध कर चुके; मूसा की पुस्तक को मिस्र और सुदूर पूर्व की धर्म-पुस्तकों से लिया हुआ प्रमाणित कर चुके। अब हम ईसा और उसके प्रेरितों को, चाहे एशिया में या मिस्र में, वेदों के पुरातन ऐतिह्य तथा कृष्ण की शिक्षा और धर्मोन्मादानुराग प्राप्त करते, और उन श्रेष्ठ तथा पवित्र सिद्धांतों की सहायता से प्राचीन संसार का, जो जरा और भ्रष्टता से सब कहीं जर्जर हो रहा था, पुनरुद्धार करने का प्रयत्न करते दिखलावेंगे।

हमने हिंदुओं की सृष्टि-उत्पत्ति का, कुमारी के गर्भवती होने का, परित्राता कृष्ण के जीवन तथा मृत्यु का सरल और ज्यों-का-त्यों वर्णन दिया है, और यथासंभव सारी टीका-टिप्पणी इस पुस्तक के अंतिम भाग के लिये परिरक्षित रक्खी है; क्योंकि वहाँ हमें एक बार फिर, आवश्यक रूप से, इन सब विषयों को लेना पड़ेगा।

आनंद मुझसे दूर है; एक उच्चतर प्रयोजन मुझे प्रोत्साहित कर रहा है; मैं सभी निर्व्याज विश्वासों का सम्मान करता हूँ, चाहे मेरी बुद्धि उनको ग्रहण करने से इनकार ही क्यों न करे।

मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं विवेक-बुद्धि के सिवा और किसी को अपना पथ-प्रदर्शक, और आत्म-प्रकाश के सिवा और किसी प्रकाश को न स्वीकार करूँगा और न कर ही सकता हूँ।

परमात्मा ने मुझे एक मशाल दी है, और मैं उसके पीछे चला हूँ।

भूत सिवा विनाश, अंधकार. असहिष्णुता, और स्वेच्छाचारिता के और कुछ नहीं। आओ, हम अपने मार्ग को बदल लें, और देखें कि भविष्य क्या बनाता है।

दूसरा अध्याय

ईसा का इतिहास लिखनेवालों द्वारा वर्णित ईसा-चरित की असंभावना

महान् ईसाई तत्त्ववेत्ता का जीवन-चरित, जैसा कि उसके इतिहास-लेखकों और उसके प्रेरितों ने हम तक पहुँचाया है, संदिग्ध प्रमाण-पुष्ट रचनाओं का एक जाल है, जो लोक-कल्पना को प्रभावित करने और अपने नवीन धर्म को दृढ़तापूर्वक प्रतिष्ठित करने के लिये बनाया गया है।

यह मानना पड़ेगा कि यह षड्यंत्र बड़ी अद्भुत रीति से तैयार किया गया था, और इन लोगों को सुधार के लिये अपना धन और जीवन दे डालनेवाले भक्तों को ढूँढ़ने में बहुत कम कठिनता हुई।

सब कहीं मूर्तिपूजा मृत्यु-शय्या पर लेट रही थी; जूपीटर की वेदियाँ तो निस्संदेह थीं, पर उपासक कोई न था; पीथागोरस (Pythagoras), अरस्तू, सुकरात और अफ़लातूँ सब-के-सब चिरकाल से हमें अपने हृदय-मंदिर से बाहर निकाल चुके थे। सिसरो को यह देखकर आश्चर्य होता था कि दो पुरोहित बिना हँसे एक दूसरे को कैसे देख सकते हैं। उन दो पीढ़ियों में, पिर्हो (Pyrrha), सिमन, सेक्सटस एंपीरिकस (Sextus Empiricus) और एनेसीडिमस (Enesidemus) का किसी भी चीज़ में विश्वास न था; लुक्रीशस (Lucretius) ने वस्तु-प्रकृति पर पुस्तक लिखी थी, और आनन्द के स्वरूप की सबसे महान् आत्माएँ, जो इतनी भ्रष्ट हो चुकी थीं कि सब सिद्धांतों और पुरातन ज्योतिषियों की ओर ध्यान नहीं दे सकती थीं परंतु सब पर हँसती थीं, अर्थात् पूर्ण संदेह तक पहुँच चुकी थीं, और ईश्वर तथा मनुष्य के भावी भाग्य को भुलाकर सुख का जीवन व्यतीत करती थीं।

दूसरी ओर वे पुरानी और मरणासन्न धर्मविद्याएँ जनता की आत्मा पर एक परित्राता की कल्पना, जो प्राचीन भारत ने सभी जातियों को दी थी, छोड़ गईं थीं, और श्रांत जनता अपने विनष्ट विश्वासों का रिक्त स्थान भरने, और संशय और आशा के अभाव से जड़ बनी हुई शक्ति को पुष्ट करने के लिये किसी नई चीज़ की प्रतीक्षा कर रही थी।

इस समय एक दरिद्र यहूदी, जनता की एक नीचतम श्रेणी में उत्पन्न होने पर भी, अध्ययन और चिंतन में पंद्रह वर्ष व्यतीत करने के उपरांत, इस जरा और जड़वाद के युग के पुनरुद्धार का यत्न करने से नहीं डरा।

जिस शुद्ध और सरल आचरण का उसने उपदेश दिया, और इस नवीन प्रत्यादेश के नीचे प्राचीन संसार ने जिस उत्सुकता के साथ अपने को रूपांतरित किया, उसे सब कोई जानता है। हमारा उद्देश्य ईसा की शिक्षा का निरूपण करना नहीं; हमारा काम तो केवल उसके मूल को ढूँढ़ना, और यह देखना है कि किस परि-शीलन से यह सुधारक अपना सुधार करने में समर्थ हुआ था।

जिस घड़ी से हम अवतार का मानने से इनकार करते हैं, और उसे केवल एक मनुष्य समझते हैं, चाहे वह मनुष्य कितना ही उच्च और प्रतिभाशाली क्यों न हो, हमें उसका अग्रगामी ढूँढ़ने का अधिकार है, जैसा कि हमने बुद्ध, ज़र्दुश्त, मिसर के मेनस और मूसा के अग्रगामी ढूँढ़े हैं।

हमारे लिये तो निर्विवाद है कि ईसा, संसार के रंग-मंच पर आने के समय तक, अर्थात् तीस वर्ष की आयु तक अपने को अपने इस आत्म-निरूपित उद्देश्य के लिये अध्ययन द्वारा तैयार करता रहा था।

अपना काम आरंभ करने के लिये वह तीस वर्ष की आयु तक

क्यों ठहरा रहा? यदि वह ईश्वर था, तो वह अपने यौवन और पुरुषत्व के जीवन के बारह या पंद्रह वर्ष क्यों निश्चेष्ट बैठा रहा? वह बचपन से ही क्यों न उपदेश करने लग गया, जो निस्संदेह उसके ईश्वरत्व का प्रमाणित करने की एक अतीव प्रत्यक्ष रीति होती।

यह सच है कि हमें बताया गया है कि बारह वर्ष की आयु में उसने मंदिर में एक बार पूर्व-पक्ष का प्रतिपादन करते हुए यहूदी विद्वानों को चकित कर दिया था; परंतु कौन-से पूर्व-पक्ष का? उसके इतिहास-लेखकों ने इसकी सूचना हमें देना उचित क्यों नहीं समझा? क्या इस बात का, दूसरी बहुत-सी बातों की तरह, उनकी कल्पना की ही उपज होना अधिक संभव नहीं?

तब अंत को हम पूछते हैं कि वह बारह वर्ष से लेकर तीस वर्ष की आयु तक क्या करता रहा? इस प्रश्न का उत्तर पाकर मैं बड़ा प्रसन्न हूँगा।

ईसा के पक्षपातियों के मौन में हमें केवल एक अभिप्रेत विस्मरण देख पड़ता है; क्योंकि अन्यथा सचाई का बताना, और कल्पना की उस धुंध को, जिसमें उन्होंने इस विशाल रूप को ढाँपा हुआ है, छिन्न-भिन्न करना आवश्यक होता। सचाई यह है कि ईसा ने और उसके साथ ही उसके सबसे अधिक चतुर शिष्यों ने भी, जिनको उसने अपने परिभ्रमणों में अपने साथ मिला लिया था, इस अवधि में, मिसर में, प्रत्युत शायद भारत में भी, उन धर्म-पुस्तकों का अध्ययन किया था, जो केवल दीक्षितों के लिये ही शालाविहारों में रक्षित पड़ी थीं।

इसी रीति से क्राइस्ट (ईसा) ने पुरातन दीक्षितों का ज्ञान प्राप्त किया, और कृष्ण के आचरण तथा धर्मोपदेश का अध्ययन किया। उसके सुपरिचित संवादों तथा शिक्षाओं में उन्हीं का प्रत्यादेश है।

मैं समझता हूँ, स्वतंत्र विचारकों (नास्तिकों) की छावनी से भी मुझे आश्चर्य और विस्मय की ध्वनि उठती सुनाई दे रही है।

इसलिये हे तर्क-युक्तिवादियो, मैं केवल तुम्हीं को संबोधन कर रहा हूँ; क्योंकि ज्यों ही आप मतवादियों के पक्ष को स्वीकार करना छोड़ दें, त्यों ही उनके साथ किसी भी प्रकार का वाद-प्रतिवाद करना असंभव हो जाता है।

यदि आप ईसा के ईश्वरत्व में विश्वास नहीं रखते, तो मुझे उसके अग्रगामियों का पता चलाते देख आपको क्यों आश्चर्य होता है ? उसका जन्म एक बे-समझ, क्योंकि वह बहुत कम संस्कृत थी, जाति में हुआ था, इसलिये वह केवल अध्ययन के द्वारा ही अपने को स्वदेश-बंधुओं से इतना उच्चतर कर सका कि उसने वह महत्त्वपूर्ण कार्य किया, जिसको हम जानते हैं। हाँ, ईसा मिसर में गया, हाँ, ईसा ने अपने शिष्यों के साथ पूर्व में अध्ययन किया। जो नैतिक क्रांति उन्होंने संपन्न की, उसका तर्कसंगत समाधान केवल यही है। परंतु प्रमाणों की भी कमी नहीं, मेरे इस मत पर, जिसे मैं केवल एक अनुमान नहीं, प्रत्युत एक ऐतिहासिक सत्य मानता हूँ, व्यवस्था देने के पहले प्रमाणों की प्रतीक्षा कर लीजिए।

ऐसे शब्दों से मत आरंभ कीजिए; मैं ऐतिहासिक सत्य कहता हूँ, क्योंकि यदि, मेरे सदृश ही, आप सृष्टिक्रमबाह्य, विस्मयोत्पादक, और प्रत्यादिष्ट बातों को नहीं मानते, तो केवल स्वाभाविक कारणों का अध्ययन करना ही शेष रह जाता है; और यदि हम और आप दोनों को अपनी पहली परीक्षाओं में एक ऐसा अधिक प्राचीनवाद मिला है, जो प्रत्येक बात में ईसा और उसके प्रेरितों के वाद में मिलता है, तो क्या हमें यह परिणाम निकालने का अधिकार नहीं कि इन शेषोक्त लोगों ने उन्हीं पुरातन स्रोतों से अपना प्रत्यादेश प्राप्त किया था ?

क्या प्राचीन काल की सभी महान् आत्माएँ मानसिक संस्कृति के लिये मिस्र में नहीं जाती थीं ? क्या वह प्राचीन भूमि उस युग के सभी विचारकों, सभी दार्शनिकों, सभी ऐतिहासिकों और सभी वैयाकरणों का आश्रय नहीं बन रही थी। तब वे वहाँ क्या करने जाते थे ? सिकंदरिया के उस विशाल पुस्तकालय में क्या भरा हुआ था, जिसके विध्वंस से सीज़र ने भावी संतानों के तिरस्कार के लिये अपने माथे पर कलंक का टीका लगा लिया ?

यदि इस देश के प्राचीन ऐतिह्य, चमकते हुए आकाश-दीपक के सदृश, सारे बुद्धिमानों और सारे विचारकों को अपनी ओर आकर्षित नहीं करते थे, तो पीछे से ब्रह्मसाक्षात्कारवादियों (Neo—Platonicians) ने वहाँ अपना प्रसिद्ध संप्रदाय क्यों स्थापित किया ?

यूसुफ़ और मरियम के पुत्र ने भी लहर का अनुसरण किया; मिस्र समीप था, और वह वहाँ शिक्षा पाने के लिये चला गया। प्रत्युत मुझे तो ऐसा ज्ञात पड़ता है कि उसके माता-पिता ही बचपन में उसे वहाँ ले गए थे, और जैसा कि उसके इतिहास-लेखक कहते हैं, वह चाहे कुछ ही बहाना बनाया जाय, वहाँ से तब तक वापस नहीं आया, जब तक कि उसके मन में यहूदियों में अपने सिद्धांत का प्रचार करने का विचार उत्पन्न नहीं हुआ।

जन्म पर जिसके विषय में भविष्यद्वक्ताओं ने पहले ही बता रक्खा था, अनेक अद्भुत बातें हुईं; अलौकिक प्रत्यादेश से प्रेरित होकर गड़रिए और पूर्व के तीन मजूस, नवजात के पूजन के लिये बैतुलहम में आए।

यरूसलम के राजा हीरोद ने 'मसीह' के प्रादुर्भाव से डरकर, क्योंकि कुछ भविष्यकथनों में बताया गया था कि मसीह उसे राज-सिंहासन से उतार देगा, बैतुलहम और उसके इर्द-गिर्द के सारे देशों के दो वर्ष और इससे कम आयु के सभी बच्चे मरवा डाले।

एक देवदूत के चेतावनी देने पर, अपने बच्चे को हत्या से बचाने के लिये, यूसुफ़ और मरियम मिसर में भाग गए, और हीरोद की मृत्यु के पश्चात् ही वहाँ से वापस आए। बारह वर्ष की आयु में ईसा ने मंदिर में अपने पांडित्यपूर्ण उत्तरों से पंडितों को चकित कर दिया।

तीस वर्ष की आयु में, बपतिसमा देनेवाले जोहन से जोर्दन के जल में आप बपतिसमा लेने के उपरांत, वह अपना कार्य आरंभ करता है, और अपने शिष्यों-सहित प्रचार करता हुआ यहूदियों के नगरों में घूमता है। उसके परिभ्रमणों के तीन वर्षों में उसके साथ बहुत-से चमत्कार जोड़ दिए जाते हैं।

उसने कना (Cana) के विवाह पर पानी की मदिरा बना दी, नाइम (Naim) की विधवा के पुत्र लाज़रस को, उसकी मृत्यु के तीन दिन उपरांत, जिला दिया, लँगड़ों को चंगा कर दिया, अंधों की आँखें ठीक कर दीं, बहरों को श्रवण-शक्ति प्रदान की, और जिन व्यक्तियों में पापात्माएँ (भूत) घुसी हुई थीं, उनको उन से मुक्ति दिलाई।

फ़रीसियों और यहूदी पुरोहितों ने उस पर अपने को राजा बनाने के उद्देश्य से जनता को उत्तेजित करने का दोष आरोपित

किया, जिस पर वह पकड़ा जाकर यहूदिया के रोमन शासक पांटियस पाइलेट के सिपुर्द किया गया। उसने उसे यहूदियों के बड़े आचार्य कैफ़स (Caiphas) के पास भेज दिया। कैफ़स ने सन्हेंद्रिम (Sanhedrim) अर्थात् प्राचीनों की सभा द्वारा उसका विचार कराकर उसके लिये मृत्यु-दंड की आज्ञा दिलाई। दो चोरों के बीच एक सूली के साथ बँधा हुआ, अपने बाधकों को क्षमा करके, वह मर गया।

अपने शिष्यों को दिए हुए वचन के अनुसार मृत्यु के तीन दिन उपरांत वह फिर उठा, और पुनरुत्थान के चालीस दिन पीछे, अपने शिष्यों को घूम-घूमकर नए धर्म का प्रचार करने की आज्ञा देते हुए, वह आकाश पर चढ़ गया।

ईसा के इतिहास-लेखकों के अनुसार उसके जीवन की प्रधान घटनाएँ ऐसी ही हैं। जनता को मुग्ध करने और अनुयायी बनाने के प्रत्यक्ष उद्देश्य से सृष्टि और तर्क के नियमों के विरोधी चमत्कारों और आश्चर्यों से ईसा को परिवेष्टित करने की दुर्नीति की निंदा करने के लिये मुझे सहज बुद्धि विवश करती है।

उनके इस कार्य में कुछ नवीनता भी नहीं। इनके पहले, ऐसी ही सफलता के साथ, दूसरे कितने ही मनुष्यों ने यही कार्य किया था!

हाँ, तो ईसा के ये चरित्र-लेखक मेरी दृष्टि में वंचक-मात्र हैं।

पर मेरा विचार नहीं, मैं केवल इतना ही कहता हूँ कि इन लोगों ने, निस्संदेह प्रशंसनीय उद्देश्य से, और अपने कार्य की सफलता को निश्चित करने के लिये, अपने सारे पूर्वगामियों के समान, अपने साथ दिव्य अधिकार जोड़ने के अभिप्राय से इन संदिग्ध करामात-चमत्कारों और अद्भुत बातों का आश्रय लिया था, और इसराएल के पुरोहितों के सौम्य और श्रेष्ठ दृष्टि के परमेश्वर बना लिया था।

हां, यदि मनुष्य-समाज के इतिहास में यह बात जुदा ही होती, तो शायद हम विश्वास करने के बिना ही, घुटनों के बल होकर, इस पर विवाद करने तथा इसको अस्वीकार करने से संकोच करते।

आइए, भूतकाल से पूछें।

सदा यही बात होती है कि अतीव दूरस्थ युगों की आलोचना करते समय, भूमंडल पर बसनेवाली भिन्न-भिन्न जातियों की सभी देवोत्पत्तियों में हम पृथ्वी पर परमेश्वर के आगमन की यह आशा पाते हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं कि यह आशा पुरातन जातियों की आकांक्षाओं से उत्पन्न हुई थी ; क्योंकि वे अपनी न्यूनताओं तथा दुःखों को देखकर स्वभावतः ही श्रद्धा और प्रेम की लहर में जगत् के स्रष्टा परमात्मा से प्रार्थना करते थे। ब्रह्मा के देवा को परित्राता का वचन देने का पुरातन उपाख्यान इन आकांक्षाओं का फल, ईश्वरीय अवतार की संभावना में इस विश्वास का काव्य-मय प्रकटीकरण-मात्र है।

इस व्यापक विश्वास के अनेक परिणाम हुए। कृष्ण अपने को प्रतिज्ञात परित्राता, ईश्वर की संतान विघोषित करता जान पड़ता है, और समग्र भारत उसको ऐसा ही मानकर उसका पूजन करता है।

बुद्ध अपनी बारी से इन्हीं अभियोगों के साथ आता है। ब्राह्मणों द्वारा भारत से बाहर निकाले जाने पर वह तिब्बत, तातार, चीन और जापान में अपने सिद्धांत का प्रचार करने जाता है, और ये देश उसे देवता बना देते हैं, उसे वही मसीह (जगत्-त्राता) समझकर स्वागत करते हैं, जिसकी युग-युगांतर से प्रत्याशा की जा रही थी।

इसके उपरांत ज़र्दुश्त ब्राह्मणों के प्रभुत्व के विरुद्ध ईरान को भड़काकर अपने को ईश्वर का दूत प्रकट करता है, और

जनता को अपने ग्रंथ अथवा धर्म की पुस्तकें देता है, जो उसने परमेश्वर के आदेश से लिखी थीं।

मिस्र में मेनस और यहूदिया में मूसा अपने को ईश्वर के दूत और भविष्यद्वक्ता बताकर इस ऐतिह्य को जारी रखते हैं। लोग घुटनों के बल झुकते और विश्वास बनाए रखते हैं।

अंत को क्राइस्ट (ईसा) आया। उसका जीवन छोटा था, उसे प्रचार करने के लिये मुश्किल से ही समय मिला था कि रुष्ट यहूदियों ने उसे मार डाला। परंतु उसके शिष्य बच रहे। पूर्वगामी अवतारों के बनाए हुए मार्ग का अनुगमन करते हुए उन्होंने चमत्कारों और लोकोत्तर बातों द्वारा उसकी स्मृति को प्रतिष्ठित किया, और इस न्यायपरायण मनुष्य को परमेश्वर बना दिया, यद्यपि उसकी अपने जीवन में यह कभी आकांक्षा न थी। परंतु जैसा कि आपको अभी पता लग जायगा, वे चतुर नहीं थे; क्योंकि प्रत्येक बात में हिंदू अवतार की नक़ल करके, उन्होंने हमें अपने अभ्यादेश का स्रोत मालूम करने की आज्ञा दे दी है, और मिस्र तथा पूर्व में उनके पूर्ण अध्ययन के सुनिश्चित प्रमाण स्वयं उन्हीं से मिलेंगे।

क्या यह कहा जायगा कि यदि प्रेरितों ने अपना निज का ईश्वर बनाया होता, तो वे अपने विश्वासों के लिये कभी प्राण न देते ?

धर्म में, राजनीति के सदृश, इस युक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं। मार्ग-दर्शक को धर्मवीर बनाने से बढ़कर और कोई बात सुगम नहीं। पीड़न का परिणाम सदा यही होता है कि प्रचारक भी इसी स्थिति पर आ पहुँचता है, जिस पर सच्चा मनुष्य होता है, और उसके भी बहुत-से उत्सुक पद-पोषक बन जाते हैं।

के लिये कैसे प्राण दिए होंगे, पूर्व की जलती हुई चिताओं को अपने रक्त से कैसे बुझाया होगा, और अपने पीड़कों को कैसे थका दिया होगा?

मुझे सारी धार्मिक असहिष्णुताओं की सभी बलियों का, पाप के सभी भक्तों का, जो पुण्य के भक्तों के समान ही बहुसंख्यक हैं, रहस्य बताइए।

मुझे बताइए कि मोहम्मद के पहले और थोड़े-से स्वामि-भक्त अनुगामियों ने भविष्यद्वक्ता की रक्षा करते हुए मक्के में कैसे प्राण दिए, जब कि इस बीच में वह स्वयं लोगों के प्रकोप से डरकर भाग गया।

अच्छा, अब निकट का उदाहरण लीजिए। क्या आप कैथोलिक पादरी जॉन हस्स की उत्साही मूर्ति को, अपनी धार्मिक भूलों को वापस लेने से इनकार करने के कारण, कैथोलिक संप्रदाय द्वारा जलाई जाती देखते हैं?

उसने अपने तईं क्यों नहीं बचाया, जब वह एक ही शब्द से बचा सकता था?

और, मध्य समयों के यहूदियों का मूसा के धर्म के लिये मरना, जिसको वही कैथोलिक मत, उसका निषेधकरते हुए भी, स्वीकार करता है। और, वौडोइस (Vaudois), ममिसर्ड (Mamisards), सेंट बार्थोलोमियो के प्रोटेस्टेंट, और पाखंड-शासन सभा की दूषित नर-हत्याएँ!

किसी आदर्श के लिये प्राण देनेवालों की एक सूची तैयार कीजिए, साथ ही उसी रात को उसके विपरीत आदर्श के लिये मरनेवालों की भी गिनती कीजिए, फिर कहिए, क्या हम भूल के लिये भी उसी निर्भीकता से प्राण नहीं देते, जिससे सचाई के लिये देते हैं।

निश्चय रखिए, क्रांति के मुखिया उसके लिये मरने में, उस जन-

समूह के सामने, जिसके मत को वे जीत चुके हैं, मृत्यु को ललकारने में कभी संकोच नहीं करते, और प्रेरितगण एक क्रांति के मुखिया थे।

यदि वे चाहते, तो भी उनके लिये सूली, चिता अथवा मल्ल-भूमि से बचना असंभव था। जो ईसाई उन्हें मरता देख रहे थे उन सबसे यह कहना असंभव था कि "हमने तुम्हें धोका दिया है, और सबसे पहले हम ही अपने विश्वासों को वापस लेते हैं।"

इसके अतिरिक्त, अपने अर्थ के लिये जीवनोत्सर्ग करने में क्या उनका कोई प्रयोजन न था, जो उनकी आत्मभक्ति को संतुष्ट करता था। उन्होंने उस आचरण के लिये कष्ट और वेदनाएँ सहन कीं, जिसको उन्होंने पाया था; उन्होंने मनुष्य-समाज के पुनरुद्धार के लिये प्राण दिए, और इसमें—केवल इसी में उनका विश्वास था।

हम सभी प्रकार के मतों के लिये यातनाओं और हिंसाओं के अभिमुख होते हैं, और सभी धर्मों और पंथों में धर्मवीर हुए हैं, इस-लिये क्या मेरा यह मानना ठीक नहीं कि प्रेरितों की मौतें, जो अपनी धार्मिक चेष्टा की बलि थे, ईसा के ईश्वरत्व के विषय में कुछ भी सिद्ध नहीं करतीं!

जब प्रेरितों के मुखिया ने उसे शाप दिया, तब उसने अपने को भक्तों की संगति से अलग कर लिया, और अपने तईं भी परमेश्वर का पुत्र बताकर अपनी तरफ़ से प्रचार करना आरंभ कर दिया।

"सम्राट् नीरो के सामने सेंट पीटर को ललकारकर वह अपनी ऐंद्रजालिक शक्ति के प्रताप से, जनता के एक बड़े समुदाय के सम्मुख, आकाश में बहुत ऊँचा चढ़ गया।

"परंतु सेंट पीटर के परमेश्वर से प्रार्थना करने पर ऐंद्रजालिक सिमन सार्वजनिक चौराहे में गिर पड़ा, और उसकी टाँगें टूट गईं।"

क्या ऐसी असंगतियाँ इस योग्य हैं कि उन पर विचार किया जाय? और क्या कोई सहज बुद्धि रखनेवाला मनुष्य ऐसी हास्यजनक कथाओं में विश्वास प्रकट करने का साहस करेगा?

सिमन में यह ऐंद्रजालिक शक्ति कहाँ से आई? हमें उत्तर मिलेगा कि शैतान से। बेचारे शैतान, ये लोग तेरा कैसा दीन रूप बनाते हैं! शताब्दियों तक तू पृथ्वी पर अपने को जोखिम में डालने, मनुष्यों के शरीरों में प्रतिष्ठित करने, लोकोत्तर कर्म करने और ईश्वर के साथ स्पर्धा करने का साहस करता है........तब एकाएकी तू पुलिस की संस्था के सामने लज्जाहीन होकर भाग जाता है······ ······और आज तू श्रीयुत व्यूलाँट (M. Veuillot) और आर्चबिशप डूपनलोप (Archbishop Dupanloup) [लार्ड शेफ़्टसबरी और मिस्टर स्परजन] के प्रयोग के लिये अलंकार से बढ़कर और कुछ नहीं।

अब तक भी इधर-उधर कई चमत्कार दिखानेवाले और मायाकार हैं, परंतु वे अब बड़े-बड़े कामों का साहस नहीं करते; छठा कमरा उनसे काम लेना ख़ूब जानता है।

आओ, हम इन सब चमत्कारों और मायाकारों को तिलांजलि दे डालें, जो मनुष्य-समाज के अंधकारमय युग में ही बढ़ और फूल

सकते हैं, जब कि लोग, स्वेच्छाचारिता द्वारा हतवीर्य और पराजित होकर अपनी आत्मा और उस अमर ज्योति को छोड़, जो स्वयं परमेश्वर ने हमारे पास व्यक्त की है, अधिष्ठाताओं की अन्यत्र तलाश करते हैं। सभ्यता अर्थात् स्वतंत्रता की प्रगति उन सब बातों की समाप्ति कर देती है, जो विचार, परीक्षा और दिन के प्रकाश को सहन नहीं कर सकतीं।

हम अभी यह दिखलावेंगे कि ईसा के प्रेरितों ने, यहूदी धर्म को छोड़ और पूर्व के पुरातन पवित्र ऐतिह्यों से प्रोत्साहित होकर, किस प्रकार अपने नवीन संप्रदाय पर प्राचीन हिंदू-समाज—कृष्ण की सामाजिक पद्धति की शुद्ध और सरल छाप लगाई थी।

सभी प्राचीन जातियों ने श्रेष्ठ वैदिक धर्म को भूलकर, निरंकुश याजकीय पौराणिक धर्म से ही शिक्षा पाई थी। इस पौराणिक धर्म ने वैदिक धर्म के थोड़े-से उज्ज्वल ऐतिह्य ही लिए थे।

इसके विपरीत, प्रेरितों में कृष्ण और वेदों की ओर लौटने की बुद्धिमत्ता थी। मैं इसे उनका सबसे बड़ा गुण समझता हूँ। और, यदि उनमें आश्चर्यजनक बातों को छोड़ देने का साहस न था, क्योंकि संसार अभी विचार की स्वतंत्रता द्वारा हुए पुनरुद्भव के लिये तैयार नहीं हुआ था, तो वे अपने उस दुस्साहस के कारण हमारी दया के पात्र हैं, जिसके साथ उन्होंने, अपने प्राण और संपत्ति की कुछ भी परवा न करके, उन पवित्र और श्रेष्ठ सिद्धांतों का निर्भयता से प्रचार किया, जो उन्होंने दूसरे शास्त्रों की धर्म-पुस्तकों से प्राप्त किए थे।

अब इसी प्रणाली की खोज करनी है। कदाचित् मैं अपने सिद्धांतों को वैसा स्पष्ट न कर सकूँ, जैसा कि वे मुझे प्रतीत होते हैं। इस कार्य को दूसरों को जारी रखना चाहिए। संस्कृत को एक अभिजात भाषा बना दो, भारत में एक बढ़िया स्कूल स्थापित करो, और चुने हुए मनुष्य भेजो, जो संसार के सामने वे सहस्रों हस्तलेख निकालकर रख दें, जिन्हें यह प्राचीन देश हमारे लिये छोड़ गया है। फिर हम देखेंगे कि भविष्य कैसे हमारे सिद्धांतों की पुष्टि नहीं करता।

हम इसको फिर दुहराते हैं, यदि वे लोग, जिन्हें हम प्राचीन कहते हैं, आधुनिक जातियों के पूर्वज थे, तो उसी प्रकार प्राचीन भारत भी प्राचीन काल की सभी सभ्यताओं का गुरुदेव था।

तीसरा अध्याय

देवांगी और मरियम (मेरी)—कृष्ण और क्राइस्ट (ईसा)

हिंदुओं के जगत्-त्राता देवांगी के पुत्र का नाम कृष्ण रक्खा जाता है!—और पीछे से उसके शिष्य उसे जेज़ुस की उपाधि दे देते हैं।

ईसाइयों के जगत्-त्राता, मरियम के पुत्र का नाम ईसा, वस्तुतः यसूह रक्खा जाता है, और पीछे से, उसके शिष्य उसे ख्रीष्ट (क्राइस्ट) की उपाधि दे देते हैं।

जगत्-त्राताओं की दोनों माताएँ ईश्वरीय शक्ति से गर्भवती होती हैं, और संतान उत्पन्न करने पर भी कुमारी ही बनी रहती हैं। आप इनमें से पूर्वता किस को देते हैं? नक़ल करने के लिये निंदा किसकी करते हैं? इस प्रश्न में ही इसका उत्तर निकल जाता है।

देवांगी और कृष्ण मरियम और ख्रीष्ट से कम-से-कम तीन सहस्र वर्ष पूर्व हुए हैं; भारत की पुरातन सभ्यता का जन्म-स्थान यहीं भू-भाग हुआ है; सारे धर्म-ग्रंथ, तत्त्वज्ञान, आचार, इतिहास और कविता की सभी पुस्तकें इस पर आश्रित होने में अपना मान समझती हैं। कृष्ण को छिपा रखना सारे प्राचीन भारत को छिपा रखना है।

बात हमें उनकी सूचना नहीं देती। न स्यूटोनियस (Suetonius), न टेसिटस (Tacitus) और न उस काल के लातीनी या यूनानी ऐतिहासिकों में से ही कोई उन असाधारण व्यापारों की ओर संकेत करता है, जिनका संबंध खीष्ट के साथ ठहराया जाता है; फिर भी यह स्वीकार करना पड़ता है कि वहाँ अवश्य कोई ऐसा विषय था, जिसने इन लेखकों की लेखनी को इतने प्रबल रूप से आकृष्ट किया।

इस एकमत मूक भाव का आप कैसे समाधान करते हैं ?

जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, इसका समाधान यह है कि ये सब व्यापार संदिग्ध प्रमाण हैं; ईसा इस जगत् में से प्रायः अलग-अलग ही निकल गया, संसार ने उस पर बहुत थोड़ा ध्यान दिया; पीछे से उसके शिष्यों ने, पूर्व से आई हुई कुछ इबरानी भविष्यद्वाणियों को अपनाकर, और कृष्ण के आचरण और उसके जीवन की थोड़ी कम अलौकिक और अधिक संभाव्य विशेषताओं को उधार लेकर उसे एक पौराणिक नायक बना दिया।

कुँआरी मा का ऐतिह्य, जो भारत से लाया गया था, सारे पूर्व में—ब्रह्मा, चीन और जापान में पाया जाता है, इसे प्रेरितों ने केवल लेकर अपने संप्रदाय में लगा दिया है।

एक बात मुझे सदा विस्मय में डालती है। मसीह (जगत्त्राता) का प्रचीन ऐतिह्य मिसर और पूर्व के पुरातन समयों के सभी धर्म-ग्रंथों में से होकर इबरानी धर्म में पहुँचा था। अब यदि ईसा के जीवन की अतीव महत्त्वपूर्ण बातें और चमत्कार उत्तरकालीन कल्पना का परिणाम नहीं, तो यहूदियों ने इस जगत्-त्राता को, जिसकी कि वे ऐसी अधीरता से प्रत्याशा कर रहे थे और जिसकी वे आज भी प्रत्याशा कर रहे हैं, स्वीकार करने से क्यों इनकार कर दिया ?

कई लोग कहेंगे कि उन्हें शैतान ने अंधा कर दिया था। निर्बल अभियोगों को छिपाने के लिये गढ़ी हुई यह पुरानी युक्ति अब

काफ़ी हो चुकी; यदि संभव है, तो आइए केवल एक क्षण के लिये ही तर्क से काम लें।

क्या कोई गंभीर विचारोंवाला मनुष्य यह मान सकता है कि यदि ईसा ने यहूदियों के सामने वे सारे चमत्कार दिखलाए होते, जो बाइबिल के लेखक उसके साथ ठहराते हैं, तो वे उसका जय-जयकार न करते ?

यदि मेरी बात पूछो, तो मेरा तो यह विश्वास है कि ऐसे आश्चर्य-कर्मों को न माननेवाले बहुत थोड़े मनुष्य निकलते, और ईसा प्रति-ष्ठित शासन के विरुद्ध लोगों को भड़काने की चेष्टा करनेवाले नीच मुखिया के सदृश—क्योंकि इसराएल के पुरोहित उसे ऐसा ही समझते हैं—सूली पर न मरता।

हम अब उस युग में नहीं हैं, जब लोकोत्तर बातें भी सृष्टि-नियम के अनुकूल समझी जाती थीं, और बे-समझे लोग उनके आगे सिर झुका देते थे। भला अब कोई मनुष्य हमारे अंदर आवे, जो अपने जीवन के तीन वर्षों में चमत्कारों पर चमत्कार दिखलाता रहा हो, पानी की मदिरा बना देता हो, पाँच मछलियों और दो-तीन रोटियों के साथ दस, पंद्रह, बीस सहस्र व्यक्तियों की क्षुधा-निवृत्ति कर देता हो, मृतकों को जिलाता हो, बहरों को कान और अंधों को आँखें देता हो इत्यादि-इत्यादि। फिर देखते हैं कि उसको बदनाम करने की किस फ़रीसी और किस याजक में शक्ति है।

यदि यहूदियों ने ईसा को स्वीकार नहीं किया, तो इसका कारण यह था कि यह गंभीर प्रचारक अपने कर्तव्यानुराग की घोषणा करने और अपने पवित्र उदाहरण से उसकी पुष्टि करने में ही संतुष्ट था ; परंतु उस व्यापक शीलभ्रंश में उसका पवित्र जीवन एक दूषण समझा गया और सभी शक्तिशाली शीलभ्रष्ट लोग उसके विरुद्ध उठ खड़े हुए।

उसकी मृत्यु से सावधान होकर उसके प्रेरितों ने अपनी कार्य करने की रीति को बदल दिया। सर्वसाधारण पर अलौकिक बातों के प्रभाव का अनुभव कर उन्होंने कृष्ण के अवतार का फिर से निर्माण किया, और इसके प्रताप से वे उस कार्य को जारी रखने में समर्थ हुए, जिसमें उनके गुरु की जान गई थी।

कुमारी मरियम के गर्भवती होने और ईसा के ईश्वरत्व का यही कारण है। जीसस (Jesus) अथवा यसूह (Jeosuah) और जेज़िउस (Jezeus) के नामों से, जो हिंदू तथा ईसाई जगत्-त्राताओं ने समान रूप से धारण किए थे, मैं कुछ भी अनुमान नहीं करता।

जैसा कि हम दिखला चुके हैं, जीसस (Jesus), यसूह (Jeosuah), जोसियस (Josias), जोसू (Josue) और जेओवह (Jeovah) आदि सब नाम दो संस्कृत शब्दों, ज़िउस (Zeus) और जेज़िउस (Jezeus) से व्युत्पन्न हुए हैं, जिनमें से एक तो परमात्मा को और दूसरा दिव्य तत्त्व को प्रकट करता है। इसके अतिरिक्त, ये नाम न केवल यहूदियों में ही, प्रत्युत सारे पूर्व में प्रचलित थे।

परंतु कृष्ण और क्राइस्ट के नामों की यह बात नहीं। यहाँ हमें स्पष्ट अनुकरण मिलता है, प्रेरित हिंदुओं से माँगते दिखाई देते हैं। मरियम के पुत्र का जन्म के समय केवल ईसा (जीसस) नाम रक्खा

गया था; मृत्यु के उपरांत ही भक्तों ने उसे ख्रीष्ट (क्राइस्ट) नाम से पुकारना आरंभ किया।

यह शब्द इब्रानी नहीं, यदि प्रेरितों ने देवांगी के पुत्र के नाम को नहीं अपनाया, तो बताइए, यह कहाँ से आ गया ?

संस्कृत में कृष्ण का अर्थ है ईश्वर का दूत, ईश्वर द्वारा प्रतिज्ञात और पवित्र।

हम कृष्ण के हिज्जे Kristna की अपेक्षा Christna अच्छा समझते हैं; क्योंकि संस्कृत के महाप्राण ष को भाषातत्त्व-शास्त्र की रीति से हमारे सादे K की अपेक्षा Ch, जो आप भी महाप्राण है, अधिक अच्छी तरह से प्रकट करता है। इसलिये हमने व्याकरण के नियम का पालन करने के लिये ही Ch लिखा है, न कि सादृश्य उत्पन्न करने की इच्छा से।

परंतु यदि कृष्ण का यह विशेषण पूर्ण रूप से हिंदू अवतार पर लागू है, तो यह समान रूप से ईसाई अवतार पर तब तक लागू न होगा, जब तक कि इस नाम को आचरण तथा प्रयोजनत्व-सहित नक़ल किया हुआ न मान लें।

क्या यह कहा जायगा कि यह नाम यूनानी ख्रिस्तोस (Christos) से निकला है ? इस बात को छोड़कर कि बहुत-से यूनानी शब्द विशुद्ध संस्कृत हैं, और यह बात इस सादृश्य का भी समाधान करती है, ईसा के लिये, जो जन्म से यहूदी था, और जिसने अपना संग्राम-शील जीवन अपने स्वदेश-बंधुओं में बिताया, और उन्हीं में उसकी मृत्यु हुई, यह यूनानी उपनाम किस लिये चुना गया ? इसका एक-मात्र तर्कसंगत अनुमान यह है कि ईसा का यह नाम पुरातन पौराणिक धर्म के नमूने पर एक नवीन समाज बनाने के लिये प्रयुक्त की हुई पूर्ण पद्धति का एक भाग था।

चौथा अध्याय

भारत और यहूदिया में निरपराधों की हत्या

मथुरा के अत्याचारी राजा कंस ने, कृष्ण का निश्चय करने के लिये, जिसके द्वारा उसे गद्दी से उतारा जाने का भय था, उन सब लड़कों को मार डालने की आज्ञा दी, जो उस रात उत्पन्न हुए थे, जिस रात कृष्ण का जन्म हुआ था।

यहूदिया के राजा हीरोद ने, उसी उद्देश्य से, बैतुलहम और उसके इर्द-गिर्द के प्रदेश में दो वर्ष और इससे कम आयु के सभी बच्चे मरवा डाले।

भारत के ग्रंथ, क्या वैज्ञानिक, क्या ऐतिहासिक और क्या धार्मिक, पुराण, शास्त्र, महाभारत, भगवद्गीता, भगवद्-शास्त्र, सब इस घटना की सत्यता की साक्षी देते हैं; परंतु वह वृत्तांत, जिसका समान रूप से हीरोद के साथ संबंध ठहराया जाता है, हमारे पास केवल प्रेरितों द्वारा ही पहुँचाया गया है; अर्थात् केवल उन्हीं लोगों ने हमें इसकी सूचना दी है, जिनका इसको ताज़ा करने में स्वार्थ था।

समकालीन इतिहास ने इस प्रगल्भ अन्याय का कहीं भी उल्लेख नहीं किया। जिस काल में इस पाप का किया जाना प्रकट किया जाता है, उसमें इसका होना सभी समझदार लोग वस्तुतः असंभव कहते हैं। हीरोद कभी ऐसे बलिदान का उत्तरदायित्व और घृणा अपने ऊपर लेने का साहस न करता।

यह राजा कौन था? केशियश (Cassius) और अंटनी (Antony) के साथ भाग लेने के कारण अंटनी के कहने पर रोमन सेनेट (Roman Senate) ने इसका नाम यहूदिया का

मांडलिक राजा (Tetrarch of Judea) रख दिया था। सर्वथा आधुनिक मृदु भाव का मनुष्य होने के कारण वह समयानुसार रंग बदलना खूब जानता था, और आगस्टस ने उसका राजसिंहासन उसी के पास रहने दिया। परंतु वास्तव में वह एक रोमन गवर्नर-मात्र था, और स्वयं बाइबिल उसको निम्नलिखित वाक्य में कुछ और नहीं समझती—

"उस समय सीज़र आगस्टस की ओर से राज्य के सारे अधि-वासियों को गिनने की राजाज्ञा आई। यह पहली मनुष्य-गणना सीरिया के गवर्नर कायरिनस (Cyrinus) ने की, और सब लोग अपने-अपने ग्रामों में लिखे जाने के लिये गए। यूसुफ़ नज़रत (Nazareth) में गया, जो गलीली में है, और आपको अपनी स्त्री मरियम के साथ, जो बच्चेवाली थी, लिखे जाने के लिये दाऊद के नगर बैतुल-हम में आया; क्योंकि वह उस जाति का था।......"

यह कैसे माना जा सकता है कि हीरोद ने, जो प्रो-कॉन्सिल कायरिनस (Consul Cyrinus) के अधीन एक इंपीरियल गवर्नर (अधिराजक शासक) था, क्रूरता का ऐसा निरर्थक और ऐसा मूढ़ कार्य संभवतः किया होगा? क्या आगस्टस-काल में, उस चित्त-प्रबोध और ज्ञान के युग में, एक मूर्ख, क्योंकि उसे और कोई नाम दिया नहीं जा सकता, सैकड़ों, शायद सहस्रों बच्चों की, बाइबिल के कथनानुसार दो वर्ष और इससे कम आयु के सभी बच्चों की हत्या करने का साहस करता है, और एक भी पिता न्याय की भिक्षा माँगने के लिये आकर कायरिनस अथवा सम्राट् के पाँव पर नहीं गिरता, मनुष्यता के नाम पर प्रतिवाद और प्रतिरोध के लिये एक भी बुद्धिमान् अथवा भद्र व्यक्ति आवाज़ नहीं उठाता? वे माताएँ अपने निरपराध बालकों के मारे जाने पर रोती न थीं?

क्या उस समय न्यायपरता और ममता सब कहीं सो रही थी ?

क्या टेसिटस (Tacitus) ने, जिसने स्वेच्छाचारी शासकों के अत्याचारों पर घृणा की अमिट छाप लगाई है, ऐसे कलंकों को निंदा के योग्य नहीं समझा ?

कुछ नहीं—सदा मौन की पाप सहायता ।......

ईसा के प्रेरितों, तुमने मानवीय श्रद्धालुता पर बहुत ज़्यादा भरोसा किया है, बहुत ज़्यादा विश्वास किया है कि भविष्य तुम्हारी चालों और तुम्हारे मन:कल्पित वर्णनों का पर्दा न फाड़ेगा; तुम्हारे उद्देश्य की पवित्रता ने तुम्हें साधनों के विषय में बहुत ज़्यादा विस्मारक बना दिया है, और एक दूसरे युग की कथाओं को, जिन्हें तुम सदैव के लिये दब गई समझ बैठे थे, फिर से जारी करने में तुमने जनता की श्रद्धा पर अचानक छापा मारा है ।

क्या यह आपत्ति की जायगी कि जोसेफ़स (Josephus) निरपराधों की इस हत्या का उल्लेख करता है ? यह युक्ति निस्सार है; इस बात को छोड़कर भी कि यह लेखक अपनी दुर्भक्ति के लिये प्रसिद्ध है, वह कुछ भी प्रमाणित नहीं करता, और उस काल के साठ वर्ष उपरांत एक बात को, प्रत्युत एक भूल को, जिसका प्रेरित पहले ही विश्वास दिला चुके थे, केवल दोहरा देता है ।

यह एक अलंघ्य सचाई है कि बाइबिलों के प्रकाशन के पहले इस असंगत घटना का, जो यदि हुई होती, तो सार्वत्रिक घृणा की आवाज़ पैदा किए बिना कदापि न रहती, कुछ भी चिह्न ढूँढना असंभव है। नहीं, ऐसा भीषण पाप कभी नहीं किया गया ।

सभी रोमन कैथोलिक ऐतिहासिकों ने मर्मस्पर्शी एकवाक्यता के साथ हीरोद को भावी जातियों के अभिसंपात के अर्पण कर दिया है । अब समय है कि उस पर से उन गर्हं दूषणों का एक बड़ा भाग

धो डाला जाय, जो उस पर लगाए जाते रहे हैं, और स्वार्थी लोगों को छोड़कर उसका गौरव उसे वापस दिलाना बड़े पुण्य का कार्य होगा।

उसके जीवन की एक घटना है, जो सभी राजों के लिये उदाहरण के तौर पर उद्धृत की जा सकती है, और जो विशेषतः उस अहंमन्यता और अवपात के युग में हृदय की एक अत्युत्कृष्ट साधुता को प्रकट करती है।

यहूदिया में एक बड़ा दुर्भिक्ष पड़ा। हीरोद ने अपनी प्रजा के दुःखों को दूर करने के लिये अपनी भूमि, अपने घर के बहुमूल्य पदार्थ और अपनी रकाबी बेच डाली।

क्या आप समझते हैं, यह एक बच्चों की हत्या करनेवाले का काम था?

कैथोलिक-इतिहास जब किसी को कलंकित करने लगता है, तो बहुत समीप से नहीं देखता; किंतु वह केवल कृतघ्नता को देखता है, जिसके साथ वह समान रूप से अपने विपक्षियों के सारे पापों को क्षमा करने के लिये तैयार है। कैसी-कैसी स्तुति और कैसी-कैसी नीच आहुतियाँ इसने कांस्टैंटाइन पर नहीं लादीं, जिसने अपनी स्त्री तथा पुत्र के रक्त से हाथों को रँगते हुए ईसाइयों की रक्षा की, और विधर्मियों पर अत्याचार किया।

पूर्व के प्राचीन ऐतिहों को अति चाटुकारिता से प्रस्तर करने के प्रेरितगण यहाँ तक जा पहुँचे थे! उन्हें अत्याचारी वंश के दूसरे संस्करण की आवश्यकता थी, और उनका एकत्रित क्रोध हीरोद पर गिरा।

पाँचवाँ अध्याय

हिंदू और ईसाई रूपांतर

कृष्ण, अपने अनुयायियों को, जो उनके विरुद्ध कंस की भेजी हुई बड़ी-बड़ी सेनाओं को देखकर काँप रहे थे, पुनराश्वासन देने के लिये अपनी पूर्ण दिव्य विभूति में उनके सम्मुख प्रकट हुआ।

यह रूप-परिवर्तन न्यायसंगत और समझ में आने योग्य है; यह एक बड़े भय के सम्मुख अर्जुन तथा इस हिंदू-जगत्-त्राता के अन्य अनुयायियों के बैठते हुए हृदयों को खड़ा करने का सर्वोत्तम साधन था।

बाइबिल-लेखकों के अनुसार, ईसा अपने साथ पीटर, जेम्स और जॉन (John) को एक ऊँचे पर्वत पर ले गया, और उनके सामने उसने रूप बदल लिया। "उसका मुखमंडल सूर्य की तरह चमकता था, और उसके वस्त्र हिम के सदृश श्वेत हो गए।"

इस लोकोत्तर कर्म के लिये कोई भी निमित्त नहीं बताया जाता, केवल ईसा पर्वत पर चढ़कर अपने साथियों से कहता है—"जब तक 'मनुष्य का पुत्र' मृतकों में से दुबारा न उठ बैठे, इस दर्शन की बात किसी से न कहना।"

पुनरुत्थान के पहले मत बताना। ईसा लाज़रस को पुनर्जीवित कर देता है, योधशताधीश के पुत्र को चंगा कर देता है, परंतु इस छोटे-से चमत्कार पर यह प्रत्यादेश करता है।

परंतु तनिक न्याय से काम लीजिए। यदि आप जगत्-त्राता हैं, तो अपने उन कामों को, अपनी उन अभिव्यक्तियों को, क्यों छिपाते हैं, जो जनता की आँखें खोल सकती हैं। आप मृत्यु के पश्चात् इन

सारी बातों को प्रकट करने का काम अपने शिष्यों के लिये क्यों छोड़ते हो ?

इसका उत्तर सुगम है, उद्देश्य प्रत्यक्ष है, परन्तु चालाकी भद्दी है ।

इस क्षुद्र चातुर्य पर विचार कीजिए, प्रेरितगण युक्ति के मूल्य का अनुभव करते हैं, और इस बात का ध्यान रखते हैं कि स्वयं ईसा से ही इसका खंडन कराया जाय । विद्यार्थी पूछ सकते हैं कि हमें समझाइए, हमने ईसा के इन सब चमत्कारों का उल्लेख कभी क्यों नहीं सुना ?

इसका उत्तर बड़ा सरल है । वे कह सकते हैं कि ईसा ने हमें इनके बताने का निषेध कर रक्खा था, और केवल उनकी मृत्यु के उपरांत ही इन चमत्कारों को प्रकाशित करने की हमें आज्ञा मिली है ।

के सामने होना चाहिए था। और, इन सब लोगों के नमूने पर, जो प्रकाश से डरते थे, सबसे पीछे आनेवाला मुहम्मद भी ईश्वर से आदेश पाने के लिये अकेला गुहा में जा बैठता है।

परंतु आशा है, ये सब बातें अब बीत चुकीं। अब हमें सदा के लिये इन सब चमत्कार-करनेवालों से, जो अपनी अद्भुत बातों को गढ़ने के लिये पर्दे के पीछे जा छिपते हैं, छुटकारा मिल गया।

पाँच-छः सहस्र वर्ष तक पुरोहित ने अपने स्वार्थ के लिये ईश्वर की कल्पना का अपहार और स्वतंत्रता का बहिष्कार करके संसार पर शासन किया है। इस अपकर्षकारिणी शक्ति की अर्थी निकालने, भूत का परित्याग करने, और एक सच्चे मनुष्यत्ववादी भविष्य को स्थापित करने का यह समय है।

प्राचीन हिंदू-अवतार ने इस भूतकाल को हिलाया, और उसका अनुकरण करनेवालों तथा वागपहारियों की भी कमी नहीं रही। आओ, हम उन अंतिम जड़ों को भी काट डालें, जो स्वतंत्र और यथोचित प्रगति को रोकने के लिये पृथ्वी में से फिर अंकुरित होने की धमकी दे रही हैं।

स्वतंत्रता पुरोहित का अनुकरण नहीं करेगी, न वह उसका बहिष्कार करेगी, किंतु उसे राजनीति और शासन से बाहर निकालकर फिर मंदिर में बैठा देगी, जहाँ से जब कभी वह निकला है, अपकर्ष और शीलभ्रंश का गुप्त साधन बनकर ही निकला है।

छठा अध्याय

धार्मिक स्त्रियाँ, निचदली, सरस्वती और मेगडलीन

निचदली और सरस्वती-नामक धार्मिका स्त्रियों के उपाख्यान को बाइबिल के लेखकों ने मेग्डलीन के उपाख्यान में पुनर्जीवित किया है, यह सुगमता से पहचाना जाता है।

हिंदू-स्त्रियाँ पूजा के लिये कृष्ण के पास जाती हैं, और लोग उनकी धृष्टता पर कुड़कुड़ाते हैं।

यहूदी-स्त्री उसी उद्देश्य से ईसा के पास जाती है, और 'Apostles' उसे मारकर हटा देना चाहते हैं।

निचदली (Nichdali) और सरस्वती कृष्ण के सिर पर सुगंधियाँ डालती हैं।

यही काम मेग्डलीन का बताया जाता है।

इन मिथ्या कथाओं में एक-मात्र भेद यह है कि प्रथमोक्त यद्यपि नीचतम जाति की हैं, पर धार्मिका और निष्कपट हैं, और संतानवती होने की प्रार्थना करने आती हैं; परंतु शेषोक्त एक वेश्या है और अपने पापों के लिये क्षमा माँगती है।

यहाँ हिंदू-प्रभाव फिर निर्विवाद है, यद्यपि यह कुछ अर्थहीन विस्तारों से अपने को कम प्रकट करता प्रतीत होता है।

नैतिक सिद्धांत वही है, निर्बल और पीड़ित सब मेरे पास आवें, न्याय जैसा असहायों के लिये वैसा ही बलवानों के लिये है, जैसा अपराधियों के लिये वैसा ही न्यायपरायणों के लिये है।

ये ऐसे श्रेष्ठ सिद्धांत हैं, जिनके अनुसार कृष्ण के उत्तराधिकारी ब्राह्मणों को जनता का शासन करके ही संतुष्ट हो जाना चाहिए था,

और जिनको ईसा के उत्तराधिकारियों को कभी न भूलना चाहिए था। अब अधिक विचारों की आवश्यकता नहीं। हम पाठकों को उन्हीं युक्तियों की पुनरुक्ति से थकाना नहीं चाहते।

सातवाँ अध्याय

दसवाँ हिंदू-अवतार, अथवा राक्षसों के राजा के साथ युद्ध करने के लिये कृष्ण का पृथ्वी पर जन्म—सेंट जॉन की इंजील

एक सरल प्रश्न—

सारे हिंदू भविष्यकथन इस दसवें अवतार की, अर्थात् कृष्ण के पृथ्वी पर आने की, घोषणा करते हैं। महाप्रलय के पहले, राक्षसों के राजा के साथ, जो घोड़े के रूप में वेश बदले हुए होगा, भीषण युद्ध करके उसे फिर नरक में भगा देने के अभिप्राय से, जहाँ से वह अपनी प्रभुता को फिर प्राप्त करने के लिये बाहर निकलेगा, परमेश्वर अपनी सारी महिमा को लिए हुए प्रकट होगा।

रामसरियर कहता है—"यह संसार पुण्य और पाप की लड़ाई के साथ आरंभ हुआ था, और इसकी समाप्ति भी इसी प्रकार होगी। प्रकृति के विनाश के अनंतर पाप फिर रह नहीं सकता, इसका अभाव हो जाना आवश्यक है।"—तमन्।

मैं इस विश्वास का समाधान करने के लिये कोई बहाना नहीं बनाता; परंतु एक उत्तर पूछता हूँ।

अपने एशिया के पर्यटनों से लौटने पर, अर्थात् इंडिया के ब्राह्मणों द्वारा शासित देश की यात्रा से वापस आने पर, सेंट जॉन (योहन्ना) ने अपनी इंजील लिखी थी। क्या यह स्पष्ट नहीं कि वह वहीं पर भविष्य-कथन, जो प्रेरितों को अज्ञात था, जो ईसा पर लागू नहीं, जो उसे हिंदू-अवतार की तरह जगत् की समाप्ति पर घोड़े के वेश में राक्षस-राजा के साथ युद्ध करने के लिये वापस लाता है।

योहन्ना की इंजील, जैसा कि आसानी से देखा जा सकता है,

अपनी अलंकारात्मक शैली से, पशुओं और तत्त्वों का उल्लेख करने से और सबसे बढ़कर अपनी अस्पष्टता से सर्वथा पूर्व के स्वभावानुरूप अस्पष्ट भाव में है।

यह दूसरा अखंडनीय शब्दचौर्य है। सबका बताना तो संभव नहीं।

आठवाँ अध्याय

ईसा शैतान के प्रलोभन में

बाइबिल कहती है कि "उस समय शैतान के प्रलोभन में फँसाने के लिये ईसा को प्रेतात्मा मरुस्थली में ले गया, और चालीस दिन तथा चालीस रात तक उपवास करने के अनंतर उन्हें भूख लगी।

"और प्रलोभक ने उसके पास आकर कहा—

"यदि तू ईश्वर का पुत्र है, तो आज्ञा दे कि ये पत्थर रोटियाँ बन जायँ। ईसा ने उत्तर दिया—

"यह लिखा है, मनुष्य केवल रोटी पर ही नहीं, परंतु ईश्वर के मुख से निकलनेवाले प्रत्येक शब्द से जिएगा।

"तब शैतान उसे पवित्र नगर में ले आया, और मंदिर की चोटी पर चढ़ाकर कहने लगा—'यदि तू परमेश्वर का पुत्र है, तो अपने को नीचे गिरा दे; क्योंकि यह लिखा है कि उसने तुझे अपने देव-दूतों के सिपुर्द कर रक्खा है, और वे तुझे अपनी भुजाओं पर उठा लेंगे, ताकि तेरा पैर किसी पत्थर से न टकराय।'

"ईसा ने उत्तर दिया—

"यह भी लिखा है कि तू अपने प्रभु परमेश्वर को न बहका। शैतान फिर उसे एक बहुत ही ऊँचे पर्वत पर ले गया, और संसार के सारे राज्य दिखलाकर कहने लगा—

"यदि तुम नीचे गिरकर मेरी पूजा करोगे, तो मैं तुम्हें ये सब चीज़ें दे दूँगा।

"परंतु ईसा ने कहा—

"हे शैतान, इन बातों को छोड़; क्योंकि यह लिखा है

कि तू अपने प्रभु परमेश्वर की पूजा और केवल उसी की सेवा कर।

"तब शैतान उसे छोड़कर चला गया, और तत्काल ही देवदूत आए, और उसकी सेवा करने लगे।"

ईसा के प्रलोभन का उल्लेख करने की इच्छा से मैंने बाइबिल का यह स्पष्ट वाक्य, संक्षेप द्वारा ख़राब हो जाने के डर से, ज्यों-का-त्यों उद्धृत कर दिया है।

हिंदुओं के धर्म-ग्रंथों में मुझे इस घटना की अनुकृति नहीं मिली; परंतु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि वहाँ यह मिल ही नहीं सकती। आप यह भली भाँति समझ सकते हैं कि उन सारे विषयों की ठीक तौर पर खोज करने के लिये, जिनका इस पुस्तक में वर्णन है, एक मनुष्य की शक्तियाँ अपर्याप्त हैं। और, अधिक महत्त्वपूर्ण अध्ययन के अनंतर मैं निश्चय ही उन अनेक बातों को पुनः उपस्थित करूँगा, जो अभी तक अस्पष्ट अथवा अपूर्ण रूप से प्रकाशित हैं।

इस वाक्य को बाइबिल-लेखकों की विशेष संपत्ति मानकर भी यह हमें उनको वंचना के सुव्यक्त कार्य में ऐसी सुगमता से पकड़ लेने का अवसर देता है कि फिर वे भाग नहीं सकते।

आप इस शैतान को क्या समझते हैं, जो परमेश्वर को बहकाने में लगा हुआ है?

क्या स्वयं परमेश्वर ही अपने को शैतान के हाथों में सिपुर्द कर देता है?

जब ऐसी विकट असंगतियाँ—बुद्धि और परमात्मा की सर्वशक्तिमत्ता के गंभीर परिहास—जनता की श्रद्धालुता के लिये ऐसे साहसपूर्वक उपस्थित किए जाते हैं, तब धर्मोन्माद आत्मा को और विवेक की अतीव साधारण शिक्षा को अपकर्ष के किस गहरे गर्त में न गिरा देगा!

मरुस्थली से मंदिर की चोटी पर, और उस मंदिर से एक पर्वत

पर ले जाए जाने तक ही संतुष्ट न रहकर परमेश्वर, अर्थात् विश्वपति, सारे जगत् का स्रष्टा और परमाधीश शैतान के साथ मिथ्याभियोग और शैतान उसके साथ विनोद करता है !

इन पत्थरों को रोटी बन जाने की आज्ञा देकर खा लो।

यदि तुम परमेश्वर हो, तो इस मंदिर से नीचे कूद पड़ो।

मेरी पूजा करो, और मैं तुम्हें सारे भूमंडल का राज्य दूँगा।

और कैसी विचित्र बात है कि आधिक परमेश्वर इन बातों का गंभीरतापूर्वक उत्तर देता है।

यदि ये सब चेष्टाएँ केवल विचक्षण नहीं, तो आप ऐसी पाखंडताओं की किस नाम से निंदा करेंगे ?

उन मूढ़ विश्वासों के भक्त निस्संदेह तर्क और विचार-स्वातंत्र्य के पक्षपातियों पर सेक्रिस्टों (Sacrists) और जेज़्यूइटों (Jesuits) के पवित्र कार्य का कीचड़ फेंकें; ईश्वर की उज्ज्वल मूर्ति को उन सब दोषों से, जो मरते हुए भूत के पंथवालों ने गढ़े थे, मुक्त करने की हमारी इच्छा के कारण हमें अनात्मवादी और नास्तिक कहकर निंदा करने का साहस करने के लिये उन्हें धृष्टता और ईर्ष्या का प्रयोजन है।

क्या सिसरो की व्यंग्योक्ति यहाँ लागू नहीं ? क्या यह हो सकता है कि मार्क या योहन, लूक या मत्ती एक दूसरे को देखकर हँसते न होंगे !

बहुत पुराने समय में, यदि इन लोगों ने भारत के केवल मूढ़ विश्वासों को ही ग्रहण किया होता, यदि उन्होंने कृष्ण के उस श्रेष्ठ आचरण के दर्शन न किए होते, जिसने पहले समयों को प्रकाशित किया था, तो वे भी वस्ता (Vesta), ओसिरिस (Osiris) और आइसिस के पुरोहितों के साथ तिरस्कार और विस्मृति के सिपुर्द हो गए होते।

यह वह आचरण है, जिसने उनको बचाया, जिसने पहले समयों में उनको सफलता प्रदान की, यहाँ तक कि वह दिन आ गया, जब कि उनकी भली प्रकार से सुरक्षित शक्ति ने उन्हें जनता और राजों के नाम आज्ञाएँ निकालने और अपनी प्रभुता की शैली को पुनः प्रतिष्ठित करने में समर्थ बना दिया ।

नवाँ अध्याय

ब्राह्मणों की संस्थाओं के नमूने पर प्रेरितों द्वारा संप्रदाय की रचना—
ईसाइयों का परमेश्वर—बपतिस्मा—दृढ़ीकरण—पापप्रकाशन—
दीक्षा अथवा संस्कार—मुंडन—उपनयन इत्यादि-इत्यादि

हम कह चुके हैं कि ईसा और उसके प्रेरितों ने मिसर तथा पूर्व में अध्ययन किया था, और उन्होंने भारत के धर्म-ग्रंथों के फल से ही क्रांति की थी। इस प्रतिज्ञा की पुष्टि में जो प्रमाण दिए जा चुके हैं, उनमें नवीन तथा अधिक अखंडनीय प्रमाणों की वृद्धि की जाती है।

हम उन सारे चमत्कारों और उन सारे मूढ़ विश्वासों की भौतिक असाध्यता अभी दिखला चुके हैं, जिनके साथ बाइबिल के लेखों ने ईसाई सुधारकों के जीवन को परिवेष्टित कर रक्खा है; क्योंकि हमें यह पता लग गया है कि वे उन्हीं घटनाओं और कार्यों का एक दूसरा संस्करण-मात्र हैं, जिनको प्राचीन भारत कृष्ण के पहले ही ठहरा चुका है। हम अभी थोड़े-से शब्दों में यह दिखलानेवाले हैं कि ईसाई धर्म, उधार लेने की उसी पद्धति को जारी रखते हुए, पुरातन पौराणिक ब्राह्मण-धर्म का केवल एक दूसरा संस्करण है। मूसा, भविष्यद्वक्तागण, सारांश, इबरानी धर्म को ईश्वर की त्रिमूर्ति, पिता, पुत्र और पवित्रात्मा के अर्थों में, जैसी कि वह ईसाई कल्पना में मिलती है, मालूम न थी।

प्रेरितों ने ऐकत्व में यह त्रिमूर्ति का सिद्धांत कहाँ से लिया? ईसा कहीं भी इसे गंभीर सिद्धांत के रूप में प्रकट नहीं
अपने उत्तराधिकारियों की अपेक्षा परमात्मा के सरल
अधिक पक्षपाती जान पड़ता है।

यह अनुमान न्यायसंगत है कि प्रेरितों ने यह सिद्धांत, दूसरी अनेक याचित चीज़ों के साथ, पूर्व की धर्म-विद्या से ग्रहण किया था।

ब्रह्मा पिता परमेश्वर है; विष्णु कृष्ण में पुत्र का अवतार है; शिव वह आत्मा है, जो सर्व शक्तिमत्ता की अभिव्यक्ति का अधिष्ठाता अर्थात् चेष्टा करनेवाला प्राण है।

यहाँ हिंदू-विश्वास कैथोलिक मत में लाकर प्रविष्ट किया गया है। नक़ल साफ़ दिखाई दे रही है; क्योंकि यह मानना उपयुक्त होगा कि ईश्वरत्व के तीन व्यक्तियों के इस सिद्धांत को प्रेरितों ने गढ़ा, जब कि हिंदू-धर्म, जो न केवल भारत में, प्रत्युत सारे एशिया में फैला हुआ था, इन्हीं विचारों को सहस्रों वर्ष पूर्व प्रकट कर चुका था।

बहुत देर से हम यह भूल गए हैं कि ईसाई मत का जन्म पूर्व में हुआ था, और पश्चिमी जातियों को अपना अनुयायी बनाने के पूर्व वहीं इसका विकास हुआ, और उसके उद्भवों का पता लगाने के लिये हमें वहीं वापस जाना चाहिए।

हिंदुओं के पौराणिक धर्म पर लिखे गए अध्यायों का उल्लेख ही इस बात को दिखलाने के लिये पर्याप्त होगा कि उस धर्म के यज्ञों और महायज्ञों को इस नवीन धर्म ने प्रायः अक्षरशः ग्रहण किया था।

क्या ईसाइयों का बपतिसमा हिंदू-अभिषेक से कोई अलग चीज़ है? इसके मूल को दिखलाना कितना सुगम है।

कृष्ण के पक्षपातियों की गंगा एक पवित्र नदी है, जिसका जल मूल-पाप को धो डालता है। बपतिसमा देनेवाला योहन तथा उसके अनुयायी भी जोर्डन-नदी को पवित्र समझते हैं। इसका जल भी इसी प्रयोजन के लिये प्रयोग में लाया जाता है।

यह रीति, जो धार्मिक अभिषेकों के देश अंतिम पूर्व में स्वदेश-जात थी, निस्संदेह सारे संसार को ऐसी अच्छी तरह से ज्ञात थी कि प्रेरितों ने अपने पहले महायज्ञों के उपक्रम का पुण्य ईसा को

देने का साहस न करें, उसे भी इसी रीति के अधीन कर दिया।

इस कठिनता से निकलने का केवल एक ही साधन था, और वह यह कि ईश्वर की आज्ञा से, यहोवह को ईसा का अग्रगामी ठहराया जाता ; सो उन्होंने ऐसा ही किया।

परंतु यह अग्रगामी किसलिये ? छिः ! मिथ्या विवाद पर्याप्त हो चुका; क्षुद्र प्रश्नों पर विचार करने से क्या लाभ !

सोलह वर्ष की आयु में पवित्र तेल के प्रयोग से अपनी शुद्धि को दृढ़ कराने के लिये हिंदू को मंदिर में जाना पड़ता है।

और, इस प्रक्रिया को नए धर्म कैथोलिक-संप्रदाय ने समान रूप से अपना लिया है।

क्योंकि सब बच्चों को गंगा पर ले जाना मुश्किल है, इसलिये ब्राह्मण गंगाजल के स्थान में शुद्धि का जल काम में लाते हैं। इसको खराब होने से बचाने के लिये वे इसमें नमक और सुगंधियाँ घोल रखते हैं।

क्योंकि, ईसाई-समाज की वृद्धि के कारण प्रत्येक नवजात को जार्डन नदी के तीर पर ले जाना वैसा ही असंभव है, इसलिये प्रेरितों ने, हिंदू-रीति का अनुकरण करते हुए, पवित्र जल का व्यवहार ग्रहण किया है।

प्राचीन ब्राह्मण धार्मिक जज (विचारपति) होते थे। लोग उनके पास अपने पापों का प्रकाश करते थे, और वे उनके लिये दंड का निर्णय करते थे।

प्रेरित इन्हीं व्यापारों का सगर्व ग्रहण करते हैं, और जैसा कि हमें ज्ञात है, संप्रदाय के आदि काल में केवल प्रकट पाप-प्रक्षालन की रीति ही जारी करते हैं।

ईसा के दो शताब्दियों से भी अधिक समय के पश्चात् पादरियों (बिशपों) ने इस प्रकट पाप-प्रक्षालन को हटाकर एकांत में पापों के

सुनने की रीति ग्रहण की। यह प्रकट पाप-प्रकाशन एक ऐसा गुह्य यंत्र था, जिसकी दुर्वृत्तकारिणी प्रवृत्ति बहुत सुगमता से देख पड़ती है।

ब्राह्मण पुरोहित संस्कृत तैल से अभिषिक्त किया जाता है, उसका सिर मूड़ा जाता है, और उसे पवित्र यज्ञोपवीत दिया जाता है। प्रेरित भी सामान्य विश्वासियों से अपना भेद करने के लिये यही काम करते हैं।

सामाजिक उपासना हिंदू-धर्म में अभिषेक-संस्कार के रूप में विद्यमान न थी। हिंदू-धर्म-संबंधी अध्ययन में हम देख चुके हैं कि आस्तिकों के लिये यह नियम है कि वे ईश्वर को यज्ञ में चढ़ाए हुए आटे, चावल और फलों को, मंदिर में पुरोहित के साथ मिलकर खाते हैं, और यह पवित्र भोजन सब पापों को दूर कर देता है। परंतु यह नहीं कहा गया कि परमेश्वर उपस्थित है।

इस प्रक्रिया को ग्रहण करते हुए प्रेरितों ने यह अंतिम उपवाक्य जोड़ दिया है, और इसका नाम महायज्ञ (Eucharist—परमेश्वर का रात्रिभोजन) है। फिर भी यह सत्य है कि यह ईसाई रीति हिंदू रीति की नक़ल थी और है। पहले ईसाई आस्तिक इकट्ठे रोटी खाते और मदिरापान करते थे। यह कर्म किसी भी बात में यथार्थ लाक्षणिक 'भोजनदाता' से नहीं मिलता था।

प्रोटेस्टेंट लोग वास्तविक उपस्थित को नहीं मानते, और दो प्रकार से अपना महायज्ञ करते हैं। इस प्रकार वे पहले समयों के सरल व्यवहार की ओर लौटने का अच्छे कारणों के साथ बहाना करते हैं।

अंततः, इन सब याचित बातों को, जो निस्संदेह बहुसंख्यक हैं, परंतु जिनमें से हमने केवल उन्हीं को लिया है, जो अतीव महत्त्वपूर्ण हैं, समाप्त किया जाता है।

लोक-समूह का यज्ञ (Sacrifice of the Mass) हिंदुओं के सर्वमेध यज्ञ के सिवा और कुछ नहीं।

सर्वमेध में ब्रह्मा, जो हमारे उद्धार के लिये पृथ्वी पर आकर मरनेवाले अपने पुत्र कृष्ण के रूप में यज्ञबलि है, एक ब्राह्मण याजक के हाथ से आप ही इस पवित्र यज्ञ को संपन्न करता है।

क्या ईसाई यज्ञ किसी दूसरी कल्पना से निकला है? जिसमें साहस है, जो उत्तर दे सकता है, वह आवे और उत्तर दे। जब हम दूसरों की भूलों पर आक्रमण करते हैं, तो अपनी भूलों को स्वीकार करने में भी हमें प्रसन्नता होगी।

ईश्वर के सबसे पहले उत्पन्न किए हुए प्राणियों अर्थात् देवदूतों (फ़रिश्तों) का विद्रोह यहूदी-धर्म में, अर्थात् मूसा की धार्मिक रचना में, मौजूद नहीं है। ब्रह्मा के विरुद्ध देवों के विद्रोह से ही इस ईसाई-सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। फिर भारत, सदा ही भारत दीख पड़ता है!

सुनने की रीति ग्रहण की। यह प्रकट पाप-प्रकाशन एक ऐसा गुह्य यंत्र था, जिसकी दुर्वृत्तकारिणी प्रवृत्ति बहुत सुगमता से देख पड़ती है।

ब्राह्मण पुरोहित संस्कृत तैल से अभिषिक्त किया जाता है, उसका सिर मूड़ा जाता है, और उसे पवित्र यज्ञोपवीत दिया जाता है। प्रेरित भी सामान्य विश्वासियों से अपना भेद करने के लिये यही काम करते हैं।

सामाजिक उपासना हिंदू-धर्म में अभिषेक-संस्कार के रूप में विद्यमान न थी। हिंदू-धर्म-संबंधी अध्ययन में हम देख चुके हैं कि आस्तिकों के लिये यह नियम है कि वे ईश्वर को यज्ञ में चढ़ाए हुए आटे, चावल और फलों को, मंदिर में पुरोहित के साथ मिलकर खाते हैं, और यह पवित्र भोजन सब पापों को दूर कर देता है। परंतु यह नहीं कहा गया कि परमेश्वर उपस्थित है।

इस प्रक्रिया को ग्रहण करते हुए प्रेरितों ने यह अंतिम उपवाक्य जोड़ दिया है, और इसका नाम महायज्ञ (Eucharist—परमेश्वर का रात्रिभोजन) है। फिर भी यह सत्य है कि यह ईसाई रीति हिंदू रीति की नक़ल थी और है। पहले ईसाई आस्तिक इकट्ठे रोटी खाते और मदिरापान करते थे। यह कर्म किसी भी बात में यथार्थ लाक्षणिक 'भोजनदाता' से नहीं मिलता था।

प्रोटेस्टेंट लोग वास्तविक उपस्थित को नहीं मानते, और दो प्रकार से अपना महायज्ञ करते हैं। इस प्रकार वे पहले समयों के सरल व्यवहार की ओर लौटने का अच्छे कारणों के साथ बहाना करते हैं।

अंततः, इन सब याचित बातों को, जो निस्संदेह बहुसंख्यक हैं, परंतु जिनमें से हमने केवल उन्हीं को लिया है, जो अतीव महत्त्वपूर्ण हैं, समाप्त किया जाता है।

लोक-समूह का यज्ञ (Sacrifice of the Mass) हिंदुओं के सर्वमेध यज्ञ के सिवा और कुछ नहीं।

सर्वमेध में ब्रह्मा, जो हमारे उद्धार के लिये पृथ्वी पर आकर मरनेवाले अपने पुत्र कृष्ण के रूप में यज्ञबलि है, एक ब्राह्मण याजक के हाथ से आप ही इस पवित्र यज्ञ को संपन्न करता है।

क्या ईसाई यज्ञ किसी दूसरी कल्पना से निकला है? जिसमें साहस है, जो उत्तर दे सकता है, वह आवे और उत्तर दे। जब हम दूसरों की भूलों पर आक्रमण करते हैं, तो अपनी भूलों को स्वीकार करने में भी हमें प्रसन्नता होगी।

ईश्वर के सबसे पहले उत्पन्न किए हुए प्राणियों अर्थात् देवदूतों (फ़रिश्तों) का विद्रोह यहूदी-धर्म में, अर्थात् मूसा की धार्मिक रचना में, मौजूद नहीं है। ब्रह्मा के विरुद्ध देवों के विद्रोह से ही इस ईसाई-सिद्धांत की उत्पत्ति हुई। फिर भारत, सदा ही भारत दीखा देता है!

रवाज, सिद्धांत, प्रक्रियाएँ, नवीन महायज्ञ न तो मूर्त्ति-पूजकों से लिए जाते हैं और न यहूदी-धर्म से ही। फिर यदि ये प्राचीन भारत से नहीं लिए गए, तो ये कहाँ से आ गए; क्योंकि वहाँ तो यही विश्वास, यही बाह्य अभिव्यक्तियाँ, और यही उपासना ईसाई क्रांति से सहस्रों वर्ष पूर्व से मौजूद हैं।

केवल इतना ही नहीं, ईसा ख्रीष्ट (मसीह) बन जाता है, वह अपने में कृष्ण के सारे रहस्यों, सारे चमत्कारों, और सारे आश्चर्यों का पुनर्योग करता है। उसका आचरण, जिसको हम केवल उसके प्रेरितों द्वारा ही जानते हैं, वही है, जो हिंदू-अवतार का है। मेरी (मरियम) देवांगी की प्रतिमा को पुनर्जीवित करती है। हीरोद (Herod) मथुरा के अत्याचारी राजा कंस की नक़ल करता है। जोर्डन गंगा का अभिनय करती है। पवित्र जल शुद्धि के जल का स्थान लेता है; बपतिसमा, दृढ़ीकरण (Confirmation), पाप-प्रकाशन, महायज्ञ (परमेश्वर का भोजन), वास्तविक उपस्थिति, संस्कृत तैल और मुंडन द्वारा पुरोहितों की दीक्षा, ये सब एक दूसरे से मिलते और एक दूसरे के नमूने पर बने हुए हैं। और, प्रेरित हमसे यह मनवाना चाहते हैं कि उन्हें ईश्वर की ओर से काम करने की आज्ञा मिली थी।...और उन्हें पूर्व से, उस प्राचीन हिंदू-धर्म से प्रत्यादेश नहीं मिला, जिसने प्राचीन जगत् को आलोकित किया था।

परंतु आइए, हम आपस में एक समझौता कर लें। मैं ईसा के शिष्यों के ईश्वरविहित उद्देश्य को उसी अर्थ में स्वीकार करता हूँ, जिसमें मैं कृष्ण, मनु, बुद्ध, ज़र्दुश्त, मेनस, मूसा, कनफ़्यूशस, और मुहम्मद के जीवनोद्देश्य को मानता हूँ।

मुझे केवल इतनी अनुज्ञा दीजिए कि मैं इन लोगों को भूतकाल की कथाओं, स्वप्नों, और मूढ़ विश्वासों के सिपुर्द कर दूँ।

और आधुनिक जातियों के पथ-प्रदर्शन के लिये भविष्य की ड्योढ़ी पर यह आदर्श-वाक्य लिख दूँ—

परमेश्वर और विवेक !

दसवाँ अध्याय

पुरातन ईसाई-धर्म के तपस्वी और यती कहा से हुए ?

मूर्त्ति-पूजकों और यहूदी-धर्म में साधुओं के मठ बनाकर रहने की रीति बिलकुल न थी।

तब ईसाई-धर्म के प्रारंभिक काल में यतियों और उदासीनों की विपुलता कहाँ से हुई ?

ईसा ने एकांत और समाधि के उस सिद्धांत का उपदेश नहीं दिया, जिसने आरंभिक काल के ईसाइयों को वन में जाकर सब प्रकार के क्लेशों और अनुताप-सूचक दंडों में जीवन व्यतीत करने के लिये फुसलाया था।

बालों का कपड़ा, टाट और शारीरिक दुःख उसके श्रेष्ठ आचरण का कोई भी भाग नहीं।

जिसने परिश्रम को पवित्र बताया है, हम निष्फल तंद्रा को उसके आश्रय में नहीं रख सकते।

जैसा कि हम दिखा चुके हैं, संग्राम-शील जीवन के उपरांत ब्राह्मणों का वह तापस जीवन आता था, जो उनके पट्टाधिकार के प्रयोग के दिनों में लगे हुए सभी धब्बों को धो डालता था।

इसी प्रकार सभी द्विजों को सांसारिक विलासिता, आनंद और ममता का परित्याग कर देने के लिये धर्म विवश करता था।

हिंदू-विचारों के पुनरुत्थान ने ही ईसाई साधुओं के मठों की रीति प्रचलित की।

हमने ऊपर उन सच्चे हिंदुओं के लिये नियत किए हुए नियम दिए हैं, जिनकी इच्छा अपने जीवन को एक-मात्र ब्रह्म के चिंतन में

ही व्यतीत कर देने की होती थी । मनु के निम्न-लिखित वचन ईसाई यतियों पर आश्चर्यजनक रूप से लागू हैं—

"संन्यासी को चाहिए कि नगरों के साधारण भोजन, पुत्र, कलत्र, और अपनी सारी संपत्ति का परित्याग कर दे।

"वह अग्निहोत्र और उसके लिये आवश्यक पात्रों को लेकर वन में चला जाय और इंद्रियों को वश में करे।

"वह मृगों के चर्म अथवा वृक्षों के वल्कल पहने, और प्रातः तथा सायं अपने को शुद्ध करे। जटा, दाढ़ी, शरीर के रोम और नखों को सदा धारण करे।

"अपने अपर्याप्त अन्न में से भी भिक्षा देने का उपाय करे।

"सदा वेदाध्ययन करे, गरमी-सरदी सब धैर्यपूर्वक सहन करे, मन को सदा वश में रक्खे, सब भूतों पर दया दिखावे, सदा देता रहे, ले कभी भी नहीं ।"

"न मृत्यु की कामना करे और न जीने की, और जिस प्रकार मज़दूर साँझ को अपने स्वामी के द्वार पर शांतिपूर्वक पुरस्कार की प्रतीक्षा करता है, उसी प्रकार वह भी अपने समय की प्रतीक्षा करे।

"और जब उसकी मृत्यु की घंटी बजे, तो वह लोगों से उसी चटाई पर लिटाकर राख से ढक देने की प्रार्थना करे; उसका अंतिम शब्द मनुष्य-मात्र के लिये प्रार्थना हो, जो कि संसार में दुःख पाते रहेंगे, जब कि वह आप जगत्-पिता की गोद में चला जायगा।"

हिंदू और ईसाई * संन्यासियों का ऐसा ही नियम था। उसे उद्धृत करना मानो उसे प्रमाणित करना है। ये शेषोक्त केवल नक़ल करने-वाले ही थे।

इन ब्राह्मण-सिद्धांतों के अतिवाद ने ही वे संन्यासी और फ़क़ीर उत्पन्न किए हैं, जिनकी जीवन-वृत्ति और जिनकी यातनाओं और भयानक अंगच्छेदन का वर्णन हम कर चुके हैं।

इन्हीं कारणों ने ईसाई-धर्म में भी वही परिणाम उत्पन्न किए, और हम सिमन-स्टाइलाइटस (Simon-Stylites), आरिगन (Origen) और दूसरे फ़क़ीरों को हिंदू-फ़क़ीरों की नक़ल करते पाते हैं।



* [illegible]

ग्यारहवाँ अध्याय

अंतिम प्रमाण

प्रेरितों के समय में भी ऐसे मनुष्य विद्यमान थे जो ईसाई-धर्म को पूर्व की उपज मानते थे, और जिन्होंने हिंदू-धर्म को पूर्ण रूप से वापस लाने के लिये भरसक यत्न किया था।

वे हिंदुओं के अव्यक्त और निश्चल ज़िरम (Zerua) को स्वीकार करते थे जिसके पेट में कि प्रकृति और जीवन के सारे मूल-तत्त्वों का बीज निवास करता था।

तब परमेश्वर स्रष्टा, अर्थात वर्तमान जगत का कर्ता बन गया, और उसने अपने आपको सृष्टि में व्यक्त किया।

(Carpocratius), बेसीलिडस (Basilides), सिकंदरिया के वेलंटीनस (Valentinus) और टेशियन (Tatian) एंटियोक के सटर्निनस (Saturninus of Antioch), एडेसा के बार्डेसेनस (Bardesanes of Edessa) ने, और मार्कियोन (Marcion) तथा कर्डन (Cerdon) ने, जिन्होंने धर्म-बुद्धि के सच्चे उद्भवों को एशिया में पाने की प्रतिज्ञा की थी, इनका विकास किया।

हम देखते हैं कि इन पुस्तक की प्रधान कल्पना कल की उत्पन्न हुई नहीं। प्रेरितों के सहयोगी और पहले ईसाई, हमसे अठारह शताब्दियों पहले, पूर्व को सभी धार्मिक कल्पनाओं का जन्म-स्थान समझते थे।

इसलिये हम केवल विचार के लिये सारे ऐतिह्यों के प्राचीन खज़ाने को खोदकर निकाली हुई नवीन युक्तियाँ लाए हैं।

(Carpocratius), बेसीलिडस (Basilides), सिकंदरिया के वेलंटीनस (Valentinus) और टेशियन (Tatian) एंटियोक के सर्टर्निनस (Saturninus of Antioch), एडेसा के बार्डेसेनस (Bardesanes of Edessa) ने, और मार्किओन (Marcion) तथा कर्डन (Cerdon) ने, जिन्होंने धर्म-बुद्धि के सच्चे उद्भवों को एशिया में पाने की प्रतिज्ञा की थी, इनका विकास किया।

प्रेरितों ने जब अपना परदा खुलते और अपने काम को आधात पहुँचते देखा, तब उन्होंने सिमन, डोसिथिडस और दूसरों को पाखंड, ईश्वर-निंदक, और शैतान के वशीभूत कहना आरंभ कर दिया, और अपने शिशु-धर्म की सारी धमकियों से उन्हें डराने लगे।

पीछे से जब इन्हीं विचारों ने नवीन युक्तियों के साथ प्रतिष्ठित होने की चेष्टा की तब ईसाई-धर्म राजासन पर बैठने के लिये अपने आत्म-त्याग और दरिद्रता को भूल चुका था, और जो लोग इसकी उत्पत्ति के विषय में प्रश्न करने का यत्न करते थे उन सबको पीड़ित और बहिष्कृत करने के लिये सम्राटों के द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करता था; इस प्रकार उसने उन सारी हत्याओं, सारे निर्वासनों, और सारे विश्वसनों का उपक्रम किया, जिन्होंने मध्य कालों और अधिक आधुनिक समयों को रक्ताक्त किया था।

इस संप्रदाय का सबसे प्रसिद्ध पंडित आरीगन (Origen) यह मानता था कि ऊपर लोकों में आत्माएँ पहले से ही विद्यमान हैं, और वहाँ से वे शरीरों को सजीव करने के लिये नीचे आती हैं, और पृथ्वी पर आकर वे, फिर ईश्वर के साथ जा मिलने के उद्देश्य से अपने पूर्व दोषों को धोती हैं।

उसका यह भी मत था कि नरक का दुःख भी सदा के लिये नहीं। यह सब शुद्ध हिंदू-सिद्धांत के सिवा और कुछ नहीं।

हम देखते हैं कि इस पुस्तक की प्रधान कल्पना कल की उत्पन्न हुई नहीं। प्रेरितों के सहयोगी और पहले ईसाई, हमसे अठारह शताब्दियाँ पहले, पूर्व को सभी धार्मिक कल्पनाओं का जन्म-स्थान समझते थे।

इसलिये हम केवल विचार के लिये सारे पेगनों के प्राचीन खज़ाने को खोदकर निकाली हुई नवीन युक्तियाँ लाए हैं।

बारहवाँ अध्याय

भारत में जेज़ूइट संप्रदाय का काम

रेवरेंड फ़ादर्स, जेज़ूइट, फ़्रांसिसकंस (Franciscans), विदेशी-मिशन और अन्य समाज भारत में विनाश का कार्य करने के लिये हृदयंगम एकतानता के साथ मिल गए हैं, जिसके लिये प्रादेशीय-भाषा-पंडितों और सारे शिक्षित संसार को उनकी निंदा करनी उचित है।

जो भी हस्त-लेख, जो भी संस्कृत ग्रंथ उनके हाथ आता है, वे झट उसको निंदित ठहराकर अग्नि के सिपुर्द कर देते हैं। यह कहने का प्रयोजन नहीं कि ये महाशय इस काम के लिये सबसे पहले उसी ग्रंथ को चुनते हैं, जो सबसे पुराना हो और जिसकी प्रामाणिकता निर्विवाद प्रतीत होती हो।

इस असहिष्णुता और मूर्खता के कार्य का क्या उद्देश्य है? क्या यह भारत के थोड़े-से ईसाइयों को इन ग्रंथों के पढ़ने से बचाने के लिये है?

नहीं! मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि उनके अनुयायियों में से, जो सदा बहुत ही नीचतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं, एक भी ऐसा नहीं, जो भारत की प्राचीन पवित्र भाषा को, जिसका आजकल केवल विद्वान् ब्राह्मण ही अध्ययन करते हैं, समझने में समर्थ हो।

फिर इसका उत्तर, जो दिया नहीं जायगा, बड़ा ही सरल है। अर्थात्, वे पुस्तक को इसलिये नष्ट करते हैं कि वे इससे डरते हैं, और समझते हैं कि पीछे से हमें कहीं इसका सामना न करना पड़े।

ओह! वे लोग, विशेषतः जेज़ूइट, उन पुस्तकों के मूल्य को, जिनको वे नष्ट करते हैं, ख़ूब जानते हैं। प्रत्येक नवागत को

विधिपूर्वक आज्ञा होती है कि जो कुछ भी तुम्हारे हाथ लगे, उसे नष्ट कर डालो। सौभाग्य से ब्राह्मण इनको अपनी अमित साहित्य-संपत्ति, दार्शनिक और धार्मिक ग्रंथों के गुप्त संग्रह नहीं दिखाते।

इस विनाशक उन्माद का अनिवार्य परिणाम यह हुआ है कि जब तक असाधारण घनिष्ठता न हो, किसी ब्राह्मण को अपने मंदिर की धर्म-पुस्तकें दिखाने के लिये तैयार करना बड़ा ही कठिन हो गया है।

हिंदू-पुरोहित, जो जनता पर अपने प्रभाव को जानता है, जिसका संकेत पाते ही छोटे और बड़े उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, यह समझने से बाज़ रह नहीं सकता कि कैथोलिक पुरोहित का भी अपने देश-बंधुओं पर वैसा ही अधिकार है।

उनका साधारण उत्तर यह होता है—"तुम्हारा इस पुस्तक से क्या काम है? यह तुम्हारी जाति के लिये नहीं लिखी गई, और तुम संभवतः ईसाई पादरियों को देने के लिये ही इसे माँग रहे हो।"

यही कारण है, जो कलकत्ते की एशियाटिक सोसाइटी अभी तक संपूर्ण वेदों का संग्रह नहीं कर सकी, और जो प्रतियाँ उसे मिली भी हैं, उनके विषय में भी उसे पूरा विश्वास नहीं; क्योंकि उनमें अनेक परिकल्पित प्रक्षेप पाए गए हैं।

तेरहवाँ अध्याय

मनु का एक वाक्य

"जिस प्रकार सेना का एक अति क्षुद्र सिपाही भी कभी-कभी एक अग्निमय बाण से शत्रु के दृढ़तम दुर्ग को जला देता है, उसी प्रकार एक अति दुर्बल मनुष्य भी, जब वह अपने को सत्य का निर्भय योद्धा बना लेता है, तब मूढ़ विश्वास और प्रमाद की अतीव कठिन प्राचीर को भी गिरा देता है।"

❀ समाप्त ❀

परिशिष्ट

टिप्पणियां

बाइबिल—ईसाइयों का धर्म-ग्रंथ। इसे इंजील भी कहते हैं। इसके दो भाग हैं—पुराना धर्म-नियम और नया धर्म-नियम। नए धर्म-नियम में मत्ती, लूका, मार्क, और योहन-नामक चार मनुष्यों के रचे सुसमाचार हैं

तेरहवाँ अध्याय

मनु का एक वाक्य

"जिस प्रकार सेना का एक अति क्षुद्र सिपाही भी कभी-कभी एक अग्निमय बाण से शत्रु के दृढ़तम दुर्ग को जला देता है, उसी प्रकार एक अति दुर्बल मनुष्य भी, जब वह अपने को सत्य का निर्भय योद्धा बना लेता है, तब मूढ़ विश्वास और प्रमाद की अतीव कठिन प्राचीर को भी गिरा देता है।"

❀ समाप्त ❀

परिशिष्ट

टिप्पणियाँ

बाइबिल—ईसाइयों का धर्म-ग्रंथ । इसे इंजील भी कहते हैं। इसके दो भाग हैं—पुराना धर्म-नियम और नया धर्म-नियम । नए धर्म-नियम में मती, लूक, मार्क, और योहन-नामक चार मनुष्यों के रचे सुसमाचार हैं

"भारत में बाइबिल" के लेखक ने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि ईसाइयों की बाइबिल में जो बातें लिखी हैं, सब भारत की उपज हैं, और यहीं से रूपांतरित होकर ईसा मसीह तक पहुँची थीं।

पृष्ठ (१३) स्पेन अभी मोमबत्तियों—रोमन कैथोलिक संप्रदाय के ईसाइयों में मरियम आदि की मूर्तियों के सामने मोमबत्तियाँ जलाने और उन पर पवित्र जल चढ़ाने की रीति थी, और अब भी है। सन् १८६८ के लगभग, जब यह पुस्तक लिखी गई थी, तब स्पेन में इस प्रथा के विरुद्ध आंदोलन उठ रहा था; परंतु अभी कोई परिणाम नहीं निकला था।

पृष्ठ (१३) इटली ने अभी—इटली पहले अनेक छोटे-छोटे रजवाड़ों में विभक्त था। ये रजवाड़े सब स्वतंत्र थे। फिर वहाँ इन सब रजवाड़ों को मिलाकर एक राष्ट्र बना देने का आंदोलन चला। सबसे पहले पेडमोंट-नामक रजवाड़े ने इस एकता के संगठन में अपने अस्तित्व की आहुति दी। फिर धीरे-धीरे सभी रजवाड़े उस महाराष्ट्र में लीन हो गए। परंतु जिस समय यह पुस्तक लिखी गई थी, उस समय अभी कुछ स्वतंत्र रजवाड़े शेष थे। रोम सन् १८७० में इस संगठन में मिला था। इसके मिलने से ही यह एकता पूर्ण हो गई। यह पुस्तक

चूँकि सन् १८६८ में लिखी गई थी, इसलिये ग्रंथकार लिखता है कि इटली की एकता का संगठन अभी पूर्ण नहीं हुआ।

पृष्ठ (१३) रोम एक बड़ी सभा में—जैसा कि ऊपर कहा गया है, रोम अभी संगठन में सम्मिलित नहीं हुआ था। वहाँ रोमन कैथोलिक संप्रदाय के धर्माचार्य पोप का अखंड राज्य था। पोप बुद्धि, विज्ञान और स्वतंत्रता की सभी बातों का विरोध और उन्हें दबाने का प्रयत्न करता था।

पृष्ठ (१३) समाज-बहिष्कार अपनी निःसत्व गर्जनाओं को—यद्यपि महात्मा लूथर के प्रचार से पोप की प्रतिपत्ति बहुत कुछ घट चुकी थी, परंतु फिर भी अभी वह प्रजाओं, राजों और सम्राटों आदि को समाज से बहिष्कृत कर देने की धमकी देकर उनको अपने अधीन करने का निष्फल यत्न करता था। स्मरण रहे, इटली के पोप की एक समय इतनी शक्ति थी कि उससे बड़े-बड़े सम्राट् काँपा करते थे। वह जिसको चाहता, गद्दी पर बैठा सकता और जिसे चाहता, उतार सकता था। उसका वचन ही राज नियम था।

पृष्ठ (१३) अँगरेज़ लाट पादरी—इँगलैंड प्रोटेस्टेंट संप्रदाय का अनुयायी है, जिसके प्रवर्तक लूथर ने लोगों को पोप की दासता से छुटकारा दिलाया था। परंतु लाट पादरी लोग लूथर के नाम की आड़ में अपना जाल बिछा रहे हैं। वे सबको एंगलिकन चर्च की शृंखला में जकड़कर अपना दास बनाना चाहते हैं। जिस विचार-स्वातंत्र्य के लिये लूथर ने संग्राम किया था, उसी को वे लोगों से छीनने का यत्न कर रहे हैं। कोलंज़ो के बहिष्कार की घोषणा करना उनके इस भाव का प्रमाण है।

विलियम जॉन कोलंज़ो एक बिशप और बाइबिल का समालोचक था। इसने सेंट जॉन कॉलेज, कैंब्रिज में शिक्षा पाई थी। इसने गणित-शास्त्र पर अनेक पुस्तकें लिखीं। ये पुस्तकें प्रामाणिक समझी जाती हैं। इसने कुछ धार्मिक पुस्तकें भी लिखीं।

यह सन् १८९३ में नेटाल का बिशप नियुक्त हुआ। वहाँ जाकर इसने ईसाई-धर्म के प्रचार में बहुत परिश्रम किया। जुलू लोगों की भाषा सीखी। सन् १८६२ में इसने "The Pentatench and the Book of Joshua critically examined"-नामक एक पुस्तक लिखी। इसमें इसकी निर्भीक आलोचना से कट्टर ईसाइयों में इसके विरुद्ध बड़ी चर्चा होने लगी। इसके बाद कोलंज़ो के विचारों का प्रचार करनेवाले और भी ग्रंथ निकले। सन् १८६३ में बिशप ग्रे ने केपटाउन में कोलंज़ो पर नास्तिकता का अभियोग चला दिया, और उसे पदच्युत कर देने की आज्ञा प्राप्त कर ली। परंतु प्रिवीकौंसिल में अपील करने पर यह आज्ञा रद कर दी गई। इसका जन्म सन् १८१४ में हुआ था।

पृष्ठ (१२) आयर्लैंड के आर्तनाद को दबा रहा है—आयर्लैंड बहुत देर से स्वतंत्रता के लिये रो रहा है, परंतु इँगलैंड उसकी कुछ परवा नहीं करता। दूसरे आयर्लैंड रोमन कैथोलिक है, और इँगलैंड प्रोटेस्टेंट।

पृष्ठ (१२) उमर के अनुयायी—टर्की (रूम) अपना सुधार करना चाहता है, ताकि संसार की स्वतंत्र जातियों में उसका अस्तित्व बना रहे, परंतु पुरानी रीति-रवाजों के ठेकेदार खलीफ़ा और मुल्ला लोग उसे ऐसा नहीं करने देते। जैसे इस समय तुर्कों ने खिलाफ़त और स्त्रियों का परदा उड़ा दिया है, और वे और भी कई प्रकार के सुधार कर रहे हैं, वैसे ही वे सन् १८६८ ई० के लगभग भी करना चाहते होंगे; परंतु मुल्लाओं के विरोध ने उन्हें कुछ न करने दिया होगा। ग्रंथकार का संकेत उसी ओर है।

पृष्ठ (१३) पोलैंड का अस्तित्व मिट चुका है—पोलैंड को रूस ने हड़प कर लिया है। कोसियस्को पोलैंड का एक देश-भक्त था।

उसने पहले वार्सा में और फिर पेरिस में युद्ध-विद्या सीखी थी। वह लेफेटी के साथ अमेरिका गया, और वहाँ औपनिवेशिकों के साथ मिलकर इँगलैंड के विरुद्ध लड़ा था। युद्ध की समाप्ति पर वह पोलैंड लौट आया, और मेजर जनरल बना दिया गया। सन् १७६४ में वह पोलिश सेना का सेनापति बनाया गया। इसी वर्ष उसने रूसियों को टकलावी पर हार दी, परंतु इसके थोड़े ही दिन बाद वार्सा के निकट उसे रूसियों और प्रशियावालों ने मिलकर हरा दिया। रूसी सेना ६०,००० थी। उसने २१,००० सेना से उनका सामना किया। पोल जान तोड़कर लड़े, परंतु जीत न सके। कोसियस्को घायल होकर (Finis Poloniae—बस अब पोलैंड का अंत हो गया ; 'Freedom shrieked when kosciusko fell—Campbell') कहता हुआ पकड़ा गया। पोल लोग पूर्ण रूप से अधीन कर लिए गए। इस देश-भक्त को सेंटपीटर्सबर्ग में ले जाया गया ; परंतु सम्राट् पाल ने उसे छोड़ दिया, और एक जागीर भी दी, जो बाद में इसने वापस कर दी। सन् १७६८ में वह फ्रांस गया। नेपोलियन ने इसे अपनी सेना में लेने के लिए बहुतेरा यत्न किया, परंतु इसने अपना एकांत छोड़ना स्वीकार न किया। सन् १८१५ ई० में पोलैंड का नवीन राज्य स्थापित हो जाने पर इसने सम्राट् अलेग्ज़ेंडर को उसकी वदान्यता के लिये धन्यवाद का पत्र लिखा। सन् १८१६ में यह स्विटज़रलैंड में जा बसा, और कृषि-कार्य में लग गया। एक चट्टान पर से घोड़े के गिर जाने से इसकी मृत्यु हो गई। इसका जन्म, लिथुआनिया में, १७५६ ई० में और मृत्यु स्विटज़रलैंड में १८१७ ई० में हुई।

पृष्ठ (१४) रूस का ज़ार पोप है—रूस का ज़ार इटली के धर्माचार्य पोप के सदृश स्वेच्छाचारी राजा होता था। रूस में राज-सत्ता और धर्म-सत्ता, दोनों उसके हाथ में थीं। इसलिये उसे पोप कहा गया है।

पृष्ठ (१८) सेवोनरोला (Savonarola, Girolamo.) यह इटली का एक संत (संन्यासी) था। इसने फ़्लोरेंस नगर में सबके सामने पादरियों के पापाचार और रोमन संप्रदाय के शीलभ्रंश पर धुआँधार भाषण दिए। इस पर पोप ने इसको समाज-च्युत कर दिया, और इसे तथा इसके दो साथियों को प्राण-दंड दिया गया। इनके शव जलाए गए। इसका जन्म फ़रारा में, १४५२ में; और मृत्यु सन् १४६८ में हुई।

पृष्ठ (१८) सर्वेटस (Servetus Michael)—यह एक प्रसिद्ध धर्म-पंडित और वैद्य था। एरियन सिद्धांत (Arian doctrine) ग्रहण कर लेने से इसने केलविन (Calvin) को और उसने इसको कई चिट्ठियाँ लिखीं। इससे दोनों में मनोमालिन्य बढ़ गया। सर्वेटस ने अपने मत की पुष्टि में 'Christianismi Restitutio.'-नामक एक पुस्तक छपवाई। परंतु उस पर अपना नाम न दिया। किंतु केलविन को इसका पता लग गया। उसने वहाँ के शासक को इसकी सूचना दे दी। इस पर सर्वेटस को देश-निकाला दिया गया, और उसकी पुस्तक तथा उसकी प्रतियाँ जलाई गईं। इसके बाद उसने नेपल्स में जाकर चिकित्सा करने का विचार किया। वह भेस बदलकर जिनेवा-नगर में से जा रहा था कि केल-विन ने उसे पहचानकर पकड़वा दिया। इस पर क़ानून के ख़िलाफ़ उसे जीते-जी धीरे-धीरे जलाकर मार डालने का दंड दिया गया।

यह बहुत बड़ा विद्वान् था। इसने बतलीमूस (Ptolemy) के भूगोल का अनुवाद किया, और वैद्यक पर कई ग्रंथ लिखे। इसका जन्म विल्लेनूवा, अरेगन (Villanueva, Aragon) में, १५०६ ई० में और मृत्यु १५५३ में हुई।

पृष्ठ (१६) डूबाइस (Dubois Guillanme)—यह

कैंब्रेका आर्चबिशप, कार्डिनल और फ्रांस का प्रधान मंत्री था। इसकी मृत्यु १७२३ में हुई।

पृष्ठ (१७) कयिन (Cousin Victor)—यह मनोविज्ञान का एक बड़ा उद्भट फ्रांसीसी विद्वान् था। वह पेरिस के Forcvlte des Leterst में दर्शन-शास्त्र का अध्यापक था। सन् १८१७ में इसने जर्मनी में जाकर काँट, फ़िशे (Fichte), शेलिंग (Schelling) और अन्य दार्शनिकों के ग्रंथों का अध्ययन किया। उसकी अपनी दर्शन-पद्धति की मूलाधार कल्पना यह है कि प्रत्येक पद्धति ठीक, परंतु अपने आप में अधूरी है। जब सब पद्धतियों को मिला दिया जाय, और यथायोग्य रीति से एक दूसरे के साथ जोड़ दिया जाय, तब एक पूर्ण तत्त्वज्ञान-पद्धति बन जाती है। कयिन ने दार्शनिक तथा शिक्षा-संबंधी विषयों पर बहुत कुछ लिखा, और तेरह भागों में अफ़लातूँ के ग्रंथों का अनुवाद किया।

इसका जन्म पेरिस में १७९२ ई० में, और मृत्यु केनस (Can nes) में, १८६७ में हुई।

पृष्ठ (१८) स्पेन का दूसरा फ़िलिप—इसका जन्म १५२७ ई० में और मृत्यु १५९८ ई० में हुई। यह बड़ा अत्याचारी राजा था। इसने सन् १५५९ में नेदरलेंड्स से लौटकर एक सार्वजनिक वध किया, और पाखंड-शासन-सभा (Inquisition) के अनेक अभागे शिकारों को जीते-जी जला दिया। अपने राज्य से नास्तिकता का सर्वनाश करने का निश्चय करके इसने अपने इटालियन अधिकृत देशों में निर्दयता से आग और तलवार का उपयोग किया।

पृष्ठ १ जीउस, यहोवह, ब्रह्म—रोमन, इबरानी, और हिंदू लोगों के दिए हुए परमेश्वर के नाम।

पृष्ठ इलूसिस (Eleusis)—प्राचीन काल में सलेमिस की खाड़ी के उत्तरी तट के समीप यूनान का एक नगर था। यहाँ एथंस-

निवासी हर पाँचवें वर्ष एक महोत्सव किया करते थे। यूनान के सारे धार्मिक संस्कारों में यह सबसे प्रसिद्ध था। इसलिये प्रख्याति की रीति से, यह प्राय: 'रहस्य' कहलाता है। यहाँ की प्रत्येक बात में रहस्य होता था।

पृष्ठ ५ बैतलहम—'ईश्वर का घर'। एक नगर का नाम। इसराएल के समय में यह मूर्ति-पूजा का गढ़ था। इसके खँडहर अब Beitin (बीतिन) कहलाते हैं। यह यरूशलम से कोई दस मील की दूरी पर है।

वस्टा—रोमन देवमाला में अग्नि की देवी, राज्य की रक्षिका, और अपनी पुजारिन कुमारियों की प्रतिपालिका।

पृष्ठ ४ थेबस (Thebes)—इबरानी इसे नाएमव, और यूनानी तथा रोमन इसे महान् डिओसपोलिस कहते थे। यह पहले समयों में उत्तर मिसर की राजधानी थी। इसके विशाल और विस्तृत खँडहर नील के पूर्वी किनारे पर लक्सर (Luxor) और कर्नक (Karnak) में और पश्चिमी तट पर गर्नो तथा मिदवत-अबू में हैं।

पृष्ठ ४ बेबीलन—यह असिरियन राज्य की राजधानी थी, और बग़दाद से कोई ६० मील की दूरी पर जेहूँ-नदी के तट पर बसी हुई थी। इसके पीतल के १०० द्वार थे। इसकी दीवारें शिलाजीत से जोड़ी हुई थीं। उनकी परिधि ६० मील, मोटाई ८७ फ़ीट और ऊँचाई ३५० फ़ीट थी। जेहूँ-नदी के तट के साथ-साथ दो और दीवारें थीं। दो प्रासाद थे। इनमें से एक 'संसार का विस्मय' कहलाता था। यह नेबूकडनज़र (Nebuchadnezzar) ने बनवाया था। इसके अंदर ही प्रसिद्ध झूलनेवाला बाग़ था। इसमें सबसे विख्यात भवन नगर के उत्तर-पूर्व में 'बेल' का मंदिर था। यह एक आठ मंज़िल का शंकु के रूप का भवन था। इसके

ऊपर 'बेल' (Bel) की एक ४० फ़ीट ऊँची सुवर्ण की मूर्ति, एक ४० फ़ीट लंबी सोने की मेज़, और सोने की अन्य वस्तुएँ रक्खी थीं। ईसा के ५३८ वर्ष पूर्व कायरस (Cyrus) ने जेहूँ का जल एक नई नहर में डालकर नदी को सुखा दिया, और रात के समय सेना को सूखी हुई नदी से गुज़ारकर इस नगर पर अधिकार कर लिया। पीछे से इसे महान् सिकंदर ने ले लिया, और उसकी मृत्यु भी यहीं होने के कारण यह प्रसिद्ध हो गया।

पृष्ठ ५ निनवह (Nineveh)—प्राचीन काल का एक प्रसिद्ध नगर था। यह टिगरिस नदी के बाएँ किनारे पर बसा हुआ था। यह कोई २,००० वर्ष तक असिरिया-राज्य का प्रधान नगर रहा। इसके संबंध में सबसे पुराना। ऐतिहासिक लेख सृष्टि-उत्पत्ति की पुस्तक है। इसकी नींव ईसा से कोई २,२४७ वर्ष पूर्व रक्खी गई थी, परंतु इसे सबसे अधिक समृद्धि और ऐश्वर्य सेना-चरिब (Sennacherib) और असुर बनीपाल के काल में प्राप्त हुआ। इन राजों ने बड़े-बड़े विशाल और सुंदर भवन बनाए थे, जिनके भग्नावशेष भारी-भारी मूर्तियों और बहुमूल्य आभूषणों से सुसज्जित पाए गए हैं। कहते हैं, नगर के इर्द-गिर्द एक १०० फ़ीट ऊँची दीवार थी। ऊपर से यह इतनी चौड़ी थी कि उस पर तीन रथ इकट्ठे साथ-साथ चल सकते थे। इसमें दो-दो सौ फ़ीट ऊँचे १,५०० बुर्ज थे। इस दीवार के अंदर का क्षेत्रफल ६० मील था। इस नगर की खुदाई से जो बहुत-सी मूर्तियाँ, चित्रित पट्टिकाएँ और अन्य सुमनोरंजक वस्तुएँ निकली हैं, उनसे इसके भवनों की विशालता और विद्याओं में उन्नति का पता चलता है। असुर बनीपाल के पुस्तकालय से बढ़कर उस समय और कोई पुस्तकालय न था। इसकी पुस्तकें चिकनी मिट्टी पर मुद्रित थीं। उनमें वंशावलियाँ, बड़े महत्त्व के ऐतिहासिक लेख, क़ानूनी-पत्र, व्यापार-संबंधी विज्ञप्तियाँ, ज्योतिष की गणनाएँ, व्याक-

रण और कोप थे। इनमें से कुछ के टुकड़े मिले भी हैं। असिरियन लोगों को ज्योतिष का अच्छा ज्ञान था। उनका सबसे बड़ा मान-मंदिर निनवह में था। वे सोने के आभूषण बनाना, हीरे का काटना और काँच का बनाना जानते थे। यहाँ व्यापार भी बहुत होता था। कहते हैं, इनका वाणिज्य एक ओर भारत से लेकर दूसरी ओर इँगलैंड तक फैला हुआ था। असुर बनीपाल की मृत्यु के पश्चात् इस नगर के ऐश्वर्य का ह्रास होने लगा, और थोड़े ही वर्ष उपरांत (ईसा के कोई ६२५ वर्ष पूर्व) बेबीलोनियन और मीडीज़ (Medes) लोगों ने इस पर अधिकार करके उसे नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

पृष्ठ ११ होमर—यूनान का एक बड़ा पुराना और प्रसिद्ध कवि था। इसने इलियड और ओडेसी-नामक दो महाकाव्य लिखे थे। इसकी मृत्यु ईसा से कोई ८५० वर्ष पूर्व हुई।

वर्जिल—यह रोमन कवि था। इसने Ecloque, Georgies और एनीड (Æneid)-नामक काव्य लिखे। शेषोक्त ग्रंथ इसने ग्यारह वर्ष में समाप्त किया था। वह इसे दुहराने भी न पाया था कि उसका ईसा से १६ वर्ष पूर्व देहांत हो गया।

सोफोक्लीस—करुण-रस-प्रधान नाटक लिखनेवाला एथेंस (यूनान) का एक कवि। कहते हैं, इसने १२० नाटक लिखे थे, और बीस बार प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था। इसके अब पूरे नाटक केवल सात Antigon hlecha, Trachiniœ, Œdipus,Rex, Ajaxe, Teiloctes, और Œdipus Coloneus—ही मिलते हैं। इसका जन्म ४९५ ई०पू० और मृत्यु ४०६ ई० पू० में हुई।

यूरीपिडीस—यह यूनान का एक करुण रस प्रधान नाटक लिखने-वाला कवि था। यह अनेक्सागोरस दार्शनिक और प्राडिकस अलंकार-शास्त्री का शिष्य था। इसने दो बार विवाह किया; परंतु दोनों स्त्रियों से ही इसे सुख न हुआ। इसी से इसके ग्रंथों में स्त्रियों की घोर

निंदा पाई जाती है। इसका पहला नाटक "Peliaoles" था। एक दिन यह शाम को मकदूनिया-राज्य के एक जंगल में घूम रहा था कि शिकारी कुत्तों ने इसे फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर डाला। इसके ७९ नाटकों में से अब केवल १६ ही मिलते हैं। इसका जन्म ४८० ई० पू० और मृत्यु ४०७ ई० में हुई।

प्लौटस (Ploutus Maccius)—एक लैटिन प्रहसन लिखनेवाला नाटककार। इसे लैटिन और यूनानी साहित्य का बहुत अच्छा ज्ञान था। नीच कुल में उत्पन्न होकर भी इसने अपनी विद्या के प्रताप से नाटक लिखने में ख़ूब नाम पाया था। इसके १३० नाटकों में से अब केवल २० ही मिलते हैं। इसका जन्म कोई २९४ ई० पू० और देहांत १८४ ई० पू० में हुआ।

टेरंस—एक रोमन नाटककार और हास्यरसपूर्ण कविता लिखनेवाला। यह पहले एक क्रीतदास था, परंतु इसकी चमत्कारिणी बुद्धि पर मोहित हो इसके स्वामी ने इसे स्वतंत्रता दे दी। इसने यूनान में जाकर वहाँ के साहित्य का ख़ूब अध्ययन किया, और उसके अच्छे-अच्छे प्रहसनों का लैटिन में अनुवाद कर डाला। कई लोग कहते हैं कि इसकी मृत्यु शोक के कारण हुई थी; क्योंकि इसने यूनान में रहते हुए भी नेडर के १०८ नाटकों का अनुवाद करके रोम भेजा था; परंतु वे रास्ते में ही समुद्र में खो गए। इसके प्रसिद्ध नाटक Eunuchus, Phormio, और Adelphius हैं। इसका जन्म कोई १६९ ई० पू० और देहांत १९६ ई० पू० में हुआ।

सुक़रात—यूनान का एक विख्यात तत्त्ववेत्ता। यह सद्गुणों के प्रचार से व्यापक सुधार करने का यत्न करता था। इसके विचारों की स्वतंत्रता और संवादों के प्रबल वाक्प्रवाह के कारण इसके अनेक शत्रु बन गए। फिर सुक़रात पर पाँच सौ की सभा में एथेंस के युवकों को बिगाड़ने, धर्म में नवाचार घुसेड़ने और देवतों की हँसी

उड़ाने का दोष लगाया गया। इनके लिये उसे मृत्यु-दंड की आज्ञा मिली। थिओरा (Theoria)-नामक पर्व के कारण एक मास तक यह आज्ञा रुकी रही। यह समय उसने अपने मित्रों के साथ उच्च विषयों पर संवाद करने में व्यतीत किया। उसे कारागार से भाग जाने की सलाह दी गई, और उसका भाग जाना भी बड़ा सुगम था; क्योंकि जेलर ने भी अनुमति दे दी थी। परंतु उसने बड़ी ही उदारता से भागने से इनकार कर दिया, और कहा—"मैं मृत्यु से बचकर कहाँ जा सकता हूँ ?" जब उत्सव समाप्त हो गया, तब उसने पूर्ण शांति के साथ विष का प्याला पी लिया, और कुछ मिनट के उपरांत उसकी आत्मा उसके पांचभौतिक शरीर से निकल गई। इस प्रकार उस सुक़रात का प्राणांत हुआ, जिसको आकाश-वाणी ने यूनान का सबसे बड़ा बुद्धिमान् मनुष्य ठहराया था। एथेंस-निवासियों को अपनी कृतघ्नता पर बड़ा पश्चात्ताप हुआ; उसके शत्रुओं से सब कहीं घृणा होने लगी, और वे बड़ी बुरी मौत मरे। इस महात्मा का जीवन-वृत्तांत और उसकी शिक्षा उसके दो परम शिष्यों, ज़ेनोफन तथा अफ़लातूँ, द्वारा हम तक पहुँची है।

इसका जन्म एथेंस नगर में ४६९ ई० पू० में और मृत्यु ३९९ ई० पू० में हुई।

पीथागोरस—एक यूनानी दार्शनिक था। इसने मिसर में जाकर अध्ययन किया था। जब वह एशिया के एक बड़े भाग का भ्रमण करने के उपरांत स्वदेश लौटा, तब समोस (Samos) का राज्य पोलीक्रेटस (Polycrates) के हाथ में चला गया था, इसलिये वह इटली के अंतर्गत क्रोटोना में चला गया। वहाँ उसने दर्शन पढ़ाने में खूब नाम पाया। उसके पास देश के सभी भागों से विद्यार्थी आते थे। विद्यार्थियों को पहले पाँच वर्ष तक परीक्षा के तौर पर मौन-व्रत धारण करना पड़ता था। इसके उपरांत उसे अपनी सारी संपत्ति

साझी पूँजी में डाल देनी पड़ती थी। उसके कोई ३०० शिष्य थे, और वे सब अपने को धर्म-भाई समझते थे। उसने लोगों के आचरण का बहुत कुछ सुधार किया। वह सूर्य को विश्व का केंद्र और पृथ्वी को अन्य लोकों सहित उसके गिर्द घूमती हुई मानता था। वह पुनर्जन्म तथा निरामिष भोजन का प्रचार करता था। जन्म समोस में कोई ५८० ई० पू० में और मृत्यु कोई ५०० ई० पू० में हुई।

अफ़लातूँ (प्लेटो)—विख्यात यूनानी दार्शनिक था। इसका पहला गुरु वैयाकरण डायोनिसियस था। इसके पश्चात् उसने अरिस्टन-नामक पहलवान से व्यायाम-विद्या सीखी। इसके कंधे चौड़े और शरीर बलवान् था। इससे अरिस्टन ने इसका नाम प्लेटो रक्खा था। इसका पहला नाम इसके दादा के नाम पर अरिस्टोक्लीस था। फिर वह संगीत और कविता सीखने लगा, और उसने ओलिंपिक खेलों के लिये कुछ छंद बनाए भी; परंतु सुक़रात का लंबा संवाद सुनकर उसने वे सब जला दिए और वह उसका शिष्य बन गया। अफ़लातूँ कोई दस वर्ष तक सुक़रात का शिष्य रहा। फिर सन् ३९९ ई० पू० में उसकी मृत्यु पर वह एथेंस को छोड़कर ज्ञान की तलाश में भिन्न-भिन्न देशों में घूमने लगा। कायरीन (Cyrene) में उसने भूमिति-विद्या और गणित की अन्य शाखाओं का अध्ययन किया। वहाँ से वह मिसर पहुँचा। यहाँ तेरह वर्ष रहकर उसने पुरोहितों की सब विद्या सीखी। फिर सिसली द्वीप में वहाँ के आश्चर्यों, विशेषतः एटना पर्वत, को देखने गया। सिसली में उसका साईरेक्यूस (Syracues) के अत्याचारी डायोनिसियस (Dionysius) से परिचय हो गया। परंतु दुर्भाग्य से इसने उसे रुष्ट कर दिया, इसलिये डायोनिसियस ने स्पार्टन दूत को, जिसके जहाज़ में अफ़लातूँ स्वदेश जा रहा था, फुसलाकर अफ़लातूँ को एजिना (Ægina) में दास के रूप में बिकवा दिया। परंतु उसे ख़रीदनेवाले ने उसे स्वतंत्र कर

दिया। तब वह एथेंस में आकर अकेडिमिया (Academeia) के उद्यान में शिक्षा देने लगा। इसी से इसका तत्त्वज्ञान अकेडिमिक कहलाता है। अफ़लातूँ की सबसे बड़ी पुस्तकें ये हैं—

'फ़ीडो' (Phœdo)—यह कथनोपकथन के रूप में है। इसमें सुक़रात के अंतिम समय का बड़े ही हृदयद्रावक शब्दों में वर्णन है।

'रिपब्लिक'—इसमें सामाजिक नीति के उच्चतम सिद्धांत की व्याख्या है।

'टिमिउस' (Timeous)—यह तत्कालीन वैज्ञानिक तत्त्वज्ञान का संक्षेप है।

इसका जन्म एथेंस में ४२९ ई० पू० में और मृत्यु ३४७ ई० पू० में हुई।

अरस्तू (Aristotle)—विख्यात यूनानी तत्त्ववेत्ता। इसका जन्म ३८४ पू० ई० में हुआ था। इसका पिता मक़दूनिया का राजवैद्य था। ३६७ ई० पू० में वह एथेंस में आकर अफ़लातूँ का शिष्य बन गया। ये दोनों कोई बीस वर्ष तक इकट्ठे रहे। ३४२ ई० पू० से ३४० तक वह महान् सिकंदर का अध्यापक रहा। इस काल में उसने नाना प्रकार के प्राणियों के पाठ की सामग्री संगृहीत की। ३३४ ई० पू० में उसने स्वतंत्र तर्क की शिक्षा देना आरंभ किया। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् उस पर नास्तिकता और मक़दूनिया का पक्ष लेने का दोष लगाया गया। इस कारण उसे एथेंस छोड़ना पड़ा। इसी देश-निकाले की अवस्था में, ३२२ ई० पू० में उसका देहांत हो गया।

लिवियस टाइटस—एक उद्भट रोमन ऐतिहासिक था। ऐसा ज्ञात पड़ता है कि यह रोम में रहता था, और आगस्टस का परम मित्र था। उसने उसे अपने पोते क्लाडियस (Claudius) का शिक्षक नियत किया था। उसका इतिहास वास्तव में १४२ ग्रंथ-खंडों में था; परंतु अब उनमें से केवल तीस ही मिलते हैं। यह इतिहास रोम

साभी पूँजी में डाल देनी पड़ती थी। उसके कोई ३०० शिष्य थे, और वे सब अपने को धर्म-भाई समझते थे। उसने लोगों के आचरण का बहुत कुछ सुधार किया। वह सूर्य को विश्व का केंद्र और पृथ्वी को अन्य लोकों सहित उसके गिर्द घूमती हुई मानता था। वह पुनर्जन्म तथा निरामिष भोजन का प्रचार करता था। जन्म समोस में कोई ५८० ई० पू० में और मृत्यु कोई ५०० ई० पू० में हुई।

अफ़लातूँ (प्लेटो)—विख्यात यूनानी दार्शनिक था। इसका पहला गुरु वैयाकरण डायोनिसियस था। इसके पश्चात् उसने अरिस्टन-नामक पहलवान से व्यायाम-विद्या सीखी। इसके कंधे चौड़े और शरीर बलवान् था। इससे अरिस्टन ने इसका नाम प्लेटो रक्खा था। इसका पहला नाम इसके दादा के नाम पर अरिस्टोक्लीस था। फिर वह संगीत और कविता सीखने लगा, और उसने ओलिंपिक खेलों के लिये कुछ छंद बनाए भी; परंतु सुक़रात का लंबा संवाद सुनकर उसने वे सब जला दिए और वह उसका शिष्य बन गया। अफ़लातूँ कोई दस वर्ष तक सुक़रात का शिष्य रहा। फिर सन् ३९९ ई० पू० में उसकी मृत्यु पर वह एथेंस को छोड़कर ज्ञान की तलाश में भिन्न-भिन्न देशों में घूमने लगा। कायरीन (Cyrene) में उसने भूमिति-विद्या और गणित की अन्य शाखाओं का अध्ययन किया। वहाँ से वह मिसर पहुँचा। यहाँ तेरह वर्ष रहकर उसने पुरोहितों की सब विद्या सीखी। फिर सिसली द्वीप में वहाँ के आश्चर्यों, विशेषतः एटना पर्वत, को देखने गया। सिसली में उसका साईरेक्यूस (Syracues) के अत्याचारी डायोनिसियस (Dionysius) से परिचय हो गया। परंतु दुर्भाग्य से इसने उसे रुष्ट कर दिया, इसलिये डायोनिसियस ने स्पार्टन दूत को, जिसके जहाज़ में अफ़लातूँ स्वदेश जा रहा था, फुसलाकर अफ़लातूँ को एजिना (Ægina) में दास के रूप में बिकवा दिया। परंतु उसे ख़रीदनेवाले ने उसे स्वतंत्र कर

दिया। तब वह एथेंस में आकर अकेडिमिया (Academeia) के उद्यान में शिक्षा देने लगा। इसी से इसका तत्त्वज्ञान अकेडिमिक कहलाता है। अफ़लातूँ की सबसे बड़ी पुस्तकें ये हैं—

'फ़ीडो' (Phœdo)—यह कथनोपकथन के रूप में है। इसमें सुक़रात के अंतिम समय का बड़े ही हृदयद्रावक शब्दों में वर्णन है।

'रिपब्लिक'—इसमें सामाजिक नीति के उच्चतम सिद्धांत की व्याख्या है।

'टिमिउस' (Timeous)—यह तत्कालीन वैज्ञानिक तत्त्वज्ञान का संक्षेप है।

इसका जन्म एथेंस में ४२९ ई० पू० में और मृत्यु ३४७ ई० पू० में हुई।

अरस्तू (Aristotle)—विख्यात यूनानी तत्त्ववेत्ता। इसका जन्म ३८४ पू० ई० में हुआ था। इसका पिता मक़दूनिया का राजवैद्य था। ३६७ ई० पू० में वह एथेंस में आकर अफ़लातूँ का शिष्य बन गया। ये दोनों कोई बीस वर्ष तक इकट्ठे रहे। ३४२ ई० पू० से ३४० तक वह महान् सिकंदर का अध्यापक रहा। इस काल में उसने नाना प्रकार के प्राणियों के पाठ की सामग्री संगृहीत की। ३३४ ई० पू० में उसने स्वतंत्र तर्क की शिक्षा देना आरंभ किया। सिकंदर की मृत्यु के पश्चात् उस पर नास्तिकता और मक़दूनिया का पक्ष लेने का दोष लगाया गया। इस कारण उसे एथेंस छोड़ना पड़ा। इसी देश-निकाले की अवस्था में, ३२२ ई० पू० में उसका देहांत हो गया।

लिवियस टाइटस—एक उद्भट रोमन ऐतिहासिक था। ऐसा ज्ञात होता है कि यह रोम में रहता था, और आगस्टस का परम मित्र था। उसने उसे अपने पोते क्लाडियस (Claudius) का शिक्षक नियत किया था। उसका इतिहास वास्तव में १४२ ग्रंथ-खंडों में था; परंतु अब उनमें से केवल ३५ ही मिलते हैं। यह इतिहास रोम

की प्रतिष्ठा से आरंभ होकर जर्मनी में सन् ६ ई० पू० में ड्रूसस (Drusus) की मृत्यु के साथ समाप्त होता था।

इसका जन्म पटेवियम में, ४१ ई० पू० में और मृत्यु सन् १८ में हुई।

सेलस्ट (Sallust, Caiud Crispus)—एक ऐतिहासिक। इसने वैयाकरण अटीयस फ़िलोलोगस (Atteius Philologus) से शिक्षा पाई थी, और रोम में अनेक पदों में गुज़रने के उपरांत वह क्रमशः क्वीस्टर (Quœstor) और ट्रीब्यू (पंच) बन गया। वह बड़ा भ्रष्टचरित्र था। माईलो की स्त्री के साथ व्यभिचार करने के कारण उसे शिष्ट सभा की सभासदी से निकाल दिया गया; परंतु सीज़र ने उसे फिर सदस्य बना दिया, और नूमीडिया का शासन दे दिया। रोम में वापस आकर उसने एक बड़ा शोभन प्रासाद बनवाया, और वहाँ अपना अवशिष्ट जीवन भोग-विलास में बिता दिया। आश्चर्य है कि ऐसा मनुष्य साहित्य के लिये समय निकाल सकता था। इसकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी। उसको केटिलाइन (Catiline) के षड्यंत्र का इतिहास और जगरदाइन (Jugurthine) के युद्धों का इतिहास ऐतिहासिक साहित्य में उच्च स्थान रखते हैं।

इसका जन्म एमिटर्नम में, ८६ ई० पू० में और देहांत रोम में ३४ ई० पू० में हुआ।

टेसीटस (Tacitus Caius Cornatius)—एक रोमन ऐतिहासिक, जिसके वंश का कुछ पता नहीं। ऐतिहासिक के रूप में इसने अमर जीवन प्राप्त किया है। इसके इतिहासों का बहुत थोड़ा भाग अब प्राप्त है। 'जर्मनों के आचार-व्यवहार' पर उसकी पुस्तक तथा उसका लिखा उसके ससुर एग्रीकोला का जीवन-चरित्र पूर्ण है। ये ग्रंथ बड़ी ही प्रशंसा के पात्र हैं; परंतु टिबरियस के शासन-काल का इतिहास उसका सर्वोत्तम ग्रंथ है। उसकी लैटिन भाषा बड़ी ही शुद्ध और ललित है।

इसका जन्म कोई सन् ५५ में और मृत्यु कोई १३० में हुई।

डिमास्थनीज़—यूनान का सबसे बड़ा वाग्मी। यह एथेंस के एक धनाढ्य कवच बनानेवाले का पुत्र था। बचपन में ही पिता का देहांत हो जाने के कारण इसके अभिभावकों ने इसकी संपत्ति का एक बड़ा भाग दबा लिया था, और सत्रह वर्ष की आयु में उसने अपना अभियोग आप लड़कर उन पर विजय पाई। जब उसने पहले-पहल सार्वजनिक सभाओं में बोलना आरंभ किया, तब उसे इतनी सफलता नहीं हुई, क्योंकि उसके फेफड़े दुर्बल, उसका उच्चारण अस्पष्ट और उसकी भावभंगी भद्दी थी। तब वह कुछ वर्ष के लिये सार्वजनिक जीवन को छोड़कर बड़े परिश्रम तथा धैर्य से अपने दोषों को दूर करने लगा। वह पर्वत पर चढ़ते समय, समुद्र-तट पर, और समुद्र की लहरों की गर्जना में वक्तृता करता और मुँह में पत्थर के टुकड़े डालकर भाषण करने का अभ्यास करता। अच्छा हाव-भाव प्राप्त करने के लिये वह दर्पण के सामने अभ्यास करता। उसे एक कंधे को सिकोड़ने का स्वभाव था। इसे दूर करने के लिये वह उसके ठीक ऊपर, जहाँ वह खड़ा होता था, एक तीक्ष्ण तलवार रख लेता था। इस विद्या के तत्त्व उसने इसीउस (Isoeus) से सीखे थे, और अफ़लातूँ के व्याख्यान भी सुने थे। उसे अभी तत्काल भाषण देना नहीं आया था, इसलिये वह वक्तृताओं को बड़े परिश्रम के साथ एक गुफा में तैयार किया करता था, जिससे उसके विपक्षी प्रायः उसे छेड़ा करते थे कि उनसे दीपक की गंध आती है। उसने सभी प्राचीन लेखकों के ग्रंथ अनेक बार पढ़े थे। विशेषतः जिसे थूसाईडिस (Thucydides) का इतिहास कहते हैं, उसे कोई आठ-दस बार नक़ल किया था। इस प्रकार शैली तथा हाव-भाव के सभी दोषों को दूर कर चुकने पर वह सत्ताईस वर्ष की आयु में फिर सर्वसाधारण के कानों में प्रकट होने लगा। कुछ वर्ष वकालत

करने के उपरांत वह सरकारी नौकर हो गया, और उसने राज्य के उच्चतम पद प्राप्त किए। इस समय मक़दूनिया के फ़िलिप के अतिक्रम ने यूनान की सभी रियासतों, विशेषतः एथेंस को घबराहट में डाल दिया। अपने देश-वासियों को इस भय का सामना करने के लिये तैयार करने में डीमास्थनीस सबसे आगे था। वह फ़िलिप के यश-स्काम संकल्पों को अपनी वक्तृताओं में खूब रंग चढ़ाकर वर्णन करता था। जब फ़िलिप एटिका पर आक्रमण करने लगा, तो डीमास्थनीस को दूत बनाकर भेजा गया, ताकि बीओशियन लोगों (Bœotians) को कह-सुनकर अपनी सहायता के लिये तैयार करे। इसमें उसे सफलता हुई। फ़िलिप के मरते ही डीमास्थनीस ने मक़दूनिया राज्य को कुचल डालने का अच्छा अवसर पाया। उसके उद्योग से यूनान की रियासतों में एक नवीन संघ बन गया, और ईरानियों से फ़िलिप के पुत्र सिकंदर के साथ युद्ध करने के लिये प्रार्थना की गई। परंतु सिकंदर की प्रबल चेष्टा और उसके थीबस (Thebes) को भीषण दंड देने से यह संघ टूट गया। एथेंस-निवासियों ने विजेता के कोप को फेर देने के लिये एक दूत-समूह भेजा, जिनमें एक डीमास्थनीस भी था; परंतु वह डर के कारण रास्ते में से ही लौट आया। यह उन वाग्मियों में से एक था, जिनको सिकंदर चाहता था कि वे मेरे सिपुर्द कर दिए जायँ, परंतु डिमेडस (Demandes) ने इस बलि के बिना ही राजा को शांत कर दिया।

अब डीमास्थनीस का प्रभाव घट रहा था। ईसखिनस (Æschines) ने इससे लाभ उठाकर उस पर चीरोनिया (Chœronea) पर उसके आचरण के विषय में दोषारोपण कर दिया; परंतु वागीश्वर ने उसका ऐसी उत्तमता से प्रतिवाद किया कि वह साफ़ छूट गया, और उसके शत्रु को देश-निकाला मिला। परंतु इसके थोड़े ही समय पीछे डीमास्थनीस पर सिकंदर के हारपेलस

(Harpalus)-नामक जर्नल से, जिसने सिकंदर के विरुद्ध विद्रोह किया था और एथेंसवालों को उसके अधिकार के विरुद्ध सिर उठाने के लिये उभारा था, एक सोने का प्याला और बीस टेलंट (१ टेलंट = ४००पौंड) लेने का अपराध सिद्ध हुआ। दंड से बचने के लिये वह एजिना (Ægina) को भाग गया। वहाँ वह सिकंदर की मृत्यु तक रहा। फिर उसके देश-भाइयों ने उसे बड़े आदर से वापस बुला लिया। परंतु यह भाग्य-परिवर्तन क्षणिक ही था। उसने सिकंदर के उत्तराधिकारी एंटीपेटर के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी। एंटीपेटर ने एथेंसवालों को हराया, और उनसे डीमास्थनीस को सिपुर्द कर देने के लिये कहा। डीमास्थनीस कुछ मित्रों सहित कलौरिया (Colouria) में पोसीडन (Poseiden) के मंदिर में भाग गया, और वहाँ विष खाकर मर गया। एथेंस-निवासियों ने उसकी स्मृति में एक मूर्ति स्थापित की, और उसके ज्येष्ठ पुत्र को सरकारी खर्च पर पाला-पोसा। डीमास्थनीस की वाग्मिता अपने बल तथा गौरव के लिये प्रसिद्ध है। इस वाग्मी की वाग्मिता का उद्देश्य अपने श्रोताओं के भावों को प्रभावित करना नहीं, प्रत्युत उनकी बुद्धि को विश्वास करा देना था। डीमास्थनीज़ की प्राप्य वक्तृताओं में से बक्कर (Bekker) का मूल-ग्रंथ आदर्श समझा जाता है। उसकी बहुत-सी वक्तृताओं का अँगरेज़ी तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद हो चुका है।

इसका जन्म ३८५ ई० पू० में और देहांत ३२२ ई० पू० में हुआ।

सिसरो (Cicero Marcus Tullius)—एक विद्वान् दार्शनिक और सबसे बड़ा रोमन वाग्मी था। इसका जन्म एक कुलीन घराने में हुआ था। यूनान के साहित्य तथा भाषा की शिक्षा इसने क्रेसस (Crassus)-नामक वाग्मी से, दर्शन की फ़िलो (Philo) से, क़ानून की म्यूटियस सीवोला (Mutius Scævola) से और

हिपोक्रटीज़ (Hippocrates)—एक यूनानी वैद्य । जन्म ४६० ई० पू० ।

जस्टिनियन (Justinian)—एक रोमन स्मृतिकार । पूर्वी देशों का सम्राट् । यह अपने चचा प्रथम जस्टिनस के स्थान पर सन् ५२७ में राजा बना । यह ईसाई-धर्म का रक्षक था । इसने अपने सेनापति बेलीसेरियस की सहायता से अपने शत्रुओं को परास्त किया । इस सेनापति ने इसकी एक षड्यंत्र से भी रक्षा की । शांति स्थापित हो जाने पर जस्टिनियन ने सभी रोमन क़ानूनों को एक जगह इकट्ठा किया, और उस ग्रंथ का नाम डाईजेस्ट (Digest) अथवा पैंडक्ट्स (Pandects) रक्खा गया । इस ग्रंथ की समाप्ति पर नव्य काल के क़ानूनों का एक पुस्तक में संग्रह किया गया, और उसका नाम 'नावेली' (Novellœ) रक्खा गया । इसने बहुत-से गिरजे बनाए, विशेषतः कुस्तुनतुनिया में सेंट सोफ़िया का गिरजा, और 'कानसूलेट' को बंद कर दिया ।

इसका जन्म सन् ४८३ में और मृत्यु सन् ५६५ में हुई ।

पृष्ठ १२ यहूदिया—पेलस्टाइन (Palestine) ईसाइयों की पवित्र भूमि ।

ईकस (Æacus) हृदेमंत्थस, मिनर्वा, एथेनिया(Athenaia) नेपच्यून, बेलोना, पेलस, एंड्रोमेडा और एरियाने (Ariadne)—ये सब रोमन देवी-देवताओं के नाम हैं ।

पृष्ठ १३ अलेग्ज़ेंड्रिया (सिकंदरिया) का पुस्तकालय—सिकंदरिया मिस्र-देश का बंदरगाह है । किसी समय यह विद्या का एक बड़ा केंद्र था । यह गणित, खगोल और भूगोल-विद्या के लिये विशेष रूप से प्रसिद्ध था । यहाँ एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था । जितनी प्राचीन पुस्तकें इसमें थीं, उतनी और किसी भी दूसरे पुस्तकालय में न थीं । इसको अधिकतर टोल्मी सोटर (Ptolemy Soter) ने

इकट्ठा किया था। सब मिलाकर इसमें ७,००,००० पुस्तकें थीं। इनमें से ४,००,००० तो उस समय नष्ट कर दी गई थीं, जब जूलियस सीज़र नगर के यूनानी भाग में घिर गया था, और बाक़ी मुसलमानों के सेनापति उमर ने सन् ६४० ई० में ज़ला डाली थीं।

पृष्ठ १३ मेनीस (Menes)—प्रथम मिसरी-वंश का प्रथम राजा। काल-गणना-संबंधी खोज के अनुसार वह ईसा से २,७१७ वर्ष पूर्व सिंहासन पर बैठा था।

पृष्ठ १३ मूसा—प्रसिद्ध यहूदी स्मृतिकार और पैग़ंबर। यह यहूदी लोगों को मिसर-देश से बाहर निकाल ले गया था।

पृष्ठ १३ मिनोस (Minos I)—यह क्रीट (Crete) का राजा था। कहते हैं, यह १४३२ ई० पू० में राज्य करता था। इसने अनेक उत्तमोत्तम क़ानून और प्रथाएँ प्रचारित की थीं। मिनोस के क़ानून उसकी मृत्यु के एक सहस्र वर्ष बाद, अफ़लातूँ के समय में भी, प्रचलित थे।

पृष्ठ १८ ट्रोजन—एशिया माइनर के उत्तरी-पश्चिमी भाग में एक प्रसिद्ध पुराना नगर था। इसका नाम ट्राय था। होमर कवि के इलियड-ग्रंथ की घटनाओं का संबंध इसी नगर से है। यहाँ के अधिवासियों को ट्रोजन कहते हैं।

पृष्ठ १६ हरक्यूलीस—यूनानी देवमाला का सबसे प्रसिद्ध वीर। यह एंफ़िटरियन की स्त्री अलीमीना के पेट से उत्पन्न जूपिटर (ज़ीउस) का पुत्र था। यह बहुत बलवान् था। द्वेष के कारण देवी जूनो ने इसे निगल जाने के लिये दो साँप भेजे; परंतु इसने उन्हें पंघरे में गला घोटकर मार डाला। इसने बचपन में ही शारीरिक बल और वीरता के अद्भुत कार्य दिखलाकर प्रसिद्धि प्राप्त कर ली थी। इसने किथेरोन (Citheron) के सिंह को मारा, और थीब्स को आर्चोमीनोस के राजा अर्गिनस को कर देने से मुक्त कर दिया। जिन दिनों यह

माईसीन (Mycenæ) के राजा यूरिस्थिउस की सेवा में था, इसने बारह अद्भुत कर्म किए थे। हमारे यहाँ के भीम के सदृश यह अपने शारीरिक बल के लिये ही प्रसिद्ध है।

पृष्ठ १६ थीसियस (Theseus)—एथेंस का राजा और उस राज्य का वीर। इसने क्रीट के राक्षस को वहाँ के राजा माईनोस की पुत्री की सहायता से मारा, अमेज़ोनों को हराकर उनकी रानी को पकड़ लिया, और कंटौरों के साथ युद्ध किए। यह लीडा की युवती पुत्री हेलन को उठाकर ले गया, परंतु बाद को इसे उसको लौटाना पड़ा। एथेंस-वासियों से हताश होकर वह लाईकोमीड्स की राज-सभा में चला गया; परंतु उसने इसे किसी बहाने से एक ऊँची चट्टान पर ले जाकर नीचे ढकेल दिया। इसके शव को एथेंस में ले जाया गया, और उस पर एक सुंदर समाधि-मंदिर बनाया गया।

पृष्ठ १८ जेसन—यूनानी पुराण-कथा में यह आर्गोनाटों का मुखिया था। यह आइओल-कस के राजा ईसन का पुत्र था। राजा के मर जाने पर इसके चचा पेलियस ने थेसली के सिंहासन को दबा लिया; क्योंकि जेसन अभी बच्चा था। पेलियस ने जेसन को अपनी आँखों से दूर करने के लिये दूर एक गुरु के पास पढ़ने भेज दिया; फिर राजगद्दी के उत्तराधिकारी की समाप्ति करने के लिये उसने इस महत्वाकांक्षी युवक से कहा कि "कोलचस के राजा ईट्स ने हमारे संबंधी फ्रिक्स (Phryxus) के साथ बहुत ही बुरा और अमानुषिक व्यवहार किया था, इसलिये उससे बदला लेना चाहिए।" उसने यह भी कहा कि इस अभियान से तुम्हें बड़ा यश मिलेगा, और तुम्हारे लौटने पर मैं तुम्हें राजगद्दी दे दूँगा। जेसन ने उसके प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार कर लिया, और बहुत-से युवक और वीर यूनानी उसकी सहायता के लिये उसके साथ हो लिए। वे आर्गो-नामक एक पोत पर सवार होकर चले। वहीं से उनका नाम

आर्गोनाट हुआ। वे कई विपत्तियों का सामना करते और बचते हुए कोलचस में जा पहुँचे। ईट्स ने सुनहली पोस्तीन, जिसके कारण फ्रिक्सस मारा गया था, वापस देने का वचन दिया, यदि जेसन उसकी शर्तों को पूरा करे। वे शर्तें ये थीं कि जेसन बैलों से हल चलावे, और उस भयंकर सर्प को मारे, जो सुनहली पोस्तीन की रक्षा कर रहा था। राजा की पुत्री, मीडिया, का जेसन के साथ प्रेम हो गया। वह जादू-मंत्र जानती थी। उसने जेसन से कहा कि यदि तुम मेरे साथ विवाह कर लो, तो मैं तुम्हारी सभी विपत्तियों से रक्षा कर सकती हूँ। उसने मीडिया की बात मान ली, और मीडिया ने उसे वे बूटियाँ दे दीं, जिनसे वह अपनी रक्षा कर सका। वह सुनहली पोस्तीन ले आया, और मीडिया को साथ ले, जहाज़ में बैठ, योरप आ पहुँचा। परंतु जेसन का ग्लैस-नामक एक दूसरी स्त्री के प्रति प्रेम हो जाने से बाद को उनका वैवाहिक सुख नष्ट हो गया। मीडिया से विवाह-संबंध भंग कर दिया गया। मीडिया ने भी अपना बदला चुकाने के लिये अपने बच्चों को उनके पिता के सामने मार डाला। जेसन का अंतिम जीवन बड़ा शोकमय व्यतीत हुआ। एक दिन वह आर्गो जहाज़ के पास विश्राम ले रहा था कि जहाज़ का एक शहतीर टूटकर उसके सिर पर गिरा, और उसकी मृत्यु हो गई।

पृष्ठ १८ ओसिरिस—मिसर देश की देवमाला में एक बड़ा देवता था। मिसर का राजा बनकर इसने प्रजा को सभ्य बनाने के लिये बहुत श्रम किया, और उन्हें कृषि-कला सिखलाई। मिसर का सुधार करने के पश्चात् उसने अन्य भूभागों में भी सभ्यता का विस्तार करने का निश्चय किया। अपना राज-पाट, अपनी भार्या आईसिस को देकर उसने एशिया और योरप के बहुत बड़े भाग का पर्यटन किया। वहाँ के लोगों में देव-पूजा और ईश्वरोपासना काप्रचार करके

उनको ज्ञानालोक से आलोकित किया। कहते हैं, जब वह स्वदेश लौटा, तो उसके भाई टाईफ़न ने उसे किसी प्रकार बहकाकर एक संदूक़ में बंद कर दिया, और फिर उस संदूक़ को समुद्र में फेक दिया। परंतु बाद को उसका शरीर आईसिस ने प्राप्त कर लिया। ओसिरिस हेडीज़ (Hades) का विचार-पति समझा जाता है।

पृष्ठ १६ ईकस, ह्वडेमन्थस इत्यादि—ये सब यूनानी और रोमन देवी-देवतों के नाम हैं। ग्रंथकार ने बताया है कि अहक और राधा-मंत आदि हिंदू नाम ही रूपांतरित होकर ये ग्रीक और रोमन नाम बन गए हैं। परंतु इन हिंदू नामों का संस्कृत रूप मेरी समझ में नहीं आया। जैसा रोमन अक्षरों में लिखा था, मैंने वैसे-का-वैसा उन्हें यहाँ लिख दिया है।

पृष्ठ २२ ग्रेटी इत्यादि—ये सब प्राचीन योरपियन जातियों के नाम हैं।

पृष्ठ २४ आइओनियन—आईओनिया-देश के निवासी। आईओनिया एशिया माइनर के एक प्रदेश का प्राचीन नाम है। यह देश हर्मस-नदी से लेकर मीएंडर-नदी तक ईजियन सागर के किनारे के साथ-साथ फैला हुआ था।

पृष्ठ २४ डोरियन—यूनान की चार प्रधान जातियों में से एक। ये जातियाँ कोरिंथियन खाड़ी के उत्तरी किनारे के साथ मिलते हुए देश में बसती थीं।

पृष्ठ २५ क ओलिंपस—प्राचीन यूनान का एक प्रदेश।

पृष्ठ २५ ख अचिलीज़ (Achilles)—होमर कवि-कृत इलियड काव्य का नायक। यह थिया (Phthia) के राजा पीलीउस (Peleus) के वीर्य से थीटिस-नामक एक सागर-देवी के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ट्राय के युद्ध में जितने यूनानी लड़े थे, उन सबमें यही अधिक बलवान् था। बाल्यावस्था में थीटिस ने इसे स्टाइक्स में डुबक

लगवाकर इसके शरीर को वज्र बना दिया था। इसकी प्रियतमा ब्रीसीसको अगेममनान उठा ले गया था। इसीसे ट्राय का युद्ध हुआ।

ईसप—ईसप की कहानियाँ संस्कृत के पंचतंत्र का रूपांतर हैं। इसी प्रकार लाफ़ोंटेन और बबरियस की भी कहानियाँ पंचतंत्र और हितोपदेश से मिलती हैं।

पृष्ठ २५ ङ हिंदू-धर्मशास्त्र के अनुसार—देखो मनु अध्याय ३, श्लोक १५१।

पृष्ठ २५ च वाग्दान...पहले होता है—देखो मनु अ०, ३, श्लोक १५२ और अध्याय १०, श्लोक ७१।

पृष्ठ २५ छ हिंदुओं में कुमारी—देखो मनु अ० ६, श्लोक ३।

पृष्ठ २५ छ मानव-धर्मशास्त्र के अनुसार—देखो मनु, अ० ३, श्लोक ५।

पृष्ठ २५ ज घर में उत्पन्न होनेवाला बालक—देखो मनु, अ० ६, श्लोक ३२ तथा १७०।

पृष्ठ २५ ज क्षेत्रज संतान—देखो मनु अध्याय १०६।

पृष्ठ २५ ड मैं, जो कि पुत्रहीन हूँ—देखो मनु अ० ६, श्लोक १४१, १४२, १५६, १६४।

पृष्ठ २६ संपत्ति, पणबंध, निक्षेप इत्यादि—देखो मनु का आठवाँ अध्याय।

पृष्ठ २७ दुरुस्त किया हुआ खेत—देखो मनु अ० ६, श्लोक ४४।

पृष्ठ २६ मद्यमत्त, मूढ़, निरर्थक है—देखो मनु अ० ८, श्लोक १६३।

पृष्ठ ३० जो चीज़ हठ से—देखो मनु अ० ८, श्लोक १६८।

पृष्ठ ३१ स्मृति-चंद्रिका—यह पुस्तक मैसूर-सरकार की ओर से छप चुकी है।

पृष्ठ ३५ इसी विषय पर मनु और कहता है—देखो मनु अ० ८, श्लोक १६५, १८०, १८६, १८६, १९०, १९१, १९२, १८१।

पृष्ठ ४३ पिर्हो (Pyrrho)—एक यूनानी दार्शनिक। यह संशयवाद का प्रथम प्रवर्तक था। इसने अनक्सरचस (Anaxarchus) से पढ़ा था। यह सिकंदर के साथ भारत में आया था। यहाँ इसने नग्न रहनेवाले भारतीय मुनियों से शिक्षा पाई, और ईरानी मजूसों के सिद्धांत का ज्ञान प्राप्त किया। यूनान में लौटकर यह वानप्रस्थ हो गया; परंतु बहुत-से लोग इसके शिष्य हो गए। संशयवाद का प्रचारक होते हुए भी यह अपने नगर का बड़ा पुरोहित चुना गया। जन्म ईसा से कोई ३६० वर्ष पूर्व और मृत्यु कोई २७० ई० पू० हुई।

पृष्ठ ४४ मनु कहता है कि जब परमात्मारूपी राजा—देखो मनु अध्याय १, श्लोक ५१।

पृष्ठ ४५ अबीलर्ड (Abeilard)—एक प्रसिद्ध तार्किक, गणितज्ञ और पुरोहित था। इसका हीलायस (Helaise)-नामक एक सुंदरी युवती से प्रेम हो गया। इसी प्रेम के कारण इसकी बहुत प्रसिद्धि हुई। हीलायस फ़ुलबर्ट-नामक एक धनाढ्य की भतीजी थी। फ़ुलबर्ट चाहता था कि अबीलार्ड उसकी भतीजी को दर्शन पढ़ावे; परंतु ज्ञान के पेचीदा रास्ते में से उसका पथप्रदर्शन करने के स्थान में अबीलार्ड उसे प्रेम का पाठ पढ़ाता रहा। वह स्वयं प्रेम-मद से इतना मतवाला हो गया कि उसके उपदेशों में कुछ भी आकर्षण न रहा। जहाँ लोगों के झुंड-के-झुंड उसके व्याख्यान सुनने आया करते थे, वहाँ अब कोई भी न आता था। फ़ुलबर्ट को जब इस बात का पता लगा, तो उसने इसे घर से निकाल दिया। हीलायस भी इसके पीछे ही भाग गई। अबीलार्ड उसे अपनी भगिनी के घर ले गया। वहाँ उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। इसको वह अस्ट्रोलाबियस नाम से पुकारा करती थी। अब अबीलार्ड ने फ़ुलबर्ट

से हीलायस के विवाह का प्रस्ताव किया। यद्यपि उसने तो स्वीकार कर लिया, परंतु रमणी ने स्वयं इनकार कर दिया। बाद को वह गुप्त विवाह पर सहमत हो गई। परंतु इस बात को उसने कभी माना नहीं। इससे फ़ुलबर्ट बहुत क्रुद्ध हो गया। फलतः अबोलार्ड ने उसे एक मठ में भेज दिया। फ़ुलबर्ट ने अबीलार्ड को बदमाशों से बुरी तरह पिटवाया। इसके बाद अबोलार्ड ने व्याख्यान देना आरंभ किया, और इसमें उसकी अच्छी प्रसिद्धि हो गई। इसे अपने जीवन में अनेक दुर्विपाक देखने पड़े, यहाँ तक कि अंत को इसकी मृत्यु हो गई। जन्म नंटज़ के निकट पेलेस में १०७९ में और मृत्यु सेंट मार्सीलस के शासन-काल में, ११४२ में हुई।

पृष्ठ ४८ मोंटेन (Montaigne Miche Eyquem De)—एक फ्रांसीसी निबंध-लेखक था। बाल्यकाल में ही इसने लैटिन भाषा में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी, और १० वर्ष की आयु में यह बोर्डो के कॉलेज में भरती हो गया था। इक्कीस वर्ष की आयु में यह बोर्डो की पार्लियामेंट का परामर्शदाता नियत हुआ। परंतु पिता की मृत्यु हो जाने से इसे बहुत बड़ी जायदाद मिल गई, इसलिये इसने इस काम को छोड़कर जर्मनी, स्विटजरलैंड और इटली में पर्यटन किया। इन पर्यटनों में इसने स्थानों और विचित्र वस्तुओं को छोड़-कर मानव-प्रकृति का अध्ययन किया। सन् १५८१ में वह बोर्डो का मेयर (नगराध्यक्ष) चुना गया। कुछ देर संग्राम का जीवन व्य-तीत करने के बाद वह एकांतवासी होकर दार्शनिक अध्ययन में लग गया। सेंट बार्थोलोमियो के वध (सन् १५७२) से इस पर भारी असर पड़ा। इसके त्रास से वह गहरे विषाद में डूब गया। इसी विषाद-काल में उसके निबंध लिखे गए थे। यह अपने पर्यटन का एक विवरण-पत्र भी रक्खा करता था। इसका विचार उसे प्रकाशित करने का नहीं था। परंतु दो शताब्दियों बाद उसकी पारिवारिक मंजूषा

में यह मिल गया, और प्रकाशित कर दिया गया। इसके प्रसिद्ध निबंध इन विषयों पर हैं—मित्रता, बालकों की शिक्षा और न्याय-व्यवस्था।

इसका जन्म सन् १५३३ में और मृत्यु १५९२ में हुई।

पृष्ठ ४८ कांट (Immanuel Kant)—प्रशिया का विश्रुत दार्शनिक। शिक्षा की समाप्ति पर यह एक पादरी के घर में शिक्षक हो गया। फिर यह विश्वविद्यालय में लौट आया, और सन् १७५५ में इसने एम्० ए० की उपाधि प्राप्त की। सन् १७७० में यह तर्क और वेदांत का महोपाध्याय नियत हुआ। यह बड़ा लिक्खाड़ था। इसने पदार्थ-विज्ञान पर कई ग्रंथ लिखे। परंतु इसने सबसे अधिक कीर्ति वेदांत में प्राप्त की। इस शास्त्र पर इसने अद्भुत ग्रंथ प्रकाशित किए। इसके तत्त्वज्ञान का प्रधान सिद्धांत इस बात की आलोचना है कि इनके विषयों की परीक्षा के लिये पहले जाननेवाली शक्ति या प्रत्यक्ष ज्ञान की शक्ति का होना आवश्यक है। 'शुद्ध तर्क की आलोचना'-नामक इसका ग्रंथ बहुत प्रसिद्ध है। इसके सिद्धांतों को माननेवाले बहुत-से लोग हैं।

इसका जन्म कोनिग्सबर्ग में, सन् १७२४ में और मृत्यु १८०४ में हुई।

पृष्ठ ४९ ल्यूसिप्पस (Leucippus)—एक यूनानी दार्शनिक था। यह परमाणुवाद (Atomistic Philosophy) का प्रवर्तक था। इस वाद को पीछे से डीमोक्राइटस ने बढ़ाया।

पृष्ठ ४९ लुक्रीशियस—यह एक रोमन कवि और तत्त्वज्ञानी था। इसकी "पदार्थों के स्वरूप पर" कविता बड़ी सारगर्भित और ज्ञानवर्धक है। इसकी पुस्तकों का अँगरेज़ी में अनुवाद हो चुका है। कहते हैं, इसने आत्महत्या कर ली थी।

इसका जन्म ९५ ईसा से पूर्व; और मृत्यु ५२ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ ४९ एंपीडोक्लीस—सिसली के अंतर्गत अग्रीगेंटम का एक दार्शनिक कवि और ऐतिहासिक था। यह पुनर्जन्म को मानता

था। फ़ारसेलिया के युद्ध में सीज़र ने न केवल ब्रूटस को प्राण-दान दिया, वरन् उसे अपना एक अतीव घनिष्ठ मित्र भी बनाकर गौल में सिसलपाइन का शासक नियुक्त कर दिया। परंतु केसियस तथा अन्य रोमन नागरिकों की बहकावट में आकर उसने सीज़र के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा, और उसको पोंपे के बेसीलिका में कटार से मार डाला। जब एंटनी ने उससे बदला लेने की ठानी, तो वह भागकर यूनान में चला गया। एंटनी भी उसके पीछे पहुँचा। फ़िलिप्पी में युद्ध हुआ। ब्रूटस ने हारकर आत्महत्या कर ली।

इसका जन्म ८५ ई० पू० में; और मृत्यु ४२ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ ६० रेवैलक—एक फ़्रेंच राजहंता था। उसने पहले तो फ़ियूईलांटों (Feuitlonts) का धार्मिक वेश ग्रहण किया, परंतु अपने धर्मोन्मत्त विचारों के कारण निकाल दिया गया। पीछे से इसकी बुद्धि भ्रांत हो गई, और यह मानकर कि फ़्रांस का चौथा हेनरी सच्चा कैथोलिक नहीं, इसने उसे गाड़ी में कटार से मार डाला। फलतः इसको भी बड़ी निर्दयता से घोड़ों से चिरवाकर मार डाला गया।

इसका जन्म सन् १५७८ में; और मृत्यु १६१० में हुई।

पृष्ठ ६१ अट्टिला—यह हूणों (Huns) का राजा था, और सन् ४३३ में अपने भाई ब्लीडा के साथ सिंहासन पर बैठा था। पीछे से इसने उसे मरवा डाला। इसने पूर्वी साम्राज्य पर आक्रमण किया, और कुस्तुनतुनिया के इर्द-गिर्द के प्रदेश को तहस-नहस कर डाला। सन् ४५१ में यह एक बहुसंख्यक सेना लेकर गॉल देश में प्रविष्ट हुआ और खूब लूट-खसोट की। परंतु साम्राज्यवादियों ने चालोन के पास इसका मुँह फेर दिया। इटली के एक बड़े भाग को नष्ट करने के बाद वह इस शर्त पर लौटा कि वेलंटाइन के लोग उसे बहुत-सा धन दें। घर पहुँचने के बाद शीघ्र ही इसने हिल्डा नाम

४६८ ई० पू० में रंगमंच पर खेला गया। यद्यपि उस समय इसका प्रतियोगी अपने समय का सबसे बड़ा नाटककार ईसचाईलस था, तो भी पारितोषिक इसी ने पाया। ४४० ई० पू० में इसका बत्तीसवाँ नाटक निकला। इसके बाद इसने सेनापति और राजनीतिज्ञ के रूप में नाम पाया। कहते हैं, इसने १३० नाटक लिखे। मुक़ाबले पर ईसचाईलस और यूरीपिडी-जैसे धुरंधर नाटककार होते हुए भी इसने बीस बार प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया।

इसका जन्म एथेंस के निकट ४९५ ई० पू० और मृत्यु ४०६ ई० पू० में हुई।

पृष्ठ २२७ यूरोपीडोज़—यूनान का एक करुणा-रस-प्रधान नाटक लिखनेवाला। इसने प्रसिद्ध दार्शनिक अनेक्सेगोरस तथा अलंकारशास्त्री प्रोडिकस से शिक्षा पाई थी। इसने दो बार विवाह किया; परंतु दोनों बार इसे सुख नहीं प्राप्त हुआ। इसके ग्रंथों में स्त्री-जाति की कड़ी निंदा भरी पड़ी है। इसका पहला नाटक 'पेलियाडस' ४५६ ई० पू० में खेला गया था। ४४१ ई० पू० में दुःखांत नाटक के लिये इसे प्रथम पारितोषिक मिला। ४०८ ई० पू० में यह मक़दूनिया के राजा के यहाँ चला गया। यहाँ इसे अच्छा सुख मिला; परंतु एक दिन यह सायंकाल को वन से आ रहा था कि कुत्तों ने इसे फाड़ डाला। एथेंसवालों ने इसके सम्मानार्थ शोक किया, और इसका शव माँगा। परंतु मक़दूनियावालों ने देने से इनकार कर दिया, और पेला में उस पर एक बड़ा भव्य समाधि-भवन बना दिया।

इसका जन्म सन् ४८० ई० पू० में; और मृत्यु ४०७ ई० पू० में हुई।

कनफ़्यूशस—चीनियों का एक बहुत बड़ा दार्शनिक था। यह अभी तीन ही वर्ष का था कि इसके पिता का देहांत हो गया। परंतु इसका दादा एक विद्वान् मनुष्य था। इसने इसकी शिक्षा पर बहुत ध्यान दिया। यह अभी छोटा ही था कि प्रसव की संदियों,

पृष्ठ २४२ वह जो स्वयं प्रकट हुआ है—देखो मनु अध्याय १, श्लोक १—७।

पृष्ठ २५१ टाइटन और जूपीटर—दो यूनानी देवता।

पृष्ठ २७९ जल-प्रलय इसका वर्णन ब्राह्मणग्रंथों और पुराणों में है।

पृष्ठ २८४ अजीगर्त ऋषि—इनकी कथा ऐतरेय ब्राह्मण में है।

पृष्ठ २९९ पुरूरव—देखो शतपथ ब्राह्मण।

पृष्ठ ३०२ कुमारी देवांगी की उत्पत्ति—मालूम नहीं; ग्रंथकार ने यह कथा कहाँ से ली है। भगवद्गीता में तो ऐसी कोई कथा नहीं। शायद भागवत पुराण की जगह भूल से भगवद्गीता लिखा गया है। कृष्ण की माता का नाम देवकी था, न कि देवांगी। संभव है, किसी तामिल ग्रंथ में ऐसी कथा हो।

पृष्ठ ३१२ जेजूइस्ट—ईसाई-धर्म में 'आर्डर ऑफ़ जीसस' नाम का एक संप्रदाय है। इसे सन् १५३३ ई० में इग्नेशियस लोयोला नाम के एक उत्साही युवक ने स्थापित किया था। इस संप्रदाय के सदस्य जेजूइस्ट कहलाते हैं। ये लोग धर्म-प्रचार में धोके और झूठ को भी बुरा नहीं समझते। भारत में इन लोगों ने ब्राह्मणों का रूप बनाकर कई लोगों को धोके से ईसाई बनाया था।

पृष्ठ ३२० दुर्गा धीवर—उत्तर भारत में दुर्गा धीवर की कोई ऐसी कथा नहीं मिलती।

पृष्ठ ३३४ निर्मला और सरस्वती—मालूम नहीं, यह कथा कहाँ से ली गई है। भगवद्गीता में तो ऐसी कथाएँ नहीं हैं।

पृष्ठ ३३९ मार्स, जूपिटर, जूनो, वीनस, मिनर्वा—यूनानी देवता और देवियाँ।

पृष्ठ ३६० कार्तिकेय (Cartigeny) और कायमलोचासुर (Kayam [illegible])—ग्रंथकर्ता ने संस्कृत नामों को बदले हुए ढंग से लिखा है। इनके शुद्ध उच्चारण का पता नहीं

में छिपकर भागा। परंतु मार्ग में पकड़ा जाकर मार डाला गया। उसका सिर और हाथ काटकर एंटनी के पास पहुँचाए गए। उसने नीचता से उनको नगर-सभा के उसी मंच पर रख दिया, जहाँ से सिसरो ने अपनी वक्तृत्व-शक्ति के प्रताप से सैकड़ों लोगों के प्राणों, स्वतंत्रता और संपत्ति की रक्षा की थी। इस महापुरुष की योग्यता की सारा संसार प्रशंसा करता था। इसमें अनेक सार्वजनिक और वैयक्तिक सद्गुण थे, परंतु वृथाभिमान और साहस तथा दृढ़ संकल्प के अभाव के कारण इससे कई नीच कर्म भी हो गए। इसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। पहली स्त्री के मरने पर इसने दूसरा विवाह एक ऐसी युवती से किया जिसका यह अभिभावक था।

जन्म, अर्पिनम में, १०६ ईसा पूर्व; मृत्यु ४३ ई० पू०।

पृष्ठ ३६९—पिर्हो, सिमन, सेक्सटस एंपीरिकस, एनीसिडीमस—ये सब यूनान के बड़े आदर्शी थे।

सिमन (Simon) जादूगर—यह समरिया का अधिवासी था। फिलिप के लोकोत्तर चमत्कार देखकर इसने ईसाई धर्म की दीक्षा ली थी। परंतु इसने प्रेरितों को घूस देकर उनसे पवित्रात्मा, भाषाओं का दान, और चमत्कार दिखलाने की शक्ति प्राप्त करनी चाही। इस पर सेंट पीटर ने इसका बहिष्कार कर दिया। यह ईसा की पहली शताब्दी में था।

दीं। नीरो जितना निर्दय था उतना ही व्यभिचारी भी था। वह नाटकों में नट भी बनता था। दंगलों में कुश्ती लड़ता था। यद्यपि वह हार जाता था, तो भी लोग डर के मारे उसी की वाह-वाह करते थे। इसने ईसाइयों को भयंकर कष्ट दिए। इसने रोम के अनेक भागों में आग लगवा दी और आप एक ऊँचे मीनार पर चढ़कर तमाशा देखता और संगीत सुनता रहा। फिर इसने आग लगाने का दोष ईसाइयों पर लगाकर उनकी एक बड़ी संख्या को कुत्तों से फड़वा डाला, और रात को अपने राज-भवन के उद्यान में जला दिया। इसने नगर को दुबारा बनवाया और पेलेटाइन हिल पर एक "स्वर्ण-मंदिर" निर्माण किया। एंटोनिया नाम की एक स्त्री ने इसके साथ विवाह करने से इनकार कर दिया। इस पर उसे मरवा डाला गया। फिर उसने स्टेटिलिया मेसेलीना नाम की एक दूसरी स्त्री के पति को मारकर उसके साथ विवाह कर लिया। ज्ञानी-सेनेका, जो इसका शिक्षक रह चुका था, और कवि लूकन उसकी आज्ञा से मार डाले गए। इसके दौरात्म्य से अंत को दुनिया तंग आ गई। पीसो ने इस दुरात्मा के विरुद्ध एक षड्यंत्र रचा, परंतु भेद खुल जाने से उसमें सफलता न हुई। किंतु गलवा का षड्यंत्र सफलीभूत हुआ। नीरो के खुशामदियों ने उसका साथ छोड़ दिया, और उसकी अपनी प्रार्थना पर ही एक दरबारी ने उसे मार डाला।

जन्म, लेटियम के अंतर्गत एंटियम में, सन् ३७ ई०; मृत्यु ६८ ई०

पृष्ठ४१०स्यूटोनियस—एक रोमन ऐतिहासिक था। यह छोटे प्लिनी का मित्र था। पीछे से यह सम्राट् एड्रियन का सेक्रेटरी बन गया था। पहले बारह सम्राटों के जीवन-चरित, प्रसिद्ध वैयाकरणों और अलंकार-शास्त्रियों पर दो प्रबंध, और कवियों की कई जीवनियाँ इसकी लिखी मिलती हैं। यह ईसा की पहली और दूसरी शताब्दी में था।

पृष्ठ ४१० टेसिटस—एक रोमन ऐतिहासिक था। इसके बहुत-से ग्रंथ अब नहीं मिलते। उसके लिखे "जर्मनों के रीति-रवाज", और इसके ससुर अग्रिकोला का जीवन-चरित अब भी प्राप्य हैं, और बहुत अच्छी पुस्तकें हैं। परंतु 'टाइबरियस के शासन-काल का इतिहास' इसका सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ समझा जाता है। यह लातीनी भाषा बहुत अच्छी लिखता था।

जन्म लगभग सन् ५५ ई०; मृत्यु लगभग सन् १२० ई०

पृष्ठ ४१४ हीरोद—यह पहले गेलीली का शासक और फिर यहूदियों का राजा बनाया गया था। यह बड़ा क्रूर शासक था। इसने अपनी स्त्री, उसके दादा और भाई को मरवा दिया था। ईसा के जन्म पर इसी ने सभी पहलौठे बच्चों को मरवाया था ताकि ईसा भी उन्हीं में मारा जावे। इसने अपने पुत्रों को भी मार डाला था। इसने यरुसलेम का मंदिर दुबारा बनवाया। इसने दस स्त्रियों से विवाह किए थे।

जन्म, सन् ७० ई० पू०; मृत्यु उसी वर्ष जब ईसा का जन्म हुआ।

पृष्ठ ४१४ कोशियस—एक रोमन सेनापति। सीज़र के मारनेवालों में से एक यह भी था।

हर्मुज़्द—पारसी लोगों के परमेश्वर का नाम।

पृष्ठ ४२७ संन्यासी को चाहिए—देखो मनु अ० ६, श्लोक १—२।

पृष्ठ ४२७ दैवज्ञ बनकर—देखो मनु अ० ६, श्लोक ५०।

पृष्ठ ४२८ न मृत्यु की कामना करे—देखो मनु अ० ६, श्लोक ४५।

हमारी कुछ उपयोगी पुस्तकें

हिंदू-जीवन का रहस्य

लेखक, देवता-स्वरूप भाई परमानंदजी एम्० ए०। हिंदू-संगठन की इस उदीयमान गति में भाईजी की सेवाएँ, त्याग और योजनाएँ अपना खास स्थान रखती हैं। इस पुस्तक में आपके ऐसे ही अनुभव का निचोड़ है। पुस्तक ऐतिहासिक दृष्टि से लिखी गई है। धार्मिक जड़ता के कारण हिंदू-शक्ति किस प्रकार छिन्न-भिन्न हुई, इसका इसमें अच्छा निरूपण है। साथ ही हिंदू-जीवन का महत्त्व क्या है और क्या होना चाहिए, इसकी तर्क-पूर्ण विवेचना है। प्रत्येक हिंदू को यह पुस्तक पढ़नी चाहिए। इसमें हिंदू-वैभव, एकदेशीयता, जातीयता तथा सामाजिक संगठन आदि की पहेलियाँ स्वरैक्य के साथ हल की गई हैं। दार्शनिक तर्कों के साथ हिंदू-जीवन का रहस्य इतने अच्छे ढंग से अंकित किया गया है कि पाठक फड़क उठेंगे, और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचे बिना न रहेंगे। अवश्य मँगाइए। मूल्य सादी ।।।=), सजिल्द १।=)

मदर-इंडिया का जवाब

[लेखिका—श्रीमती चंद्रावती लखनपाल एम्० ए०]

मिस मेयो ने अपनी मदर-इंडिया में किस प्रकार भारत की दुरवस्था का भीषण किंतु अति रंजित चित्र खींचकर योरप और अमेरिका-वालों की नज़रों में भारतीयों को गिराने की कुचेष्टा की है, यह सभी जानते हैं। लेखिका ने इस पुस्तक के चार भाग करके मदर-इंडिया के क्रमशः एक-एक भाग का अध्याय-क्रम से खंडन किया है। साथ ही पुस्तक के अंत में चार परिशिष्ट—अमेरिका में पाप की पराकाष्ठा, सभ्य संसार में अछूत, सभ्यता का दुराचार, अंग्रेज़ों का भाग—दिए गए हैं। साथ ही मिस मेयो के कितने ही असत्य और अर्ध-सत्य, कल्पित और निंदा-पूर्ण आक्षेपों के खूब धुर्रे उड़ाए हैं, और

उसके भद्दे उद्देश्य का अच्छा भंडाफोड़ किया है। उनकी दलीलों तथा वैदेशिक कुकृत्यों के नमूने पढ़कर आँखों के सामने योरप और अमेरिका के अधःपतन और योरपीय सभ्यता का नंगा रूप उपस्थित हो जाता है। एक भारतीय देवी अमेरिकन मिस मेयो को किस निर्भयता से लताड़ सकती है, यह बात इस पुस्तक के पढ़ने से अच्छी तरह समझ में आ जायगी। पहला संस्करण हाथोंहाथ समाप्त हो जाने पर और माँग अधिक होने के कारण नया परिवर्द्धित और संशोधित यह द्वितीय संस्करण इतनी जल्दी प्रकाशित किया जा रहा है। मूल्य लगभग १) होगा।

एशिया में प्रभात

अनुवादक, ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०। यह पुस्तक योगिराज तपस्वी अरविंद घोष के सुहृद् और फ्रांस के अद्भुत त्यागी श्रीमान् पॉल रिचर्ड महोदय की "Dawn over Asia"-नामक पुस्तक का अतीव भावमय, सुंदर अनुवाद है। इसमें एशिया की प्राचीन सभ्यता की महिमा बड़े ओजस्वी शब्दों में व्यक्त की गई है, और अत्यंत उदारता-पूर्वक पाश्चात्य जगत् को एशिया का पवित्र संदेश सुनाया गया है। इसमें पाश्चात्य की वर्तमान उन्नति को घोर अवनति और सर्वनाश का द्वार बतलाया गया है। इसे पढ़कर प्रत्येक विचारशील का हृदय उन्नत, उदार और प्रसन्न हो सकता है। पुस्तक अतीव सुंदरता से छपी है। मूल्य ॥), सजिल्द १)

कर्म-योग

अनुवादक, हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक श्रीयुत संतरामजी बी० ए०। श्रीमती ओहष्णुहारा की Practical yoga नाम की पुस्तक का सुंदर और सरल भाषा में किया हुआ अनुवाद। इस विद्या के अनेक मर्मज्ञ अभ्यासियों द्वारा ख़ूब प्रशंसित। योग-मार्ग के यात्रियों के लिये एक उत्तम पथप्रदर्शक। सुंदर ऐंटिक काग़ज़ पर छपी हुई पुस्तक का मूल्य ॥), स० १)

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ

विषय-सूची

पहला खंड

दूसरा खंड
